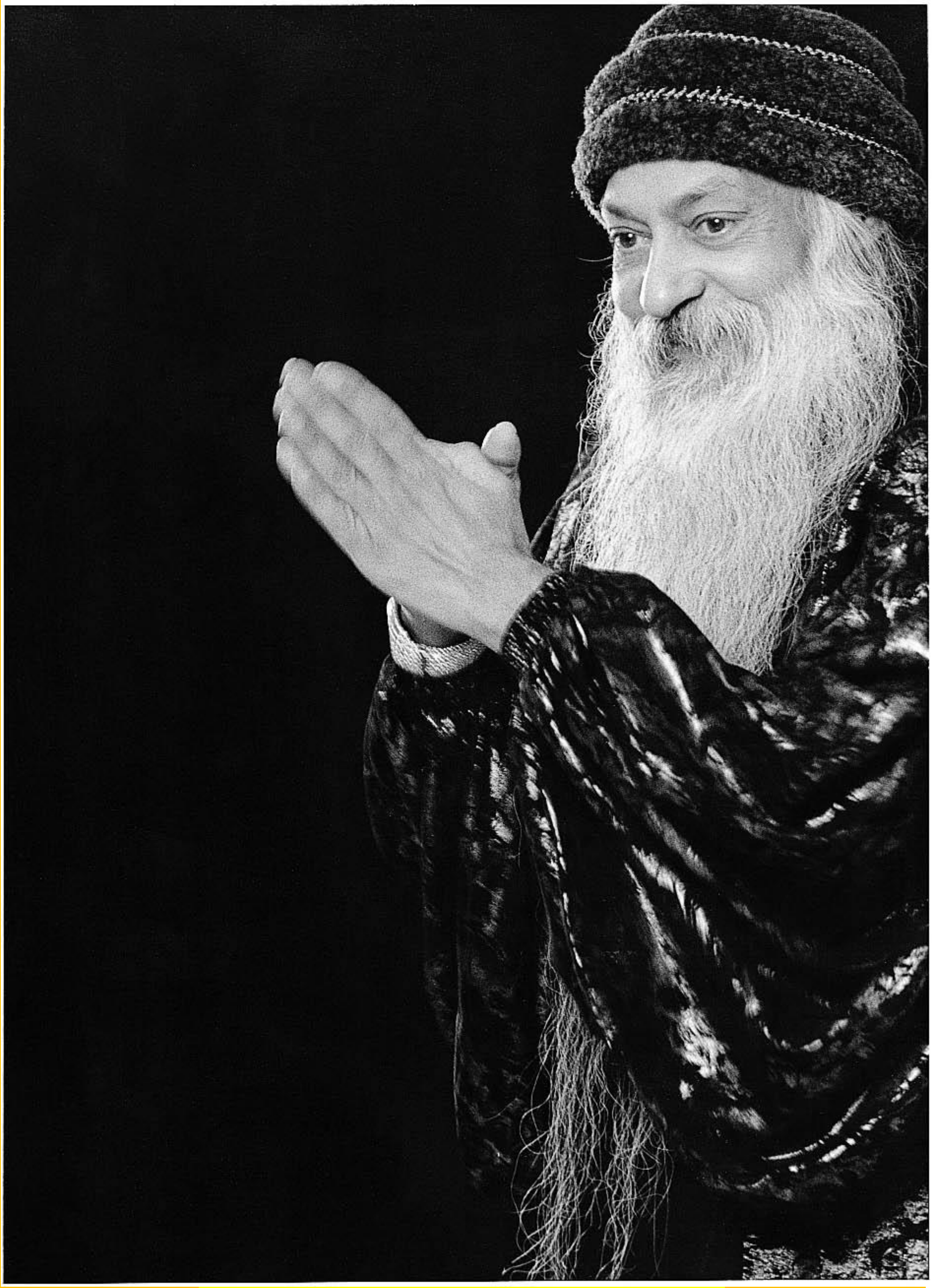

गीता दर्शन, अध्याय 12

Contents

1. प्रेम का द्वारः भक्ति में प्रवेश 3
2. दो मार्गः साकार और निराकार 38
3. पाप और प्रार्थना 78
4. संदेह की आग....118
5. अहंकार घाव है 160
6. कर्म-योग की कसौटी....202
7. परमात्मा का प्रिय कौन....246
8. उद्वेगरहित अहंशून्य भक्त 288
9. भक्ति और स्त्रैण गुण 337
10. सामूहिक शक्तिपात ध्यान....381
11. आधुनिक मनुष्य की साधना 399

पहला प्रवचन

प्रेम का द्वारः भक्ति में प्रवेश

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। 1।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। 2।।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले,

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए

मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

एक अतर्क्य यात्रा पर इस अध्याय का प्रारंभ होता है।

एक तो जगत है, जो मनुष्य की बुद्धि समझ पाती है; सरल है। गणित और तर्क वहां काम करता है। समझ में आ सके, समझ के नियमों के अनुकूल, समझ की व्यवस्था में बैठ सके, विवाद किया जा सके, निष्कर्ष निकाले जा सकें--ऐसा एक जगत है। और एक ऐसा जगत भी है, जो तर्क के नियमों को तोड़ देता है। बुद्धि वहां जाने की कोशिश करे, तो द्वार बंद पाती है। वहां हृदय ही प्रवेश कर सकता है। वहां अंधा होना ही आंख वाला होना है; और वहां मूढ़ होना बुद्धिमत्ता है।

ऐसे अतर्क्य के आयाम में भक्ति-योग के साथ प्रवेश होगा। बहुत सोचना पड़ेगा; क्योंकि जो सोचने की पकड़ में न आ सके, उसके लिए बड़ी चेष्टा करनी पड़ेगी। जो समझ के बाहर हो, उसे समझने के लिए स्वयं को पूरा ही दांव पर लगा देना होगा। और ऐसा साहस भी रखना होगा कि जहां हम चुक जाते हैं, जरूरी नहीं कि सत्य चुक जाता हो। और जहां हमारी सीमा आ जाती है, जरूरी नहीं है कि अस्तित्व की सीमा आ जाती हो।

अपने से भी आगे जाने का साहस हो, तो ही भक्ति समझ में आ सकती है। जो अपने को ही पकड़कर बैठ जाते हैं, भक्ति उनके समझ में नहीं आ सकेगी। जो अपनी बुद्धि को ही अंतिम मापदंड मान लेते हैं, उनके मापदंड में भक्ति का सत्य नहीं बैठ सकेगा।

इस बात को पहले समझ लें। कुछ जरूरी बातें इस बात को समझने के लिए ख्याल में लेनी होंगी।

एक तो जो हमें तर्क जैसा मालूम पड़ता है और उचित लगता है, सब भांति बुद्धि को भाता है, जरूरी नहीं है कि बहुत गहरी खोज पर सही ही सिद्ध हो।

जो हम जानते हैं, अगर वहां तक सत्य होता, तो हमें मिल गया होता। जो हमारी समझ है, अगर वहीं परमात्मा की अनुभूति होने वाली होती, तो हमें हो गई होती। जो हम हैं, वैसे ही अगर हम उस परम रहस्य में प्रवेश कर पाते, तो हम प्रवेश कर ही गए होते।

एक बात तो साफ है कि जैसे हम हैं, उससे परम सत्य का कोई संबंध नहीं जुड़ता है। हमारी बुद्धि जैसी अभी है, आज है, उसका जो ढांचा और व्यवस्था है, शायद उसके कारण ही जीवन का रहस्य खुल नहीं पाता; द्वार बंद रह जाते हैं।

कभी आपने देखा हो... सूफी निरंतर कहते रहे हैं... । सूफी फकीर बायजीद बार-बार कहता था कि एक बार एक मस्जिद में बैठा हुआ था। और एक पक्षी खिड़की से भीतर घुस आया। बंद कमरा था, सिर्फ एक खिड़की ही खुली थी। पक्षी ने बड़ी कोशिश की, दीवालों से टकराया, बंद दरवाजों से टकराया, छप्पर से टकराया। और जितना टकराया, उतना ही घबड़ा गया। जितना घबड़ा गया, उतनी बेचैनी से बाहर निकलने की कोशिश की।

बायजीद बैठा ध्यान करता था। बायजीद बहुत चकित हुआ। सिर्फ उस खिड़की को छोड़कर पक्षी ने सारी कोशिश की, जो खिड़की खुली थी और जिससे वह भीतर आया था!

बायजीद बहुत चिंतित हुआ कि इस पक्षी को कोई कैसे समझाए कि जब तू भीतर आ गया है, तो बाहर जाने का मार्ग भी निश्चित ही है। क्योंकि जो मार्ग भीतर ले आता है, वही बाहर भी ले जाता है। सिर्फ दिशा बदल जाती है, द्वार तो वही होता है। और जब पक्षी भीतर आ सका है, तो बाहर भी जा ही सकेगा। अन्यथा भीतर आने का भी कोई उपाय न होता।

लेकिन वह पक्षी सब तरफ टकराता है, खुली खिड़की छोड़कर। ऐसा नहीं कि उस पक्षी को बुद्धि न थी। उस पक्षी को भी बुद्धि रही होगी। लेकिन पक्षी का भी यही ख्याल रहा होगा कि जिस खिड़की से भीतर आकर मैं फंस

गया, उस खिड़की से बाहर कैसे निकल सकता हूं! जो भीतर लाकर मुझे फंसा दी, वह बाहर ले जाने का द्वार कैसे हो सकती है! यही तर्क उसका रहा होगा। जिससे हम झंझट में पड़ गए, उससे हम झंझट के बाहर कैसे निकलेंगे! इसलिए उस खिड़की को छोड़कर पक्षी ने सारी कोशिश की।

बायजीद ने सहायता भी पहुंचानी चाही। लेकिन जितनी सहायता करने की कोशिश की, पक्षी उतना बेचैन और परेशान हुआ। उसे लगा कि बायजीद भी उसको उलझाने की, फांसने की, गुलाम बनाने की, बंदी बनाने की कोशिश कर रहा है। और भी घबड़ा गया।

बायजीद ने लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि संसार में आकर हम भी ऐसे ही उलझ गए हैं; और जिस द्वार से हमने भीतर प्रवेश किया है, उस द्वार को छोड़कर हम सब द्वारों की खोज करते हैं। और जब तक हम उसी द्वार पर नहीं पहुंच जाते, जहां से हम जीवन में प्रवेश करते हैं, तब तक हम बाहर भी नहीं निकल सकते हैं।

बुद्धि के कारण आप जगत में नहीं उलझ गए हैं। विचार के कारण आप जगत में नहीं उलझ गए हैं। आपके जगत में आगमन का द्वार प्रेम है। आपके अस्तित्व का, जीवन का द्वार प्रेम है। और प्रेम जब उलटा हो जाता है, तो भक्ति बन जाती है। जब प्रेम की दिशा बदल जाती है, तो भक्ति बन जाती है।

जब तक आप अपनी आंखों के आगे जो है उसे देख रहे हैं, जब तक उससे आपका मोह है, लगाव है, तब तक आप संसार में उतरते चले जाते हैं। और जब आप आंख बंद कर लेते हैं और जो आंख के आगे दिखाई पड़ता है वह नहीं, बल्कि आंख के पीछे जो छिपा है, उस पर लगाव और प्रेम को जोड़ देते हैं, तो भक्ति बन जाती है। द्वार वही है। द्वार दूसरा हो भी नहीं सकता।

जिससे हम भीतर आते हैं, उससे ही हमें बाहर जाना होगा। जिस रास्ते से आप यहां तक आए हैं, घर लौटते वक्त भी उसी रास्ते से जाइएगा। सिर्फ

एक ही फर्क होगा कि यहां आते समय आपका ध्यान इस तरफ था, आंखें इस तरफ थीं, रुख इस तरफ था। लौटते वक्त इस तरफ पीठ होगी। आंखें वही होंगी, सिर्फ दिशा बदल जाएगी। आप वही होंगे, रास्ता वही होगा; सिर्फ दिशा बदल जाएगी।

प्रेम की दिशा के परिवर्तन का नाम भक्ति है। और प्रेम से हम इस जगत में प्रवेश करते हैं। प्रेम से ही हम इस जगत के बाहर जा सकते हैं। लेकिन प्रेम के कुछ लक्षण समझ लेने जरूरी हैं।

प्रेम का पहला लक्षण तो है उसका अंधापन। और जो भी प्रेम में नहीं होता, वह प्रेमी को अंधा और पागल मानता है। मानेगा। क्योंकि प्रेमी सोच-विचार नहीं करता; तर्क नहीं करता; हिसाब नहीं लगाता; क्या होगा परिणाम, इसकी चिंता नहीं करता। बस, छलांग लगा लेता है। जैसे प्रेम इतनी बड़ी घटना है कि उसमें डूब जाता है, और एक हो जाता है।

वे, जो भी आस-पास खड़े लोग हैं, वे सोचेंगे कि कुछ गलती हो रही है। प्रेम में भी विचार होना चाहिए। प्रेम में भी सूझ-बूझ होनी चाहिए। कहीं कोई गलत कदम न उठ जाए, इसकी पूर्व-धारणा होनी चाहिए।

प्रेम अंधा दिखाई पड़ेगा बुद्धिमानों को। लेकिन प्रेम की अपनी ही आंखें हैं। और जिसको वे आंखें उपलब्ध हो जाती हैं, वह बुद्धि की आंखों को अंधा मानने लगता है। जिसको प्रेम का रस आ जाता है, उसके लिए सारा तर्कशास्त्र व्यर्थ हो जाता है। और जो प्रेम की धुन में नाच उठता है, जो उस संगीत को अनुभव कर लेता है, वह आपके सारे सोच-विचार को दो कौड़ी की तरह छोड़ दे सकता है। उसके हाथ में कोई हीरा लग गया। अब इस हीरे के लिए आपकी कौड़ियों को नहीं सम्हाला जा सकता।

प्रेम अंधा मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रेम के पास वे ही आंखें नहीं हैं, जो बुद्धि के पास हैं। प्रेम के पास कोई दूसरी आंखें हैं। प्रेम के देखने का ढंग कोई और है। प्रेम हृदय से देखता है। और चूंकि हम इस जगत में प्रेम के कारण ही

प्रविष्ट होते हैं। अपने प्रेम के कारण, दूसरों के प्रेम के कारण हम इस जगत में आते हैं। हमारा शरीर निर्मित होता है। हम अस्तित्ववान होते हैं। इसी प्रेम को उलटाना पड़ेगा।

इसी अंधे प्रेम का नाम, जब यह जगत की तरफ से हटता है और भीतर चैतन्य की तरफ मुड़ता है, श्रद्धा है। श्रद्धा अंधा प्रेम है, लेकिन मूल-स्रोत की तरफ लौट गया। संसार की तरफ बहता हुआ वही प्रेम वासना बन जाता है। परमात्मा की तरफ लौटता हुआ वही प्रेम श्रद्धा और भक्ति बन जाती है।

जैसा प्रेम अंधा है, वैसी भक्ति भी अंधी है। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग, मार्ग ही मालूम नहीं पड़ेगा। जो बहुत सोच-विचार करते हैं, जो बहुत तर्क करते हैं, जो परमात्मा के पास भी बुद्धिमानीपूर्वक पहुंचना चाहते हैं, उनके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है।

उनके लिए मार्ग हैं। लेकिन कृष्ण इस सूत्र में कहेंगे कि भक्ति से श्रेष्ठ उन मार्गों में कोई भी मार्ग नहीं है। किस कारण? क्योंकि बुद्धि कितना ही सोचे, अहंकार के पार जाना बहुत मुश्किल है। प्रेम छलांग लगाकर अहंकार के बाहर हो जाता है। बुद्धि लाख प्रयत्न करके भी अहंकार के बाहर नहीं हो पाती। क्योंकि जब मैं सोचता हूं, तो मैं तो बना ही रहता हूं। जब मैं हिसाब लगाता हूं, तो मैं तो बना ही रहता हूं। मैं कुछ भी करूं--पूजा करूं, ध्यान करूं, योग साधूं--लेकिन मैं तो बना ही रहता हूं।

भक्ति पहले ही क्षण में मैं को पार कर जाती है। क्योंकि भक्ति का अर्थ है, समर्पण। भक्ति का अर्थ है कि अब मैं नहीं, तू ज्यादा महत्वपूर्ण है। और अब मैं मैं को छोड़ूंगा, मिटाऊंगा, ताकि तुझे पा सकूं। यह मेरा मिटना ही तेरे पाने का रास्ता बनेगा। और जब तक मैं हूं, तब तक तुझसे दूरी बनी रहेगी। जितना मजबूत हूं मैं, उतनी ही दूरी है, उतना ही फासला है। जितना पिघलूंगा, जितना गलूंगा, जितना मिटूंगा, उतनी ही दूरी मिट जाएगी।

भक्ति को कृष्ण श्रेष्ठतम योग कहते हैं, एक कारण और है जिस वजह से।

जहां दो हों, और फिर भी एक का अनुभव हो जाए, तो ही योग है। और जहां एक ही हो, और एक का अनुभव हो, तो योग का कोई सवाल नहीं है।

अगर कोई ऐसा समझता हो कि केवल परमात्मा ही है और कुछ भी नहीं, तो योग का कोई सवाल नहीं है, मिलन का कोई सवाल नहीं है। जब एक ही है, तो न मिलने वाला है, न कोई और है, जिसमें मिलना है। मिलने की घटना तो तभी घट सकती है, जब दो हों।

एक शर्त ख्याल रखनी जरूरी है। दो हों, और फिर भी दो के बीच एक का अनुभव हो जाए, तभी मिलने की घटना घटती है। मिलन बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। दो होते हैं, और फिर भी दो नहीं होते। दो लगते हैं, फिर भी दुई मिट गई होती है। दो छोर मालूम पड़ते हैं, फिर भी बीच में एक का ही प्रवाह अनुभव होता है। दो किनारे होते हैं, लेकिन सरिता बीच में बहने वाली एक ही होती है। जब दो के बीच एक का अनुभव हो जाए तो योग।

इसलिए कृष्ण भक्ति को सर्वश्रेष्ठ योग कहते हैं।

मजा ही क्या है, अगर एक ही हो; तो मिलने का कोई अर्थ भी नहीं है। और अगर दो हों, और दो ही बने रहें, तो मिलने का कोई उपाय नहीं है। दो हों और एक की प्रतीति हो जाए; दो होना ऊपरी रह जाए, एक होना भीतरी अनुभव बन जाए। दो के बीच जब एक की प्रतीति होती है, कृष्ण उसी को योग कहते हैं। वही मिलन है, वही परम समाधि है।

इस मिलने में परमात्मा तो पहले से ही तैयार है, सदा तैयार है। हम बाधा हैं। आमतौर से हम सोचते हैं, हम परमात्मा को खोज रहे हैं और परमात्मा नहीं मिल रहा है। इससे बड़ी भ्रांति की कोई और बात नहीं हो

सकती। सचाई कुछ और ही है। परमात्मा हमें निरंतर से खोज रहा है। लेकिन हम ऐसे अड़े हुए हैं अपने पर कि हम उसको भी सफल नहीं होने देते।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया था, तो उसने उसे घर से निकाल दिया। फिर बाप था; साल, छः महीने में पिघल गया वापस। खबर भेजी लड़के को कि लौट आओ। लेकिन लड़का भी जिद्दी था, और उसने लौटने से इनकार कर दिया कि जब एक बार निकाल ही दिया, तो अब... अब आना उचित नहीं है। अब मैं न हिलूंगा यहां से। वह राज्य की सीमा के बाहर जाकर बैठ गया था।

सम्राट ने मंत्री को भेजा और कहा, थोड़ा तो हिलो, एक कदम ही सही। तुम एक कदम चलो, बाकी कदम मैं चल लूंगा। बाप ने खबर भेजी है कि तुम एक कदम ही चलो, तो भी ठीक, बाकी कदम मैं चल लूंगा। लेकिन तुम्हारा एक कदम चलना जरूरी है। ऐसे तो मैं भी पूरा चलकर आ सकता हूं। जब इतने कदम चल सकता हूं, तो एक कदम और चल लूंगा। लेकिन वह मेरा आना व्यर्थ होगा, क्योंकि तुम मिलने को तैयार ही नहीं हो। तुम्हारा एक कदम, तुम्हारी मिलने की तैयारी की खबर देगा। बाकी मैं चल लूंगा।

आपका एक कदम चलना ही जरूरी है, बाकी तो परमात्मा चला ही हुआ है। लेकिन आपकी मिलने की तैयारी न हो, तो आप पर आक्रमण नहीं किया जा सकता।

परमात्मा अनाक्रमक है; वह प्रतीक्षा करेगा। फिर उसे कोई समय की जल्दी भी नहीं है। फिर आज ही हो जाए, ऐसा भी नहीं है। अनंत तक प्रतीक्षा की जा सकती है। समय की कमी हमें है, उसे नहीं। समय की अड़चन हमें है। हमारा समय चुक रहा है, और हमारी शक्ति व्यय हो रही है। लेकिन एक कदम हमारी तरफ से उठाया जाए, तो परमात्मा की तरफ से सारे कदम उठाए ही हुए हैं।

वह एक कदम भक्ति एक ही छलांग में उठा लेती है। और ज्ञान को उस एक कदम को उठाने के लिए हजारों कदम उठाने पड़ते हैं। क्योंकि ज्ञान कितने ही कदम उठाए, अंत में उसे वह कदम तो उठाना ही पड़ता है, जो भक्ति पहले ही कदम पर उठाती है। और वह है, अहंकार विसर्जन।

ज्ञानी कोई कितना ही बड़ा हो जाए, एक दिन उसे ज्ञानी होने की अस्मिता भी छोड़नी पड़ती है। इसलिए साक्रेटीज ने कहा है कि ज्ञान का अंतिम चरण है इस बात का अनुभव कि मैं ज्ञानी नहीं हूं। ज्ञान की पूर्णता है इस प्रतीति में कि मुझसे बड़ा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

अगर ज्ञान की पूर्णता इस प्रतीति में है कि मैं अज्ञानी हूं, तो इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि भक्त जो कदम पहले ही उठा लेता है... । भक्त पहले ही कदम पर अंधा हो जाता है, ज्ञानी अंतिम कदम पर अंधा होता है। बहुत यात्रा करके उसी द्वार पर आना होता है, जहां आदमी अपने को खोता है।

पर ज्ञानी बहुत चक्कर लेता है! बड़े शास्त्र हैं, बड़े सिद्धांत हैं, बड़े वाद हैं, उन सबमें भटकता है। बड़े विचार हैं। और जब तक ऊब नहीं जाता; और जब तक अपने ही विचारों से परेशान नहीं हो जाता; और जब तक उसे यह समझ में नहीं आ जाता कि मेरे विचार ही जाले की तरह मुझे बांधे हुए हैं; और मेरे विचार ही मेरी हथकड़ियां हैं; और मैंने अपने ही विचारों से अपना कारागृह निर्मित किया है, तब तक, तब तक वह लंबी भटकन से गुजरता है।

भक्त पहले ही कदम में अपने को छोड़ देता है। और जिस क्षण कोई अपने को छोड़ देता है, उसी क्षण परमात्मा उसे उठा लेता है। भक्त का साहस अदभुत है। साहस का एक ही अर्थ होता है, अज्ञात में उतर जाना। साहस का एक ही अर्थ होता है, अनजान में उतर जाना।

ज्ञानी जान-जानकर चलता है; सोच-सोचकर कदम उठाता है। हिसाब रखता है। भक्त पागल की तरह कूद जाता है। इसलिए ज्ञानियों को भक्त सदा

पागल मालूम पड़े हैं। और उन भक्त पागलों ने हमेशा ज्ञानियों को व्यर्थ के उपद्रव में पड़ा हुआ समझा है।

ये जो भक्ति के सूत्र इस अध्याय में हम चर्चा करेंगे, इनमें ये बातें ध्यान रख लेनी जरूरी हैं।

ये प्रेम और पागलपन के सूत्र हैं। इनमें थोड़ा-सा आपको पिघलना पड़ेगा अपनी बुद्धि की जगह से। थोड़ा आपका हृदय गतिमान हो और थोड़ी हृदय में तरंगें उठें, तो इन सूत्रों से संबंध स्थापित हो जाएगा। आपके सिरों की बहुत जरूरत नहीं पड़ेगी, आपके हृदय की जरूरत होगी। आप अगर थोड़े-से नीचे सरक आएंगे, अपनी खोपड़ी से थोड़े हृदय की तरफ; सोच-विचार नहीं, थोड़े हृदय की धड़कन की तरफ निकट आ जाएंगे, तो इन सूत्रों से आपका संबंध और संवाद हो पाएगा।

और ऐसा नहीं है कि एक बार आपका हृदय समझ जाए, तो आपकी बुद्धि की कसौटी पर ये सूत्र नहीं उतरेंगे। उतरेंगे! लेकिन एक बार हृदय समझ जाए, एक बार आपके हृदय में इनके रस की थोड़ी-सी धारा बह जाए, तो फिर बुद्धि की भी समझ में आ जाएंगे। लेकिन सीधा अगर बुद्धि से प्रयोग करने की कोशिश की, तो बुद्धि बाधा बन जाएगी।

जैसा मैंने कहा, बहुत बार लगता है कि बुद्धि बिल्कुल ठीक कह रही है। चूंकि हमें ठीक का कोई पता नहीं है, जो बुद्धि कहती है, उसी को हम ठीक मानते हैं।

सुना है मैंने, एक बहुत बड़ा तर्कशास्त्री रात सोया हुआ था। उसकी पत्नी ने उसे उठाया और कहा कि जरा उठो। बाहर बहुत सर्दी है और मैं गली जा रही हूं। खिड़की बंद कर दो। उसकी पत्नी ने कहा, देअर इ.ज टू मच कोल्ड आउटसाइड। गेट अप एंड क्लोज दि विंडो। उस तर्कशास्त्री ने कहा कि तू भी अजीब बातें कर रही है! क्या मैं खिड़की बंद कर दूं, तो बाहर गरमी हो

जाएगी? इफ आई क्लोज दि विंडो, विल आउटसाइड गेट वार्म? क्या बाहर सर्दी चली जाएगी अगर मैं खिड़की बंद कर दूं?

तर्क की लिहाज से बिल्कुल ठीक बात है। उसकी पत्नी कह रही थी कि बाहर बहुत सर्दी है, खिड़की बंद कर दो। उस तर्कशास्त्री ने कहा, क्या खिड़की बंद करने से बाहर गरमी हो जाएगी? खिड़की बंद करने से बाहर गरमी नहीं होने वाली। और पति सो गया! तर्क की किताब में भूल खोजनी मुश्किल है। क्योंकि पत्नी ने जो कहा था, उसका जवाब दे दिया गया।

हमारी जिंदगी में हम अज्ञात के संबंध में जो तर्क उठाते हैं, वे करीब-करीब ऐसे ही होते हैं। उनके जवाब दिए जा सकते हैं। और फिर भी जवाब व्यर्थ होते हैं। क्योंकि जिस संबंध में हम जवाब दे रहे हैं, उस संबंध में तर्कयुक्त हो जाना काफी नहीं है।

और तर्क की और एक असुविधा है कि तर्क कुछ भी सिद्ध कर सकता है। और तर्क कुछ भी असिद्ध कर सकता है। तर्क वेश्या की भांति है। उसका कोई पति नहीं है। तर्क का कोई भी पति हो सकता है। जो भी तर्क को चुकाने को तैयार है पैसे, वही पति हो जाता है। इसलिए तर्क कोई भरोसे की नाव नहीं है।

आज तक दुनिया में ऐसा कोई तर्क नहीं दिया जा सका, जिसका खंडन न किया जा सके। और मजा यह है कि जो तर्क एक बात को सिद्ध करता है, वही तर्क उसी बात को असिद्ध भी कर सकता है।

मैंने सुना है, एक बड़ा तर्कशास्त्री सुबह अपने बगीचे में बैठकर नाश्ता कर रहा था। और जैसा कि अक्सर होता है, तर्कशास्त्री निराशावादी होता है। क्योंकि तर्क से कोई आशा की किरण तो निकलती नहीं। आशा की किरण तो निकलती है प्रेम से, जो अतर्क्य है। तर्क से तो केवल उदासी निकलती है। जिंदगी में क्या-क्या व्यर्थ है, वही दिखाई पड़ता है; और कहां-कहां कांटे हैं,

वही अनुभव में आते हैं। फूलों को समझने के लिए तो हृदय चाहिए। कांटों को समझने के लिए बुद्धि काफी है, पर्याप्त है।

तर्कशास्त्री निराशावादी था। वह चाय पी रहा था और अपने टोस्ट पर मक्खन लगा रहा था। तभी वह बोला कि दुनिया में इतना दुख है और दुनिया में सब चीजें गलत हैं कि अगर मेरे हाथ से यह रोटी का टुकड़ा छूट जाए, तो मैं कितनी ही शर्त बद सकता हूं, अगर यह रोटी का टुकड़ा मेरे हाथ से छूटे, तो दुनिया इतनी बदतर है कि जिस तरफ मैंने मक्खन लगाया है, उसी तरफ से यह जमीन पर गिरेगा, ताकि धूल लग जाए और नष्ट हो जाए!

उसकी पत्नी ने कहा, ऐसा अनिवार्य नहीं है। दूसरी तरफ भी गिर सकता है! तो उस तर्कशास्त्री ने कहा, फिर तुझे पता नहीं कि जो संसार के ज्ञानी कहते रहे कि संसार दुख है।

बात बढ़ गई और शर्त भी लग गई। तर्कशास्त्री ने उछाला रोटी का टुकड़ा। संयोग की बात, मक्खन की तरफ से नीचे नहीं गिरा। मक्खन की तरफ ऊपर रही, और जिस तरफ मक्खन नहीं था, उस तरफ से फर्श पर गिरा। पत्नी ने कहा कि देखो, मैं शर्त जीत गई!

तर्कशास्त्री ने कहा, न तो तू शर्त जीती और न मेरी बात गलत हुई। सिर्फ इससे इतना ही सिद्ध होता है कि मैंने गलत तरफ मक्खन लगाया! टुकड़ा तो वहीं गिरा है जैसा गिरना चाहिए था, सिर्फ मक्खन मैंने दूसरी तरफ लगा दिया।

तर्क का कोई भरोसा नहीं है। पर हम तर्क से जीते हैं और हम पूरी जिंदगी को तर्क के जाल से बुन लेते हैं। उसके बीच लगता है, हम बहुत बुद्धिमान हैं। और अक्सर उसी बुद्धिमानी में हम जीवन का वह सब खो देते हैं, जो हमें मिल सकता था।

भक्ति, तर्क के लिए अगम्य है; विचार के लिए सीमा के बाहर है। होशियारों का वहां काम नहीं। वहां नासमझ प्रवेश कर जाते हैं। तो नासमझ होने की थोड़ी तैयारी रखना।

अब हम इन सूत्रों को लें।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो अनन्य प्रेमी, भक्तजन इस पूर्वोक्त प्रकार से निरंतर आपके भजन व ध्यान में लगे हुए आप सगुणरूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?

अर्जुन ने पूछा, दो तरह के लोग देखता हूं, दो तरह के साधक, दो तरह के खोजी। एक वे, जो देखते हैं कि आप निराकार हैं; आपका कोई रूप नहीं, कोई गुण नहीं, कोई सीमा नहीं, कोई आकृति नहीं। आपका कोई अवतार नहीं। आपको न देखा जा सकता, न छुआ जा सकता। वे, जो मानते हैं कि आप अदृश्य, विराट, असीम, निर्गुण, शक्तिरूप हैं, शक्ति मात्र हैं। ऐसे साधक, ऐसे योगी हैं। और वे भी हैं, जो आपको अनन्य प्रेम से भजते हैं, ध्यान करते हैं आपके सगुण रूप का, आपके आकार का, आपके अवतरण का। इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

अर्जुन यह पूछना चाह रहा है कि मैं किस राह से चलूं? मैं खुद कौन-सी राह पकडूं? मैं आपको निराकार की तरफ से स्पर्श करूं कि साकार की तरफ से? मैं आपके प्रेम में पड़ जाऊं और दीवाना हो जाऊं, पागल हो जाऊं? या विचारपूर्वक आपके निराकार का ध्यान करूं? मैं भक्ति में पडूं, प्रार्थना-पूजा में, प्रेम में; या ध्यान में, मौन में, निर्विचार में?

क्योंकि जो निराकार की तरफ जाए, उसे निर्विचार से चलना पड़ेगा। सब विचार आकार वाले हैं। और जहां तक विचार रह जाता है, वहां तक आकार भी रह जाएंगे। सभी विचार सगुण हैं। इसलिए विचार से निर्गुण तक

नहीं पहुंचा जा सकता। तो सारे विचार छोड़ दूं। खुद भी शून्य हो जाऊं भीतर, ताकि आपके शून्यरूप का अनुभव हो सके।

और ध्यान रहे, जो भी अनुभव करना हो, वैसे ही हो जाना पड़ता है। समान को ही समान का अनुभव होता है। जब तक मैं शून्य न हो जाऊं, तब तक निराकार का कोई अनुभव न होगा। और जब तक मैं प्रेम ही न हो जाऊं, तब तक साकार का कोई अनुभव न होगा। जो भी मुझे अनुभव करना है, वैसा ही मुझे बन जाना होगा।

इसलिए बुद्ध अगर कहते हैं, कोई ईश्वर नहीं है, तो उसका कारण है। क्योंकि बुद्ध का जोर है कि तुम शून्य हो जाओ। ईश्वर की धारणा भी बाधा बनेगी। अगर तुम यह भी सोचोगे कि कोई ईश्वर है, तो यह भी विचार हो जाएगा। और यह भी तुम्हारे मन के आकाश को घेर लेगा एक बादल की भांति। तुम इससे आच्छादित हो जाओगे। इतनी भी जगह मत रखो। तुम सीधे खाली आकाश हो जाओ, जहां कोई विचार का बादल न रह जाए, परमात्मा के विचार का भी नहीं।

बुद्ध कहते हैं, कोई मोक्ष नहीं है। क्योंकि मोक्ष की धारणा भी तुम्हारे मन में रह जाएगी, वह भी कामना बनेगी, इच्छा बनेगी; वह भी तुम्हारे मन को आच्छादित कर लेगी। तुम बिल्कुल खाली, शून्य हो जाओ। तुम कोई धारणा, कोई विचार मत बनाओ।

इसलिए बुद्ध ईश्वर को, मोक्ष को, आत्मा तक को इनकार कर देते हैं। इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है; इसलिए नहीं कि आत्मा नहीं है; इसलिए भी नहीं कि मोक्ष नहीं है। बल्कि इसीलिए ताकि तुम शून्य हो सको। और जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, तुमने जो पूछा था कि मोक्ष है या नहीं, पूछा था कि ईश्वर है या नहीं, वह तुम जान ही लोगे। इसलिए उसकी कोई चर्चा करनी बुद्ध ने जरूरी नहीं समझी।

इस कारण बुद्ध को लोगों ने समझा नास्तिक। असल में जो निराकार को मानता है, वह नास्तिक मालूम पड़ेगा ही। क्योंकि सभी आकार इनकार करने हैं। सभी आकार तोड़ डालने हैं। सारी मूर्तियां सारी प्रतिमाएं चित्त से हटा देनी हैं। सारे मंदिर, मस्जिद विदा कर देने हैं। कुछ भीतर न बचे। भीतर खालीपन रह जाए। उस खालीपन में ही निराकार का संस्पर्श होगा। क्योंकि जो मैं हो जाऊं, उसी को मैं जान सकूंगा। बुद्ध इनकार कर देते हैं, ताकि आप शून्य हो सकें।

अर्जुन पूछता है, ऐसे लोग हैं, ऐसे साधक, खोजी हैं, सिद्ध हैं, क्या वे उत्तम हैं? या वे लोग जो प्रेम से, अनन्य भक्ति से आपको खोजते हैं?

प्रेम की पकड़ बिल्कुल दूसरी है। निर्विचार होना है, तो खाली होना पड़े। निराकार की तरफ जाना है, तो खाली होना पड़े, बिल्कुल खाली। और अगर भक्ति से जाना है, तो भर जाना पड़े--पूरा। उलटा है! जो भी भीतर है, खाली कर दो, ताकि शून्य रह जाए, और शून्य में संस्पर्श हो सके निराकार का।

भक्ति का मार्ग है उलटा। भक्ति कहती है, भर जाओ पूरे उसी से, परमात्मा से ही। वही तुम्हारे हृदय में धड़कने लगे; वही तुम्हारी श्वासों में हो; वही तुम्हारे विचारों में हो। निकालो कुछ भी मत; सभी को उसी में रूपांतरित कर दो। तुम्हारा खून भी वही हो। तुम्हारी हड्डी और मांस-मज्जा भी वही हो। तुम्हारे भीतर रोआं-रोआं उसी का हो जाए। तुम उसी में सांस लो। उसी में भोजन करो। उसी में उठो, उसी में बैठो। तुम में तुम जैसा कुछ भी न बचे। तुम उसी के रंग-रूप में हो जाओ। तुम उससे इतने भर जाओ कि तुम्हारे भीतर रत्तीभर जगह खाली न बचे।

ध्यान रखें, निराकार का साधक कहता है, तुम्हारे भीतर रत्तीभर जगह भरी न रहे; सब खाली हो जाए। जिस दिन तुम पूरे खाली हो जाओगे, उस दिन वह घटना घट जाएगी, जिसकी तलाश है।

भक्ति का मार्ग कहता है, तुम्हारे भीतर जरा-सी भी जगह खाली न बचे। तुम इतने भर जाओ कि वही रह जाए, तुम न बचो। क्योंकि वह जो खाली जगह है, उसी में तुम बच सकते हो। वह जो खाली जगह है, उसी में तुम छिप सकते हो। तो तुम्हारे विचार, तुम्हारे भाव, तुम्हारी धड़कनें, सब उसी की हो जाएं। अनन्य भक्ति का अर्थ यह होता है। जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी से भर जाता है या प्रेयसी अपने प्रेमी से भर जाती है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बचता।

अगर आप प्रेम में हैं, तो यह सारा संसार खो जाता है, बस आपका प्रेमी बचता है। आप खाना भी खाते हैं, लेकिन खाते समय भी प्रेमी ही आपके भीतर होता है। आप रास्ते पर चलते भी हैं, बाजार में भी जाते हैं, दुकान पर भी बैठते हैं, काम भी करते हैं; सब होता रहता है; लेकिन भीतर चौबीस घंटे उसी की धुन बजती रहती है। प्रेमी मौजूद रहता है। उठने में, बैठने में, चलने में, सोते में, सपने में, वही छा जाता है। साधारण प्रेमी भी!

परमात्मा के प्रेम में पड़ना असाधारण प्रेम है। भक्त बचे ही न, इतना भर जाए।

अर्जुन पूछता है, ऐसे दो मार्ग हैं। बड़े उलटे मालूम पड़ते हैं। एक तरफ निराकार है और निर्विचार होना है। और एक तरफ साकार आप हैं; और सब भांति आपकी भक्ति से ही परिपूर्ण रूप से भर जाना है। घड़ा जरा भी खाली न रहे। कौन-सा मार्ग इनमें श्रेष्ठ है?

इस प्रश्न को पूछने में कई बातें छिपी हैं।

पहली बात, जरूरी नहीं है कि कृष्ण, अर्जुन के अलावा किसी और ने पूछा होता, तो यही उत्तर देते। पहला तो आप यह ख्याल में ले लें। जरूरी नहीं है कि अर्जुन के अलावा किसी और ने पूछा होता, तो कृष्ण यही उत्तर देते। अगर बुद्ध जैसा व्यक्ति होता, तो कृष्ण यह कभी न कहते कि भक्ति का मार्ग ही श्रेष्ठ है। कृष्ण का उत्तर दूसरा होता।

अर्जुन सामने है। यह उत्तर वैयक्तिक है, ए पर्सनल कम्युनिकेशन। सामने खड़ा है अर्जुन। और जब कृष्ण उससे कहते हैं, तो इस उत्तर में अर्जुन समाविष्ट हो जाता है। इस कारण बड़ी अड़चन होती है। इस कारण गीता पर सैकड़ों टीकाएं लिखी गईं और बड़ा विवाद है कि कृष्ण ऐसा क्यों कहते हैं!

अगर शंकर लिखेंगे टीका, तो निश्चित ही उनको बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी कि भक्ति-योग श्रेष्ठ! बहुत मुश्किल होगा। फिर तोड़-मरोड़ होगी। फिर कृष्ण के मुंह में ऐसे शब्द डालने पड़ेंगे, जो उनका प्रयोजन भी न हो। इस तोड़-मरोड़ के करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मेरी दृष्टि ऐसी है कि जब भी दो व्यक्तियों के बीच कोई संवाद होता है, तो इसमें बोलने वाला ही महत्वपूर्ण नहीं होता, सुनने वाला भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि जिससे बात कही गई है, वह भी समाविष्ट है। जब कृष्ण कहते हैं कि भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो पहली तो बात यह है कि अर्जुन के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है।

दूसरी बात यह जान लेनी चाहिए कि अर्जुन जैसे सभी लोगों के लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। और अर्जुन जैसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। थोड़ी नहीं, सौ में निन्यानबे लोग ऐसे हैं, जिनके लिए भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। क्योंकि निर्विचार होना अति दुरूह है। लेकिन प्रेम से भर जाना इतना दुरूह नहीं है। क्योंकि प्रेम एक नैसर्गिक उदभावना है। और निर्विचार होने के लिए तो आपको बहुत सोचना पड़ेगा कि क्यों निर्विचार हों! लेकिन प्रेम से भरने के लिए बहुत सोचना न होगा। प्रेम एक स्वाभाविक भूख है।

निर्विचार कौन होना चाहता है? शायद ही कोई आदमी मिले। लेकिन प्रेम से कौन नहीं भर जाना चाहता? शायद ही कोई आदमी मिले, जो प्रेम से न भर जाना चाहता हो!

जो आदमी प्रेम में जरा भी उत्सुक न हो, निराकार उसका रास्ता है। लेकिन आपकी अगर जरा-सी भी उत्सुकता प्रेम में हो, तो साकार आपका

रास्ता है। क्योंकि जो आपके भीतर है, उसके ही रास्ते से चलना आसान है। और जो आपमें छिपा है, उसको ही रूपांतरित करना सुगम है। और जो आपके भीतर अभी मौजूद ही है, उसी को सीढ़ी बना लेना उचित है।

प्रेम की गहन भूख है। आदमी बिना भोजन के रह जाए, बिना प्रेम के रहना बहुत कठिन है। और जो लोग बिना प्रेम के रह जाते हैं, वे आदमी हो ही नहीं पाते।

अभी मनसविद बहुत खोज करते हैं। और मनसविद कहते हैं कि अब तक ख्याल में भी नहीं था कि प्रेम के बिना आदमी जीवित न रह सकता है, न बढ़ सकता है, न हो सकता है।

जिन बच्चों को मां के पास न बड़ा किया जाए और बिल्कुल प्रेमशून्य व्यवस्था में रखा जाए, वे बच्चे पनप नहीं पाते और शीघ्र ही मर जाते हैं। भोजन पूरा दिया जाए, चिकित्सा पूरी दी जाए, सिर्फ मां की ऊष्मा, वह जो मां की गरमी है प्रेम की, वह उनको न मिले। अगर उनको किसी और की गरमी और ऊष्मा और प्रेम दिया जाए, तो भी उनके भीतर कुछ कमी रह जाती है, जो जीवनभर उनका पीछा करती है।

मनसविद कहते हैं कि जब तक हम इस जमीन पर और बेहतर माताएं पैदा नहीं कर सकते, तब तक दुनिया को बेहतर नहीं किया जा सकता। और प्रेमपूर्ण माताएं जब तक हम पैदा नहीं करते, दुनिया में युद्ध बंद नहीं किए जा सकते, घृणा बंद नहीं की जा सकती, वैमनस्य बंद नहीं किया जा सकता। क्योंकि आदमी के भीतर कुछ मौलिक तत्व, प्रेम के न मिलने से, अविकसित रह जाता है। और वह जो अविकसित तत्व भीतर रह जाता है, वही जीवन का सारा उपद्रव है। घृणा, हिंसा, क्रोध, हत्या, विध्वंस, सब उस अविकसित तत्व से पैदा होते हैं।

अगर आपके भीतर प्रेम की एक सहज-स्वाभाविक भूख है--जो कि है। आप प्रेम चाहते भी हैं, और आप प्रेम करना भी चाहते हैं। कोई आपको प्रेम

करे, इसकी भी गहन कामना है। क्योंकि जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आपके जीवन में मूल्य पैदा हो जाता है। लगता है, आप मूल्यवान हैं। जगत आपको चाहता है। कम से कम एक व्यक्ति तो चाहता है। कम से कम एक व्यक्ति के लिए तो आप अपरिहार्य हैं। कम से कम कोई तो है, जो आपकी गैर-मौजूदगी अनुभव करेगा; आपके बिना जो अधूरा हो जाएगा। आप न होंगे, तो इस जगत में कहीं कुछ जगह खाली हो जाएगी, किसी हृदय में सही।

जैसे ही कोई आपको प्रेम करता है, आप मूल्यवान हो जाते हैं। अगर आपको कोई भी प्रेम नहीं करता, तो आपको कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता। आप कितने ही बड़े पद पर हों, और कितना ही धन इकट्ठा कर लें, और आपकी तिजोड़ी कितनी ही बड़ी होती जाए, लेकिन आप समझेंगे कि आप निर्मूल्य हैं; आपका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और कोई मूल्य का अनुभव होता ही नहीं।

लेकिन इतना ही काफी नहीं है कि कोई आपको प्रेम करे। इससे भी ज्यादा जरूरी है कि कोई आपका प्रेम ले। ठीक जैसे आप श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। सिर्फ आप श्वास लेते चले जाएं, तो मर जाएंगे। आपको श्वास छोड़नी भी पड़ेगी। श्वास लेनी भी पड़ेगी और श्वास छोड़नी भी पड़ेगी, तभी आप जिंदा और ताजे होंगे; और तभी आपकी श्वास नई और जीवंत होगी। प्रेम लेना भी पड़ेगा और प्रेम देना भी पड़ेगा। सिर्फ जो आदमी प्रेम ले लेता है, वह भी मर जाता है। उसने सिर्फ श्वास ली, श्वास छोड़ी नहीं।

इस दुनिया में दो तरह के मुर्दे हैं, एक जो श्वास न लेने से मर गए हैं, एक जो श्वास न देने से मर गए हैं। और जिंदा आदमी वही है, जो श्वास लेता भी उतने ही आनंद से है, श्वास देता भी उतने ही आनंद से है; तो जीवित रह पाता है।

प्रेम एक गहरी श्वास है। और प्रेम के बिना भीतर का जो गहन छिपा हुआ प्राण है, वह जीवित नहीं होता। इसकी भूख है। इसलिए प्रेम के बिना आप असुविधा अनुभव करेंगे।

यह प्रेम की भूख अध्यात्म बन सकती है। अगर यह प्रेम की भूख मूल की तरफ लौटा दी जाए; अगर यह प्रेम की भूख पदार्थ की तरफ से परमात्मा की तरफ लौटा दी जाए; अगर यह प्रेम की भूख परिवर्तनशील जगत से शाश्वत की तरफ लौटा दी जाए, तो यह भक्ति बन जाती है।

इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि प्रेम का, भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है, तो उसके कारण हैं। एक तो अर्जुन से, और दूसरा सारी मनुष्य जाति से। क्योंकि ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल है, अति मुश्किल है, जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य न हो।

जिसके लिए प्रेम का कोई भी मूल्य नहीं है, निर्विचार उसकी साधना होगी। वह अपने को शून्य कर सकता है। जिसका प्रेम मांग कर रहा है पुष्पित-पल्लवित होने की, बेहतर है कि वह भक्ति के द्वार से परमात्मा को, सत्य को खोजने निकले।

अर्जुन का यह पूछना अपने लिए ही है। लेकिन हम अक्सर अपने को बीच में नहीं रखते, पूछते समय भी। अर्जुन यह नहीं कह रहा है कि मेरे लिए कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। अर्जुन कहता है, कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है। लेकिन उसकी गहन कामना अपने लिए ही है। क्योंकि हमारे सारे प्रश्न अपने लिए ही होते हैं।

आप जब भी कुछ पूछते हैं, तो आपका पूछना निर्वैयक्तिक नहीं होता; हो भी नहीं सकता। भला आप प्रश्न को कितना ही निर्वैयक्तिक बनाएं, आप उसके भीतर खड़े होते हैं; और आपका प्रश्न आपके संबंध में खबर देता है। आप जो भी पूछते हैं, उससे आपके संबंध में खबर मिलती है।

अर्जुन को यह सवाल उठा है कि कौन-सा है श्रेष्ठ मार्ग। यह सवाल इसीलिए उठा है कि किस मार्ग पर मैं चलूं? किस मार्ग से मैं प्रवेश करूं? कौन से मार्ग से मैं पहुंच सकूंगा? कृष्ण जो उत्तर दे रहे हैं, उसमें अर्जुन ख्याल में है।

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन, मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं... । इसमें बहुत-सी बातें समझ लेने जैसी हैं।

मुझमें मन को एकाग्र करके!

क्या आपने कभी ख्याल किया कि एकाग्रता प्रेम की भूमि में सहज ही फलित हो जाती है! प्रेम की भूमि हो, तो एकाग्रता अपने आप अंकुरित हो जाती है। असल में आप अपने मन को एकाग्र इसीलिए नहीं कर पाते, क्योंकि जिस विषय पर आप एकाग्र करना चाहते हैं, उससे आपका कोई प्रेम नहीं है।

अगर एक विद्यार्थी मेरे पास आता है और कहता है, मैं पढ़ता हूं--डाक्टरी पढ़ता हूं, इंजीनियरिंग पढ़ता हूं--लेकिन मेरा मन नहीं लगता, मन एकाग्र नहीं होता; तो मैं पहली बात यही पूछता हूं कि जो भी तू पढ़ता है, उससे तेरा प्रेम है? क्योंकि अगर प्रेम नहीं है, तो एकाग्रता असंभव है। और जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता न हो, ऐसा असंभव है। वही युवक कहता है कि उपन्यास पढ़ता हूं, तो मन एकाग्र हो जाता है। फिल्म देखता हूं, तो मन एकाग्र हो जाता है।

तो जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता हो जाती है। जहां लगाव है, वहां एकाग्रता हो जाती है। जब भी आप पाएं कि किसी बात में आपकी एकाग्रता नहीं होती, तो एकाग्रता करने की कोशिश न करके इस बात को पहले समझने की कोशिश कर लेनी चाहिए कि मेरा प्रेम भी वहां है या नहीं है? प्रेम के लिए एकाग्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

अगर आइंस्टीन अपने गणित को हल करता है, तो उसे एकाग्रता करनी नहीं पड़ती। गणित उसका प्रेम है। उसकी प्रेयसी भी बैठी रहे, तो वह प्रेयसी को भूल जाएगा और गणित को नहीं भूलेगा।

डाक्टर राममनोहर लोहिया मिलने गए थे आइंस्टीन को, तो छः घंटे उनको प्रतीक्षा करनी पड़ी। और आइंस्टीन अपने बाथरूम में है और निकलता ही नहीं। आइंस्टीन की पत्नी ने बार-बार उनको कहा कि आप चाहें तो जा सकते हैं; आपको बहुत देर हो गई। और क्षमायाचना मांगी। लेकिन कोई उपाय नहीं है। यही संभावना है कि वे अपने बाथ टब में बैठकर गणित सुलझाने में लग गए होंगे।

छः घंटे बाद आइंस्टीन बाहर आया, तो बहुत प्रसन्न था, क्योंकि कोई पहेली हल हो गई थी। खाना भूल जाएगा। पत्नी भूल जाएगी। लेकिन वह जो गणित की पहेली है, वह नहीं भूलेगी।

जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता सहज फलित हो जाती है। एकाग्रता प्रेम की छाया है। आप चाहें भी तो फिर मन की एकाग्रता को तोड़ नहीं सकते। इसीलिए तो जब आप किसी के प्रेम में होते हैं और उसे भुलाना चाहते हैं, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिससे प्रेम नहीं है, उसे याद करना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल है, जिससे प्रेम है उसे भुलाना।

जिससे प्रेम है, उसे भुलाइएगा कैसे? कोई उपाय नहीं है। भुलाने की कोशिश भी बस, उसको याद करने की कोशिश बनकर रह जाती है। और

भुलाने में भी उसकी याद ही आती है, और कुछ भी नहीं होता। और भुलाने में भी याद मजबूत होती है, पुनरुक्त होती है।

जहां प्रेम है, वहां एकाग्रता छाया की तरह चली आती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे में मन को एकाग्र करके!

एकाग्रता का अर्थ ही है, मुझमें अपने प्रेम को पूरी तरह डुबाकर; मुझमें अपने हृदय को पूरी तरह रखकर या अपने हृदय में मुझे पूरी तरह रखकर। प्रेम का अर्थ है, अपने को गंवाकर, अपने को खोकर। मैं ही बचूं; रोआं-रोआं मेरी ही याद करे।

मेरे भजन और ध्यान में लगे हुए!

मेरा ही गीत, मेरा ही नृत्य, उठते-बैठते जीवन की सारी क्रिया मेरी ही स्मृति बन जाए। जहां भी देखें, मैं दिखाई पडूं।

अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है... । अगर इसलिए कहता हूं, क्योंकि प्रेम की घटना कम होती जाती है। प्रेम की चर्चा बहुत होती है, प्रेम की कहानियां बहुत चलती हैं, प्रेम की फिल्में बहुत बनती हैं। वे बनती ही इसलिए हैं कि प्रेम नहीं रहा है। वे सब्स्टीट्यूट हैं।

भूखा आदमी भोजन की बात करता है। जिसके पास भोजन पर्याप्त है, वह भोजन की बात नहीं करता। नंगे आदमी कपड़े की चर्चा करते हैं। और जब कोई आदमी कपड़े की चर्चा करता मिले, तो समझना कि नंगा है, भला कितने ही कपड़े पहने हो। क्योंकि हम जो नहीं पूरा कर पाते जीवन में, उसको हम विचार कर-करके पूरा करने की कोशिश करते हैं।

आज सारी जमीन पर प्रेम की इतनी चर्चा होती है, इतने गीत लिखे जाते हैं, इतनी किताबें लिखी जाती हैं, उसका कुल मात्र कारण इतना है कि जमीन पर प्रेम सूखता चला जा रहा है। अब चर्चा करके ही, फिल्म देखकर ही अपने को समझाना-सुलझाना पड़ता है।

इसलिए कहता हूं कि अगर आपने किसी को कभी प्रेम किया हो, तो एक बात आपके ख्याल में आई होगी कि आप जहां भी देखें, आपको अपने प्रेमी की भनक अनुभव होगी। अगर प्रेमी आकाश में देखे, तो तारों में उसकी प्रेयसी की आंख उसे दिखाई पड़ेगी। चांद को देखे, तो प्रेयसी दिखाई पड़ेगी। सागर की लहरों को सुने, तो प्रेयसी की प्रतीति होगी। फूलों को खिलता देखे, कि कहीं कोई गीत सुने, कि कहीं कोई वीणा का स्वर सुने, कि पक्षी सुबह गीत गाएं, कि सूरज निकले, कि कुछ भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। सब तरफ से उसे एक ही खबर मिलती रहेगी और एक ही स्मरण पर चोट पड़ती रहेगी, और उसके हृदय में एक ही धुन बजती रहेगी।

जब कोई परमात्मा की तरफ इस भांति झुक जाता है कि फूल में वही दिखाई पड़ने लगता है; आकाश में उड़ते पक्षी में वही दिखाई पड़ने लगता है; कि घास पर जमी हुई सुबह की ओस में वही दिखाई पड़ने लगता है; तब समझना, भजन पूरा हुआ।

भजन का मतलब है, वही दिखाई पड़ता हो सब जगह। ऐसा मुंह से राम-राम कहते रहने से भजन नहीं हो जाता। वह भी सब्स्टीट्यूट है। जब अस्तित्व में अनुभव नहीं होता, तो आदमी मुंह से कहकर परिपूर्ति कर लेता है।

एक आदमी सुबह से राम-राम कहता चला जा रहा है। पास में खिले फूल में उसे राम नहीं दिखाई पड़ता। आकाश में सूरज ऊग रहा है, उसे राम नहीं दिखाई पड़ता। वह अपने होंठों से ही राम-राम कहे चला जा रहा है। बुरा नहीं है; कुछ और कहने से बेहतर ही है। कुछ न कुछ तो वह कहेगा ही। होंठ कुछ न कुछ करेंगे ही। बेहतर है; कुछ बुरा नहीं है; लेकिन यह भजन नहीं है। भजन तो यह है कि चारों तरफ जो भी हो रहा है, वह सभी राम-मय हो जाए और सभी में वही दिखाई पड़ने लगे।

जब तक आपको मंदिर में ही भगवान दिखाई पड़ता है, तब तक समझना कि अभी आपको भगवान के मंदिर का कोई पता नहीं है। जब तक आपको उसकी किसी बंधी हुई मूर्ति में ही उसकी प्रतीति होती है, तब तक समझना कि अभी आपको उसका कोई पता ही नहीं है। अन्यथा सभी मूर्तियां उसकी हो जाएंगी। अनगढ़ पत्थर भी उसी की मूर्ति होगा। रास्ते के किनारे पड़ी हुई चट्टान भी उसी की मूर्ति होगी। क्योंकि भजन से भरे हुए हृदय को सब तरफ वही सुनाई पड़ने लगता है।

यह जगत एक प्रतिध्वनि है। जो हमारे हृदय में होता है, वही हमें सुनाई पड़ने लगता है।

सुना है मैंने कि फ्रायड के पास, सिग्मंड फ्रायड के पास एक मरीज आया। उसके दिमाग में कुछ खराबी थी और घर के लोग परेशान थे। तो फ्रायड सबसे पहले फिक्र करता था कि इस आदमी में कोई काम-विकार, इसके सेक्स में कोई ग्रंथि, कोई उलझाव तो नहीं है। क्योंकि आमतौर से सौ बीमारियों में--मानसिक बीमारियों में--नब्बे बीमारियां तो काम-ग्रंथि से पैदा होती हैं। कहीं न कहीं सेक्स एनर्जी, काम-ऊर्जा उलझ गई होती है और उसकी वजह से मानसिक बीमारी पैदा होती है। तो फ्रायड पहले फिक्र करता था कि इसके संबंध में जांच-पड़ताल कर ले।

सामने से एक घोड़े पर एक सवार जा रहा था। तो फ्रायड ने उससे पूछा... ।

फ्रायड के सिद्धांतों का एक हिस्सा था, फ्री एसोसिएशन आफ थाट्स, विचार का स्वतंत्र प्रवाह। उससे अनुभव में आता है कि आदमी के भीतर क्या चल रहा है।

उसने अचानक उस मरीज से पूछा कि देखो, वह घोड़े पर सवार जा रहा है। तुम्हें एकदम से घोड़े पर सवार को देखकर किस बात की याद आती

है? एकदम! सोचकर नहीं, एकदम जो भी याद आती हो, मुझे कह दो। उस आदमी ने कहा कि मुझे औरत की याद आती है, स्त्री दिखाई पड़ती है।

फ्रायड दूसरी बातों में लग गया। एक पक्षी आकर खिड़की पर बैठकर आवाज करने लगा। तो फ्रायड ने फिर बातचीत तोड़कर कहा कि यह पक्षी आवाज कर रहा है, इसे सुनकर तुम्हें किस बात की याद आती है? उसने कहा कि औरत की याद आती है।

फ्रायड भी थोड़ा बेचैन हुआ। हालांकि उसके सिद्धांत के अनुसार ही चल रहा था यह आदमी। तभी फ्रायड ने अपनी पेंसिल जो हाथ में ले रखी थी, छोड़ दी, फर्श पर पटक दी। और कहा, इस पेंसिल को गिरते देखकर तुम्हें किस चीज की याद आती है? उस आदमी ने कहा, मुझे औरत की याद आती है!

फ्रायड ने कहा, क्या कारण है तुम्हें औरत का हर चीज में याद आने का? उस आदमी ने कहा, मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती। ये सब बेकार की चीजें आप कर रहे हैं--घोड़ा, पक्षी, कि पेंसिल--इतना परेशान होने की जरूरत नहीं। मुझे और किसी चीज की याद ही नहीं आती।

कामवासना से भरे आदमी को ऐसा होगा। कामवासना भीतर हो, तो सारा जगत स्त्री हो गया। जगत प्रतिध्वनि है। अगर आप लोभ से भरे हैं, तो आपको चारों तरफ, बस अपने लोभ का विस्तार, धन ही दिखाई पड़ेगा।

ऐसा करें कि किसी दिन उपवास कर लें, और फिर सड़क पर निकल जाएं। आपको सिवाय होटलों और रेस्तरां के बोर्ड के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जिस रास्ते से आप रोज निकले थे, जिस होटल का बोर्ड आपने कभी नहीं पढ़ा था, आप उसको बड़े रस से पढ़ेंगे। आज भीतर उपवास है, भीतर भूख है, और भोजन अतिशय महत्वपूर्ण हो गया है। आपको भोजन ही दिखाई पड़ेगा।

जर्मन कवि हेनरिक हेन ने लिखा है कि एक दफा मैं जंगल में भटक गया और तीन दिन तक भोजन न मिला। तो हमेशा जब भी पूर्णिमा का चांद निकलता था, तो मुझे अपनी प्रेयसी की तस्वीर दिखाई पड़ती थी। उस दिन भी पूर्णिमा का चांद निकला, मुझे लगा कि एक रोटी, सफेद रोटी आकाश में तैर रही है। प्रेयसी वगैरह दिखाई नहीं पड़ी। सफेद रोटी!

जो भीतर है, वह चारों तरफ प्रतिध्वनित होने लगता है। यह जगत आपकी प्रतिध्वनि है। इस जगत में चारों तरफ दर्पण लगे हैं, जिनमें आपकी तस्वीर ही आपको दिखाई पड़ती है।

भजन का अर्थ है, जब आपके भीतर भगवान का प्रेम गहन होता है, तो सब तरफ उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। फिर आप जो भी करते हैं, वह भजन है।

कबीर ने कहा है, उठूं, बैठूं, चलूं, सब तेरा भजन है। इसलिए अब अलग से करने की कोई जरूरत न रही।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए... ।

अति श्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? एक तो श्रद्धा है, जो तर्क पर ही निर्भर होती है। वह श्रेष्ठ श्रद्धा नहीं है। क्योंकि उसका वास्तविक सहारा बुद्धि है। अभी भी छलांग नहीं हुई। लोगों ने ईश्वर के होने के प्रमाण दिए हैं। जो उन प्रमाणों को मानकर श्रद्धा लाते हैं, उनकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है।

जैसे पश्चिम में, पूरब में अनेक दार्शनिक हुए, जिन्होंने प्रमाण दिए हैं कि ईश्वर क्यों है। अनेक प्रमाण दिए हैं। कोई कहता है, इसलिए ईश्वर को मानना जरूरी है, कि अगर वह न हो, तो जगत को बनाया किसने? जब जगत है, तो बनाने वाला होना चाहिए। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, तो कुम्हार भी होना चाहिए, नहीं तो घड़ा कैसे होगा!

तर्क देने वालों ने कहा है कि जगत में प्रयोजन दिखाई पड़ता है। जगत प्रयोजनहीन नहीं मालूम पड़ता। जगत में एक्सिडेंट नहीं मालूम पड़ता; एक सिस्टम, एक व्यवस्था मालूम पड़ती है। तो जरूर कोई व्यवस्थापक होना चाहिए। जगत चैतन्य मालूम पड़ता है। यहां मन है, विचार है, चेतना है। यह चेतना पदार्थ से पैदा नहीं हो सकती। तो जगत के पीछे कोई चैतन्य हाथ होना चाहिए।

हजारों तर्क इस तरह के लोगों ने ईश्वर के होने के दिए हैं। और अगर आप इन तर्कों के कारण ईश्वर को मानते हैं, तो आपकी श्रद्धा निकृष्ट श्रद्धा है। निकृष्ट इसलिए कि ये सब तर्क कमजोर हैं और सब खंडित किए जा सकते हैं। इनमें कोई भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका खंडन न किया जा सके। और जिस तर्क से आप सिद्ध करते हैं ईश्वर को, उसी तर्क से ईश्वर को असिद्ध किया जा सकता है।

जैसे कि आस्तिक हमेशा कहते रहे हैं कि जब भी कोई चीज हो, तो उसका बनाने वाला चाहिए, क्रिएटर, स्रष्टा चाहिए। तो चार्वाक ने कहा है कि अगर हर चीज का बनाने वाला चाहिए, तो तुम्हारे ईश्वर का बनाने वाला कौन है? वही तर्क है। आस्तिक नाराज हो जाता है इस तर्क से। लेकिन इसी तर्क पर उसकी श्रद्धा खड़ी है। वह कहता है, बनाने वाला चाहिए, स्रष्टा चाहिए; सृष्टि है, तो स्रष्टा चाहिए। बिना स्रष्टा के यह सब बनेगा कैसे?

नास्तिक कहता है, हम मानते हैं आपके तर्क को। लेकिन ईश्वर को कौन बनाएगा? वहां आस्तिक को बेचैनी शुरू हो जाती है। इस बात को वह कहता है कुतर्क।

अगर यह कुतर्क है, तो पहला तर्क कैसे हो सकता है! और नास्तिक कहता है, अगर ईश्वर बिना बनाए हो सकता है, तो फिर जगत को भी बिना बनाए होने में कौन-सी अड़चन है! अगर ईश्वर बिना बनाया है, अनक्रिएटेड है, अस्रष्ट है, तो फिर फिजूल की बात में क्यों पड़ना! यह जगत ही अस्रष्ट

मान लेने में हर्ज क्या है? जब अस्रष्ट को मानना ही पड़ता है, तो फिर इस प्रत्यक्ष जगत को ही मानना उचित है। इसके पीछे और छिपे हुए, रहस्यमय को व्यर्थ बीच में लाने की क्या जरूरत है!

ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जो नास्तिक न तोड़ देते हों। इसलिए आस्तिक नास्तिकों से डरते हैं। इसलिए नहीं कि वे आस्तिक हैं; आस्तिक होते तो न डरते। निकृष्ट आस्तिक हैं। उनके जिन तर्कों पर आधार है ईश्वर-आस्था का, वे सब तर्क तोड़े जा सकते हैं। और नास्तिक उन्हें तोड़ता है। इसलिए नास्तिक से बड़ा भय है।

और आज जो जमीन पर इतनी ज्यादा नास्तिकता दिखाई पड़ रही है, वह इसलिए नहीं कि दुनिया नास्तिक हो गई है। वह जो निकृष्ट आस्तिकता थी, वह मुश्किल में पड़ गई है। दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गई है। जिन तर्कों से आप ईश्वर को सिद्ध करते थे, उन्हीं से लोग अब ईश्वर को असिद्ध कर रहे हैं।

दुनिया ज्यादा तर्कवान हो गई है, ज्यादा विचारशील हो गई है। इसलिए अब धोखा नहीं दिया जा सकता। अब आपको तर्क को उसकी पूरी अंतिम स्थिति तक ले जाना पड़ता है। अड़चन हो जाती है।

श्रेष्ठ श्रद्धा क्या है? जो तर्क पर खड़ी नहीं है, अनुभव पर खड़ी है। जो विचार पर खड़ी नहीं है, प्रतीति पर खड़ी है। जो यह नहीं कहती कि इस कारण ईश्वर होना चाहिए। जो कहती है कि ऐसा अनुभव है, ईश्वर है। होना चाहिए नहीं, है!

अरविंद को किसी ने पूछा कि क्या ईश्वर में आपका विश्वास है? तो अरविंद ने कहा, नहीं। जिसने पूछा था, वह बहुत हैरान हुआ। उसने पूछा था, डू यू बिलीव इन गॉड? और अरविंद ने कहा, नो। सोचकर आया था दूर से वह खोजी कि कम से कम एक अरविंद तो ऐसा व्यक्ति है, जो मेरा ईश्वर

में भरोसा बढ़ा देगा। और अरविंद से यह सुनकर कि नहीं! उसकी बेचैनी हम समझ सकते हैं।

उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! ईश्वर नहीं! आपका भरोसा नहीं; विश्वास नहीं। तो क्या ईश्वर नहीं है? तो अरविंद ने कहा, नहीं, ईश्वर है। लेकिन मुझे उसमें विश्वास की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूं, वह है। एंड दिस इ.ज नाट ए बिलीफ; आइ नो, ही इ.ज।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। हम विश्वास ही उन चीजों में करते हैं, जिनका हमें भरोसा नहीं है। आप सूरज में विश्वास नहीं करते। पृथ्वी में विश्वास नहीं करते। मैं यहां बैठा हूं, इसमें आप विश्वास नहीं करते। आप जानते हैं कि मैं यहां बैठा हूं। आप ईश्वर में विश्वास करते हैं, क्योंकि आप जानते नहीं कि ईश्वर है या नहीं है। जहां भरोसा नहीं है, वहां विश्वास।

यह जरा उलटा लगेगा, पैराडाक्सिकल लगेगा। क्योंकि हम तो विश्वास का मतलब ही भरोसा समझते हैं। जब कोई आदमी आपसे आकर कहे कि मुझे आपमें पक्का विश्वास है, तब आप समझ लेना कि इस आदमी को आपमें विश्वास नहीं है। नहीं तो पक्का विश्वास कहने की जरूरत न थी। भरोसा विश्वास शब्द का उपयोग ही नहीं करता। और जब कोई आदमी बहुत ही ज्यादा जोर देने लगे कि नहीं, पक्का ही विश्वास है, तब आप अपनी जेब वगैरह से सावधान रहना! वह आदमी कुछ भी कर सकता है। और उस आदमी को घर में मत ठहरने देना, क्योंकि इतना ज्यादा विश्वास खतरनाक है। वह बता रहा है कि वह भरोसा दिला रहा है आपको कि विश्वास है। उसे विश्वास नहीं है।

जिस दिन कोई प्रेमी बार-बार कहने लगे कि मुझे बहुत प्रेम है, मुझे बहुत प्रेम है, उस दिन समझना कि प्रेम चुक गया। जब प्रेम होता है, तो कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती; अनुभव में आता है। जब प्रेम होता है, तो उसकी तरंगें अनुभव होती हैं। जब प्रेम होता है, तो उसकी सुगंध अनुभव में आती

है। जब प्रेम होता है, तो वाणी बहुत कचरा मालूम पड़ती है; कहने की जरूरत नहीं होती कि मुझे प्रेम है। जब प्रेम चुक जाता है... ।

इसलिए अक्सर प्रेमी और प्रेयसी एक-दूसरे से नहीं कहते कि मुझे बहुत प्रेम है। पति-पत्नी अक्सर कहते हैं, मुझे बहुत प्रेम है! रोज-रोज भरोसा दिलाना पड़ता है, अपने को भी, दूसरे को भी, क्योंकि है तो नहीं। अब भरोसा दिला-दिलाकर ही अपने को समझाना पड़ता है, और दूसरे को भी समझाना पड़ता है।

जिस बात की कमी होती है, उसको हम विश्वास से पूरा करते हैं। अरविंद ने ठीक कहा कि मैं जानता हूं, वह है। उसके होने के लिए कोई तर्क की जरूरत नहीं है। उसके होने के लिए अनुभव की जरूरत है।

क्या है अनुभव उसके होने का? और आपको नहीं हो पाता अगर अनुभव, तो बाधा क्या है?

ऐसा ही समझें कि सागर के किनारे खड़े हैं; लहरें उठती हैं। हर लहर समझ सकती है कि मैं हूं। लेकिन लहर है नहीं; है तो सिर्फ सागर। अभी लहर है, अभी नहीं होगी। अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। लहर का होना क्षणभंगुर है। लेकिन लहर के भीतर वह जो सागर है, वह शाश्वत है।

आप अभी नहीं थे, अभी हैं, अभी नहीं हो जाएंगे। आप एक लहर से ज्यादा नहीं हैं। इस जगत के सागर में, इस होने के सागर में, अस्तित्व के सागर में आप एक लहर हैं। लेकिन लहर अपने को मान लेती है कि मैं हूं। और जब लहर अपने को मानती है, मैं हूं, तभी सागर को भूल जाती है। स्वयं को मान लेने में परमात्मा विस्मरण हो जाता है। क्योंकि जो लहर अपने को मानेगी, वह सागर को कैसे याद रख सकती है!

इसे थोड़ा समझ लें। लहर अगर अपने को मानती है कि मैं हूं, तो उसे मानना ही पड़ेगा कि सागर नहीं है। क्योंकि अगर उसे सागर दिखाई पड़

जाए कि सागर है, तो उसे अपने भीतर भी सागर ही दिखाई पड़ेगा, फिर अपने को अलग मानने का उपाय न रह जाएगा। लहर अपने अहंकार को बचाना चाहती हो, तो सागर को इनकार करना जरूरी है। उसे कहना चाहिए, सागर वगैरह सब बातचीत है; कहीं देखा तो नहीं।

और आप भी जानते हैं, सागर आपने भी नहीं देखा है। दिखाई तो हमेशा लहरें ही पड़ती हैं। सागर तो हमेशा नीचे छिपा है; दिखाई कभी नहीं पड़ता। जब भी दिखाई पड़ती है, लहर दिखाई पड़ती है।

तो लहर कहेगी, सागर को देखा किसने है? किसी ने कभी नहीं देखा। सिर्फ बातचीत है। दिखती हमेशा लहर है। मैं हूं, और सागर सिर्फ कल्पना है।

लेकिन लहर अगर अपने भीतर भी प्रवेश कर जाए, तो सागर में प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि उसके भीतर सागर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लहर सागर का एक रूप है। लहर सागर के होने का एक ढंग है। लहर सागर की ही एक तरंग है। लहर होकर भी लहर सागर ही है। सिर्फ आकृति में थोड़ा-सा फर्क पड़ा है। सिर्फ आकार निर्मित हुआ है।

जब कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व को ठीक से समझ पाता है, अपने को भी समझ पाता है ठीक से, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता है। या अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे को भी ठीक से समझ पाता है, तो लहर खो जाती है और सागर प्रकट हो जाता है।

अगर आप किसी के गहरे प्रेम में हैं, तो जिस क्षण गहरा प्रेम होगा, उस क्षण उस व्यक्ति की लहर खो जाएगी और उस लहर में आपको सागर दिखाई पड़ेगा। इसलिए अगर प्रेमियों को अपने प्रेमियों में परमात्मा दिखाई पड़ गया है, तो आश्चर्य नहीं है। दिखाई पड़ना ही चाहिए। और वह प्रेम प्रेम ही नहीं है, जिसमें लहर न खो जाए और सागर का अनुभव न होने लगे।

दूसरे में भी दिखाई पड़ सकता है। स्वयं में भी दिखाई पड़ सकता है। जहां भी ध्यान गहरा हो जाए, वहीं दिखाई पड़ सकता है। ऐसी प्रतीति जब आपको हो जाए सागर की, तो उस प्रतीति से जो श्रद्धा का जन्म होता है, वह विश्वास नहीं है। दैट्स नाट ए बिलीफ। श्रद्धा कोई विश्वास नहीं है, श्रद्धा एक अनुभव है। और तब ये सारी दुनिया के तर्क आपसे कहें कि परमात्मा नहीं है, तो भी आप हंसते रहेंगे। और सारे तर्क सुनने के बाद भी आप कहेंगे कि ये सारे तर्क बड़े प्यारे हैं और मजेदार हैं, मनोरंजक हैं। लेकिन परमात्मा है, और इन तर्कों से वह खंडित नहीं होता।

ध्यान रहे, न तो तर्कों से वह सिद्ध होता है और न तर्कों से वह खंडित होता है। जो लोग समझते हैं, तर्कों से वह सिद्ध होता है, वे हमेशा मुश्किल में पड़ेंगे; क्योंकि फिर तर्कों से मानना पड़ेगा कि वह खंडित भी हो सकता है। जो चीज तर्क से सिद्ध होती है, वह तर्क से टूटने की भी तैयारी रखनी चाहिए। और जिस चीज के लिए आपके प्रमाण की जरूरत है, वह आपके प्रमाण के हट जाने पर खो जाएगी।

परमात्मा को आपके प्रमाणों की कोई भी जरूरत नहीं है। परमात्मा का होना आपका निर्णय नहीं है, आपके गणित का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा का होना आपके होने से पूर्व है। और परमात्मा का होना अभी, इस क्षण में भी आपके होने के भीतर वैसा ही छिपा है, जैसे लहर के भीतर सागर छिपा है।

आप जब नहीं थे, तब क्या था? जब आप नहीं थे, तो आपके भीतर जो आज है, वह कहां था? क्योंकि जो भी है, वह नष्ट नहीं होता। नष्ट होने का कोई उपाय नहीं है। विनाश असंभव है।

विज्ञान भी स्वीकार करता है कि जगत में कोई भी चीज विनष्ट नहीं हो सकती। क्योंकि विनष्ट होकर जाएगी कहां? भेजिएगा कहां उसे? पानी की एक बूंद को आप नष्ट नहीं कर सकते। भाप बन सकती है, लेकिन भाप

बनकर रहेगी। भाप को भी तोड़ सकते हैं। तो हाइड्रोजन-आक्सीजन बनकर रहेगी। लेकिन आप नष्ट नहीं कर सकते। एक पानी की बूंद भी जहां नष्ट नहीं होती, वहां आप जब कल नहीं थे, तो कहां थे?

झेन में, जापान में साधकों को वे एक पहेली देते हैं। उसे वे कहते हैं कोआन। वे कहते हैं कि जब तुम नहीं थे, तो कहां थे, इसकी खोज करो। और जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तो तुम्हारा चेहरा कैसा था, इस पर ध्यान करो। और जब तुम मर जाओगे, तो तुम कहां पहुंचोगे, इसकी थोड़ी खोज करो। क्योंकि जब तक तुम्हें इसका पता न चल जाए कि जन्म के पहले तुम कहां थे और मरने के बाद तुम कहां रहोगे, तब तक तुम्हें यह भी पता नहीं चल सकता कि इसी क्षण अभी तुम कहां हो।

अभी भी तुम्हें पता नहीं है। हो भी नहीं सकता। क्योंकि लहर का भर तुम्हें पता है, जो अभी नहीं थी, अभी है, अभी नहीं हो जाएगी। उस सागर का कोई पता नहीं है, जो था, इस लहर के पहले भी; अभी भी है; और लहर मिट जाएगी, तब भी होगा। सिर्फ आकार मिटते हैं जगत में, अस्तित्व नहीं।

हम आकार हैं। और आकार के भीतर छिपा हुआ जो अस्तित्व है, वह परमात्मा है।

श्रेष्ठ श्रद्धा उस श्रद्धा का नाम है, जो इस प्रतीति, इस साक्षात से जन्म पाती है। यह किसी शास्त्र से पढ़ा हुआ, किसी गुरु का कहा हुआ मान लेने से नहीं होगा। यह आपके ही जीवन-अनुभव का हिस्सा बनना चाहिए। यह आपको ही प्रतीत होना चाहिए।

अगर परमात्मा आपका निजी अनुभव नहीं है, तो आपकी आस्तिकता थोथी है। उसकी कोई कीमत नहीं है। वह कागज की नाव है; उससे भवसागर पार करने की कोशिश मत करना। उसमें बुरी तरह डूबेंगे। उससे तो किनारे पर ही बैठे रहना, वही अच्छा है। अनुभव की नाव ही वास्तविक नाव है।

मेरे में मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन व ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अति श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे को योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

प्रेम परम योग है। प्रेम से श्रेष्ठ कोई अनुभव नहीं है। और इसीलिए भक्ति श्रेष्ठतम मार्ग बन जाती है, क्योंकि वह प्रेम का ही रूपांतरण है।

पांच मिनट रुकेंगे। कीर्तन करेंगे और फिर जाएंगे।

कोई भी बीच में उठे न। और जब तक कीर्तन पूरा न हो जाए, यहां धुन बंद न हो जाए, तब तक बैठे रहें। और सम्मिलित हों। कौन जाने कोई धुन आपके हृदय को भी पकड़ ले और भक्ति का जन्म हो जाए।

गीता दर्शन अध्याय 12

दूसरा प्रवचन

दो मार्गः साकार और निराकार

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।। 3।।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। 4।।

और जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानंदघन ब्रह्म को निरंतर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि भजन भी करते हैं, प्रभु का स्मरण भी करते हैं। लेकिन कोई इच्छा कभी पूरी नहीं होती!

जहां मांग है, वहां प्रार्थना नहीं है। और मांग ही प्रार्थना को असफल कर देती है। प्रार्थना इसलिए असफल गई कि आपको प्राप्ति हुई, नहीं हुई--ऐसा नहीं। प्रार्थना तो उसी क्षण असफल हो गई, जब आपने मांगा। जो परमात्मा के द्वार पर मांगता जाता है, वह खाली हाथ लौटेगा। जो वहां खाली हाथ खड़ा हो जाता है बिना किसी मांग के, वही केवल भरा हुआ लौटता है।

परमात्मा से कुछ मांगने का अर्थ क्या होता है? पहला तो अर्थ यह होता है कि शिकायत है हमें। शिकायत नास्तिकता है। शिकायत का अर्थ है कि जैसी स्थिति है, उससे हम नाराज हैं। जो परमात्मा ने दिया है, उससे हम अप्रसन्न हैं। जैसा हम चाहते हैं, वैसा नहीं है। और जैसा है, वैसा हम नहीं चाहते हैं।

शिकायत का यह भी अर्थ है कि हम परमात्मा से स्वयं को ज्यादा बुद्धिमान मानते हैं। वह जो कर रहा है, गलत कर रहा है। हमारी सलाह मानकर उसे करना चाहिए, वही ठीक होगा। जैसे कि हमें पता है कि क्या है जो ठीक है हमारे लिए।

अगर हम बीमार हैं, तो हम स्वास्थ्य मांगते हैं। लेकिन जरूरी नहीं कि बीमारी गलत ही हो। और बहुत बार तो स्वास्थ्य भी वह नहीं दे पाता, जो बीमारी दे जाती है।

हम दुखी हैं, तो सुख मांगते हैं। पर जरूरी नहीं कि सुख सुख ही लाए। अक्सर तो ऐसा होता है कि सुख और बड़े दुख ले आता है। दुख भी मांजता है, दुख भी निखारता है, दुख भी समझ देता है। हो सकता है, दुख के मार्ग से निखरकर ही आप जीवन के सत्य को पा सकें और सुख आपके लिए महंगा सौदा हो जाए।

इसलिए क्या ठीक है, यह जो परमात्मा पर छोड़ देता है, वही प्रार्थना कर रहा है। जो कहता है कि यह है ठीक और तू पूरा कर, वह प्रार्थना नहीं कर रहा है, वह परमात्मा को सलाह दे रहा है।

आपकी सलाह का कितना मूल्य हो सकता है? काश, आपको यह पता होता कि क्या आपके हित में है! वह आपको बिल्कुल पता नहीं है। आपको यह भी पता नहीं है कि वस्तुतः आप क्या चाहते हैं! क्योंकि जो आप सुबह चाहते हैं, दोपहर इनकार करने लगते हैं। और जो आपने आज सांझ चाहा है, जरूरी नहीं है कि कल सुबह भी आप वही चाहें।

पीछे लौटकर अपनी चाहों को देखें। वे रोज बदल जाती हैं; प्रतिपल बदल जाती हैं। और यह भी देखें कि जो चाहें पूरी हो जाती हैं, उनके पूरे होने से क्या पूरा हुआ है? वे न भी पूरी होतीं, तो कौन-सी कमी रह जाती? ठीक हमें पता ही नहीं है। हम क्या मांग रहे हैं? क्यों मांग रहे हैं? क्या उसका परिणाम होगा?

सुना है मैंने कि एक सिनागाग में, एक यहूदी प्रार्थना-मंदिर में, एक बूढ़ा यहूदी प्रार्थना कर रहा था। और वह परमात्मा से कह रहा था कि अन्याय की भी एक हद होती है! सत्तर साल से निरंतर, जब से मैंने होश सम्हाला है--उस यहूदी की उम्र होगी कोई पचासी वर्ष--जब से मैंने होश सम्हाला है, सत्तर वर्ष से तेरी प्रार्थना कर रहा हूं। दिन में तीन बार प्रार्थनागृह में आता हूं। बच्चे का जन्म हो, कि लड़की की शादी हो, कि घर में सुख हो कि दुख हो, कि यात्रा पर जाऊं या वापस लौटूं, कि नया धंधा शुरू करूं, कि पुराना बंद करूं, ऐसा कोई भी एक काम जीवन में नहीं किया, जो मैंने तेरी प्रार्थना के साथ शुरू न किया हो। जैसा आदेश है धर्मशास्त्रों में, वैसा जीवन जीया हूं। पर-स्त्री को कभी बुरी नजर से नहीं देखा। दूसरे के धन पर लालच नहीं की। चोरी नहीं की। झूठ नहीं बोला। बेईमानी नहीं की। परिणाम क्या है? और मेरा साझीदार है, स्त्रियों के पीछे भटककर जिंदगीभर उसने खराब की है। तेरी प्रार्थना कभी उसे करते नहीं देखा। चोरी, बेईमानी, झूठ, सब उसे सरल है। जुआड़ी है, शराब पीता है। लेकिन दिन दूनी रात चौगुनी उसकी स्थिति अच्छी होती गई है। अभी भी स्वस्थ है। मैं बीमार हूं। धन का एक टुकड़ा हाथ में न रहा। सिवाय दुख के मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा है। कारण क्या है? और मैं यह नहीं कहता हूं कि तू मेरे साझीदार को दंड दे। सिर्फ इतना ही पूछता हूं कि मेरा कसूर क्या है? इतना अन्याय मेरे साथ क्यों? यह कैसे न्याय की व्यवस्था है?

सिनागाग में परमात्मा की आवाज गूंजी कि सिर्फ छोटा-सा कारण है। बिकाज यू हैव बीन नैगिंग मी डे इन डे आउट लाइक एन आथेंटिक वाइफ। एक प्रामाणिक पत्नी की तरह तुम मेरा सिर खा रहे हो जिंदगीभर से, यही कारण है, और कुछ भी नहीं। तुम तीन दफे प्रार्थना क्या करते हो, तीन दफे मेरा सिर खाते हो!

आपकी प्रार्थना से अगर परमात्मा तक को अशांति होती हो, तो आप ध्यान रखना कि आपको शांति न होगी। आपकी प्रार्थनाएं क्या हैं? नैगिंग। आप सिर खा रहे हैं। ये प्रार्थनाएं आपकी आस्तिकता का सबूत नहीं हैं, और न आपकी प्रार्थना का। और न आपका हार्दिक इन मांगों से कोई संबंध है। ये सब आपकी वासनाएं हैं।

लेकिन हमारी तकलीफ ऐसी है। बुद्ध हों, महावीर हों, कृष्ण हों, वे सभी कहते हैं; मोहम्मद हों या क्राइस्ट हों, वे सभी कहते हैं कि तुम्हारी सब मांगें पूरी हो जाएंगी, लेकिन तुम उसके द्वार पर मांग छोड़कर जाना। यही हमारी मुसीबत है। फिर हम उसके द्वार पर जाएंगे ही क्यों?

हमारी तकलीफ यह है कि हम उसके द्वार पर ही इसीलिए जाना चाहते हैं कि हमारी मांगें हैं और मांगें पूरी हो जाएं। और ये सब शिक्षक बड़ी उलटी शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि तुम अपनी मांगें छोड़ दो, तो ही उसके द्वार पर जा सकोगे। और फिर तुम्हारी सब मांगें भी पूरी हो जाएंगी। कुछ मांगने को न बचेगा; सब तुम्हें मिल जाएगा। लेकिन वह जो शर्त है, वह हमसे पूरी नहीं होती।

मुल्ला नसरुद्दीन एक छोटे-से गांव में शिक्षक था। लेकिन धीरे-धीरे लोगों ने अपने बच्चों को उसकी पाठशाला से हटा लिया, क्योंकि वह शराब पीकर स्कूल पहुंच जाता और दिनभर सोया रहता। आखिर उसकी पत्नी ने कहा कि तुम थोड़ा अपना चरित्र बदलो, अपना आचरण बदलो। यह तुम शराब पीना बंद करो, नहीं तो तुमसे पढ़ने कोई भी नहीं आएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि तू बात ही उलटी कह रही है। हम तो उन बच्चों को पढ़ाने की झंझट ही इसीलिए लेते हैं कि शराब पीने के लिए पैसे मिल जाएं। और तू कह रही है कि शराब पीना छोड़ दो, तो बच्चे पढ़ने आएंगे। लेकिन शराब पीना अगर मैं छोड़ दूं, तो बच्चों को पढ़ाऊंगा किस लिए! हम तो बच्चों को पढ़ाते ही इसलिए हैं कि शराब के लिए कुछ पैसे मिल जाएं।

हमारी सारी हालत ऐसी है। हम तो परमात्मा के द्वार पर इसलिए जाते हैं कि कोई क्षुद्र मांग पूरी हो जाए। और ये सारे शिक्षक हमसे कहते हैं कि तुम मांग छोड़कर वहां जाना, तो ही उसके द्वार में प्रवेश पा सकोगे, तो ही उसके कान तक तुम्हारी आवाज पहुंचेगी। लेकिन हमारी दिक्कत यह है कि तब हम आवाज ही क्यों पहुंचाना चाहेंगे? हम उसके द्वार पर ही क्यों जाएंगे? हम उसके द्वार पर दस्तक ही क्यों देंगे? हम तो वहां जाते इसलिए हैं कि कोई मांग पूरी करना चाहते हैं।

लेकिन जो मांग पूरी करना चाहता है, वह उसके द्वार पर जाता ही नहीं। वह मंदिर के द्वार पर जा सकता है, मस्जिद के द्वार पर जा सकता है, उसके द्वार पर नहीं जा सकता। क्योंकि उसका द्वार तो दिखाई ही तब पड़ता है, जब चित्त से मांग विसर्जित हो जाती है। उसका द्वार वहां किसी मकान में बना हुआ नहीं है। उसका द्वार तो उस चित्त में है, जहां मांग नहीं है, जहां कोई वासना नहीं है, जहां स्वीकार का भाव है। जहां परमात्मा जो कर रहा है, उसकी मर्जी के प्रति पूरी स्वीकृति है, समर्पण है, उस हृदय में ही द्वार खुलता है।

मंदिर के द्वार को उसका द्वार मत समझ लेना, क्योंकि मंदिर के द्वार में तो वासना सहित आप जा सकते हैं। उसका द्वार तो आपके ही हृदय में है। और उस हृदय पर वासना की ही दीवाल है। वह दीवाल हट जाए, तो द्वार खुल जाए।

तो ऐसा मत पूछें कि आपकी प्रार्थनाएं, आपका भजन, आपका ध्यान, आपकी मांग को पूरा क्यों नहीं करवाता! आपकी मांग के कारण भजन ही नहीं होता, ध्यान ही नहीं होता, प्रार्थना ही नहीं होती। इसलिए पूरे होने का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो चीज शुरू ही नहीं हुई, वह पूरी कैसे होगी? आप यह मत सोचें कि आखिरी चीज खो रही है। पहली ही चीज खो रही है। पहला कदम ही वहां नहीं है। आखिरी कदम का तो कोई सवाल ही नहीं है।

प्रेम मांगशून्य है। प्रेम बेशर्त है। जब आप किसी को प्रेम करते हैं, तो आप कुछ मांगते हैं? आपकी कोई शर्त है? प्रेम ही आनंद है। प्रार्थना परम प्रेम है। अगर प्रार्थना ही आपका आनंद हो, आनंद प्रार्थना के बाहर न जाता हो, कोई मांग न हो पीछे जो पूरी हो जाए तो आनंद मिलेगा, प्रार्थना करने में ही आनंद मिलता हो, तो ही प्रार्थना हो पाती है। तो जब प्रार्थना करने जाएं तो प्रार्थना को ही आनंद समझें। उसके पार कोई और आनंद नहीं है।

सुना है मैंने कि एक फकीर ने रात एक स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में पहुंच गया है। और वहां उसने देखा मीरा को, कबीर को, चैतन्य को नाचते, गीत गाते, तो बहुत हैरान हुआ। उसने पास खड़े एक देवदूत से पूछा कि ये लोग यहां भी नाच रहे हैं और गीत गा रहे हैं! हम तो सोचे थे कि अब ये स्वर्ग पहुंच गए, तो अब यह उपद्रव बंद हो गया होगा। ये तो जमीन पर भी यही कर रहे थे। इस चैतन्य को हमने जमीन पर भी ऐसे ही नाचते और गाते देखा। इस मीरा को हमने ऐसे ही कीर्तन करते देखा। यह कबीर यही तो जमीन पर कर रहा था। और अगर स्वर्ग में भी यही हो रहा है, स्वर्ग में आकर भी अगर यही होना है, तो फिर जमीन में और स्वर्ग में फर्क क्या है?

तो उस देवदूत ने कहा कि तुम थोड़ी-सी भूल कर रहे हो। तुम समझ रहे हो कि ये कबीर, चैतन्य और मीरा स्वर्ग में आ गए हैं। तुम समझ रहे हो कि संत स्वर्ग में आते हैं। बस, यहीं तुम्हारी भूल हो रही है। संत स्वर्ग में नहीं

आते। स्वर्ग संतों में होता है। इसलिए संत जहां होंगे, वहीं स्वर्ग होगा। तुम यह मत समझो कि ये संत स्वर्ग में आ गए हैं। ये यहां गा रहे हैं और आनंदित हो रहे हैं, इसलिए यहां स्वर्ग है। ये जहां भी होंगे, वहां स्वर्ग होगा। और स्वर्ग मिल जाए, इसलिए इन्होंने कभी नाचा नहीं था। इन्होंने तो नाचने में ही स्वर्ग पा लिया था। इसलिए अब इस नृत्य का, इस आनंद का कहीं अंत नहीं है। अब ये जहां भी होंगे, यह आनंद वहीं होगा। इन संतों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है।

आप आमतौर से सोचते होंगे कि संत स्वर्ग में जाते हैं। संतों को नरक में डालने का कोई उपाय नहीं है। संत जहां होंगे, स्वर्ग में होंगे। क्योंकि संत का हृदय स्वर्ग है।

प्रार्थना जब आ जाएगी आपको, तो आप यह पूछेंगे ही नहीं कि प्रार्थना पूरी नहीं हुई! प्रार्थना का आ जाना ही उसका पूरा हो जाना है। उसके बाद कुछ बचता नहीं है। अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ बच जाता है, तो फिर प्रार्थना से बड़ी चीज भी जमीन पर है। और अगर प्रार्थना के बाद भी कुछ पाने को शेष रह जाता है, तो फिर आपको, प्रार्थना क्या है, इसका ही कोई पता नहीं है।

प्रार्थना अंत है; प्रार्थनापूर्ण हृदय इस जगत का अंतिम खिला हुआ फूल है। वह आखिरी ऊंचाई है, जो मनुष्य पा सकता है। वह अंतिम शिखर है। उसके पार, उसके पार कुछ है नहीं।

पर आपकी प्रार्थना के पार तो बड़ी क्षुद्र चीजें होती हैं। आपकी प्रार्थना के पार कहीं नौकरी का पाना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं बच्चे का पैदा होना होता है। आपकी प्रार्थना के पार कहीं कोई मुकदमे का जीतना होता है।

इन प्रार्थनाओं को आप प्रार्थना मत समझना, अन्यथा असली प्रार्थना से आप वंचित ही रह जाएंगे। असली प्रार्थना का अर्थ है, अस्तित्व का उत्सव।

असली प्रार्थना का अर्थ है, मैं हूं, इसका धन्यवाद। मेरा होना परमात्मा की इतनी बड़ी कृपा है कि उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूं। एक श्वास भी आती है और जाती है... ।

कभी आपने सोचा कि आपकी अस्तित्व को क्या जरूरत है? आप न होते, तो क्या हर्ज हो जाता? कभी आपने सोचा कि अस्तित्व को आपकी क्या आवश्यकता है? आप नहीं होंगे, तो क्या मिट जाएगा? और आप नहीं थे, तो कौन-सी कमी थी? आप अगर न होते, कभी न होते, तो क्या अस्तित्व की कोई जगह खाली रह जाती? आपके होने का कुछ भी तो अर्थ, कुछ भी तो आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती। फिर भी आप हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मेरे होने का कोई भी तो कारण नहीं है; और परमात्मा मुझे सहे, इसकी कोई भी तो जरूरत नहीं है; फिर भी मैं हूं, फिर भी मेरा होना है, फिर भी मेरा जीवन है।

यह जो अहोभाव है, इस अहोभाव से जो नृत्य पैदा हो जाता है, जो गीत पैदा हो जाता है; यह जो जीवन का उत्सव है, यह जो परमात्मा के प्रति कृतज्ञता का बोध है कि मैं बिल्कुल भी तो किसी उपयोग का नहीं हूं, फिर भी तेरा इतना प्रेम कि मैं हूं। फिर भी तू मुझे सहता है और झेलता है। शायद मैं तेरी पृथ्वी को थोड़ा गंदा ही करता हूं। और शायद तेरे अस्तित्व को थोड़ा-सा उदास और रुग्ण करता हूं। शायद मेरे होने से अड़चन ही होती है, और कुछ भी नहीं होता। तेरे संगीत में थोड़ी बाधा पड़ती है। तेरी धारा में मैं एक पत्थर की तरह अवरोध हो जाता हूं। फिर भी मैं हूं। और तू मुझे ऐसे सम्हाले हुए है, जैसे मेरे बिना यह अस्तित्व न हो सकेगा।

यह जो अहोभाव है, यह जो ग्रेटिट्यूड है, इस अहोभाव, इस धन्यता से जो गीत, जो सिर झुक जाता है, वह जो नाच पैदा हो जाता है, वह जो आनंद की एक लहर जग जाती है, उसका नाम प्रार्थना है। जरूरी नहीं है कि वह शब्दों में हो।

शब्दों में तो जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि जीवन से हमें कहने की कला नहीं आती। नहीं तो प्रार्थना मौन होगी। शब्द तो सिक्खड़ के लिए हैं। वे तो प्राथमिक, जिसको अभी कुछ पता नहीं है, उसके लिए हैं। जो जान लेगा कला, उसका तो पूरा अस्तित्व ही अहोभाव का नृत्य हो जाता है।

एक गरीब फकीर एक मस्जिद में प्रार्थना कर रहा था। उसके पास ही एक बहुत बुद्धिमान, शास्त्रों का बड़ा जानकार, वह भी प्रार्थना कर रहा था। इस गरीब फकीर को देखकर ही उस पंडित को लगा... ।

पंडित को सदा ही लगता है कि दूसरा अज्ञानी है। पंडित होने का मजा ही यही है कि दूसरे का अज्ञान दिखाई पड़ता है। और दूसरे के अज्ञान में अहंकार को तुष्टि मिलती है।

तो पंडित को देखकर ही लगा कि यह गरीब फकीर, कपड़े-लत्ते भी ठीक नहीं, शक्ल-सूरत से भी पढ़ा-लिखा, सुसंस्कृत नहीं मालूम पड़ता है, गंवार है, यह क्या प्रार्थना कर रहा होगा! और जब तक मेरी अभी प्रार्थना नहीं सुनी गई, इसकी कौन सुन रहा होगा! ऐसे अशिष्ट, गंवार आदमी की--असंस्कृत--इसकी प्रार्थना कहां परमात्मा तक पहुंचती होगी! मैं परिष्कार कर-करके हैरान हो गया हूं; और प्रार्थना को बारीक से बारीक कर लिया है, शुद्धतम कर लिया है; अभी मेरी आवाज नहीं पहुंची, इसकी क्या पहुंचती होगी! फिर भी उसे जिज्ञासा हुई कि यह कह क्या रहा है! वह धीरे-धीरे गुनगुना रहा था।

वह फकीर कह रहा था, परमात्मा से कि मुझे भाषा नहीं आती; और शब्दों का जमाना भी मुझे नहीं आता। तो मैं पूरी अल्फाबेट बोले देता हूं। ए बी सी डी, पूरी बोले देता हूं। तू ही जमा ले, क्योंकि इन्हीं सब अक्षरों में तो सब प्रार्थनाएं आ जाती हैं। तू ही जमा ले कि मेरे काम का क्या है और तू ही प्रार्थना बना ले।

वह पंडित तो बहुत घबड़ा गया कि हद्द की मूढ़ता है। यह क्या कह रहा है! कि मैं तो सिर्फ अल्फाबेट जानता हूं; यह बारहखड़ी जानता हूं; यह मैं पूरी बोले देता हूं। अब जमाने का काम तू ही कर ले, क्योंकि सभी शास्त्र इन्हीं में तो आ जाते हैं, और सभी प्रार्थनाएं इन्हीं से तो बनती हैं। और मुझसे भूल हो जाएगी। तू ठीक जमा लेगा। तेरी जो मर्जी, वही मेरी मर्जी!

वह पंडित तो बहुत घबड़ा गया। उसने आंख बंद कीं और परमात्मा से कहा कि हद्द हो गई। मेरी प्रार्थना अभी तक तुझ तक नहीं पहुंची, क्योंकि मेरी कोई मांग पूरी नहीं हुई। क्योंकि मांग पूरी हो, तो ही हम समझें कि प्रार्थना पहुंची। और यह आदमी, यह क्या कह रहा है!

सुना उसने अपने ध्यान में कि उसकी प्रार्थना पहुंच गई। क्योंकि न तो उसकी कोई मांग है, न पांडित्य का कोई दंभ है। वह यह भी नहीं कह रहा है कि मेरी मांग क्या है। वह कह रहा है कि तू ही जमा ले। जो इतना मुझ पर छोड़ देता है, उसकी प्रार्थना पहुंच गई।

प्रार्थना है उस पर छोड़ देना। खुद पकड़कर रख लेना वासना है; उस पर छा.ेड देना प्रार्थना है। अपने को समझदार मानना वासना है; सारी समझ उसकी और हम नासमझ, ऐसी भाव-दशा प्रार्थना है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, कल आपने कहा कि बाहर के व्यक्तियों और वस्तुओं की ओर बहता हुआ प्रेम वासना है और स्वयं के भीतर चैतन्य-केंद्र की ओर वापस लौटकर बहता हुआ प्रेम श्रद्धा है, भक्ति है। किंतु भक्ति-योग में तो बाहर स्वयं से भिन्न किसी इष्टदेव की ओर साधक की चेतना बहती है। तब तो आपके कथनानुसार यह भी वासना हो गई, श्रद्धा व भक्ति नहीं। समझाएं कि भक्ति-योग साधक की चेतना बाहर, पर की ओर बहती है या भीतर स्व की ओर?

थोड़ा जटिल है, लेकिन समझने की कोशिश करें। जैसे ही साधक यात्रा शुरू करता है, उसे भीतर का तो कोई पता नहीं। वह तो बाहर को ही जानता है। उसे तो बाहर का ही अनुभव है। अगर उसे भीतर भी ले जाना है, तो भी बाहर के ही सहारे भीतर ले जाना होगा। और बाहर भी छुड़ाना है, तो धीरे-धीरे बाहर के सहारे ही छुड़ाना होगा।

तो परमात्मा को बाहर रखा जाता है। यह सिर्फ उपाय है, एक डिवाइस, कि परमात्मा वहां ऊपर आकाश में है। परमात्मा सब जगह है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां वह नहीं है। बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। सच तो यह है कि बाहर-भीतर हमारे फासले हैं। उसके लिए बाहर और भीतर कुछ भी नहीं है।

घर में आप कहते हैं कि कमरे के भीतर जो आकाश है, वह भीतर है; और कमरे के बाहर जो आकाश है, वह बाहर है। वह आकाश एक है। दीवालें गिर जाएं, तो न कुछ बाहर है, न भीतर है। जो हमें भीतर मालूम पड़ता है और बाहर मालूम पड़ता है, वह भी एक है। सिर्फ हमारे अहंकार की पतली-सी दीवाल है, जो फासला खड़ा करती है।

इसलिए लगता है कि भीतर मेरी आत्मा और बाहर आपकी आत्मा। लेकिन वह आत्मा आकाश की तरह है। जिस दिन मैं का भाव गिर जाता है, उस दिन बाहर-भीतर भी गिर जाता है। उस दिन वही रह जाता है; बाहर-भीतर नहीं होता। लेकिन साधक जब शुरू करेगा, तो बाहर की ही भाषा उससे बोलनी पड़ेगी। आप वही भाषा तो समझेंगे, जो आप जानते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। अगर आपको कोई विदेशी भाषा भी सीखनी हो, तो भी उसी भाषा के जरिए समझानी पड़ेगी, जो आप जानते हैं। आप बाहर की भाषा जानते हैं। भीतर की भाषा को भी समझाने के लिए बाहर की भाषा से शुरू करना होगा।

तो परमात्मा को भक्त रखता है बाहर। और कहता है, संसार के प्रति सारी वासना छोड़ दो और सारी वासना को परमात्मा के प्रति लगा लो। यह भी इसीलिए कि वासना ही हमारे पास है, और तो हमारे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन वासना की एक खूबी है कि वासना को अगर बचाना हो, तो अनेक वासनाएं चाहिए। वासना को बचाना हो, तो नित नई वासना चाहिए। और जितनी ज्यादा वासनाएं हों, उतनी ही वासना बचेगी। जैसे ही सारी वासना को परमात्मा पर लगा दिया जाए, वासना तिरोहित होने लगती है।

एक उदाहरण के लिए छोटा-सा प्रयोग आप करके देखें, तो आपको पता चलेगा। एक दीए को रख लें रात अंधेरे में अपने कमरे में। और अपनी आंखों को दीए पर एकटक लगा दें। दो-तीन मिनट ही अपलक देखने पर आपको बीच-बीच में शक पैदा होगा कि दीया नदारद हो जाता है। दीए की ज्योति बीच-बीच में खो जाएगी। अगर आपकी आंख एकटक लगी रही, तो कई बार आप घबड़ा जाएंगे कि ज्योति कहां गई! जब आप घबड़ाएंगे, तब फिर ज्योति आ जाएगी। ज्योति कहीं जाती नहीं। लेकिन अगर आंखों की देखने की क्षमता बचानी हो, तो बहुत-सी चीजें देखना जरूरी है। अगर आप एक ही चीज पर लगा दें, तो थोड़ी ही देर में आंखें देखना बंद कर देती हैं। इसलिए ज्योति खो जाती है।

जिस चीज पर आप अपने को एकाग्र कर लेंगे, और सब चीजें तो खो जाएंगी पहले, एक चीज रह जाएगी। थोड़ी देर में वह एक भी खो जाएगी। एकाग्रता पहले और चीजों का विसर्जन बन जाती है, और फिर उसका भी, जिस पर आपने एकाग्रता की।

अगर सारी वासना को संसार से खींचकर परमात्मा पर लगा दिया, तो पहले संसार खो जाएगा। और एक दिन आप अचानक पाएंगे कि परमात्मा बाहर से खो गया। और जिस दिन परमात्मा भी बाहर से खो जाता है, आप अचानक भीतर पहुंच जाते हैं। क्योंकि अब बाहर होने का कोई उपाय न

रहा। संसार पकड़ता था, उसे छोड़ दिया परमात्मा के लिए। और जब एक बचता है, तो वह अचानक खो जाता है। आप अचानक भीतर आ जाते हैं।

फिर यह जो परमात्मा की धारणा हमने बाहर की है, यह हमारे भीतर जो छिपा है, उसकी ही श्रेष्ठतम धारणा है। वह जो आपका भविष्य है, वह जो आपकी संभावना है, उसकी ही हमने बाहर धारणा की है। वह बाहर है नहीं, वह हमारे भीतर है, लेकिन हम बाहर की ही भाषा समझते हैं। और बाहर की भाषा से ही भीतर की भाषा सीखनी पड़ेगी।

अभी मनोवैज्ञानिक इस पर बहुत प्रयोग करते हैं कि एकाग्रता में आब्जेक्ट क्यों खो जाता है। जहां भी एकाग्रता होती है, अंत में जिस पर आप एकाग्रता करते हैं, वह विषय भी तिरोहित हो जाता है; वह भी बचता नहीं। उसके खो जाने का कारण यह है कि हमारे मन का अस्तित्व ही चंचलता है। मन को बहने के लिए जगह चाहिए, तो ही मन हो सकता है। मन एक बहाव है। एक नदी की धार है। अगर मन को बहाव न मिले, तो वह समाप्त हो जाता है। वह उसका स्वभाव है।

स्थिर मन जैसी कोई चीज नहीं होती। और जब हम कहते हैं, चंचल मन, तो हम पुनरुक्ति करते हैं। चंचल मन नहीं कहना चाहिए, क्योंकि चंचलता ही मन है। जब हम चंचल मन कहते हैं, तो हम दो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं व्यर्थ ही, क्योंकि मन का अर्थ ही चंचलता है। और थिर मन जैसी कोई चीज नहीं होती। जहां थिरता आती है, मन तिरोहित हो जाता है। जैसे स्वस्थ बीमारी जैसी कोई बीमारी नहीं होती। जैसे ही स्वास्थ्य आता है, बीमारी खो जाती है; वैसे ही थिरता आती है, मन खो जाता है। मन के होने के लिए अथिरता जरूरी है।

ऐसा समझें कि सागर में लहरें हैं, या झील पर बहुत लहरें हैं। झील अशांत है। तो हम कहते हैं, लहरें बड़ी अशांत हैं। कहना नहीं चाहिए, क्योंकि अशांति ही लहरें हैं। फिर जब शांत हो जाती है झील, तब क्या आप ऐसा

कहेंगे कि अब शांत लहरें हैं! लहरें होतीं ही नहीं। जब लहरें नहीं होतीं, तभी शांति होती है। जब झील शांत होती है, तो लहरें नहीं होतीं। लहरें तभी होती हैं, जब झील अशांत होती है। तो अशांति ही लहर है।

आपकी आत्मा झील है, आपका मन लहरें है। शांत मन जैसी कोई चीज नहीं होती। अशांति ही मन है।

तो अगर हम किसी भी तरह से किसी एक चीज पर टिका लें अपने को, तो थोड़ी ही देर में मन खो जाएगा, क्योंकि मन एकाग्र हो ही नहीं सकता। जो एकाग्र होता है, वह मन नहीं है; वह भीतर का सागर है। वह भीतर की झील है। वही एकाग्र हो सकती है।

तो कोई भी आब्जेक्ट, चाहे परमात्मा की प्रतिमा हो, चाहे कोई यंत्र हो, चाहे कोई मंत्र हो, चाहे कोई शब्द हो, चाहे कोई आकार-रूप हो, कोई भी हो, इतना ही उसका उपयोग है बाहर रखने में कि आप पूरे संसार को भूल जाएंगे और एक रह जाएगा। जिस क्षण एक रहेगा--युगपत--उसी क्षण एक भी खो जाएगा और आप अपने भीतर फेंक दिए जाएंगे।

यह बाहर का जो विषय है, एक जंपिंग बोर्ड है, जहां से भीतर छलांग लग जाती है।

तो किसी भी चीज पर एकाग्र हो जाएं। इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप उस एकाग्रता के बिंदु को अल्लाह कहते हैं; कोई फर्क नहीं पड़ता कि ईश्वर कहते हैं, कि राम कहते हैं, कि कृष्ण कहते हैं, कि बुद्ध कहते हैं। आप क्या कहते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। राम, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट का आप क्या करते हैं, इससे फर्क पड़ता है। क्या कहते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता।

करने का मतलब यह है कि क्या आप उनका उपयोग अपने को एकाग्र करने में करते हैं? क्या आपने उनको बाहर का बिंदु बनाया है, जिससे आप भीतर छलांग लगाएंगे? तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि आपने क्राइस्ट से

छलांग लगाई, कि कृष्ण से, कि राम से! जिस दिन भीतर पहुंचेंगे, उस दिन उसका मिलना हो जाएगा, जो न क्राइस्ट है, न राम है, न बुद्ध है, न कृष्ण है--या फिर सभी है। कहां से छलांग लगाई, वह तो भूल जाएगा।

कौन याद रखता है जंपिंग बोर्ड को, जब सागर मिल जाए! सीढ़ियों को कौन याद रखता है, जब शिखर मिल जाए! रास्ते को कौन याद रखता है, जब मंजिल आ जाए! कौन-सा रास्ता था, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी रास्ते काम में लाए जा सकते हैं। काम में लाने वाले पर निर्भर करता है।

अभी आप बाहर हैं, इसलिए बाहर परमात्मा की धारणा करनी पड़ती है आपकी वजह से। परमात्मा की वजह से नहीं, आपकी वजह से। भीतर की भाषा आपकी समझ में ही न आएगी।

इक्क्यु हुआ है एक झेन फकीर। किसी ने आकर इक्क्यु से पूछा कि सार, सारे धर्म का सार संक्षिप्त में कह दो। क्योंकि मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। मैं काम-धंधे वाला आदमी हूं। क्या है धर्म का मूल सार? तो इक्क्यु बैठा था रेत पर, उसने अंगुली से लिख दिया, ध्यान। उस आदमी ने कहा, ठीक। लेकिन थोड़ा और विस्तार करो। इतने से बात समझ में नहीं आई। तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में रेत पर लिख दिया, ध्यान। तो वह आदमी थोड़ा संदिग्ध हुआ। उसने कहा कि उसी शब्द को दोहराने से क्या होगा! थोड़ा और साफ करो। तो इक्क्यु ने और बड़े अक्षरों में लिख दिया, ध्यान।

उस आदमी ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो? मैं पूछता हूं, कुछ साफ करो। तो इक्क्यु ने कहा, साफ तो तुम्हारे करने से होगा। साफ मेरे करने से नहीं होगा। अब साफ तुम करो। बात सार की मैंने कह दी। अब करना तुम्हारा काम है। इससे ज्यादा और मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। और इससे ज्यादा मैं कुछ भी कहूंगा तो गड़बड़ हो जाएगी।

उस आदमी की कुछ भी समझ में न आया होगा। क्योंकि इक्क्यु जो भाषा बोल रहा है, वह भाषा उसके लिए जटिल पड़ी होगी। उसने शुद्धतम बात कह दी। लेकिन शुद्धतम बात समझने की सामर्थ्य भी चाहिए।

इसलिए जो बहुत करुणावान हैं, वे हमारी अशुद्ध भाषा में बोलते हैं। इसलिए नहीं कि अशुद्ध बोलने में कुछ रस है। बल्कि इसलिए कि हम अशुद्ध को ही समझ सकते हैं। और धीरे-धीरे ही हमें खींचा जा सकता है उस भीतर की यात्रा पर। एक-एक इंच हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं। हम संसार को इस जोर से पकड़े हुए हैं कि एक-एक इंच भी हम बहुत मुश्किल से छोड़ते हैं! और यह यात्रा है सब छोड़ देने की। क्योंकि जब तक पकड़ न छूट जाए और हाथ खाली न हो जाएं, तब तक परमात्मा की तरफ नहीं उठते। भरे हुए हाथ उसके चरणों में नहीं झुकाए जा सकते। सिर्फ खाली हाथ उसके चरणों में झुकाए जा सकते हैं। क्योंकि भरे हुए हाथ वाला आदमी झुकता ही नहीं है।

इसीलिए जीसस ने कहा है कि चाहे सुई के छेद से ऊंट निकल जाए, लेकिन धनी आदमी मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकेगा।

यह किस धनी आदमी की बात कही है? वे सभी धनी हैं, जिनके हाथ भरे हुए हैं; जिन्हें लगता है, कुछ हमारे पास है; जिन्हें लगता है कि कुछ पकड़ने योग्य है; जिन्हें लगता है कि कोई संपदा है। वे उस द्वार में प्रवेश न कर सकेंगे।

जिसके पास कुछ है, उसके लिए द्वार बहुत संकीर्ण मालूम पड़ेगा। उसमें से वह निकल न सकेगा। और जिसके पास कुछ नहीं है, उसके लिए वह द्वार इतना विराट है, जितना विराट हो सकता है। यह पूरा संसार उससे निकल जाए, इतना बड़ा वह द्वार है। लेकिन जिसके पास कुछ है, उसके लिए सुई के छेद का द्वार भी बड़ा है। वह द्वार छोटा हो जाएगा। जितना हमारे हाथ

पकड़े होते हैं चीजों को, उतने हम भारी और वजनी, उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं। जितने हमारे हाथ खाली हो जाते हैं... ।

इसलिए जीसस ने जो कहा है कि भीतर की दरिद्रता, उसका अर्थ इतना ही है कि जिसने सारी पकड़ छोड़ दी संसार पर, वही भीतर से दरिद्र है।

लेकिन आदमी बहुत उपद्रवी है, बहुत चालाक है। और सब चालाकी में अपने को ही फंसा लेता है। क्योंकि यहां कोई और नहीं है, जिसको आप फंसा सकें। आप खुद ही जाल बुनेंगे और फंस जाएंगे। खुद ही खड्डा खोदेंगे और गिर जाएंगे। हम सब अपनी-अपनी कब्रें खोदकर तैयार रखते हैं। कब मौका आ जाए गिरने का, तो गिर जाएं! गिराते दूसरे हैं, कब्रें हम ही खोद लेते हैं। और वे दूसरे भी हमारी सहायता इसलिए करते हैं, क्योंकि हम उनकी सहायता करते रहे हैं!

आदमी बहुत जटिल है और सोचता है कि बहुत होशियार है। तो कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि वह बाहर की, संसार की संपत्ति छोड़ देता है, तो फिर कुछ भीतरी गुणों की संपत्ति को पकड़ लेता है।

सुना है मैंने, एक तथाकथित संत का परिचय दिया जा रहा था। और जो परिचय देने खड़ा था--जैसा कि भाषण में अक्सर हो जाता है--उसकी गरमी बढ़ती गई, जोश बढ़ता गया। और वह फकीर की बड़ी तारीफ करने लगा। और उसने कहा कि ऐसा फकीर पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इन जैसा ज्ञान लाखों वर्षों में कभी होता है। बड़े-बड़े पंडित इनके चरणों में आकर बैठते हैं और सिर झुकाते हैं। इन जैसा प्रेम असंभव है दोबारा खोज लेना। सब तरह के लोग इनके प्रेम में नहाते हैं और पवित्र हो जाते हैं। और वह ऐसा कहता चला गया।

जब सारी बात पूरी होने के करीब थी, तो उस फकीर ने उस भाषण करने वाले का कोट धीरे से झटका और कहा कि मेरी विनम्रता के संबंध में

मत भूल जाना। डोंट फारगेट माई ह्युमिलिटी। मेरी विनम्रता के संबंध में भी कुछ कहो!

विनम्रता के संबंध में भी कुछ कहो! तो यह आदमी विनम्र रहा होगा कि नहीं? तब तो विनम्रता भी अहंकार हो गया। और तब तो विनम्रता भी संपत्ति हो गई। यह आदमी बाहर से हो सकता है, सब छोड़ दिया हो, लेकिन इसने भीतर से सब पकड़ा हुआ है। इससे कुछ भी छूटा नहीं है, क्योंकि पकड़ नहीं छूटी है। और जो विनम्रता को पकड़े हुए है, वह उतना ही अहंकारी है, जितना कोई और अहंकारी है। और कई बार तो ऐसा होता है कि स्थूल अहंकार तो खुद भी दिखाई पड़ता है, सूक्ष्म अहंकार दिखाई नहीं पड़ता।

यह जो परमात्मा की यात्रा है, यह तो भीतर की ही यात्रा है। लेकिन बाहर से हम छोड़ें, तो हम भीतर की तरफ सरकने शुरू हो जाते हैं। बाहर से हम छोड़ सकें, इसलिए बाहर ही परमात्मा को हमने खड़ा किया है। हमारे सब मंदिर, हमारी सब मस्जिदें, गिरजे, गुरुद्वारे, सब प्रतीक हैं। बाहर कोई मंदिर है नहीं। लेकिन बाहर मंदिर बनाना पड़ा है, क्योंकि हम केवल बाहर के ही मंदिर अभी समझ सकते हैं। लेकिन वह बाहर का मंदिर एक जगह हो सकती है, जहां से हम संसार को छोड़कर उस मंदिर में प्रवेश कर जाएं। और फिर वह मंदिर भी छूट जाएगा। क्योंकि जब इतना बड़ा संसार छूट गया, तो यह छोटा-सा मंदिर ज्यादा देर नहीं रुक सकता है। और जब संसार छूट गया, तो संसार में बैठे हुए परमात्मा की प्रतिमा भी छूट जाएगी। वह केवल बहाना है।

संसार को छोड़ सकें, इसलिए परमात्मा को बाहर रखते हैं। फिर तो वह भी छूट जाता है। और जो संसार को ही छोड़ सका, वह अब इस एक को भी छोड़ देगा। जिसने अनेक को छोड़ दिया, वह एक को भी छोड़ देगा। और जब अनेक भी नहीं बचता और एक भी नहीं बचता, तभी वस्तुतः वह एक बचता है, जिसको हमने अद्वैत कहा है। इसलिए हमने उसको एक नहीं कहा।

क्योंकि अनेक बाहर हैं, इनको छोड़ने के लिए एक परमात्मा की धारणा काम में लानी पड़ती है। संसार को हम छोड़ते हैं उस एक के लिए। फिर जब वह एक भी छूट जाता है, तब जो बचता है, उसको हम क्या कहें! उसको अनेक नहीं कह सकते। अनेक संसार था, छूट गया। उसको एक भी नहीं कह सकते। क्योंकि वह एक भी जो हमने बाहर बनाया था, वह भी बहाना था। वह भी छूट गया। अब जो बचा, उसे हम क्या कहें? अनेक कह नहीं सकते; एक कह नहीं सकते। इसलिए बड़ी अदभुत व्यवस्था हमने की। हमने उसको कहा, अद्वैत। न एक, न दो। हमने सिर्फ इतना कहा है, जो दो नहीं है। हमने केवल संख्या को इनकार कर दिया।

सब संख्याएं बाहर हैं--एक भी, अनेक भी। वे दोनों छूट गईं। अब हम उस जगह पहुंच गए हैं, जहां कोई संख्या नहीं है। लेकिन इस तक जाने के लिए बाहर के प्रतीक सहारे बन सकते हैं।

खतरा जरूर है। खतरा आदमी में है, प्रतीकों में नहीं है। खतरा यह है कि कोई सीढ़ी को ही रास्ते की अड़चन बना ले सकता है। और कोई समझदार हो, तो रास्ते पर पड़े हुए पत्थर को भी सीढ़ी बना ले सकता है। यह आप पर निर्भर है कि आप उसका उपयोग सीढ़ी की तरह करेंगे, उस पर चढ़ेंगे और आगे निकल जाएंगे, या उसी के किनारे रुककर बैठ जाएंगे कि अब जाने का कोई उपाय न रहा। यह पत्थर पड़ा है। अब कोई उपाय आगे जाने का नहीं है।

सीढ़ी अवरोध बन सकती है। अवरोध सीढ़ी बन सकता है। आप पर निर्भर है। प्रतीक खतरनाक हो जाते हैं, अगर उनको कोई जोर से पकड़ ले। प्रतीक छोड़ने के लिए हैं। प्रतीक सिर्फ बहाने हैं। उनका उपयोग कर लेना है और उन्हें भी फेंक देना है। और जब कोई व्यक्ति फेंकता चला जाता है, उस समय तक, जब तक कि फेंकने को कुछ भी शेष रहता है, वही व्यक्ति उस अंतिम बिंदु पर पहुंच पाता है।

एक प्रश्न और, फिर मैं सूत्र लूं।

आपने कल कहा कि अनुभव पर आधारित श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है। और यह भी कहा कि प्रेम और भक्ति की साधना सहज व सरल है। यह भी कहा कि आज तर्क व बुद्धि के अत्यधिक विकास के कारण झूठी आस्तिकता खतरे में पड़ गई है। तो समझाएं कि अनुभवशून्य साधक कैसे श्रद्धा की ओर बढ़े? और आज के बौद्धिक युग में भक्ति-योग अर्थात भावुकता का मार्ग कैसे उपयुक्त है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-योग की साधना कैसे संभव है?

आपने कल कहा कि अनुभव पर आधारित श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है। और यह भी कहा कि प्रेम और भक्ति की साधना सहज व सरल है। यह भी कहा कि आज तर्क व बुद्धि के अत्यधिक विकास के कारण झूठी आस्तिकता खतरे में पड़ गई है। तो समझाएं कि अनुभवशून्य साधक कैसे श्रद्धा की ओर बढ़े? और आज के बौद्धिक युग में भक्ति-योग अर्थात भावुकता का मार्ग कैसे उपयुक्त है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-योग की साधना कैसे संभव है?

पहली बात, कैसे अनुभवशून्य साधक अनुभव की ओर बढ़े? पहली बात तो वह यह समझे कि अनुभवशून्य है। बड़ी कठिन है। सभी को ऐसा ख्याल है कि अनुभव तो हमें है ही। अपने को अनुभवशून्य मानने में बड़ी कठिनाई होती है। लेकिन धर्म के संबंध में हम अनुभवशून्य हैं, ऐसी प्रतीति पहली जरूरत है। क्योंकि जो हमारे पास नहीं है, वही खोजा जा सकता है। जो हमारे पास है ही, उसकी खोज ही नहीं होती।

बीमार आदमी समझता हो कि मैं स्वस्थ हूं, तो इलाज का कोई सवाल ही नहीं है। बीमार की पहली जरूरत है कि वह समझे कि वह बीमार है। कोई आदमी कारागृह में बंद हो और समझता हो कि मैं मुक्त हूं, तो कारागृह

से छूटने का कोई सवाल ही नहीं है। और अगर कारागृह को अपना घर ही समझता हो और कारागृह की दीवालें उसने भीतर से और सजा ली हों, तब तो अगर आप छुड़ाने भी जाएं तो वह इनकार करेगा कि क्यों मेरे घर से मुझे बाहर निकाल रहे हो! और अगर उसने अपनी हथकड़ियों को, अपनी बेड़ियों को सोने के रंग में रंग लिया हो और चमकीले पत्थर लगा लिए हों, तो वह समझेगा कि ये आभूषण हैं। और अगर आप तोड़ने लगें, तो वह चिल्लाएगा कि मुझे बचाओ, मैं लुटा जा रहा हूं।

कारागृह में बंदी आदमी बाहर आने के लिए क्या करे? पहली बात तो यह समझे कि वह कारागृह में है। फिर कुछ बाहर आने की बात उठ सकती है। फिर कुछ रास्ता खोजा जा सकता है। फिर उनकी बात सुनी जा सकती है, जो बाहर जा चुके हैं। फिर उनसे पूछा जा सकता है कि वे कैसे बाहर गए हैं। फिर कुछ भी हो सकता है। लेकिन पहली जरूरत है कि अनुभवशून्य व्यक्ति समझे कि मैं अनुभवशून्य हूं।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। किताबें हम पढ़ लेते हैं, शास्त्र हम पढ़ लेते हैं। और शास्त्रों के शब्द हममें भर जाते हैं और ऐसी भ्रांति होती है कि हमें भी अनुभव है।

अभी एक वृद्ध सज्जन मेरे पास आए थे। आते से ही वे बोले कि ऐसे तो मुझे समाधि का अनुभव हो गया है, लेकिन फिर भी सोचा कि चलो, आपसे भी पूछ आऊं। मैंने उनको कहा कि कुछ भी साफ कर लें। अगर अनुभव हो चुका है समाधि का, तो अब दूसरी बात करें। यह छोड़ ही दें। फिर पूछने को क्या बचा है?

नहीं, उन्होंने कहा कि मैंने सोचा कि चलें, पूछ लेने में हर्ज क्या है! तो मैंने कहा, अनुभव हो गया हो, तो पूछने में समय खराब मेरा भी न करें, अपना भी खराब न करें। मेरा समय उनमें ही लगने दें, जिन्हें अनुभव नहीं हुआ है। तो वे बोले, अच्छा, आप फिर ऐसा ही समझ लें कि मुझे अनुभव

नहीं हुआ है। लेकिन बताएं तो कि ध्यान कैसे करूं! मैंने कहा, मैं समझूंगा नहीं। क्योंकि आप समझें कि अनुभव नहीं हुआ है, मैं क्यों समझूं कि आपको नहीं हुआ है। अगर हुआ है, तो बात खत्म हो गई।

कैसी अड़चन है! आदमी का अहंकार कैसी मुश्किल खड़ी करता है। वे जानना चाहते हैं कि ध्यान क्या है, लेकिन यह भी मानने का मन नहीं होता कि ध्यान का मुझे पता नहीं है। ध्यान का तो पता है ही। चलते रास्ते सोचा कि चलो, आपसे भी पूछ लें।

तो मैंने कहा, मैं चलते रास्ते लोगों को जवाब नहीं देता। आप सोचकर आएं, पक्का करके आएं। और यदि वगैरह से काम नहीं चलेगा, कि समझ लें। मैं नहीं समझूंगा; आप ही समझकर आएं। हुआ हो, तो कहें हां। बात खत्म हो गई। न हुआ हो, तो कहें नहीं। फिर बात शुरू हो सकती है।

सुन लेते हैं, पढ़ लेते हैं, शब्द मन में घिर जाते हैं। शब्द इकट्ठे हो जाते हैं, जम जाते हैं। उन्हीं शब्दों को हम दोहराए चले जाते हैं और सोचते हैं कि ठीक, हमें पता तो है। थोड़ा कम होगा, किसी को थोड़ा ज्यादा होगा। लेकिन पता तो हमें है।

ध्यान रखना, उसका अनुभव थोड़ा और कम नहीं होता। या तो होता है, या नहीं होता। अगर आपको लगता हो कि थोड़ा-थोड़ा अनुभव हमें भी है, तो आप धोखा मत देना। परमात्मा को टुकड़ों में काटा नहीं जा सकता। या तो आपको अनुभव होता है पूरा, या नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा का कोई उपाय नहीं है; डिग्रीज का कोई उपाय नहीं है। कोई यह नहीं कह सकता कि हम जरा अभी इंचभर परमात्मा को जानते हैं, आप चार इंच जानते होंगे। हम पावभर जानते हैं, आप सेरभर जानते होंगे! बाकी जानते हम भी हैं। क्योंकि परमात्मा का कोई खंड नहीं है; वह अखंड अनुभव है।

अगर आपको लगता हो, थोड़ा-थोड़ा अनुभव है, तो समझ लेना कि अनुभव नहीं है। और जिसको अनुभव हो जाता है, उसकी तो सारी खोज

समाप्त हो जाती है। अगर आपकी खोज जारी है, अगर थोड़ा-सा भी असंतोष भीतर कहीं है, अगर थोड़ा भी ऐसा लगता है कि जीवन में कुछ चूक रहा है, तो समझना कि अभी अनुभव नहीं है। क्योंकि उसके अनुभव के बाद जीवन में कोई कमी का अनुभव नहीं रह जाता; कोई अभाव नहीं रह जाता। फिर कोई असंतोष की जरा-सी भी चोट भीतर नहीं होती। फिर कुछ पाने को नहीं बचता।

अगर कुछ भी पाने को बचा हुआ लगता हो, और लगता हो कि अभी कुछ कमी है, अभी कुछ यात्रा पूरी होनी है, तो समझना कि उसका अनुभव नहीं हुआ। परमात्मा अंत है--समस्त अनुभव का, समस्त यात्रा का, समस्त खोज का।

तो पहली बात तो अनुभवशून्य साधक को समझ लेनी चाहिए कि मैं अनुभवशून्य हूं। और ऐसा इसलिए नहीं कि मैं कहता हूं। ऐसा उसको ही समझना चाहिए। उसकी ही प्रतीति, कि मैं अनुभवशून्य हूं, रास्ता बनेगी।

एक फर्क ख्याल में रखें।

जो साधक नहीं है, वह पूछता है, ईश्वर है या नहीं? जो साधक है, वह पूछता है कि मुझे उसका अनुभव हुआ या नहीं? इस फर्क को ठीक से समझ लें। जो साधक नहीं है, सिर्फ जिज्ञासु है, दार्शनिक होगा। वह पूछता है, ईश्वर है या नहीं? उसको अपने में उत्सुकता नहीं है; उसे ईश्वर का सवाल है कि ईश्वर है या नहीं।

यह खोज व्यर्थ है। क्योंकि आप कैसे तय करेंगे कि ईश्वर है या नहीं? पूछने की सार्थक खोज तो यह है कि मुझे उसका अनुभव नहीं हुआ; कैसे उसका अनुभव हो? वह है या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कैसे मुझे उसका अनुभव हो? और अगर मुझे अनुभव होगा, तो वह है। लेकिन अगर मुझे अनुभव न हो, तो जरूरी नहीं है कि वह न हो। क्योंकि हो सकता है, मेरी खोज में अभी कोई कमी हो।

तो साधक कभी भी इनकार नहीं करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मुझे अभी अनुभव नहीं हुआ है। वह यह नहीं कहेगा कि ईश्वर नहीं है। क्योंकि मुझे क्या हक है कहने का कि ईश्वर नहीं है! मुझे पता नहीं है, इतना कहना काफी है। लेकिन हमारी भाषा में बड़ी भूल होती है।

हम निरंतर अपने को भूलकर बातें करते हैं। अगर एक आदमी कुछ कहता है, और आपको अच्छा नहीं लगता, तो आप ऐसा नहीं कहते कि तुमने जो कहा, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। आप ऐसा नहीं कहते हैं। आप ऐसा कहते हैं कि तुम गलत बात कह रहे हो। आप सारा जिम्मा दूसरे पर डालते हैं।

सूरज उगता है सुबह, आपको सुंदर लगता है। तो आप ऐसा नहीं कहते कि यह सूरज का उगना मुझे सुंदर लगता है। आप कहते हो, सूरज बड़ा सुंदर है। आप बड़ी गलती कर रहे हो। क्योंकि आपके पड़ोस में ही खड़ा हुआ कोई आदमी कह सकता है कि सूरज सुंदर नहीं है। वह भी यही कह रहा है कि मुझे सुंदर नहीं लगता है। सूरज की बात ही करनी फिजूल है। सूरज सुंदर है या नहीं, इसे कैसे तय करिएगा? इतना ही तय हो सकता है कि आपको कैसा लगता है।

किसी ने गाली दी, आपको बुरी लगती है, तो आप यह मत कहिए कि यह गाली बुरी है। आप इतना ही कहिए कि यह गाली मुझे बुरी लगती है। मैं जिस ढंग का आदमी हूं, उसमें यह गाली जाकर बड़ी बुरी लगती है।

अपने को केंद्र बनाकर रखेगा साधक। अगर उसे ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता, तो वह यह नहीं कहेगा कि संसार में कोई ईश्वर नहीं है। यह तो बड़ी नासमझी की बात है। इतना ही कहेगा कि मुझे संसार में ईश्वर का कोई अनुभव नहीं होता--मुझे!

साधक हमेशा स्वयं को केंद्र में रखेगा। और तब सवाल उठेगा कि मुझे अनुभव नहीं होता, तो मैं क्या करूं कि अनुभव हो सके? वह प्रमाण नहीं पूछेगा ईश्वर के लिए कि प्रमाण क्या हैं? वह पूछेगा, मार्ग क्या हैं?

तो पहली बात कि मुझे अनुभव नहीं है, इसकी गहरी प्रतीति। फिर दूसरी बात कि अनुभव का मार्ग क्या है? क्योंकि मुझे अनुभव नहीं है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि मैं उस जगह अभी नहीं हूं, जहां से अनुभव हो सके। मैं उस द्वार पर नहीं खड़ा हूं, जहां से वह दिखाई पड़ सके। मैं उस तल पर नहीं हूं, जहां से उसकी झलक हो सके। मेरी वीणा तैयार नहीं है कि उसके हाथ उस पर संगीत को पैदा कर सकें। मेरे तार ढीले होंगे, तार टूटे होंगे। तो मुझे मेरी वीणा को तैयार करना पड़ेगा। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि उसका अनुभव हो सके।

ईश्वर की तलाश स्वयं के रूपांतरण की खोज है। ईश्वर की तलाश ईश्वर की तलाश नहीं है, आत्म-परिष्कार है। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि मैं उसे देख पाऊं। मुझे योग्य बनना पड़ेगा कि वह मुझे प्रतीत होने लगे, उसकी झलक, उसका स्पर्श।

आपको ख्याल है कि जितनी चीजें आपके चारों तरफ हैं, क्या आपको उन सबका पता होता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ में से केवल दो प्रतिशत चीजों का आपको पता चलता है। और पता इसलिए चलता है कि आप उन पर ध्यान देते हैं, इसलिए पता चलता है। नहीं तो पता नहीं चलता।

अगर आप एक कार में बैठे हैं और कार का इंजन थोड़ी-सी खट-खट की आवाज करने लगे, आपको पता नहीं चलेगा, ड्राइवर को फौरन पता चल जाएगा। आप भी वहीं बैठे हैं। आपको क्यों सुनाई नहीं पड़ता? आपका ध्यान नहीं है उस तरफ। सुनाई तो आपके भी कान को पड़ता ही होगा, क्योंकि आवाज हो रही है। लेकिन ड्राइवर को सुनाई पड़ता है, आपको सुनाई नहीं पड़ता। आपका ध्यान उस तरफ नहीं है, ड्राइवर का ध्यान उस तरफ है।

आप अपने कमरे में बैठे हैं। कभी आपने ख्याल किया कि दीवाल की घड़ी टक-टक करती रहती है, आपको सुनाई नहीं पड़ती। आज लौटकर कमरे में आंख बंद करके ध्यान करना, फौरन टक-टक सुनाई पड़ने लगेगी। और टक-टक धीमी आवाज है। बाहर का कितना ही शोरगुल हो रहा है, अगर आप ध्यान देंगे, तो टक-टक सुनाई पड़ने लगेगी।

अगर आप थोड़ा-सा शांत होकर ध्यान दें, तो हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगेगी। वह तो चौबीस घंटे धड़क रहा है। आपको उसका पता नहीं चलता, क्योंकि उस तरफ ध्यान नहीं है। जिस तरफ ध्यान होता है, उस तरफ अनुभव होता है।

तो साधक पूछेगा कि परमात्मा के अनुभव के लिए कैसा ध्यान हो मेरा? किस तरफ मेरे ध्यान को मैं लगाऊं कि वह मौजूद हो, तो उसकी मुझे प्रतीति होने लगे? उसकी प्रतीति आपके ध्यान के प्रवाह पर निर्भर करेगी।

आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखते हैं। अगर आप चमार हैं, तो आपको लोगों के सिर नहीं दिखाई पड़ते, पैर दिखाई पड़ते हैं। दिखाई पड़ेंगे ही। क्योंकि ध्यान सदा जूते पर लगा हुआ है। और चमार दुकान पर आपकी शक्ल नहीं देखता, आपका जूता देखकर समझ जाता है कि जेब में पैसे हैं या नहीं। वह जूता ही सारी कहानी कह रहा है आपकी। जो उसकी गति आपने बना रखी है, उससे सब पता चल रहा है कि आपकी हालत क्या होगी। आपके जूते की हालत आपकी हालत है।

मैंने सुना है कि एक दर्जी घूमने गया रोम। लौटकर आया तो उसके पार्टनर ने, उसके साझीदार ने पूछा, क्या-क्या देखा? तो सब बातें उसने बताईं और उसने कहा कि पोप को भी देखने गया था। गजब का आदमी है। तो उसके साझीदार ने कहा कि पोप के संबंध में कुछ और विस्तार से कहो। उसने कहा कि आध्यात्मिक है, दुबला-पतला है। ऊंचाई पांच फीट दो इंच से ज्यादा नहीं, और कमीज की साइज थर्टी सिक्स शार्ट!

पोप का दर्शन करने गया था वह। मगर दर्जी है, तो पोप की कमीज पर ख्याल जाएगा। अब वह अगर लौटकर पोप की कमीज की खबर दे, तो इसका यह मतलब नहीं कि पोप की कोई आत्मा नहीं थी वहां। मगर आत्मा देखने के लिए कोई और तरह का आदमी चाहिए।

ध्यान जहां हो, वही दिखाई पड़ता है। तो फिर साधक पूछेगा कि मुझे उसका अनुभव नहीं होता, तो कहीं कोई आयाम ऐसा है जिस तरफ मेरा ध्यान नहीं जाता है। तो उस तरफ मैं कैसे ध्यान को ले जाऊं?

फिर ध्यान की विधियां हैं। फिर प्रार्थना के मार्ग हैं। फिर उनमें से चुनकर लग जाना चाहिए। जो भी प्रीतिकर लगे, उस दिशा में पूरा अपने को डुबा देना चाहिए। अगर आपको लगता है कि प्रार्थना, कीर्तन-भजन आपके हृदय को आनंद और प्रफुल्लता से भर देते हैं, तो फिर आप फिक्र मत करें।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं! परमात्मा की खोज में भी हम पड़ोसी की फिक्र रखते हैं, कि पड़ोसी क्या सोचेगा! अगर मैं सुबह से उठकर कीर्तन कर दूं, तो आस-पास खबर हो जाएगी कि आदमी पागल हो गया। हम पड़ोसियों की इतनी फिक्र करते हैं कि मरते वक्त भी परमात्मा का ध्यान नहीं होता। मरते वक्त भी यह ध्यान होता है कि कौन-कौन लोग मरघट पहुंचाने जाएंगे। फलां आदमी जाएगा कि नहीं! मरते वक्त भी यह ख्याल होता है कि कौन-कौन पड़ोसी पहुंचाने जाएंगे।

क्या फर्क पड़ता है कि कौन पहुंचाने आपको गया! और न भी गया कोई पहुंचाने, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मर ही गए। लेकिन मरने के बाद भी पड़ोसियों का ध्यान रहता है। जिंदा में भी पूरे वक्त पड़ोसी से परेशान हैं, कि पड़ोसी क्या सोचेगा! और पड़ोसी सोच रहा है कि आप क्या सोचेंगे! वह आपकी वजह से रुका है, आप उसकी वजह से रुके हैं! यह भी हो सकता है कि आप नाचने लगें, तो शायद पड़ोसी भी नाच उठे। तो वह भी आपकी वजह से रुका हो।

अगर प्रार्थना आपको प्रीतिकर लगती हो, तो भय छोड़ दें, और उस तरफ पूरे हृदय को आनंद से भरकर नाचने दें और लीन होने दें। अगर आपको प्रार्थना ठीक न समझ में आती हो, तो प्रार्थना ठीक नहीं है, ऐसा कहकर बैठ मत जाएं। तो फिर बिना प्रार्थना के मार्ग भी हैं; ध्यान है, निर्विचार होने के उपाय हैं। तो फिर विचार के त्याग का प्रयोग शुरू करें।

लेकिन बड़े मजेदार लोग हैं। अगर उनसे कहो प्रार्थना, तो वे कहते हैं, लोग क्या कहेंगे! अगर उनसे कहो ध्यान, तो वे कहते हैं, बड़ा कठिन है। हमसे न हो सकेगा। न करने का बहाना हम हजार तरह से निकाल लेते हैं।

साधक हमेशा करने का बहाना खोजेगा कि किस बहाने मैं कर सकूं। कोई भी बहाना मिल जाए, तो मैं कर सकूं। ऐसी जिसकी विधायक खोज है, वह आज नहीं कल अपने ध्यान को उस दिशा में लगा लेता है, जहां परमात्मा की प्रतीति है।

अब हम सूत्र को लें।

और जो पुरुष इंद्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार और अविनाशी, सच्चिदानंदघन ब्रह्म को निरंतर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

कोई ऐसा न समझे कि भक्ति से ही पहुंचा जा सकता है। कोई ऐसा न समझे कि भक्ति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। तो कृष्ण दूसरे सूत्र में तत्काल कहते हैं कि वे जो भक्त हैं, और मेरे में सब भांति डूबे हुए हैं, जिनका मन सब भांति मुझमें लगा हुआ है, और जो मुझ सगुण को, साकार को निरंतर भजते हैं श्रद्धा से, वे श्रेष्ठतम योगी हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल वे ही पहुंचते हैं। वे भी पहुंच जाते हैं, जो निराकार का ध्यान करते

हैं। वे भी पहुंच जाते हैं, जो शून्य के साथ अपना एकीभाव करते हैं। वे भी मुझको ही उपलब्ध होते हैं। उनका मार्ग होगा दूसरा, लेकिन उनकी मंजिल मैं ही हूं। तो कोई सगुण से चले कि निर्गुण से, वह पहुंचता मुझ तक ही है।

पहुंचने को और कोई जगह नहीं है। कहां से आप चलते हैं, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जहां आप पहुंचेंगे, वह जगह एक है। आपके यात्रा-पथ अनेक होंगे, आपके ढंग अलग-अलग होंगे। आप अलग-अलग विधियों का उपयोग करेंगे, अलग नाम लेंगे, अलग गुरुओं को चुनेंगे, अलग अवतारों को पूजेंगे, अलग मंदिरों में प्रवेश करेंगे, लेकिन जिस दिन घटना घटेगी, आप अचानक पाएंगे, वे सब भेद खो गए, वे सब अनेकताएं समाप्त हो गईं और आप वहां पहुंच गए हैं, जहां कोई भेद नहीं है, जहां अभेद है।

बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। जो तर्क, चिंतन करते रहते हैं, उन्हें लगता है, दोनों बातें कैसे सही हो सकती हैं! क्योंकि निराकार और साकार तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। सगुण और निर्गुण तो विपरीत मालूम पड़ते हैं। कितना विवाद चलता है! पंडितों ने अपने सिर खाली कर डाले हैं। अपनी जिंदगियां लगा दी हैं इस विवाद में कि सगुण ठीक है कि निर्गुण ठीक है। बड़े पंथ, बड़े संप्रदाय खड़े हो गए हैं। बड़ी झंझट है। एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की इतनी चेष्टा है कि करीब-करीब दोनों ही गलत हो गए हैं।

इस जमीन पर इतना जो अधर्म है, उसका कारण यह नहीं है कि नास्तिक हैं दुनिया में बहुत ज्यादा। नहीं। आस्तिकों ने एक-दूसरे को गलत सिद्ध कर-करके ऐसी हालत पैदा कर दी है कि कोई भी सही नहीं रह गया। मंदिर, मस्जिद को गलत कह देता है; मस्जिद मंदिर को गलत कह देती है। मंदिर इस ख्याल से मस्जिद को गलत कहता है कि अगर मस्जिद गलत न हुई, तो मैं सही कैसे होऊंगा! मस्जिद इसलिए गलत कहती है कि अगर तुम भी सही हो, तो हमारे सही होने में कमी हो जाएगी।

लेकिन सुनने वाले पर जो परिणाम होता है, उसे लगता है कि मस्जिद भी गलत और मंदिर भी गलत। ये जो दोनों को गलत कह रहे हैं, ये दोनों गलत हैं। और यह गलती की बात इतनी प्रचारित होती है, क्योंकि दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक धर्म को दो सौ निन्यानबे गलत कह रहे हैं। तो आप सोच सकते हैं कि जनता पर किसका परिणाम ज्यादा होगा! एक कहता है कि ठीक। और दो सौ निन्यानबे उसके खिलाफ हैं कि गलत। हरेक के खिलाफ दो सौ निन्यानबे हैं। इन तीन सौ ने मिलकर तीन सौ को ही गलत कर दिया है और जमीन अधार्मिक हो गई है।

सुना है मैंने, दो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में बात कर रहे थे। उनका दिल था कि जाएं और आज एक फिल्म देख आएं। लेकिन दोनों को अपने पिताओं का डर था। मन तो पढ़ने में बिल्कुल लग नहीं रहा था। फिर एक ने कहा कि छोड़ो भी, कब तक हम परतंत्र रहेंगे? यह गुलामी बहुत हो गई। अगर यही गुलामी है जिंदगी, तो इससे तो बेहतर है, हम दोनों यहां से भाग खड़े हों। परीक्षा से भी छूटेंगे और यह बापों की झंझट भी मिट जाएगी।

पर दूसरे ने कहा कि यह भूलकर मत करना। क्योंकि वे हमारे दोनों के बाप बड़े खतरनाक हैं। वे जल्दी, देर-अबेर, ज्यादा देर नहीं लगेगी, हमें पकड़ ही लेंगे और अच्छी पिटाई होगी। तो दूसरे ने कहा कि कोई फिक्र नहीं; अगर पिटाई भी हो, तो अब बहुत हो गया सहते। हम भी सिर खोल देंगे उन पिताओं के।

तो उस दूसरे ने कहा, यह जरा ज्यादा बात हो गई। धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है, माता और पिता का आदर परमात्मा की भांति करना चाहिए। तो उस दूसरे ने कहा, तो फिर ऐसा करना, तुम मेरे पिता का सिर खोल देना, मैं तुम्हारे पिता का! तो धर्मशास्त्र की भी आज्ञा पूरी हो जाएगी।

ये दुनिया में तीन सौ धर्मों ने यह हालत कर दी है। एक-दूसरे ने एक-दूसरे के परमात्मा का सिर खोल दिया है। लाशें पड़ी हैं अब परमात्माओं की।

और वे सब इस मजे में खोल रहे हैं कि हम तुम्हारे परमात्मा का सिर खोल रहे हैं, कोई अपने का तो नहीं!

हिंदुओं ने मुसलमानों को गलत कर दिया है; मुसलमानों ने हिंदुओं को गलत कर दिया है। साकारवादियों ने निराकारवादियों को गलत कर दिया है; निराकारवादियों ने साकारवादियों को गलत कर दिया है। बाइबिल कुरान के खिलाफ है; कुरान वेद के खिलाफ है; वेद तालमुद के खिलाफ है; तालमुद इसके... । सब एक-दूसरे के खिलाफ हैं और पूरी जमीन परमात्मा की लाशों से भर गई है।

कृष्ण का यह तत्क्षण दूसरा सूत्र इस बात की खबर देता है कि कितने ही विपरीत दिखाई पड़ने वाले मार्ग हों, मंजिल एक है।

इसे थोड़ा समझें, क्योंकि तर्क के लिए बड़ी कठिनाई है। तर्क कहता है कि अगर आकार ठीक है, तो निराकार कैसे ठीक होगा? क्योंकि तर्क को लगता है कि आकार के विपरीत है निराकार। लेकिन निराकार आकार के विपरीत नहीं है। आकार में भी निराकार ही प्रकट हुआ है। और निराकार भी आकार के विपरीत नहीं है। जहां आकार लीन होता है, उस स्रोत का नाम निराकार है।

लहर के विपरीत नहीं है सागर। क्योंकि लहर में भी सागर ही प्रकट हुआ है। लहर भी सागर के विपरीत नहीं है, क्योंकि सागर से ही पैदा होती है, तो विपरीत कैसे होगी! और सागर में ही लीन होती है, तो विपरीत कैसे होगी! जो मूल है, उदगम है और जो अंत है, उसके विपरीत होने का क्या उपाय है?

निराकार और आकार विपरीत नहीं हैं। विपरीत दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हमारे पास देखने की सीमित क्षमता है। वे विपरीत दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि देखने की हमारे पास इतनी विस्तीर्ण क्षमता नहीं है कि दो विरोधों

को हम एक साथ देख लें। हमारी देखने की क्षमता तो इतनी कम है कि जिसका हिसाब नहीं।

अगर मैं आपको एक कंकड़ का छोटा-सा टुकड़ा हाथ में दे दूं और आपसे कहूं कि इसको पूरा एक साथ देख लीजिए, तो आप पूरा नहीं देख सकते। एक तरफ एक दफा दिखाई पड़ेगी। फिर उसको उलटाइए, तो दूसरी तरफ दिखाई पड़ेगी। और जब दूसरा हिस्सा दिखाई पड़ेगा, तो पहला दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।

एक छोटे-से कंकड़ को भी हम पूरा नहीं देख सकते, तो सत्य को हम पूरा कैसे देख सकते हैं? कंकड़ तो बड़ा है, एक छोटे-से रेत के कण को भी आप पूरा नहीं देख सकते, आधा ही देख सकते हैं। आधा हमेशा ही छिपा रहेगा। और जब दूसरे आधे को देखिएगा, तो पहला आधा आंख से तिरोहित हो जाएगा।

आज तक किसी आदमी ने कोई चीज पूरी नहीं देखी। बाकी आधे की हम सिर्फ कल्पना करते हैं कि होनी चाहिए। उलटाकर जब देखते हैं, तो मिलती है; लेकिन तब तक पहला आधा खो जाता है। आदमी के देखने की क्षमता इतनी संकीर्ण है!

तो हम सत्य को पूरा नहीं देख पाते हैं। सत्य के संबंध में हमारी हालत वही है, जो हाथी के पास पांच अंधों की हो गई थी। उन सबने हाथी ही देखा था, लेकिन पूरा नहीं देखा था। किसी ने हाथी का पैर देखा था; और किसी ने हाथी का कान देखा था; और किसी ने हाथी की सूंड देखी थी। और वे सब सही थे; और फिर भी सब गलत थे।

और जब वे गांव में वापस लौटकर आए, तो बड़ा उपद्रव और विवाद खड़ा हो गया। क्योंकि उन सबने हाथी देखा था, और सभी का दावा था कि हम हाथी देखकर आ रहे हैं। लेकिन किसी ने कहा कि हाथी सूप की भांति है; और किसी ने कहा कि हाथी है मंदिर के खंभे की भांति; और बड़ी मुश्किल

खड़ी हो गई। और निर्णय कुछ भी नहीं हो सकता था, क्योंकि सभी की बातें इतनी विपरीत थीं।

लेकिन वे सारी विपरीत बातें इसलिए विपरीत मालूम पड़ती थीं कि उन सबने अधूरा-अधूरा देखा था। और कोई हाथी से अगर पूछता, तो वह कहता, यह सब मैं हूं।

यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है। इसलिए अगर एक ने कहा हो कि निराकार है वह, और किसी दूसरे ने कहा हो, साकार है वह। यह अर्जुन हाथी के सामने खड़ा है और हाथी से पूछ रहा है कि क्या हो तुम! तो हाथी कहता है, सब हूं मैं। वह जिसने कहा है कि सूप की भांति, वह मैं ही हूं; और जिसने कहा है, खंभे की भांति, वह मैं ही हूं। उन सब की भूल इसमें नहीं है; वे जो कहते हैं, उसमें भूल नहीं है। उनकी भूल उसमें है, जो वे इनकार करते हैं।

कोई भूल नहीं है अंधे की, अगर वह कहता है कि हाथी मैंने देखा जैसा, वह खंभे की भांति है। अगर वह इतना ही कहे कि जितना मैंने देखा है हाथी, वह खंभे की भांति है, तो जरा भी भूल नहीं है। लेकिन वह कहता है, हाथी खंभे की भांति है। और जब कोई कहता है कि हाथी खंभे की भांति नहीं है, सूप की भांति है, तो झगड़ा शुरू हो जाता है। तब वह कहता है, हाथी सूप की भांति हो नहीं सकता, क्योंकि खंभा कैसे सूप होगा!

हाथी से कोई भी नहीं पूछता! और हाथी से पूछने के लिए अंधे समर्थ नहीं हो सकते। और अगर हाथी कह दे कि मैं सब हूं, तो अंधे सोचेंगे, हाथी पागल है। क्योंकि अंधे तो देख नहीं सकते हैं। सोचेंगे, हाथी पागल हो गया है। अन्यथा ऐसी व्यर्थ, बुद्धिहीन बात नहीं कहता। कोई अंधा उसकी मानेगा नहीं। सब अंधे अपनी मानते हैं। और जब अपनी मानते हैं, तो दूसरे के वक्तव्य को गलत करने की चेष्टा जरूरी हो जाती है। क्योंकि दूसरे का वक्तव्य स्वयं को गलत करता मालूम पड़ता है।

कृष्ण का यह सूत्र कह रहा है कि वे भी पहुंच जाते हैं, जो प्रेम से चलते हैं। और वे भी पहुंच जाते हैं, जो ज्ञान से चलते हैं। मार्ग विपरीत हैं।

ज्ञान से चलने वाले को शून्य होना पड़ता है। और प्रेम से चलने वाले को पूर्ण होना पड़ता है। लेकिन शून्यता और पूर्णता एक ही घटना के दो नाम हैं। शून्य से ज्यादा पूर्ण कोई और चीज नहीं है। और पूर्ण से ज्यादा शून्य कोई और चीज नहीं है।

हमारे लिए तकलीफ है। क्योंकि हमारे लिए शून्य का अर्थ है कुछ भी नहीं। और हमारे लिए पूर्ण का अर्थ है सब कुछ। ये हमारे देखने के ढंग, दृष्टि, हम जितना समझ सकते हैं, हमारी सीमा, उसके कारण यह अड़चन है।

लेकिन जो शून्य हो जाता है, वह तत्क्षण पूर्ण का अनुभव कर लेता है। और जो पूर्ण हो जाता है, वह भी तत्क्षण शून्य का अनुभव कर लेता है। थोड़ा-सा फर्क होता है। वह फर्क आगे-पीछे का होता है। जो शून्य होता हुआ चलता है, उसे पहले अनुभव शून्य का होता है। शून्य का अनुभव होते ही पूर्ण का द्वार खुल जाता है। जो पूर्ण की तरफ से चलता है, उसे पहले अनुभव पूर्ण का होता है। पूर्ण होते ही शून्य का द्वार खुल जाता है।

ऐसा समझ लें कि शून्यता और पूर्णता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो सिक्के का हिस्सा आपको पहले दिखाई पड़ता है, जब आप उलटाएंगे, पूरा सिक्का आपके हाथ में आएगा, तो दूसरा हिस्सा दिखाई पड़ेगा।

इसीलिए ज्ञानी पहले प्रेम से बिल्कुल रिक्त होता चला जाता है और अपने को शून्य करता है। प्रेम से भी शून्य करता है, क्योंकि वह भी भरता है।

तो महावीर ने कहा है कि सब तरह के प्रेम से शून्य; सब तरह के मोह, सब तरह के राग, सबसे शून्य। इसलिए महावीर ने कह दिया कि ईश्वर भी नहीं है। क्योंकि उससे भी राग बन जाएगा, प्रेम बन जाएगा। कुछ भी नहीं

है, जिससे राग बनाना है। सब संबंध तोड़ देने हैं। और प्रेम संबंध है। और अपने को बिल्कुल खाली कर लेना है।

जिस दिन खाली हो गए महावीर, उस दिन जो पहली घटना घटी, वह आप जानते हैं वह क्या है! वह घटना घटी प्रेम की। इसलिए महावीर से बड़ा अहिंसक खोजना मुश्किल है। क्योंकि शून्य से चला था यह आदमी। और सब तरफ से अपने को शून्य कर लिया था। परमात्मा से भी शून्य कर लिया था। जिस दिन पहुंचा मंजिल पर, उस दिन इससे बड़ा प्रेमी खोजना मुश्किल है। यह उलटी बात हो गई।

इसलिए महावीर ने जितना जोर दिया फिर प्रेम पर--वह अहिंसा उनका नाम है प्रेम के लिए। वह ज्ञानी का शब्द है प्रेम के लिए। क्योंकि प्रेम से डर है कि कहीं आम आदमी अपने प्रेम को न समझ ले। इसलिए अहिंसा। अहिंसा का मतलब इतना ही है कि दूसरे को जरा भी दुख मत देना।

और ध्यान रहे, जो आदमी दूसरे को जरा भी दुख न दूं, इसका ख्याल रखता है, उस आदमी से दूसरे को सुख मिल पाता है। और जो आदमी ख्याल रखता है कि दूसरे को सुख दूं, वह अक्सर दुख देता है।

भूलकर भी दूसरे को सुख देने की कोशिश मत करना। वह आपकी सामर्थ्य के बाहर है। आपकी सामर्थ्य इतनी है कि आप कृपा करना, और दुख मत देना। आप दुख से बच जाएं दूसरे को देने से, तो काफी सुख देने की आपने व्यवस्था कर दी। क्योंकि जब आप कोई दुख नहीं देते, तो आप दूसरे को सुखी होने का मौका देते हैं। सुखी तो वह खुद ही हो सकता है। आप सुख नहीं दे सकते; सिर्फ अवसर जुटा सकते हैं।

सुख देने की कोशिश मत करना किसी को भी भूलकर, नहीं तो वह भी दुखी होगा और आपको भी दुखी करेगा। सुख कोई दे नहीं सकता है।

इसलिए महावीर ने नकार शब्द चुन लिया, अहिंसा। दुख भर मत देना, यही तुम्हारे प्रेम की संभावना है। इससे तुम्हारा प्रेम फैल सकेगा।

महावीर शून्य होकर चले और प्रेम पर पहुंच गए। कृष्ण पूरे के पूरे प्रेम हैं। और उनसे शून्य आदमी खोजना मुश्किल है। सारा प्रेम है, लेकिन भीतर एक गहन शून्य खड़ा हुआ है। इसलिए इस प्रेम में कहीं भी कोई बंधन निर्मित नहीं होता।

इसलिए हमने कहानी कही है कि सोलह हजार प्रेयसियां, पत्नियां हैं उनकी। और फिर भी हमने कृष्ण को मुक्त कहा है। सोलह हजार प्रेम के बंधन के बीच जो आदमी मुक्त हो सके, वह भीतर शून्य होना चाहिए; नहीं तो मुक्त नहीं हो सकेगा।

पर जैन नहीं समझ सके कृष्ण को। जैसा कि हिंदू नहीं समझ सकते महावीर को। जैन नहीं समझ सके, क्योंकि जैनों को लगा, जिसके आस-पास सोलह हजार स्त्रियां हों! एक स्त्री नरक पहुंचा देने के लिए काफी है। सोलह हजार स्त्रियां जिसके पास हों, इसके लिए बिल्कुल आखिरी नरक खोजना जरूरी है। इसलिए जैनों ने कृष्ण को सातवें नरक में डाला हुआ है। क्योंकि जहां इतना प्रेम घट रहा हो, वहां बंधन हो ही गया होगा।

लेकिन उन्हें ख्याल नहीं है कि यह आदमी बांधा नहीं जा सकता, क्योंकि भीतर यह आदमी है ही नहीं। यह मौजूद नहीं है। जो मौजूद हो, वह बांधा जा सकता है। अगर आप आकाश पर मुट्ठी बांधेंगे, तो मुट्ठी रह जाएगी, आकाश बाहर हो जाएगा। आकाश को अगर बांधना हो, तो हाथ खुला चाहिए। आपने बांधा कि आकाश बाहर गया।

जो शून्य की भांति है, वह बांधा नहीं जा सकता। भीतर यह आदमी शून्य है, लेकिन इसकी यात्रा प्रेम की है। इसलिए कृष्ण जैसा शून्य आदमी खोजना मुश्किल है।

आप दोनों तरफ से चल सकते हैं। अपनी-अपनी पात्रता, क्षमता, अपना निज स्वभाव पहचानना जरूरी है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि वे जो दूसरी तरफ से चलते हैं--निराकार, अद्वैत, निर्गुण, शून्य--वे भी मुझ पर ही पहुंच जाते हैं।

तब सवाल यह नहीं है कि आप कौन-सा मार्ग चुनें। सवाल यह है कि आप किस मार्ग के अनुकूल अपने को पाते हैं। आप कहां हैं? कैसे हैं? आपका व्यक्तित्व, आपका ढांचा, आपकी बनावट, आपके निजी झुकाव कैसे हैं?

एक बड़ा खतरा है, और सभी साधकों को सामना करना पड़ता है। और वह खतरा यह है कि अक्सर आपको अपने से विपरीत स्वभाव वाला व्यक्ति आकर्षक मालूम होता है। यह खतरा है। इसलिए गुरुओं के पास अक्सर उनके विपरीत चेले इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि जो विपरीत है, वह आकर्षित करता है। जैसे पुरुष को स्त्री आकर्षित करती है; स्त्री को पुरुष आकर्षित करता है।

आप ध्यान रखें, यह विपरीत का आकर्षण सब जगह है। अगर आप लोभी हैं, तो आप किसी त्यागी गुरु से आकर्षित होंगे। फौरन आप कोई त्यागी गुरु को पकड़ लेंगे। क्यों? क्योंकि आपको लगेगा कि मैं एक पैसा नहीं छोड़ सकता और इसने सब छोड़ दिया! बस, चमत्कार है। आप इसके पैर पकड़ लेंगे। तो त्यागियों के पास अक्सर लोभी इकट्ठे हो जाएंगे। यह बड़ी उलटी घटना है, लेकिन घटती है।

अगर आप क्रोधी हैं, तो आप किसी अक्रोधी गुरु की तलाश करेंगे। आपको जरा-सा भी उसमें क्रोध दिख जाए, आपका विश्वास खतम हो जाएगा। क्योंकि आपका अपने में तो विश्वास है नहीं; आप अपने दुश्मन हैं; और यह आदमी भी क्रोध कर रहा है, तो आप ही जैसा है; बात खतम हो गई।

जिस दिन आपको पता चलता है कि गुरु आप जैसा है, गुरु खतम। वह आपसे विपरीत होना चाहिए। अगर आप स्त्रियों के पीछे भागते रहते हैं, तो गुरु को बिल्कुल स्त्री पास भी नहीं फड़कने देनी चाहिए; उसके शिष्य

चिल्लाते रहने चाहिए कि छू मत लेना, कोई स्त्री छू न ले। तब आपको जंचेगा कि हां, यह गुरु ठीक है।

सब अपने दुश्मन हैं, इसलिए अपने से विपरीत को चुन लेते हैं। फिर बड़ा खतरा है। क्योंकि अपने से विपरीत को चुन तो लेते हैं आप, आकर्षित तो होते हैं, लेकिन उस मार्ग पर आप चल नहीं सकते हैं। क्योंकि जो आपके विपरीत है, वह आप हो नहीं सकते। इसलिए अक्सर चेले कहीं भी नहीं पहुंच पाते।

साधक को पहली बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मेरी स्थिति क्या है? मैं किस ढंग का हूं? मेरा ढंग ही मेरा मार्ग बनेगा।

तो बेहतर तो यह है कि अपनी स्थिति को ठीक से समझकर और यात्रा पर चलना चाहिए। गुरु को समझकर यात्रा पर चलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपने को समझकर गुरु खोजना चाहिए। गुरु खोजकर पीछा नहीं करना चाहिए। जो अपने को समझकर गुरु खोज लेता है, मार्ग खोज लेता है, जो अपने स्वधर्म को पहचान लेता है... ।

समझ लें कि आपको प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं होता। बहुत लोग हैं, जिनको अनुभव नहीं होता। मगर सबको यह ख्याल रहता है कि मैं प्रेम करता हूं। तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। अगर आपको प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं होता है, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है। अगर प्रेम करने वाले आपको पागल मालूम पड़ते हैं, तो भक्ति का मार्ग आपके लिए नहीं है।

कभी आपने सोचा कि अगर मीरा आपको बाजार में नाचती हुई मिल जाए, तो आपके मन पर क्या छाप पड़ेगी?

इसको ऐसा सोचिए कि अगर आप बाजार में नाच रहे हों कृष्ण का नाम लेकर, तो आपको आनंद आएगा या आपको फिक्र लगेगी कि कोई अब पुलिस में खबर करता है! लोग क्या सोच रहे होंगे? लोक-लाज, मीरा ने कहा है, छोड़ी तेरे लिए। वह लोक-लाज छोड़ सकेंगे आप?

प्रेम का कोई अनुभव आपको अगर हुआ हो और वह अनुभव आपको इतना कीमती मालूम पड़ता हो कि सब खोया जा सकता है, तो ही भक्ति का मार्ग आपके लिए है।

और कुनकुने भक्त होने से न होना अच्छा। ल्यूक वार्म होने से कुछ नहीं होता दुनिया में। उबलना चाहिए, तो ही भाप बनता है पानी। और जब तक आपकी भक्ति भी उबलती हुई न हो, कुनकुनी हो, तब तक सिर्फ बुखार मालूम पड़ेगा, कोई फायदा नहीं होगा। बुखार से तो न-बुखार अच्छा। अपना नार्मल टेम्प्रेचर ठीक। क्योंकि बुखार गलत चीज है; उससे परिवर्तन भी नहीं होता, और उपद्रव भी हो जाता है।

और ध्यान रहे, परिवर्तन हमेशा छोर पर होता है। जब पानी उबलता है सौ डिग्री पर, तब भाप बनता है। और जब प्रेम भी उबलता है सौ डिग्री पर, जब बिल्कुल दीवाना हो जाता है, तो ही मार्ग खुलता है। उससे पहले नहीं।

अगर वह आपका झुकाव न हो, तो उस झंझट में पड़ना ही मत। तो फिर बेहतर है कि आप प्रेम का ख्याल न करके, ध्यान का ख्याल करना। फिर किसी परमात्मा से अपने को भरना है, इसकी फिक्र छोड़ देना। फिर तो सब चीजों से अपने को खाली कर लेना है, इसकी आप चिंता करना। वही आपके लिए उचित होगा। फिर एक-एक विचार को धीरे-धीरे भीतर से बाहर फेंकना। और भीतर साक्षी-भाव को जन्माना। और एक ही ध्यान रह जाए कि उस क्षण को मैं पा लूं, जब मेरे भीतर कोई चिंतन की धारा न हो, कोई विचार न हो।

जब मेरे भीतर निर्विचार हो जाएगा, तो मेरा निराकार से मिलन हो जाएगा। और जब मेरे भीतर प्रेम ही प्रेम रह जाएगा--उन्मत्त प्रेम, विक्षिप्त प्रेम, उबलता हुआ प्रेम--तब मेरा सगुण से मिलन हो जाएगा।

अपना निज रुझान खोजकर जो चलता है, और उसको उसकी पूर्णता तक पहुंचा देता है... । आप ही हैं द्वार; आप ही हैं मार्ग; आप में ही छिपी है मंजिल। थोड़ी समझ अपने प्रति लगाएं और थोड़ा अपना निरीक्षण करें और अपने को पहचानें, तो जो बहुत कठिन दिखाई पड़ता है, वह उतना ही सरल हो जाता है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई उठे नहीं। कीर्तन में भाव से भाग लें और फिर जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

तीसरा प्रवचन

पाप और प्रार्थना

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। 5।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।। 6।।

किंतु उन सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति दुखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात जब तक शरीर में अभिमान रहता है, तब तक शुद्ध सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है।

और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही तैलधारा के सदृश अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि आज के बौद्धिक युग में भक्ति, भाव-साधना का मार्ग कैसे उपयुक्त हो सकता है? श्रद्धा के अभाव में भक्ति-साधना में प्रवेश कैसे संभव है?

एसा प्रश्न बहुतों के मन में उठता है। युग तो बुद्धि का है, तो भाव की तरफ गति कैसे हो सके? दोनों में विपरीतता है; दोनों उलटे छोर मालूम पड़ते हैं।

हमारा सारा शिक्षण, सारा संस्कार बुद्धि का है। भाव की न तो कोई शिक्षा है, न कोई संस्कार है। भाव के विकसित होने का कोई उपाय भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी जीवन की व्यवस्था बुद्धि से चलती मालूम पड़ती है। तो इस बुद्धि के शिखर पर बैठे हुए युग में, कैसे भाव की तरफ गति होगी? कैसे भक्ति की तरफ रास्ता खुलेगा?

जीवन का एक बहुत अनूठा नियम है, वह आप समझ लें। वह नियम है कि जब भी हम एक अति पर चले जाते हैं, तो दूसरी अति पर जाना आसान हो जाता है। जब भी हम एक छोर पर पहुंच जाते हैं, तो दूसरे छोर पर पहुंचना आसान हो जाता है, घड़ी के पेंडुलम की तरह। घड़ी का पेंडुलम घूमता है बाईं तरफ, और जब बाईं तरफ के आखिरी छोर को छू लेता है, तो दाईं तरफ घूमना शुरू हो जाता है।

यह युग बुद्धि का युग है, इतना ही काफी नहीं है जानना। यह युग बुद्धि से पीड़ित युग भी है। इस युग की ऊंचाइयां भी बुद्धि की हैं, इस युग की परेशानियां भी बुद्धि की हैं। इस युग की पीड़ा भी बुद्धि है।

यह सारा आज का चिंतनशील मस्तिष्क परेशान है, विक्षिप्त है। और जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे हमें पागलखाने बढ़ाने पड़ते हैं। जितना सभ्य मुल्क हो, उसकी जांच का एक सीधा उपाय है कि वहां कितने ज्यादा लोग पागल हो रहे हैं!

बुद्धि पर ज्यादा जोर पड़ता है, तो तनाव सघन हो जाता है। हृदय हलका करता है, बुद्धि भारी कर जाती है। हृदय एक खेल है, बुद्धि एक तनाव है।

तो बुद्धि की इतनी पीड़ा के कारण और बुद्धि का इतना संताप जो पैदा हुआ है, उसके कारण, दूसरी तरफ घूमने की संभावना पैदा हो गई है।

हम बुद्धि से परेशान हैं। इस परेशानी के कारण हम भाव की तरफ उन्मुख हो सकते हैं। और मेरी अपनी समझ ऐसी है कि शीघ्र ही पृथ्वी पर वह समय आएगा, जब पहली दफा मनुष्य भाव में इतना गहरा उतरेगा, जितना इसके पहले कभी भी नहीं उतरा था।

गांव का एक ग्रामीण है, तो गांव का ग्रामीण भावपूर्ण होता है, लेकिन अगर कभी कोई शहर का बुद्धिमान भाव से भर जाए, तो गांव का ग्रामीण उसके भाव का मुकाबला नहीं कर सकता है। क्योंकि जिसने बुद्धि के शिखर को जाना हो और जब उस शिखर से वह भाव की खाई में गिरता है, तो उस खाई की गहराई उतनी ही होती है, जितनी शिखर की ऊंचाई थी। जितनी ऊंचाई से आप गिरते हैं, उतनी ही गहराई में गिरते हैं। अगर आप समतल जमीन पर गिरते हैं, तो आप कहीं गिरते ही नहीं।

तो गांव के ग्रामीण की जो भाव-दशा है, वह बहुत गहरी नहीं हो सकती है। लेकिन शहर के बुद्धिमान की, सुशिक्षित की, सुसंस्कृत की जब भाव-दशा पैदा होती है, तो वह उतनी ही गहरी होती है--उतनी ही विपरीत गहरी होती है--जितने शिखर पर वह खड़ा था।

मनुष्यता बुद्धि के शिखर को छू रही है। और बुद्धि के शिखर को छूने से जो-जो आशाएं हमने बांधी थीं, वे सभी असफल हो गई हैं। जो भी हमने सोचा था, मिलेगा बुद्धि से, वह नहीं मिला। और जो मिला है, वह बहुत कष्टपूर्ण है।

बर्ट्रेंड रसेल जैसे बुद्धिमान आदमी ने कहा है--और इस सदी में जिनकी बुद्धि पर हम भरोसा कर सकें, उन थोड़े से लोगों में एक है रसेल। रसेल ने कहा है कि पहली बार आदिवासियों को एक जंगल में नाचते देखकर मुझे लगा, अगर यह नाच मैं भी नाच सकूं, तो मैं अपनी सारी बुद्धि को दांव पर

लगाने को तैयार हूं। अगर यही उन्मुक्त, चांद की रात में यही उन्मुक्त गीत मैं भी गा सकूं, तो महंगा सौदा नहीं है। लेकिन सौदा महंगा भला न हो, करना बहुत कठिन है।

बुद्धि के तनाव को छोड़कर भाव और हृदय की तरफ उतरना जटिल है। लेकिन पश्चिम में, जो निश्चित ही हम से बुद्धि की दौड़ में आगे हैं, बुद्धि की पीड़ा बहुत स्पष्ट हो गई है। हम स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी बना रहे हैं, पश्चिम में उनके उजड़ने का वक्त करीब आ गया है।

आज अगर अमेरिका में विचारशील युवक है, तो वह पूछता है, पढ़कर क्या होगा? अगर मुझे एम.ए. या डाक्टरेट की उपाधि मिल गई, तो क्या होगा? मुझे क्या मिल जाएगा? और पश्चिम के पिताओं के पास, गुरुओं के पास उत्तर नहीं है। क्योंकि बच्चे जब अपने बाप से पूछते हैं कि आप पढ़-लिख गए, आपको जीवन में क्या मिल गया है जिसकी वजह से हम भी इस पढ़ने के चक्र से गुजारे जाएं? आपने क्या पा लिया है?

आज पश्चिम में अगर हिप्पी, और बीटनिक, और युवकों का बड़ा वर्ग विद्रोह कर रहा है शिक्षा से, संस्कृति से, समाज से, तो उसका मौलिक कारण यही है कि बुद्धि ने जो-जो आशाएं दी थीं, वे पूरी नहीं हुईं। और बुद्धि का भ्रम-जाल टूट गया। एक डिसइलूजनमेंट, सब भ्रम टूट गए हैं।

भ्रम टूटते ही तब हैं, जब कोई चीज उपलब्ध होती है; उसके पहले नहीं टूटते। गरीब आदमी को भ्रम बना ही रहता है कि धन से सुख मिलता होगा। धन से सुख नहीं मिलता, इसके लिए धनी होना जरूरी है। इसके पहले यह अनुभव में नहीं आता। आएगा भी कैसे? अनुभव का अर्थ ही यह होता है कि जो हमारे पास है, उसका ही हम अनुभव कर सकते हैं। जो हमारे पास नहीं है, उसकी हम आशाएं और सपने बांध सकते हैं।

जमीन पर पहली दफा इन पांच हजार वर्षों में, बुद्धि ने पूरा शिखर छुआ है। बुद्धि का भ्रम टूट गया है। और इस भ्रम के टूटने के कारण इस क्रांति

की संभावना है कि मनुष्य पहली दफा भक्ति की तरफ उतर जाए। निश्चित ही, इस आदमी की भक्ति गहरी होगी।

ऐसा समझें कि एक गरीब आदमी संन्यासी हो जाए, सब छोड़ दे। लेकिन सब था क्या उसके पास छोड़ने को! उसके त्याग की कितनी गहराई होगी? उसके त्याग की उतनी ही गहराई होगी, जितना उसने छोड़ा है। उससे ज्यादा नहीं हो सकती। उसके पास कुछ था ही नहीं। एक सम्राट संन्यासी हो जाए। इस सम्राट के त्याग की गहराई उतनी ही होगी, जितना इसने छोड़ा है।

ध्यान रहे, जब बुद्ध और महावीर सब छोड़कर सड़क पर भिखारी की तरह खड़े हो जाते हैं, तब आप यह मत समझना कि ये वैसे ही भिखारी हैं, जैसे दूसरे भिखारी हैं। इनके भिखारीपन में एक तरह की शान है। और इनके भिखारीपन में एक अमीरी है। और इनके भिखारीपन में छिपा हुआ सम्राट मौजूद है। कोई भिखारी इनका मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि दूसरा भिखारी फिर भी भिखारी ही है। उसे सम्राट होने का कोई अनुभव नहीं है। इसलिए उसके संन्यास में कोई गहराई नहीं हो सकती।

उसका संन्यास हो सकता है एक सांत्वना हो, अपने को समझाना हो। उसने शायद इसलिए सब छोड़ दिया हो कि पहली तो बात कुछ था भी नहीं, पकड़ने योग्य भी कुछ नहीं था। और फिर दूसरी बात, सोचा हो कि अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं मिलता, वह पाने योग्य भी नहीं है। शायद उसने अपने को समझा लिया हो कि मैं त्याग करके परमात्मा को पाने जा रहा हूं। कुछ उसके पास था नहीं। उसके छोड़ने का कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन जब कोई बुद्ध या महावीर सब छोड़कर जमीन पर भिखारी की तरह खड़ा हो जाता है, तो इस छोड़ने का राज और है। बुद्ध की शान और है। यह बुद्ध कितना ही बड़ा भिक्षापात्र अपने हाथ में ले लें, इनकी आंखों में सम्राट मौजूद रहेगा। और जब ये बुद्ध एक वृक्ष के नीचे सो जाएंगे--इन्होंने

महल जाने हैं और यह भी जान लिया है कि उन महलों में कोई सुख न था--तो इनकी नींद वृक्ष के नीचे और है। और एक भिखारी जब वृक्ष के नीचे सोता है, जिसने महल नहीं जाने हैं, वह भी कहता हो कि महलों में कुछ नहीं है, लेकिन उसकी नींद की गुणवत्ता और होगी। ये दोनों अलग तरह के लोग हैं।

हम जिस अनुभव से गुजर जाते हैं, उसके विपरीत जब हम जाते हैं, तो उसकी गहराई उतनी ही बढ़ जाती है। इसलिए गरीब का जो आनंद है, वह केवल अमीर को मिलता है। गरीब होने का जो मजा है, वह केवल अमीर को मिलता है। और जो अमीर अभी अमीरी से ऊबा नहीं है, उसे जिंदगी के सब से बड़े मजे की अभी कमी है। वह है अमीरी के बाद गरीबी का मजा। और जो आदमी बुद्धि से अभी ऊबा नहीं है, समझ लेना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुंचा। जिस दिन शिखर पर पहुंचेगा, उस दिन ऊबकर छोड़ देगा। क्योंकि जो भी आशाएं बंधी थीं, वे इंद्रधनुष साबित होती हैं। दूर से दिखाई पड़ती हैं, पास पहुंचकर खो जाती हैं।

अगर आप अब भी बुद्धि को पकड़े हैं, तो समझना कि काफी बुद्धिमान नहीं हैं। क्योंकि बड़े बुद्धिमान बुद्धि को छोड़ दिए हैं। बड़े धनियों ने धन छोड़ दिया है। बड़े बुद्धिमानों ने बुद्धि छोड़ दी है। जिन्होंने संसार का अनुभव ठीक से लिया है, वे मोक्ष की तरफ चल पड़े हैं।

अगर आप अभी भी संसार में चल रहे हैं, तो समझना कि अभी संसार का अनुभव नहीं मिला। और अगर अभी भी बुद्धि को पकड़े हैं और छोटे-छोटे तर्क लगाते रहते हैं, तो समझना कि अभी बुद्धि के शिखर पर नहीं पहुंचे हैं। अभी आपको आशा है। और अगर अभी भी रुपए इकट्ठे करने में लगे हैं, तो उसका मतलब है कि अभी रुपए से आपकी पहचान नहीं है। अभी आप गरीब हैं; अभी अमीर नहीं हुए हैं। अमीर तो जब भी कोई आदमी होता है,

रुपए को छोड़ देता है। क्योंकि अमीर का भ्रम भंग हो जाता है। और जब तक भ्रम भंग न हो, तब तक समझना कि गरीब है।

गरीब सोच भी नहीं सकता कि अमीरी के बाद आने वाली गरीबी क्या होगी। गरीब तो अमीरी के संबंध में भी जो सोचता है, वह भी गरीब की ही धारणा होती है।

मैंने सुना है, एक भिखमंगा अपनी पत्नी से कह रहा था कि अगर मैं राकफेलर होता, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होता। उसकी पत्नी ने कहा, हैरानी की बात है! क्या तुम्हारा मतलब है? भिखमंगा कह रहा है कि अगर मैं राकफेलर होता, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होता। उसकी पत्नी ने कहा, हैरानी है! क्या मतलब है तुम्हारा कि अगर तुम राकफेलर होते, तो राकफेलर से भी ज्यादा धनी होते?

उस भिखमंगे ने कहा कि तू समझी नहीं। राकफेलर अगर मैं होता, तो किनारे-किनारे भीख मांगने का धंधा भी जारी रखता। वह जो अतिरिक्त कमाई होती, वह राकफेलर से ज्यादा होती! साइड बाइ साइड वह मैं अपना धंधा भीख मांगने का भी करता रहता। तो राकफेलर से निश्चित मैं ज्यादा धनी होता, क्योंकि जो मैं भिखमंगेपन से कमाता, वह राकफेलर के पास नहीं है।

अगर भिखमंगा राकफेलर होने का भी सपना देखे, तो भी भिखमंगा ही रहता है। सम्राट अगर भिखारी होने का भी सपना देखे, तो भी सम्राट ही रहता है। अनुभव खोते नहीं। जो भी अनुभव आपको मिल गया है, वह आपके जीवन का अंग हो गया।

तो जब कोई बुद्धि के शिखर पर पहुंच जाता है... । थोड़ा सोचें। अगर कभी आइंस्टीन भक्त हो जाए, तो आपके साधारण भक्त टिकेंगे नहीं। ऐसा हुआ है।

चैतन्य महाप्रभु आइंस्टीन जैसी बुद्धि के आदमी थे। बंगाल में कोई मुकाबला न था उनकी प्रतिभा का। उनके तर्क के सामने कोई टिकता न था। उनसे जूझने की हिम्मत किसी की न थी। उनके शिक्षक भी उनसे भयभीत होते थे। दूर-दूर तक खबर पहुंच गई थी कि उनकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं है। और फिर जब यह चैतन्य इस बुद्धि को छोड़कर और झांझ-मजीरा लेकर रास्तों पर नाचने लगा, तो फिर चैतन्य महाप्रभु का मुकाबला भी नहीं है--इस नृत्य, और इस गीत, और इस प्रार्थना, और इस भाव, और इस भक्ति का।

न होने का कारण है। नाचे बहुत लोग हैं। गीत बहुत लोगों ने गाए हैं। प्रार्थना बहुत लोगों ने की है। भाव बहुत लोगों ने किया है, लेकिन चैतन्य की सीमा को छूना मुश्किल है। क्योंकि चैतन्य का एक और अनुभव भी है, वे बुद्धि के आखिरी शिखर से उतरकर लौटे हैं। उन्होंने ऊंचाइयां देखी हैं। उनकी नीचाइयों में भी ऊंचाइयां छिपी रहेंगी।

तो इस युग के लिए, यह ध्यान में रख लेना जरूरी है कि यह युग एक शिखर अनुभव के करीब पहुंच रहा है, जहां बुद्धि व्यर्थ हो जाएगी। और जब बुद्धि व्यर्थ होती है, तो जीवन के लिए एक ही आयाम खुला रह जाता है, वह है भाव का, वह है हृदय का, वह है प्रेम का, वह है भक्ति का।

आदमी अब पुराने अर्थों में भावपूर्ण नहीं हो सकता। अब तो नए अर्थों में भावपूर्ण होगा। पुराना आदमी सरलता से भावपूर्ण था। उसकी भावना में सरलता थी, गहराई नहीं थी। नया आदमी जब भावपूर्ण होता है, आज का आदमी जब भावपूर्ण होता है, तो उसके भाव में सरलता नहीं होती, गहराई होती है। और गहराई बड़ी कीमत की चीज है।

इसे हम ऐसा समझें, एक छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा सरल होता है, लेकिन गहरा नहीं होता। गहरा हो नहीं सकता। क्योंकि गहराई तो आती है अनुभव से। गहराई तो आती है हजार दरवाजों पर भटकने से। गहराई तो

आती है हजारों भूल करने से। गहराई तो आती है प्रौढ़ता से, अनुभव से। सार जब बच जाता है सब अनुभव का, तो गहराई आती है।

एक बूढ़ा आदमी सरल नहीं हो सकता, लेकिन गहरा हो सकता है। एक बच्चा गहरा नहीं हो सकता, सरल हो सकता है। और जब कोई बूढ़ा आदमी अपनी गहराई के साथ सरल हो जाता है, तो संत का जन्म होता है।

इसलिए जीसस ने कहा है कि वे लोग मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, जो बच्चों की भांति भोले हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जीसस ने यह नहीं कहा है कि बच्चे मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। बच्चे नहीं; जो बच्चों की भांति भोले हैं। इसका मतलब साफ है कि पहली तो बात बच्चे नहीं हैं। तभी तो कहा कि बच्चों की भांति। बच्चे नहीं हैं; जो बूढ़े हैं सब अर्थों में, लेकिन फिर भी बच्चों की भांति भोले हैं, वे ही स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

एक बच्चा सरल है, अज्ञानी है। अभी उसकी जिंदगी में जटिलता नहीं है, लेकिन जटिलता आएगी। अभी जटिलता आने का वक्त करीब आ रहा है। जल्दी ही वह भटकेगा, उलझेगा, वासना से भरेगा। जमानेभर की आकांक्षाएं उसे घेर लेंगी। उसकी सरलता के नीचे ज्वालामुखी छिपा है।

गांव का आदमी सरल दिखाई पड़ता है। वह भी बच्चे की तरह सरल है। उसके भीतर वह सारा ज्वालामुखी छिपा है, जो शहर के आदमी में प्रकट हो गया है। उसे शहर ले आओ, वह शहर के आदमी जैसा ही जटिल हो जाएगा। और यह भी हो सकता है, ज्यादा जटिल हो जाए। जब गांव के लोग चालाक होते हैं, तो शहर के लोगों से ज्यादा चालाक हो जाते हैं। क्योंकि उनकी जमीन बहुत दिन से बिना उपयोग की पड़ी है। उसमें चालाकी के बीज पड़ जाते हैं, तो जो फसल आती है, वह आप में नहीं आ सकती। आपकी जमीन काफी फसल ला चुकी है चालाकी की।

गांव का आदमी चालाक हो जाए, तो बहुत चालाक हो जाता है। गांव का आदमी सरल है, लेकिन उसकी सरलता की कोई कीमत नहीं है। उसकी सरलता बच्चे की सरलता है। उसके भीतर ज्वालामुखी छिपा है। वह कभी भी भ्रष्ट होगा। शायद उसे भ्रष्ट होना ही पड़ेगा। क्योंकि इस जगत में भ्रष्ट हुए बिना कोई अनुभव नहीं है। उसे इस जगत से गुजरना ही पड़ेगा। और अगर इस जगत से गुजरकर यह जगत उसे व्यर्थ हो जाए और वह वापस गांव लौट जाए, और वापस लौट जाए उसी ग्राम्य-सरलता में, तो उसकी जो गहराई होगी, वह संत की गहराई है।

विपरीत का अनुभव उपयोगी है। बच्चे को जवान होना जरूरी है। जवान का अर्थ है, वासना। सभी बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं! शरीर बूढ़ा हो जाता है, चित्त बूढ़ा नहीं हो पाता। और जिसका चित्त बूढ़ा होता है, वह संत हो गया। चित्त के बूढ़े होने का अर्थ यह है कि जवानी में जो तूफान उठे थे, वे समझ लिए और पाया कि व्यर्थ हैं।

बूढ़े भी कहते हैं कि सब बेकार है। कहते हैं; ऐसा उन्होंने पाया नहीं है। अगर कोई चमत्कारी उनसे कहे कि हम तुम्हें फिर जवान बनाए देते हैं, तो वे अभी तैयार हो जाएंगे। खो गया है, हाथ से ताकत खो गई है, वासना नहीं खो गई है। मरते दम तक वासना पीछा करती है।

सब बच्चे जवान हो जाते हैं, लेकिन सभी जवान बूढ़े नहीं हो पाते हैं। बूढ़े तो बहुत थोड़े से लोग होते हैं। बूढ़े का मतलब है, जिनके लिए जवानी अनुभव से व्यर्थ हो गई। और जो बूढ़े होकर फिर वापस उस सरलता को पहुंच गए, जिस सरलता को लेकर पैदा हुए थे। लेकिन इस सरलता में एक गुणात्मक, क्वालिटेटिव फर्क है। इस सरलता के नीचे जो तूफान छिपा था, ज्वालामुखी, वह नहीं है। इस सरलता को भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। यह सरलता बोधपूर्वक है।

बच्चे की सरलता भ्रष्ट की जा सकती है। भ्रष्ट होगी ही; होनी चाहिए। नहीं तो उसके जीवन में गहराई नहीं आएगी। उसे भ्रष्ट भी होना पड़ेगा और उसे भ्रष्टता के ऊपर भी उठना पड़ेगा। जीवन एक शिक्षण है। उसमें भूल करके हम सीखते हैं।

बुद्धि की भूल हमने कर ली है इस युग में। अब अगर हम सीख जाएं, तो हम हृदय की तरफ वापस लौट सकते हैं।

पृथ्वी पर भक्ति के एक बड़े युग के आने की संभावना है। उलटा लगेगा, क्योंकि हमें तो लग रहा है कि सब नष्ट हुआ जा रहा है। लेकिन तूफान के बाद ही शांति आती है। और यह जो नष्ट होना दिखाई पड़ रहा है, यह तूफान का आखिरी चरण है। और इसके पीछे एक गहन सरलता उत्पन्न हो सकती है।

मगर आप, सारी दुनिया कब सरल होगी, इसकी प्रतीक्षा में मत रहें। आप होना चाहें, तो आज ही हो सकते हैं। और सारी दुनिया होगी या नहीं होगी, यह प्रयोजन भी नहीं है। दुनिया हो भी जाएगी और आप नहीं हुए, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। आप हो सकते हैं अभी। लेकिन शायद आप भी अभी बुद्धि से ऊबे नहीं हैं। अभी शायद आपको भी यह साफ नहीं हुआ है कि बुद्धि का जाल कुछ अर्थ नहीं रखता है।

आदमी की बुद्धि कितनी छोटी है! इस छोटी-सी बुद्धि से हम क्या हल कर रहे हैं? इस जीवन की विराट पहेली को! कितने दर्शन हैं, कितने शास्त्र हैं, कुछ भी हल नहीं हुआ। बुद्धि अब तक एक नतीजे पर नहीं पहुंची है। अभी तक जीवन की पहेली पहेली की पहेली बनी हुई है। अभी तक कोई जवाब नहीं है।

हजारों साल की निरंतर हजारों मस्तिष्कों की मेहनत के बाद भी, जीवन क्या है, इसका कोई उत्तर नहीं है। मनुष्य इतने दिन से कोशिश करके

भी बुद्धि से कुछ पा नहीं सका है। जीवन के सभी प्रश्न अभी भी प्रश्न हैं। कुछ हल नहीं हुआ।

धर्म या भक्ति केवल इसी बात की पहचान है कि बुद्धि से एक भी उत्तर मिल नहीं सका। शायद बुद्धि से उत्तर मिल ही नहीं सकता। हम गलत दिशा से खोज रहे हैं। लेकिन यह स्मरण आ जाए, यह ख्याल में आ जाए, तो आप दूसरी दिशा में खोज शुरू कर दें।

आपके पास बुद्धि है। अच्छा है होना; क्योंकि अगर बुद्धि न हो, तो यह भी समझ में आना मुश्किल है कि बुद्धि से कुछ मिल नहीं सकता। इतना उसका उपयोग है।

बायजीद ने कहा है कि शास्त्रों को पढ़कर एक ही बात समझ में आई कि शास्त्रों से सत्य नहीं मिलेगा। लेकिन काफी बड़ी बात समझ में आई।

झेन फकीर रिंझाई ने कहा है कि सोच-सोचकर इतना ही पाया कि सोचना फिजूल है। लेकिन बहुत पाया। इतना भी मिल जाए बुद्धि से, तो बुद्धि का बड़ा दान है। लेकिन इसके लिए भी साहसपूर्वक बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए।

हम तो बुद्धि का प्रयोग भी नहीं करते हैं। इसलिए हम बुद्धिमान बने रहते हैं। अगर हम बुद्धि का प्रयोग कर लें, तो आज नहीं कल हम उस जगह पहुंच जाएंगे, जहां खाई आ जाती है और रास्ता समाप्त हो जाता है। वहां से लौटना शुरू हो जाता है।

सभी बुद्धिमान बुद्धि के विपरीत हो गए हैं। चाहे बुद्ध हों, और चाहे जीसस, चाहे कृष्ण, सभी बुद्धिमानों ने एक बात एक स्वर से कही है कि बुद्धि से जीवन का रहस्य हल नहीं होगा। जीवन का रहस्य हृदय से हल होगा।

हां, बुद्धि से संसार की उलझनें हल हो सकती हैं। क्योंकि संसार की सब उलझनें मृत हैं। गणित का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी। और ध्यान

रखना, गणित का सवाल हृदय से हल करने की कोशिश भी मत करना। उससे कोई संबंध नहीं है। विज्ञान की कोई उलझन हो, बुद्धि हल कर देगी। टेक्नालाजी का कोई सवाल हो, बुद्धि हल कर देगी। जो भी मृत है, पदार्थ है, उसकी उलझन बुद्धि हल कर देती है। बुद्धि का उपयोग यही है।

लेकिन जहां भी जीवित है, और जहां भी जीवन की धारा है, और जहां अमृत का प्रश्न है, वहीं बुद्धि थक जाती है और व्यर्थ हो जाती है।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े सूफी फकीर हसन के पास एक युवक आया। वह बहुत कुशल तार्किक था, पंडित था, शास्त्रों का ज्ञाता था। जल्दी ही उसकी खबर पहुंच गई और हसन के शिष्यों में वह सब से ज्यादा प्रसिद्ध हो गया। दूर-दूर से लोग उससे पूछने आने लगे। यहां तक हालत आ गई कि लोग हसन की भी कम फिक्र करते और उसके शिष्य की ज्यादा फिक्र करते। क्योंकि हसन तो अक्सर चुप रहता। और उसका शिष्य बड़ा कुशल था सवालों को सुलझाने में।

एक दिन एक आदमी ने हसन से आकर कहा, इतना अदभुत शिष्य है तुम्हारा! इतना वह जानता है कि हमने तो दूसरा ऐसा कोई आदमी नहीं देखा। धन्यभागी हो तुम ऐसे शिष्य को पाकर। हसन ने कहा कि मैं उसके लिए रोता हूं, क्योंकि वह केवल जानता है। और जानने में इतना समय लगा रहा है कि भावना कब कर पाएगा? भाव कब कर पाएगा? जानने में ही जिंदगी उसकी खोई जा रही है, तो भाव कब करेगा? मैं उसके लिए रोता हूं। उसको अवसर भी नहीं है, समय भी नहीं है। वह बुद्धि से ही लगा हुआ है।

बुद्धि से सब कुछ मिल जाए, जीवन का स्रोत नहीं मिलता। वह वहां नहीं है। बुद्धि एक यूटिलिटी है; एक उपयोगिता है; एक यंत्र है, जिसकी जरूरत है। लेकिन वह आप नहीं हैं। जैसे हाथ है, ऐसे बुद्धि एक आपका यंत्र

है। उसका उपयोग करें, लेकिन उसके साथ एक मत हो जाएं। उसका उपयोग करें और एक तरफ रख दें। लेकिन हम उससे एक हो गए हैं।

आप चलते हैं, तो पैर का उपयोग कर लेते हैं। फिर बैठते हैं, तब आप पैर नहीं चलाते रहते हैं। अगर चलाएं, तो लोग पागल समझेंगे। पैर चलने के लिए है, बैठकर चलाने के लिए नहीं है। बुद्धि, जब पदार्थ के जगत में कोई उलझन हो, उसे सुलझाने के लिए है। लेकिन आप बैठे हैं, तो भी बुद्धि चल रही है। नहीं है कोई सवाल, तो भी बुद्धि चल रही है!

आज एक मित्र मेरे पास आए थे। वे कह रहे थे, कोई तकलीफ नहीं है, कोई अड़चन नहीं है, सब सुविधा है, लेकिन बस सिर चलता रहता है।

कोई तकलीफ नहीं है; कोई उलझन नहीं है; कोई समस्या नहीं है; फिर सिर क्यों चलता रहता है? उसका अर्थ हुआ कि बुद्धि के साथ आप एक हो गए हैं। अपने को अलग नहीं कर पा रहे हैं।

जो आदमी बुद्धि से अपने को अलग कर लेगा, वही भाव में प्रवेश कर पाता है। और बुद्धि ने अब इतनी पीड़ा दे दी है कि हम अपने को अलग कर पाएंगे; करना पड़ेगा। बुद्धि ने इतना दंश दे दिया है, बुद्धि के कांटे इतने चुभ गए हैं छाती पर कि अब ज्यादा दिन बुद्धि के साथ नहीं चला जा सकता है। इसलिए मैं कहता हूं कि इस बुद्धि के युग में भी श्रद्धा की बड़ी क्रांति की संभावना है।

एक मित्र ने पूछा है कि पाप और पुण्य का भेद क्या है? और जब तक मन पाप से भरा है, तब तक श्रद्धा, भक्ति, भाव कैसे होगा? प्रार्थना कैसे होगी, जब तक मन पाप से भरा है? तो पहले मन पुण्य से भरे, फिर प्रार्थना होगी!

ठीक लगता है। समझ में आता है। फिर भी ठीक नहीं है। और नासमझी से भरी हुई बात है।

ठीक लगता है कि जब तक मन पाप से भरा है, तो प्रार्थना कैसे होगी! यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई चिकित्सक कहे कि जब तक तुम बीमार हो, जब तक मैं औषधि कैसे दूंगा! पहले तुम ठीक हो जाओ, स्वस्थ हो जाओ, फिर औषधि ले लेना। लेकिन जब ठीक हो जाओ, तो औषधि की जरूरत क्या होगी?

अगर पाप छोड़ने पर प्रार्थना करने का आपने तय किया है, तो आपको कभी प्रार्थना करने का मौका नहीं आएगा। जब तक पाप है, आप प्रार्थना न करोगे। और जब पाप ही न रह जाएगा, तो प्रार्थना किसलिए करोगे? फिर प्रार्थना का अर्थ क्या है?

प्रार्थना औषधि है। इसलिए पापी रहकर ही प्रार्थना करनी पड़ेगी।

और दूसरी बात कि पाप हट कैसे जाएगा? बिना प्रार्थना के हट न पाएगा। और बिना प्रार्थना के जो पाप को हटाते हैं, उनका पुण्य उनके अहंकार का आभूषण बन जाता है। और अहंकार से बड़ा पाप नहीं है।

प्रार्थनापूर्वक जो पाप से मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। बिना प्रार्थना के पाप से मुक्त होने की बहुत लोग कोशिश करते हैं। कि प्रार्थना की क्या जरूरत? हम अपने को खुद ही पवित्र कर लेंगे। किसी परमात्मा के सहारे की कोई जरूरत नहीं है। हम खुद ही अपने को ठीक कर लेंगे। चोरी है, तो चोरी छोड़ देंगे। बेईमानी है, तो बेईमानी छोड़ देंगे; ईमानदार हो जाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, कभी-कभी पापी भी परमात्मा को पहुंच जाते हैं, इस तरह के पुण्यात्मा कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि जो कहता है कि मैं बेईमानी छोड़ दूंगा, वह बेईमानी छोड़ भी सकता है, लेकिन उसकी ईमानदारी के भीतर भी जो अहंकार होगा, वही उसका पाप हो जाएगा।

विनम्रता, ऐसी विनम्रता जो पुण्य का भी गर्व नहीं करती, प्रार्थना के बिना नहीं आएगी।

और फिर आप अगर सच में ही इतने अलग होते जगत से, तो आप खुद ही अपना रूपांतरण कर लेते। आप इस जगत के एक हिस्से हैं। यह पूरा जगत आपसे जुड़ा है। यहां जो भी हो रहा है, उसमें आप सम्मिलित हैं। आप अलग-थलग नहीं हैं कि आप अपने को पुण्यात्मा कर लेंगे। इस समग्र अस्तित्व का सहारा मांगना पड़ेगा।

आदमी बहुत कमजोर भी है, असहाय भी है। वह जो भी करता है, वह सब असफल हो जाता है। अपने को अलग मानकर आदमी जो भी करता है, वह सब टूट जाता है। जब तक इस पूरे के साथ अपने को एक मानकर आदमी चलना शुरू नहीं करता, तब तक जीवन में कोई महत घटना नहीं घटती।

प्रार्थना का इतना ही अर्थ है। प्रार्थना का अर्थ है कि मैं अकेला नहीं हूं। प्रार्थना का अर्थ है कि अकेला होकर मैं बिल्कुल असहाय हूं। प्रार्थना का अर्थ है कि इस पूरे अस्तित्व का सहारा न मिले, तो मुझ से कुछ भी न हो सकेगा। प्रार्थना इस हेल्पलेसनेस, इस असहाय अवस्था का बोध है। और प्रार्थना पुकार है अस्तित्व के प्रति कि तेरा सहारा चाहिए, तेरा हाथ चाहिए, तेरे बिना इस रास्ते पर चलना मुश्किल है।

तो प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति में जब पुण्य आता है, तो वह पुण्य का भी धन्यवाद परमात्मा को देता है, अपने को नहीं। प्रार्थनाहीन व्यक्ति अगर पुण्य भी कर ले, तो अपनी ही पीठ ठोकने की कोशिश करता है; वह भी पाप हो जाता है। इसलिए कई बार तो ऐसा होता है कि निरहंकारी पापी भी परमात्मा के पास जल्दी पहुंच जाता है बजाय अहंकारी पुण्यात्मा के।

सुना है मैंने कि एक साधु, एक फकीर मरा। उसने जीवन में कोई पाप नहीं किया था। इंच-इंच सम्हालकर चला था। जरा-सी भी भूल-चूक न हुई थी। वह बिल्कुल निश्चिंत था कि स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा मेरा स्वागत

करने को तैयार होगा। निश्चिंतता स्वाभाविक थी। फिर जिंदगीभर कष्ट झेला था उसने। और पुरस्कार की मांग थी। स्वभावतः अकड़ भी थी। जब वह स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचा, तो सिर झुकाकर प्रवेश करने का मन न था। बैंड-बाजे से स्वागत होगा, यही कहीं गहरे में धारणा थी।

लेकिन दरवाजे पर जो दूत मिला, दरवाजा तो बंद था और उस दूत ने कहा कि तुम एक अजीब आदमी हो। तुम पहले ही आदमी हो जो बिना पाप किए यहां आ गए हो। अब हम बड़ी मुश्किल में हैं। क्योंकि यहां के जो नियम हैं, उनमें तुम कहीं भी नहीं बैठते। किताब में लिखा है--स्वर्ग के दरवाजे के नियम की किताब में--कि जो पाप किया हो बहुत, उसे नरक भेज दो; जो पाप कर के प्रायश्चित्त किया हो, उसे स्वर्ग भेज दो। तुमने पाप ही नहीं किया। तुम्हें नरक भेजें, तो मुश्किल है। क्योंकि जिसने पाप नहीं किया, उसे नरक कैसे भेजें! और तुमने पाप किया ही नहीं, इसलिए प्रायश्चित्त का कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हें स्वर्ग कैसे भेजें! दरवाजे बंद हैं दोनों--स्वर्ग का भी, नरक का भी। और तुम्हारे साथ हम क्या करें, लीगल झंझट खड़ी हो गई है।

तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, तुम जमीन पर लौट जाओ; बारह घंटे का हम तुम्हें वक्त देते हैं; हमें झंझट में मत डालो। सदा का चला हुआ नियम है, उसको तोड़ो मत। बारह घंटे के लिए लौट जाओ, और छोटा-मोटा सही, एक पाप करके आ जाओ। फिर प्रायश्चित्त कर लेना। स्वर्ग का दरवाजा तुम्हारा स्वागत कर रहा है। फिर तुम इतने अकड़े हुए हो कि नरक जाने योग्य हो, लेकिन पाप तुमने किया नहीं! और स्वर्ग में तो वही प्रवेश करता है, जो विनम्र है, और विनम्र तुम जरा भी नहीं हो। एक छोटा पाप कर आओ। थोड़ी विनम्रता भी आ जाएगी। थोड़ा झुकना भी सीख जाओगे। और तुमने एक भी पाप नहीं किया, तो तुमने मनुष्य जीवन व्यर्थ गंवा दिया।

वह फकीर बहुत घबड़ाया। उसने कहा, क्या कहते हैं! मनुष्य जीवन व्यर्थ गंवा दिया? तो उस देवदूत ने कहा कि थोड़ा-सा पाप कर ले तो मनुष्य

विनम्र होता है, झुकता है, अस्मिता टूटती है। और थोड़ा-सा पाप मानवीय है, ह्यूमन है। तुम इनह्यूमन मालूम होते हो, बिल्कुल अमानवीय मालूम पड़ते हो। तुम लौट जाओ।

फकीर लौटा। रात उसे देवदूत जमीन पर छोड़ गए। बड़ी मुश्किल खड़ी हुई। उसने कभी कोई पाप न किया था। बारह घंटे का कुल समय था। सूझ में ही न आता था उसको कि कौन-सा पाप करूं! फिर यह भी था कि छोटा ही हो, ज्यादा न हो जाए। और अनुभव न होने से पाप का, बड़ी अड़चन थी। बहुत सोचा-विचारा, कुछ सोच-समझ में नहीं आया कि क्या करूं। फिर भी सोचा कि गांव की तरफ चलूं।

जैसे ही गांव में प्रवेश करता था, एक बिल्कुल काली-कलूटी बदशक्ल स्त्री ने इशारा किया झोपड़े के पास। घबड़ाया। स्त्रियों से सदा दूर रहा था। पर सोचा कि यही पाप सही। कोई तो पाप करना ही है। और फिर स्त्री इतनी बदशक्ल है कि पाप भी छोटा ही होगा। चला गया। स्त्री तो बड़ी आनंदित हुई।

रात उस स्त्री के पास रहा, उसे प्रेम किया। और सुबह भगवान को धन्यवाद देता हुआ कि चलो, एक पाप हो गया, अब प्रायश्चित्त कर लूंगा और स्वर्ग में प्रवेश हो जाएगा। जैसे ही झोपड़े से विदा होने लगा, वह स्त्री उसके पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा कि फकीर, मुझे कभी किसी ने चाहा नहीं, किसी ने कभी प्रेम नहीं किया। तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे इतने प्रेम और इतनी चाहत से देखा। इतने प्रेम से मुझे स्पर्श किया और अपने पास लिया। एक ही प्रार्थना है कि इस पुण्य का भगवान तुम्हें खूब पुरस्कार दे।

फकीर की छाती बैठ गई। इस पुण्य का भगवान तुम्हें पुरस्कार दे! फकीर ने घड़ी देखी कि मुसीबत हो गई, घंटाभर ही बचा है! ये ग्यारह घंटे खराब हो गए!

आगे का मुझे पता नहीं है कि उसने घंटेभर में क्या किया। स्वर्ग वह पहुंच पाया कि नहीं पहुंच पाया! लेकिन मुश्किल है कि वह कोई पाप कर पाया हो। उसका कारण है। इस कहानी से कई बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।

पहली बात तो, इतना आसान नहीं है तय करना कि क्या पाप है और क्या पुण्य है, जितना आसान हम सोचते हैं। हम तो कृत्यों पर लेबल लगा देते हैं कि यह पाप है और यह पुण्य है। कोई कृत्य न पाप है, न पुण्य है। बहुत कुछ करने वाले पर और करने की स्थिति पर निर्भर करता है।

निश्चित ही फिर से सोचिए, हंसिए मत इस कहानी में। जिस स्त्री को कभी किसी ने प्रेम न किया हो, उसको किसी का प्रेम करना अगर पुण्य जैसा मालूम पड़ा हो, तो कुछ भूल है? और अगर परमात्मा भी इसको पुण्य माने, तो क्या आप कहेंगे कि गलती हुई? वह फकीर भी बाद में चिंता में पड़ गया कि पुण्य क्या है? पाप क्या है? अगर दूसरे को इतना सुख मिला हो, तो पाप कहां है? अगर दूसरा इतना आनंदित हुआ हो कि उसके जीवन का फूल पहली दफा खिला हो, तो पाप कहां है?

पाप कृत्य में नहीं है। कृत्य का क्या परिणाम होता है! उसमें भी परिणामों का कोई अंत नहीं है। आपने कृत्य आज किया है, परिणाम हजारों साल तक होते रहेंगे उस कृत्य के। क्योंकि परिणामों कीशृंखला है।

अगर सारे परिणाम कृत्य में समाविष्ट किए जाएं, तो तय करना बहुत मुश्किल है कि क्या है पाप, क्या है पुण्य। कई बार आप पुण्य करते हैं और पाप हो जाता है। आप पुण्य ही करना चाहते थे और पाप हो जाता है। किस कृत्य को क्या नाम दें! कृत्य सवाल नहीं है।

दूसरी बात इस कहानी से ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि वह फकीर तो पाप करना चाहता था जान-बूझकर, फिर भी पाप नहीं हो पाया। यह बहुत गहन है।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक था पीड़ी.आस्पेंस्की। उसके शिष्य बेनेट ने लिखा है कि जब पहली दफा उसने हमें शिक्षा देनी शुरू की, तो उसकी शिक्षाओं में एक खास बात थी, जान-बूझकर पाप करना। और हम सब लोग बैठे थे और उसने कहा कि घंटेभर का समय देता हूं, तुम जान-बूझकर कोई ऐसा काम करो, जिसको तुम समझते हो कि वह एकदम बुरा है और करने योग्य नहीं है।

बेनेट ने लिखा है कि घंटेभर हम बैठकर सोचते रहे। बहुत उपाय किया कि किसी को गाली दे दें, धक्का मार दें, चांटा लगा दें। लेकिन कुछ भी न हुआ। और घंटा खाली निकल गया और आस्पेंस्की हंसने लगा और उसने कहा कि तुम्हें पता होना चाहिए, पाप को जान-बूझकर किया ही नहीं जा सकता। यू कैन नाट डू ईविल कांशसली। वह जो बुराई है, उसको सचेतन रूप से करने का उपाय ही नहीं है। बुराई का गुण ही है अचेतन होना।

इसलिए फकीर मुश्किल में पड़ गया। वह कोशिश करके पाप करने निकला था।

आप कोशिश करके पाप करने नहीं निकलते हैं; पाप हो जाता है। आपको कोशिश नहीं करनी पड़ती। कोशिश तो आप करते हैं कि न करूं, फिर भी हो जाता है। पाप होता है--कोशिश से नहीं, होशपूर्वक नहीं--पाप होता है बेहोशी में, मूर्च्छा में।

इसलिए पाप का एक मौलिक लक्षण है, मूर्च्छित कृत्य। जो कृत्य मूर्च्छा में होता है, वह पाप है। और जो कृत्य होशपूर्वक हो सकता है, वही पुण्य है। इसको हम ऐसा भी समझ सकते हैं कि जिस काम को करने के लिए मूर्च्छा अनिवार्य हो, उसको आप समझना कि पाप है। और जिस काम को करने के लिए होश अनिवार्य हो, जो होश के बिना हो ही न सके, होश में ही हो सके, समझना कि पुण्य है।

बुद्ध का शिष्य आनंद, कुछ साधु यात्रा पर जा रहे हैं, तो उनकी तरफ से बुद्ध से पूछने खड़ा हुआ कि ये साधु यात्रा पर जाते हैं उपदेश करने। इनकी कुछ उलझनें हैं। एक उलझन का आप जवाब दे दें; बाकी तो मैंने इन्हें समझा दिया है।

तो बुद्ध ने पूछा, क्या उलझन है? तो आनंद ने कहा कि ये फकीर पूछते हैं--ये सब भिक्षु पूछते हैं--कि अगर स्त्री के पास रहने का कोई अवसर आ जाए, तो रुकना कि नहीं रुकना? तो बुद्ध ने कहा, मत रुकना। स्त्री से दूर रहना। तो आनंद ने पूछा, और कहीं ऐसी मजबूरी ही हो जाए कि रुकना ही पड़े, तो क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, स्त्री की तरफ देखना मत। आंख नीची रखना।

यही बात पुरुष के लिए लागू हो जाएगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। स्त्री की तरफ देखना ही मत; आंख नीची रखना।

पर आनंद ने कहा कि ऐसा कोई अवसर आ जाए कि आंख उठानी ही पड़े और स्त्री को देखना ही पड़े? तो बुद्ध ने कहा, स्पर्श मत करना।

पर आनंद भी जिद्दी था और इसलिए बुद्ध से बहुत-सी बातें निकलवा पाया। उसने कहा, यह भी मान लिया। पर कभी ऐसा अवसर आ जाए--बीमारी, कोई दुर्घटना--कि स्त्री को छूना ही पड़े, तो उस हालत में क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, अब आखिरी बात कहे देता हूं, होश रखना छूते वक्त। और बाकी सब बातें फिजूल हैं। अगर होश रखा जा सके, तो बाकी सब बातें फिजूल हैं। बाकी उनके लिए हैं, जो होश न रख सकते हों।

जिस कृत्य को भी होशपूर्वक किया जा सके, वह पाप नहीं रह जाता। और अगर पाप होगा, तो किया ही न जा सकेगा। मूर्च्छा जरूरी है। इसलिए मैं पाप की व्याख्या करता हूं, मूर्च्छित कृत्य। पुण्य की व्याख्या करता हूं, होशपूर्ण कृत्य।

लेकिन आप पुण्य भी करते हैं, तो मूर्च्छा में करते हैं। फिर समझ लेना कि वह पुण्य नहीं है। चार लोग आ जाते हैं और आपको काफी फुसलाते हैं, फुलाते हैं, कि आप जैसा दानी कोई भी नहीं है जगत में; एक मंदिर बनवा दें। नाम रह जाएगा। वे आपकी मूर्च्छा को उकसा रहे हैं। वे आपके अहंकार को तेल दे रहे हैं। वे आपके अहंकार पर मक्खन लगा रहे हैं। आप फूले जा रहे हैं भीतर कि मेरे जैसा कोई पुण्यात्मा नहीं है जगत में! मूर्च्छा पकड़ रही है। इस मूर्च्छा में आप चेक वगैरह मत दे देना। वह पाप होगा। भला उससे मंदिर बने, लेकिन वह पाप होगा। क्योंकि मूर्च्छा में कोई पुण्य नहीं हो सकता।

और मैं आपसे कहता हूं कि अगर आप चोरी भी करने जाएं, तो होशपूर्वक करने जाना। तो पहली तो बात यह कि आप चोरी नहीं कर पाएंगे। जैसे ही होश से भरेंगे, हाथ वापस खिंच आएगा। किसी की हत्या भी करने जाएं, तो मैं नहीं कहता कि हत्या मत करना। मैं इतना ही कहता हूं कि होशपूर्वक करना। होश होगा, हत्या नहीं हो सकेगी। हत्या हो जाए, तो समझ लेना कि आप बेहोश हो गए थे। और आप बेहोश हो जाएंगे, तो ही हो सकती है।

इस जगत में कुछ भी बुरा करना हो, तो बेहोशी चाहिए, नींद चाहिए। जैसे आप नहीं कर रहे हैं, कोई शराब के नशे में आपसे करवाए ले रहा है।

ऐसा हुआ कि अकबर निकलता था एक रास्ते से और एक नंगा फकीर सड़क के किनारे खड़ा होकर अकबर को गालियां देने लगा। अकबर ने बहुत संतुलन रखा। बहुत बुद्धिमान आदमी था। लेकिन अपने सिपाहियों को कहा कि इसको पकड़कर कल सुबह मेरे सामने हाजिर करो।

दूसरे दिन सुबह उस फकीर को हाजिर किया गया। वह आकर अकबर के चरणों में सिर झुकाकर खड़ा हो गया। अकबर ने कहा कि कल तुमने गालियां दीं, उसका तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा। क्या प्रयोजन था? उस फकीर

ने कहा कि आप जिससे उत्तर मांग रहे हैं, उसने गालियां नहीं दीं। जिसने दीं, वह शराब पीए हुए था। रातभर में मेरा नशा उतर गया। इसलिए आप मुझसे जवाब मांगकर अन्याय कर रहे हैं। जिसने गालियां दी थीं, वह अब मौजूद नहीं है। और मैं जो मौजूद हूं, उस वक्त मौजूद नहीं था।

अकबर ने अपने आत्म-संस्मरणों में यह घटना लिखवाई है। और उसने कहा है कि मुझे उस दिन ख्याल आया कि निश्चित ही, जो मूर्च्छा में किया गया हो, उसके लिए व्यक्ति को जिम्मेवार क्या ठहराना!

आप जो भी कर रहे हैं... । इसलिए आपको भी लगता है, कभी क्रोध में आप गाली दे देते हैं, किसी को मार देते हैं, बाद में आपको लगता है कि मैं तो नहीं करना चाहता था! सोचा भी नहीं था कि करूं, अब पछताता भी हूं, और ख्याल आता है कि कैसे हो गया!

आप होश में नहीं थे। निश्चित ही, आपने कोई शराब बाहर से नहीं पी थी। लेकिन भीतर भी शराब के झरने हैं। और बाहर से ही शराब पीना जरूरी नहीं है।

अगर आप शरीर-शास्त्री से पूछें, तो वह बता देगा कि आपके शरीर में ग्रंथियां हैं, जहां से नशा, मादक द्रव्य छूटते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपका खून तेज चलता है और खून में जहर छूट जाते हैं। उन जहर की वजह से आप मूर्च्छित हो जाते हैं। उस मूर्च्छा में आप कुछ कर बैठते हैं, वह आपका किया हुआ कृत्य नहीं है। वह मूर्च्छा है, बेहोशी है।

इस जगत में कोई भी बुराई बिना बेहोशी के नहीं होती। और इस जगत में कोई भी भलाई बिना होश के नहीं होती। इसलिए एक ही भलाई है, होश से भरे हुए जीना; और एक ही बुराई है, बेहोशी में होना।

और इस बात की प्रतीक्षा मत करें कि जब पुण्य से भर जाएंगे पूरे, तब प्रार्थना करेंगे। जैसे हैं, जहां हैं, वहीं प्रार्थना शुरू कर दें। आपकी प्रार्थना भी आपका होश बनेगी। आपकी प्रार्थना भी आपको जगाएगी। आपकी प्रार्थना

भी आपकी बेहोशी और मूर्च्छा को तोड़ेगी। और आपकी प्रार्थना का अंतिम परिणाम होगा कि आप एक सचेतन व्यक्ति हो जाएंगे। यह जो सचेतन, जागा हुआ बोध मनुष्य के भीतर है, वही उसे पाप से छुटाता है।

पापों को काटने के लिए पुण्यों की जरूरत नहीं है। पापों को काटने के लिए होश की जरूरत है। और जहां होश है, वहां पाप होने बंद हो जाते हैं। और जहां होश है, वहां पुण्य फलित होने लगते हैं। पुण्य ऐसे ही फलित होने लगते हैं, जैसे सूरज के उगने पर फूल खिल जाते हैं। ऐसे ही होश के जगने पर पुण्य होने शुरू हो जाते हैं। पुण्य करने नहीं पड़ते। आपकी छाया की तरह आपके पीछे चलने लगते हैं। वे आपकी सुगंध हो जाते हैं। वे हो जाते हैं, तब आपको पता लगता है। जब दूसरे आपसे कहते हैं, तब आपको पता लगता है।

लेकिन आदमी बेईमान है, आत्मवंचक है। और आदमी हजार तरकीबें निकाल लेता है अपने को समझाने की, कि मैं तो पापी हूं; मुझसे क्या प्रार्थना होगी! यह आपकी होशियारी है। यह आप यह कह रहे हैं कि अभी क्या प्रार्थना करनी! प्रार्थना आपको करनी नहीं है। करना आपको पाप ही है। लेकिन आप यह भी अपने मन में नहीं मानना चाहते कि मैं प्रार्थना नहीं करना चाहता हूं। आप कहते हैं, मैं ठहरा पापी; मुझसे क्या प्रार्थना होगी? तो किससे प्रार्थना होगी?

आपसे ही प्रार्थना होगी। और पाप प्रार्थना में बाधा नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे आपके घर में अंधेरा हो; और आप कहें कि अंधेरा बहुत है, दीया कैसे जलाएं! और अंधेरा इतना ज्यादा है कि दीया जलेगा कैसे! और अंधेरा हजारों साल पुराना है, दीए को बुझाकर रख देगा! नाहक मेहनत क्या करनी। जब अंधेरा नहीं होगा, तब दीया जला लेंगे।

अंधेरा आपके दीए के जलने को रोक नहीं सकता। अंधेरे की ताकत क्या है? पाप से कमजोर दुनिया में कोई चीज नहीं है। पाप की ताकत क्या है?

अंधेरा कमजोर है। अंधेरा है ही कहां? दीया जलते ही तिरोहित हो जाएगा। और चाहे हजारों वर्ष पुराना हो, तो भी एक क्षण टिक न सकेगा। और छोटा-सा दीया मिटा देगा। और दीए से अंधेरा यह नहीं कह सकेगा कि मैं हजारों साल से यहां रह रहा हूं और तू अभी अतिथि की तरह आया और मुझ मेजबान को हटाए दे रहा है! मैं नहीं हटता। नहीं, अंधेरा खड़ा होकर जवाब भी न दे सकेगा। अंधेरा पाया ही नहीं जाएगा।

प्रार्थना के लिए पाप बाधा नहीं है। नहीं तो वाल्मीकि जैसा पापी, राम में ऐसा नहीं डूब सकता था। कि अंगुलिमाल जैसा पापी, बुद्ध में ऐसा लीन नहीं हो सकता था।

पाप बाधा नहीं है। और जब प्रार्थना कोई करता है, तो पाप वैसे ही हट जाता है, जैसे दीया जलता है और अंधेरा हट जाता है। और जले हुए दीए में पाप नहीं होता। जले हुए दीए के साथ जो होता है, उसी का नाम पुण्य है।

तो प्रार्थना को रोकें मत। कल पर टालें मत। स्थगित मत करें। प्रार्थना को शुरू होने दें।

और क्या फर्क पड़ता है! जब बच्चा पहली दफा चलता है, तो गिरता ही है। अगर कोई भी बच्चा यह तय कर ले कि मैं चलूंगा तभी जब गिरूंगा नहीं, तो चलेगा ही नहीं कभी। और जब पहली दफा कोई तैरना सीखता है, तो दो-चार दफे मुंह में पानी भी भर जाता है और डुबकी भी लग जाती है। लेकिन कोई अगर यह तय कर ले कि तैरूंगा तभी जब पूरी तरह सीख लूंगा, फिर वह कभी तैरेगा नहीं। तैरने के लिए भी बिना सीखे पानी में उतरना जरूरी है।

और बच्चा चल पाता है। गिरता है; घुटने टूट जाते हैं। घसिटता है। बार-बार खड़ा होता है, फिर बैठ जाता है। एक दिन चलने लगता है। प्रार्थना भी ऐसे ही शुरू होगी क ख ग से। आप कभी पूरी प्रार्थना पहले दिन नहीं कर

पाएंगे। आप पहले ही दिन कोई चैतन्य और मीरा नहीं हो जाने वाले हैं। लेकिन होने की कोई जरूरत भी नहीं है।

और संतों का काम इतना ही है, जो मां-बाप का काम है। बच्चा चलता है, तो मां-बाप उसके उस भूल भरे चलने पर भी इतने प्रसन्न होते हैं! फिर जब वह ठीक चलने लगेगा, तो कोई प्रसन्न नहीं होगा। आपको पता है! जब पहली दफा बच्चा खड़ा हो जाता है डगमगाता, तो घरभर में खुशी और उत्सव छा जाता है। ऐसी क्या बड़ी घटना हो रही है? दुनिया चल रही है! ये और एक सज्जन खड़े हो गए, तो कौन-सा फर्क पड़ा जा रहा है? लेकिन उसका यह खड़ा होना, उसका यह साहस, उसका जमीन पर से झुके होने से खड़ा हो जाना, अपने पैरों पर यह भरोसा, मां-बाप खुश हो जाते हैं; बैंड-बाजे बजाते हैं। घर में गीत; फूल सजाते हैं। बच्चा उनका खड़ा हो गया!

जब पहली दफा बच्चा आवाज निकाल देता है, बेतुकी, बेमतलब की, कोई अर्थ नहीं होता, उसमें से मां-बाप अर्थ निकालते हैं कि वह मामा कह रहा है, पापा कह रहा है। वह कुछ नहीं कह रहा है! वह केवल पहली दफा टटोल रहा है। कुछ नहीं कह रहा है। लेकिन बड़ी खुशी छा जाती है। फिर वह भाषा भी अच्छी बोलने लगेगा, बड़ा विद्वान भी हो जाएगा, तब भी यह खुशी नहीं होगी।

संतों का, गुरुओं का इतना काम है कि जब पहली दफा कोई तुतलाने लगे प्रार्थना, तो उसको सहारा दें। पहली दफा जब कोई प्रार्थना के जगत में कदम रखे, तो उसको आसरा दें। इसको उत्सव की घड़ी बना लें। तो जो आज डांवाडोल है, कल थिर हो जाएगा। जो आज तुतला रहा है, कल ठीक से बोलने लगेगा। आज जो केवल आवाज है, कल गीत-संगीत भी बन सकती है। वे संभावनाएं हैं।

लेकिन पहला कदम बिल्कुल जरूरी है। पहले कदम में ही जो चूक करता है... । और चूक एक ही है पहले कदम की। गिरना चूक नहीं है। गलत कदम

का उठ जाना चूक नहीं है। गलत उठेगा ही; गिरना होगा ही। चूक एक ही है, स्थगित करना। कि पहला कैसे उठाऊं; कहीं गलती न हो जाए! तो जो रुक जाता है पहले को उठाने से, वही एकमात्र चूक है। बाकी कोई चूक नहीं है।

भूलें करना बुरा नहीं है। भूल करने के डर से रुक जाना बुरा है। भूल को दोहराना बुरा है, एक ही भूल को बार-बार करना नासमझी है। लेकिन पहली दफा ही भूल न हो, ऐसा जो परफेक्शनिस्ट हो, ऐसा जो पूर्णतावादी हो, वह इस दुनिया में मूढ़ की हालत में ही मरेगा। वह कुछ भी सीख नहीं पाएगा।

भूल करें, दिल खोलकर करें। एक ही भूल दुबारा भर न करें। हर भूल से सीखें और पार निकल जाएं और नई भूल करने की हिम्मत रखें। संसार में भूलें करने से नहीं डरते, तो परमात्मा में भूलें करने से क्या डरना है! और जब संसार भी भूलों को क्षमा कर देता है और आप सफल हो जाते हैं, तो परमात्मा भी क्षमा कर ही देगा। क्षमा किया ही हुआ है। और जब पहली दफा कोई तुतलाता है प्रार्थना, तो सारा अस्तित्व खुश होता है, प्रसन्न होता है।

कहा है हमने कि जब बुद्ध को पहली दफा ज्ञान हुआ, तो जिन वृक्षों पर फूल नहीं खिलने थे, खिल गए। झूठी लगती है बात। कहा है हमने कि महावीर जब रास्ते पर चलते थे, तो अगर कोई कांटा पड़ा हो, तो महावीर को देखकर उलटा हो जाता था। झूठी लगती है बात। कांटे को क्या मतलब होगा? और बेमौसम फूल खिलते हैं कहीं? कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो सारी दिशाएं सुगंध से भर गईं। भरोसा नहीं आता।

लेकिन अभी रूस में एक प्रयोग हुआ है और रूस के वैज्ञानिक पुश्किन ने घोषणा की है कि पौधे भी आपकी खुशी से प्रभावित होते हैं और खुश होते हैं; और आपके दुख से दुखी होते हैं, पीड़ित होते हैं।

पुश्किन की खोज मूल्यवान है और पुश्किन ने पौधों को सम्मोहित करने का, हिप्नोटाइज करने का प्रयोग किया है। और पुश्किन ने यह भी प्रयोग किया है कि पास में एक गुलाब का पौधा रखा है और एक व्यक्ति को पास में ही बेहोश किया, सम्मोहित किया। जब सम्मोहित होकर कोई बेहोश हो जाता है, फिर उससे जो भी कहा जाए, वह आज्ञा मानता है। पुश्किन ने उस बेहोश आदमी से कहा कि तू आनंद से भर गया है। तेरा चित्त प्रफुल्लित है और सुख की धारा बह रही है।

वह आदमी डोलने लगा आनंद में। उस आदमी के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगाए गए, जो यंत्र पर खबर दे रहे हैं कि उसमें आनंद की लहरें उठ रही हैं; उसका मस्तिष्क नई तरंगों से भर गया है। उसके साथ ही उसी तरह के इलेक्ट्रोड गुलाब के पौधे पर भी लगाए गए हैं। जैसे ही यह आदमी आनंदित होकर भीतर प्रफुल्लित हो गया और यंत्र ने खबर दी कि वह आनंद से भर रहा है; जिस तरह का ग्राफ उसके मस्तिष्क की तरंगों का बना, ठीक उसी तरह का ग्राफ गुलाब के पौधे से भी बना। और पुश्किन ने लिखा है, गुलाब के पौधे के भीतर भी वैसी ही आनंद की तरंगें फैलने लगीं।

और जब उस आदमी को कहा गया कि तू दुख से परेशान है; तेरी पत्नी की मृत्यु हो गई है; कि तेरे घर में आग लग गई है और तेरा हृदय बैठा जा रहा है; वह दुखी हो गया। उसके हृदय की पंखुड़ियां बंद हो गईं। तरंगों में खबर आने लगी कि वह दुख से भरा हुआ है। ठीक गुलाब के पौधे से भी तरंगें आने लगीं कि वह बहुत दुखी है। उसकी पंखुड़ियां मुरझा गई हैं और बंद हो गई हैं।

आप आनंदित हैं, तो आपके पास रखा हुआ गुलाब का पौधा भी आंदोलित होता है। तो फिर झूठ नहीं लगता, कुछ आश्चर्य नहीं है कि बुद्ध का भीतर का कमल खिला हो, तो बेमौसम फूल भी आ गए हों। क्योंकि साधारण आदमी के खुश होने से अगर फूल खुश होते हैं, तो बुद्ध तो कभी-

कभी करोड़ वर्ष में कोई बुद्ध होता है। उस वक्त अगर बेमौसम फूल ले आते हों पौधे, तो कुछ आश्चर्य नहीं लगता।

पुश्किन की बात से तो ऐसा लगता है, फूल जरूर खिले होंगे। बुद्ध के पास के पौधे इतने आनंदित हो गए होंगे--ऐसा तो कभी होता है, करोड़ वर्षों में--तो अगर बेमौसम भी थोड़े से फूल खिला दिए हों, स्वाभाविक लगता है।

जब आप पहली दफा तुतलाते हैं प्रार्थना, तो यह सारा अस्तित्व खुश होता है। इस अस्तित्व की खुशी ही प्रभु का प्रसाद है।

तो डरें मत। हिम्मत करें। गिरेंगे ही न; फिर उठ सकते हैं। नौ बार जो गिरता है, दसवीं बार उसके गिरने की संभावना समाप्त हो जाती है।

अब हम सूत्र को लें।

किंतु उन सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात विशेष परिश्रम है। क्योंकि देह-अभिमानियों में अव्यक्त विषयक गति दुखपूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात जब तक शरीर में अभिमान है, तब तक शुद्ध सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते हुए भजते हैं, उनका मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूं।

इस सूत्र में दो बातें कही गई हैं। एक, कि वे भी पहुंच जाते हैं, जो निराकार, निर्गुण, शून्य की उपासना करते हैं। वे भी मुझ तक ही पहुंच जाते हैं, कृष्ण कहते हैं। वे भी परम सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन उनका मार्ग कठिन है। उनका मार्ग दुर्गम है। और उनके मार्ग पर क्लेश है, पीड़ा है, कष्ट है। क्या क्लेश है उनके मार्ग पर?

जो निराकार की तरफ चलता है, उसे कुछ अनिवार्य कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। पहली तो यह कि वह अकेला है यात्रा पर। कोई उसका

संगी-साथी नहीं। और आपको पता है, कभी आप अंधेरी गली से गुजरते हैं, तो खुद ही गीत गुनगुनाने लगते हैं, सीटी बजाने लगते हैं। कोई है नहीं वहां। अकेले में डर लगता है। लेकिन अपनी ही सीटी सुनकर डर कम हो जाता है। अपनी ही सीटी, अपना ही गीत!

उस अज्ञात के पथ पर जहां कि गहन अंधेरा है, क्योंकि कोई संगी-साथी नहीं है, और इस जगत का कोई प्रकाश काम नहीं आता है; निराकार का यात्री अकेले जाता है। कोई परमात्मा, कोई परमात्मा की धारणा का सहारा नहीं है। तो पहली तो कठिनाई यह है कि अकेले की यात्रा है।

भरोसा भी हो कि परमात्मा है, तो दो हैं आप। अकेले नहीं हैं।

एक ईसाई फकीर औरत हुई। वह एक चर्च बनाना चाहती थी। कुल दो पैसे थे उसके पास। और गांव में जाकर उसने कहा कि घबड़ाओ मत, संपत्ति कुछ मेरे पास है, कुछ और आ जाएगी। और जहां संपत्ति है, वहां और संपत्ति आ जाती है। दो पैसे मेरे पास हैं। चर्च हम बना लेंगे।

गांव के लोग बहुत हंसे कि तू पागल हो गई है! दो पैसे से कहीं चर्च बना है! तू अकेली एक फकीर औरत और दो पैसे। बस! इससे हो जाएगा? चर्च बन जाएगा?

उस स्त्री ने कहा कि नहीं, एक और मेरे साथ है। एक मैं हूं, मैं फकीर औरत हूं। और ये दो पैसे हैं। ये भी काफी कम हैं। लेकिन परमात्मा भी मेरे साथ है। तीनों का जोड़ काफी से ज्यादा है। मगर तुम्हें वह तीसरा दिखाई नहीं पड़ता। मुझे वह दिखाई पड़ता है, इसलिए दो पैसे की भी फिक्र नहीं है। और मैं भी फकीर औरत हूं, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हम तीनों मिलकर जरूरत से ज्यादा हैं।

वह जो भक्त का रास्ता है, उस पर परमात्मा साथ है। भक्त कितना ही कमजोर हो, परमात्मा से जुड़कर बहुत ज्यादा है। सारी कमजोरी खो जाती है।

निराकार का पथिक अकेला है; किसी का उसे साथ नहीं है। कठिनाई होगी। अकेले होने से बड़ी और कठिनाई भी क्या है!

जिंदगी में कभी आप अकेले हुए हैं? अकेला होने का आपको पता है? जरा देर अकेले छूट जाते हैं, तो जल्दी से अखबार पढ़ने लगते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, किताब उठा लेते हैं। कुछ न कुछ करने लगते हैं, ताकि अकेलापन पता न चले। हमारे जीवन का सारा जाल--परिवार, पति-पत्नी, मित्र, क्लब, होटल, समूह, संघ, मंदिर, चर्च--अकेले होने से बचने की तरकीबें हैं। अकेले होने से घबड़ाहट होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई थी, तो उसकी लाश के पास बैठकर रो रहा था। नसरुद्दीन का मित्र भी था एक, फरीद। वह उससे भी ज्यादा छाती पीटकर रो रहा था। नसरुद्दीन को बड़ा अखर रहा था। पत्नी मेरी, और ये सज्जन इस तरह रो रहे हैं कि किसी को शक हो सकता है कि इनकी पत्नी मरी हो। नसरुद्दीन भी काफी ताकत लगा रहा था, लेकिन मित्र भी गजब का था, नसरुद्दीन से हमेशा आगे!

भीड़ बढ़ गई थी। कई अजनबी लोग भी इकट्ठे हो गए थे। और नसरुद्दीन को बड़ी बेचैनी हो रही थी। पत्नी के मरने की इतनी नहीं, जितना यह आदमी बाजी मारे लिए जा रहा है! आखिर नसरुद्दीन से नहीं रहा गया, उसने कहा कि ठहर भी फरीद! इतना दुख मत मना; ज्यादा मत घबड़ा। मैं फिर दुबारा शादी कर लूंगा।

लोग बहुत चकित हुए। किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन, अभी पत्नी मरे देर नहीं हुई। लाश घर में रखी है; अभी लाश गरम है। और तुम कह रहे हो, दूसरी शादी कर लोगे! तो नसरुद्दीन ने कहा, कोई शादी करने के लिए तो शादी की नहीं थी। अकेले होने की तकलीफ है। उसके मरते ही मैं फिर अकेला हो गया। और इतना अकेला तब भी नहीं था, जब पहली दफा शादी की थी। अब और ज्यादा अकेला हो गया, क्योंकि साथ का अनुभव हो गया।

रास्ते पर जा रहे हैं। अंधेरे में एक कार निकल जाती है; कार के प्रकाश में आंखें चौंधिया जाती हैं। जब कार चली जाती है, अंधेरा और ज्यादा हो जाता है। पहले इतना नहीं था। पहले कुछ दिखाई भी पड़ता था, अब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

नसरुद्दीन ने कहा कि इस पत्नी की वजह से ही तो अब और जल्दी दूसरी पत्नी की जरूरत है। यह खाली कर गई; बहुत अकेले हो गए।

आपकी पत्नी जब मर जाती है या पति जब मर जाता है, तो जो पीड़ा होती है, वह उसके मरने की कम है; अगर ठीक से खोज करेंगे, तो अकेले हो जाने की ज्यादा है। शायद नसरुद्दीन बहुत नासमझ है, इसलिए तत्काल उसने सच्ची बात कह दी। आप छः महीने बाद कहेंगे। और अगर जरा मंद बुद्धि हुए, छः साल बाद कहेंगे। यह दूसरी बात है। लेकिन बात उसने ठीक ही कह दी।

अकेले होने की पीड़ा है। किसी को भी हाथ में हाथ लेकर भरोसा आ जाता है कि अकेले नहीं हैं।

तो निराकार का रास्ता तो बिल्कुल अकेला है। न पत्नी साथी होगी, न मित्र साथी होगा, न पति। निराकार की जो ठीक साधना है, उसमें तो गुरु भी साथी नहीं होगा। उसमें गुरु भी कह देगा कि मैं सिर्फ रास्ता बताता हूं, चलना तुझे है। मैं तेरे साथ नहीं आ सकता हूं। निराकार की आत्यंतिक साधना में तो गुरु कहेगा, तू मुझे छोड़, तभी तेरी यात्रा शुरू होगी। कहेगा कि मुझे पकड़ मत; कहेगा कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि अकेले होने की ही साधना है। गुरु का होना भी बाधा है।

इसलिए यह सूत्र कहता है, कृष्ण कहते हैं, अति कठिन है।

पहली बात कि अकेला हो जाना होगा। दूसरी बात, अगर परमात्मा की तरफ समर्पण न हो, तो उस अकेलेपन में अहंकार के उठने की बहुत

गुंजाइश है। बहुत ऐसा हो सकता है कि मैं हूं। यह मैं की अकड़ बहुत तीव्र हो सकती है, क्योंकि इसको मिटाने के लिए कोई भी नहीं है।

निराकार और मेरा अहंकार, अगर कहीं ये दोनों मिल जाएं तो खतरा है, बड़े से बड़ा खतरा है। क्योंकि अगर मैं कहूं कि मैं ब्रह्म हूं, तो इसमें दोनों संभावनाएं हैं। इसका एक मतलब तो यह होता है कि अब मैं नहीं रहा, ब्रह्म ही है; तब तो ठीक है। और अगर इसका यह मतलब हो कि मैं ही हूं, अब कोई ब्रह्म वगैरह नहीं है; तो बड़ा खतरा है।

इस्लाम ने इस तरह की बात को बिल्कुल बंद ही करवा दिया, ताकि कोई खतरा न हो। तो जब अल-हिल्लाज ने कहा कि अहं ब्रह्मास्मि--अनलहक--मैं ही हूं ब्रह्म, तो इस्लाम ने हत्या कर दी।

हत्या करनी उचित नहीं है। लेकिन अभी मैं एक फकीर, सूफी फकीर की टिप्पणी पढ़ रहा था अल-हिल्लाज की हत्या पर। तो उसने कहा कि यह बात ठीक नहीं है कि अल-हिल्लाज की हत्या की गई। लेकिन एक लिहाज से ठीक है। क्योंकि अल-हिल्लाज की हत्या करने से क्या मिटता है! अल-हिल्लाज तो पा चुका था, इसलिए हत्या करने से कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इस हत्या करने से दूसरे लोग, जो कि अपने अहंकार को मजबूत कर लेते अनलहक कहकर, उनके लिए रुकावट हो गई।

यह बात भी मुझे ठीक मालूम पड़ी। अल-हिल्लाज की हत्या से कुछ मिटता ही नहीं, क्योंकि अल-हिल्लाज उसको पा चुका, जो अमृत है। इसलिए उसको मारने में कोई हर्जा नहीं। अगर उसको न मारा जाए, तो न मालूम कितने नासमझ लोग चिल्लाने लगेंगे। उनके अहंकार का खतरा हो सकता है। तो इस्लाम ने वह दरवाजा बंद कर दिया।

भारत ने वह दरवाजा बंद नहीं किया। क्योंकि भारत की आकांक्षा यह रही कि कोई भी दरवाजा बंद न हो, चाहे एक दरवाजे से हजारों वर्ष में एक

भी आदमी क्यों न निकलता हो। लेकिन दरवाजा खुला रहना चाहिए। एक आदमी को भी बाधा नहीं होनी चाहिए।

निराकार के मार्ग से हजारों साल में एकाध आदमी निकलता है। लेकिन दरवाजा खुला रखा जाता है। क्योंकि वह जो निराकार के मार्ग से निकलता है, वह भक्ति के मार्ग से निकल ही न सकेगा। उसका कोई उपाय ही नहीं है। वह उसी मार्ग से निकल सकेगा।

बुद्ध को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। महावीर को भक्ति के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता। कोई उपाय नहीं है! वह उनका स्वभाव नहीं है।

मीरा को निराकार के मार्ग से नहीं निकाला जा सकता; वह उसका स्वभाव नहीं है। सब मार्ग खुले और साफ होने चाहिए।

पर मार्ग कठिन है, क्योंकि अहंकार के उठने का डर है। देह-अभिमान मजबूत हो सकता है। खतरा है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, पहुंच तो जाते हैं मुझ तक ही वे लोग भी, जो निराकार से चलते हैं। लेकिन वह स्थिति कठिन है। और जो मेरे परायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्ति-योग से निरंतर चिंतन करते भजते हैं, उनका मैं शीघ्र उद्धार करता हूं।

भक्त के लिए एक सुविधा है। वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। यह उसकी सुविधा है। ज्ञानी की असुविधा है, आखिरी चरण पर मिट सकता है; बीच की यात्रा में रहेगा। वह रहना मजबूत भी हो सकता है। और ऐसा भी हो सकता है, वह इतना मजबूत हो जाए कि आखिरी चरण उठाने का मन ही न रहे, और अहंकार में ही ठहरकर रह जाए।

लेकिन भक्त को एक सुविधा है, वह पहले चरण पर ही मिट सकता है। सुविधा ही नहीं है, पहले चरण पर उसे मिटना ही होगा, क्योंकि वह साधना

की शुरुआत ही वही है। रोग को साथ ले जाना नहीं है। ज्ञानी का रोग साथ चल सकता है आखिरी तक। आखिर में छूटेगा, क्योंकि मिलन के पहले तो रोग मिटना ही चाहिए, नहीं तो मिलन नहीं होगा। लेकिन भक्त के पथ पर वह पहले, प्रवेश पर ही बाहर रखवा दिया जाता है, छुड़वा दिया जाता है।

भक्त अपने कर्मों को समर्पण कर देता है। वह कहता है, अब मैं नहीं कर रहा हूं; तू ही कर रहा है। वह बुरे-भले का भी भाव छोड़ देता है। वह कहता है, जो प्रभु की मर्जी। अब मेरी कोई मर्जी नहीं है। अब तू जो मुझसे करवाए, मैं करता रहूंगा। तेरा उपकरण हो गया। तू सुख में रखे तो सुखी, और तू दुख में रखे तो दुखी। न तो मैं सुख की आकांक्षा करूंगा, और न दुख न मिले, ऐसी वासना रखूंगा। अब मैं सब भांति तेरे ऊपर छोड़ता हूं। यह जो समर्पण है, इस समर्पण के साथ ही अहंकार गलना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, उनका मैं जल्दी ही उद्धार कर लेता हूं, क्योंकि वे पहले चरण में ही अपने को छोड़ देते हैं।

ज्ञानी का उद्धार भी होगा, लेकिन वह आखिरी चरण में होगा। घटना अंत में वही हो जाएगी। लेकिन कोई अपनी यात्रा के पहले ही बोझ को रख देता है, कोई अपनी यात्रा की समाप्ति पर बोझ को छोड़ता है। और जहां बोझ छूट जाता है अस्मिता का, अहंकार का, वहीं उद्धार शुरू हो जाता है।

कृष्ण जब कहते हैं, मैं उद्धार करता हूं, तो आप ऐसा मत समझें कि कोई बैठा हुआ है, जो आपका उद्धार करेगा। कृष्ण का मतलब है, नियम। कृष्ण का मतलब है, शाश्वत धर्म, शाश्वत नियम। जैसे ही आप अपने को छोड़ देते हैं, वह नियम काम करना शुरू कर देता है।

पानी है; नीचे की तरफ बहता है। फिर उसको गरम करें आग से; भाप बन जाता है। भाप बनते ही ऊपर की तरफ उठने लगता है।

एक नियम तो ग्रेविटेशन का है कि पानी नीचे की तरफ बहता है। न्यूटन ने खोजी यह बात कि जमीन चीजों को अपनी तरफ खींचती है, इसलिए

सब चीजें नीचे की तरफ गिरती हैं। लेकिन एक और नियम भी है जो ग्रेविटेशन के विपरीत है। जिसको योगियों ने लेविटेशन कहा है। नीचे की तरफ खींचने में तो कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है; लेकिन ऊपर की तरफ भी एक खिंचाव है, जिसको एक बहुत कीमती महिला सिमोन वेल ने ग्रेस कहा है। ग्रेस और ग्रेविटेशन। नीचे की तरफ कशिश; ऊपर की तरफ प्रभु-प्रसाद, ग्रेस।

नियम है। जब आप गिर पड़ते हैं जमीन पर, केले के छिलके पर पैर फिसल जाता है, तो आप यह मत सोचना कि कोई भगवान बैठा है, जो आपकी टांग तोड़ता है। कि खटाक से, आपने गड़बड़ की, केले के छिलके पर फिसले, उसने उठाया हथौड़ा और फ्रैक्चर कर दिया! कोई बैठा हुआ नहीं है कि आपका फ्रैक्चर करे। किस-किस का फ्रैक्चर करने का हिसाब रखना पड़े। नियम है। आपने भूल की, नियम के अनुसार आपका पैर टूट गया। कोई तोड़ता नहीं है पैर। पैर टूट जाता है; नियम के विपरीत पड़ने से टूट जाता है।

ठीक ऐसे ही ग्रेस है। जैसे ही आपका अहंकार हटा, आप ऊपर की तरफ खींच लिए जाते हैं। कोई खींचता नहीं है। कोई ऐसा बैठा नहीं है कि आपके गले में फांसी लगाकर और ऊपर खींचेगा।

उद्धार का मतलब ऐसा मत समझना कि कोई आपको उठाएगा और खींचेगा। कोई नहीं उठा रहा है; कोई उठाने की जरूरत नहीं है। जैसे ही बोझ हलका हुआ, आप ऊपर उठ जाते हैं।

जैसे आप एक कार्क की गेंद ले लें; और उसके चारों तरफ मिट्टी लपेटकर उसे पानी में डाल दें। वह जमीन में बैठ जाएगी नदी की, क्योंकि वह मिट्टी जो चारों तरफ लगी है, उस कार्क को भी डुबा लेगी। लेकिन जैसे-जैसे मिट्टी पिघलने लगेगी और पानी में बहने लगेगी, कार्क उठने लगेगा ऊपर की तरफ। कोई उठा नहीं रहा है। मिट्टी बिल्कुल बह जाएगी पिघलकर, हटकर; कार्क

जमीन से ऊपर उठ आएगा। पानी की सतह पर तैरने लगेगा। किसी ने उठाया नहीं है। नियम! कार्क जैसे ही बोझिल नहीं रहा, उठ जाता है।

उद्धार का अर्थ है कि आप जैसे ही अपने को छोड़ देते हैं, उठ जाते हैं, खींच लिए जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, मैं उसको, जो सगुण रूप से, साकार को, एक परमात्मा की धारणा को, उसके चरणों में अपने को समर्पित करता है; अनन्य भाव से निरंतर, सतत उसका स्मरण करता है; वही उसकी धुन, वही उसका स्वर श्वास-श्वास में समा जाता है; रोएं-रोएं में उसी की पुलक हो जाती है; उठता, बैठता, सोता, सब भांति उसी को याद करता है; उसके ही प्रेम में लीन रहने लगता है; ऐसी जो तल्लीनता बन जाती है, उसका मैं शीघ्र ही उद्धार कर लेता हूं।

शीघ्र इसलिए कि वह पहले चरण पर ही बोझ से हट जाता है। ज्ञानी का भी उद्धार होता है, लेकिन आखिरी चरण पर।

तो जिन्हें यात्रा-पथ में अपने को बचा रखना हो और अंत में ही छोड़ना हो, वे निराकार की तरफ जा सकते हैं। जिनको पहले ही चरण पर सब छोड़ देना हो, भक्ति उनके लिए है। निश्चित ही, जो पहले चरण पर छोड़ता है, पहले चरण पर ही मिलन शुरू हो जाता है। जितनी देर आप अपने को खींचते हैं, उतनी ही देर होती है। जितने जल्दी अपने को छोड़ देते हैं, उतने ही जल्दी घटना घट जाती है।

यह आत्मिक उत्थान आपके अहंकार के बोझ से ही रुका है। यह ख्याल कि मैं हूं, इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और जब तक मैं हूं, तब तक परमात्मा नहीं हो सकता। और जब मैं मिट जाऊं, तभी वह हो सकता है।

जीसस ने कहा है, जो अपने को मिटाएंगे, केवल वे ही बचेंगे। जो अपने को बचाएंगे, वे व्यर्थ ही अपने को मिटा रहे हैं।

हम अपने को बचा रहे हैं। कुछ है भी नहीं बचाने योग्य, फिर भी बचा रहे हैं!

कुछ ही दिन पहले एक युवक मेरे पास आया था--अमेरिका से लंबी यात्रा करके, न मालूम किन-किन आश्रमों, किन-किन साधना-स्थलों पर भटककर। मुझसे कहने लगा, गुरु की तलाश है। लेकिन अब तक गुरु मिला नहीं। मैंने उससे पूछा, किस भांति गुरु की तलाश करोगे? क्या उपाय है तुम्हारे पास? कैसे तुम जांचोगे? क्या है कसौटी? क्या है तराजू? कोई निकष है, जिससे तुम कसोगे कि कौन गुरु है? तुम्हें पता है कि गुरु का क्या अर्थ है? क्या लक्षण है?

उसने कहा, नहीं; यह तो मुझे कुछ पता नहीं है। तो फिर, मैंने कहा, तुम भटकते रहो पूरी जमीन पर। गुरु कैसे मिलेगा? क्योंकि गुरु से मिलना हो, तो तुम्हें अपने को छोड़ना पड़ेगा। तुमने कहीं किसी के पास कभी अपने को छोड़ा? उसने कहा कि कहीं छोडूं अपने को और कोई नुकसान हो जाए! और आदमी गलत हो, और सच्चा न हो, और धोखेबाज हो। और गुरु तो हो, लेकिन मिथ्या हो, बनावटी हो, और कुछ नुकसान हो जाए!

तो मैंने उससे पूछा, तेरे पास खोने को क्या है, यह पहले तू मुझे बता दे! नुकसान क्या होगा? तेरे पास कुछ खोने को है जो कोई तुझसे छीन लेगा? तेरी हालत ऐसी है कि नंगा आदमी नहाता नहीं, क्योंकि वह सोचता है, नहाऊंगा, तो कपड़े कहां सुखाऊंगा! कि जिसके पास कुछ भी नहीं है, रातभर पहरा देता है कि कहीं चोरी न हो जाए! तू बचा क्या रहा है? तेरे पास है क्या? और जब तेरे पास कुछ है ही नहीं, तो क्या हानि तुझे पहुंचाई जा सकती है? क्या तुझसे छीना जा सकता है? तो तू हिम्मत कर और अपने को बचाना छोड़। क्योंकि जिस दिन तू अपने को बचाना छोड़ेगा, उसी दिन गुरु से मिलने की संभावना शुरू होती है। उसी दिन से तू योग्य बनना शुरू हुआ।

और फिर अगर गलत गुरु भी मिल जाएगा, तो डर क्या है? जो अपने को छोड़ता है पूरी तरह, उससे गलत गुरु भी डरता है। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर कोई अपने को ठीक से छोड़ दे गलत गुरु के पास भी, तो गलत गुरु के लिए भी ठीक होने का रास्ता खुल सकता है। क्योंकि गुरु तो केवल बहाना है। जब कोई अपने को पूरी तरह छोड़ता है, तो वह गुरु को परमात्मा मानकर ही छोड़ता है। और किसी का इतनी सरलता से, इतनी पूर्णता से किसी को परमात्मा मान लेना, अगर वह आदमी गलत हो--अगर सही हो, तब तो इसका रूपांतरण होगा ही--अगर वह गलत हो, तो उसका भी रूपांतरण होगा।

और छोड़ तो रहा है परमात्मा के लिए। वह गुरु तो प्रतीक है। उसके पीछे जो छिपा हुआ है परमात्मा, उसके लिए छोड़ा जा रहा है।

लेकिन हम डरे हुए हैं कि कहीं कुछ खो न जाए! जिनके पास कुछ भी नहीं है!

कार्ल मार्क्स ने सारी दुनिया के मजदूरों से कहा है कि सारी दुनिया के सर्वहारा मजदूरो, इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास सिवाय हथकड़ियां खोने को कुछ भी नहीं है। यूनाइट आल दि प्रोलिटेरियंस, बिकाज यू हैव नथिंग टु लूज, एक्सेप्ट योर चेन्स। सिवाय जंजीरों के खोने को है भी क्या! तो डरते किसलिए हो? इकट्ठे हो जाओ!

पता नहीं, यह बात कहां तक सच है, क्योंकि ऐसा गरीब आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके पास कुछ न हो। गरीब के पास भी कुछ होता है; कम होता है। भिखमंगे के पास भी कुछ होता है; कम होता है। बिल्कुल ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसके पास कुछ भी न हो। सांसारिक अर्थों में तो कुछ न कुछ होता है।

लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में यह बात बिल्कुल सही है कि आपके पास कुछ भी नहीं है; आप सर्वहारा हो। फिर भी डरे हुए हो कि कहीं कुछ चूक न जाए। परमात्मा के पास भी सम्हलकर जाते हो कि कहीं कुछ छिन न जाए!

जो इतना डरा है, भक्ति का मार्ग उस के लिए नहीं है। भक्ति के मार्ग पर तो ट्रस्ट, भरोसा, उसका भरोसा, कि ठीक है। वह मिटाएगा, तो इसमें ही कुछ लाभ होगा। कि वह छीनेगा, तो इसमें कुछ बात होगी, रहस्य होगा। कि वह नुकसान करेगा, तो उस नुकसान से जरूर कुछ लाभ होने वाला होगा। इस भांति जो अपने को छोड़ने को तैयार है, तो उद्धार इसी क्षण हो सकता है।

भक्त के लिए एक क्षण भी रुकने की जरूरत नहीं है। ज्ञानी के लिए जन्मों-जन्मों तक भी रुकना पड़ सकता है, क्योंकि अपनी ही चेष्टा से लगा है। भक्त तो अभी एवेलेबल हो जाता है, इसी वक्त--अगर वह छोड़ दे। और तत्काल नियम काम करना शुरू कर देता है। कृष्ण उसे खींच लेते हैं।

कृष्ण शब्द बड़ा प्यारा है। इसका मतलब होता है अट्रैक्शन, इसका मतलब होता है मैग्नेट। कृष्ण का मतलब होता है, जो खींचता है, आकृष्ट करता है।

कृष्ण एक नियम हैं। अगर आप अपने को छोड़ने को तैयार हैं, तो नियम आपको खींच लेता है। आप जगत के आत्यंतिक चुंबक के निकट पहुंच जाते हैं। आप खींच लिए जाते हैं--दुख से, पीड़ा से, अंधकार से। लेकिन स्वयं को गंवाने की हिम्मत चाहिए। स्वयं को मिटाने का साहस चाहिए। स्वयं को गला देने की तैयारी चाहिए।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे न। जब तक कीर्तन पूरा न हो जाए, बैठें। और कीर्तन में सम्मिलित हों।

गीता दर्शन, भाग छह

गीता दर्शन अध्याय 12

चौथा प्रवचन

संदेह की आग

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।। 7।।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। 8।।

हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा और मेरे में ही बुद्धि को लगा; इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात मेरे को ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

पहले थोड़े से प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, शंका, अश्रद्धा, अनास्था, विद्रोह आदि से भरा हुआ व्यक्ति कैसे प्रार्थना करे, भक्ति करे, समर्पण करे?

जिसके मन में यह सवाल उठ आया हो कि कैसे समर्पण करूं, कैसे प्रार्थना करूं, वह व्यक्ति, और वह व्यक्ति जो अश्रद्धा से भरा हो, अनास्था से भरा हो, शंका से भरा हो, एक ही नहीं हो सकते। क्योंकि जो शंका से भरा है, प्रार्थना का सवाल ही उसके मन में नहीं उठेगा। जो शंका से भरा है, समर्पण का विचार ही उसके मन में नहीं उठेगा।

और जिसके मन में समर्पण और प्रार्थना का विचार उठना शुरू हो गया है, उसे समझ लेना चाहिए, उसकी शंकाएं बीमारियां बन गई हैं; उसकी अश्रद्धा उसे खा रही है। अपनी अनास्था से वह खुद ही सड़ रहा है। उसकी अनास्था उसके लिए कैंसर है।

और जब तक यह दिखाई न पड़ जाए, तब तक प्रार्थना की यात्रा नहीं हो सकती। कोई दूसरा आपको यात्रा नहीं करा सकेगा। आपको स्वयं ही जानना पड़ेगा कि अश्रद्धा की पीड़ा क्या है। अनास्था का कांटा आपको बुरी तरह चुभेगा, तो ही आप उसे निकालने के लिए तैयार होंगे।

इसलिए मुझसे अगर पूछते हैं कि क्या करें, अश्रद्धा से भरे हैं? तो पूरी तरह अश्रद्धा से भर जाएं। कुनकुनी अश्रद्धा ठीक नहीं है। अश्रद्धा से पूरी तरह भर जाएं, ताकि उससे ऊब सकें और छुटकारा हो सके।

आम हालत ऐसी है कि न तो आप श्रद्धा से भरे हैं, और न अश्रद्धा से। आप दोनों की खिचड़ी हैं। वही तकलीफ है। उसकी वजह से न तो आप अश्रद्धा की यात्रा कर सकते हैं, क्योंकि जब अश्रद्धा पर जाना चाहते हैं, तो श्रद्धा पैर को रोक लेती है; और उसकी वजह से श्रद्धा की यात्रा भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जब श्रद्धा की तरफ जाना चाहते हैं, तो अश्रद्धा पैर रोक लेती है।

कृपा करें और पूरी तरह अश्रद्धालु हो जाएं। डरें मत। भय भी न खाएं। तर्क ही करना है, तो पूरा कर लें। कुतर्क की सीमा का भी कुछ संकोच न करें। पूरी तरह उतर जाएं अपनी अश्रद्धा में। वह पूरी तरह उतर जाना ही आपको नरक में ले जाएगा। और नरक में जाए बिना नरक से कोई छुटकारा नहीं है।

और दूसरों की बातें मत सुनें। क्योंकि अधकचरी दूसरों की बातें कोई सहायता न पहुंचाएंगी। जब आप नरक की तरफ जा रहे हों, तो स्वर्ग की बात ही भूल जाएं और पूरी तरह नरक में उतर जाएं। एक बार अनुभव कर लें ठीक से, तो फिर किसी को कहना नहीं पड़ेगा कि श्रद्धा का अमृत क्या है।

अश्रद्धा का जहर जिसने देख लिया, वह अपने आप श्रद्धा के अमृत की तरफ चलना शुरू हो जाता है।

इस युग की तकलीफ अश्रद्धा नहीं है। इस युग की तकलीफ अधूरापन है। आपका आधा हिस्सा श्रद्धा से भरा है और आधा अश्रद्धा से भरा है। कोई भी यात्रा पूरी नहीं हो पाती।

और ध्यान रहे, बुराई से भी छूटने का कोई उपाय नहीं है, जब तक बुराई पूरी न हो जाए। और पाप के भी बाहर उठने का कोई रास्ता नहीं है, जब तक कि पाप में आप पूरी तरह डूब न जाएं।

जिसमें हम पूरी तरह डूबते हैं, जिसका हमें पूरा अनुभव हो जाता है, फिर किसी को कहने की जरूरत नहीं होती कि आप इसके बाहर निकल आएं। आप स्वयं ही निकलना शुरू कर देते हैं।

अभी तो बहुत लोग आपको समझाते हैं कि श्रद्धा करो और श्रद्धा नहीं आती। क्योंकि जिसने अश्रद्धा ही ठीक से नहीं की है, उसे श्रद्धा कैसे आ सकेगी! श्रद्धा अश्रद्धा के बाद का चरण है।

आस्तिक वही हो सकता है, जो नास्तिक हो चुका है। नास्तिकता के पहले सारी आस्तिकता बचकानी, दो कौड़ी की होती है। जिसने नास्तिकता नहीं जानी, वह आस्तिक हो कैसे सकेगा? जिसने अभी इनकार करना नहीं सीखा, उसके हां का भी कोई मूल्य नहीं है। उसके स्वीकार में भी कोई जान नहीं है। उसका स्वीकार नपुंसक है, इम्पोटेंट है।

कोई डर नहीं है। न कहें, परमात्मा नाराज नहीं होता है। लेकिन पूरे हृदय से न कहें, तो न भी उबारने वाली हो जाती है। और जिसने पूरी तरह से न कहकर देख लिया और देख लिया कि न कहने का दुख और संताप क्या है और झेल ली चिंता और आग की लपटें, वह आज नहीं कल हां कहने की तरफ बढ़ेगा। उसकी हां में बल होगा। उसकी हां में उसके जीवन का अनुभव होगा।

तो मुझसे यह मत पूछें कि आपका चित्त अश्रद्धा से भरा है, तो आप प्रार्थना की तरफ कैसे जाएं। पूरी तरह अश्रद्धा से भर जाएं। आपके लिए प्रार्थना की तरफ जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न बचेगा।

मगर अधूरे-अधूरे होना अच्छा नहीं है। परमात्मा की प्रार्थना भी कर रहे हैं और भीतर संदेह भी है, तो प्रार्थना क्यों कर रहे हैं? बंद करें यह प्रार्थना। अभी संदेह ही कर लें ठीक से। और जब संदेह न बचे, तब प्रार्थना शुरू करें। कुछ भी पूरा करना सीखना चाहिए। क्योंकि पूरा करते ही व्यक्तित्व अखंड हो जाता है। आप टुकड़े-टुकड़े में नहीं होते।

आपके भीतर पच्चीस तरह के आदमी हैं। आप एक भीड़ हैं। एक मन का हिस्सा कुछ कहता है। दूसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है। तीसरा मन का हिस्सा कुछ कहता है।

एक देवी मेरे पास आज सुबह ही आई थीं। कहती हैं कि बीस साल से ईश्वर की खोज कर रही हैं। मैंने उनसे कहा कि कल सुबह चौपाटी पर ध्यान के लिए पहुंच जाएं छः बजे। उन्होंने कहा, छः बजे आना तो बहुत मुश्किल होगा।

बीस साल से ईश्वर की खोज चल रही है! सुबह छः बजे चौपाटी पर आना मुश्किल है! यह ईश्वर की खोज है! इस तरह के अधूरे लोग कहीं भी नहीं पहुंचते। ये त्रिशंकु की भांति अटके रह जाते हैं। संकोच भी नहीं होता, सोचने में ख्याल भी नहीं आता कि मैं कह रही हूं कि बीस साल से मैं ईश्वर को खोज रही हूं और सुबह छः बजे पहुंचना मुश्किल है! यह खोज कितनी कीमत की है?

बीस जन्म भी इस तरह खोजो, तो कहीं पहुंचना नहीं हो पाएगा। यह खोज है ही नहीं। यह सिर्फ धोखा है। ईश्वर से कुछ लेना-देना भी मालूम नहीं पड़ता है। यह भी ऐसे रास्ते चलते पूछ लिया है। यह भी ऐसे ही कि कहीं ईश्वर पड़ा हुआ मिल जाए और फुर्सत का समय हो; तो जैसा ताश खेल लेते

हैं, ऐसा उसको भी उठा लेंगे। ईश्वर अगर कहीं ऐसे ही मिलता हो--बिना कुछ खर्च किए, बिना कुछ श्रम किए, बिना कुछ छोड़े, बिना कुछ मेहनत उठाए--तो सोचेंगे; ले लेंगे।

इस भाव से जो चलता है, उसकी श्रद्धा भी झूठी है, उसकी अश्रद्धा भी झूठी है। उसकी खोज भी झूठी है। उसका व्यक्तित्व ही पूरा झूठा है।

सच्चे होना सीखें। सच्चे होने के लिए धार्मिक होना जरूरी नहीं है। नास्तिक भी सच्चा हो सकता है। फिर नास्तिकता पूरी होनी चाहिए; तो आप सच्चे नास्तिक हो गए। और मैंने अब तक नहीं सुना है कि कोई सच्चा नास्तिक आस्तिक बनने से बच गया हो। सच्चे नास्तिक को आस्तिक बनना ही पड़ता है। क्योंकि जिसकी नास्तिकता तक में सच्चाई है, वह कितने देर तक अपने को आस्तिक बनाने से रोक सकता है!

लेकिन तुम्हारी आस्तिकता तक झूठी है। और जिसकी आस्तिकता तक झूठी है, वह कैसे परमात्मा तक पहुंच सकता है! धार्मिकता भी झूठी है, ऊपर-ऊपर है। जरा-सा खोदो, तो हर आदमी के भीतर नास्तिक मिल जाता है। बस, ऊपर से एक पर्त है आस्तिकता की; स्किन डीप। चमड़ी जरा-सी खरोंच दो, नास्तिक बाहर आ जाता है। और वह जो भीतर है, वही असली है। वह जो ऊपर-ऊपर है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो पहले तो ईमानदारी से इस बात की खोज करें कि अश्रद्धा है, शंका है, तो ठीक है। मेरे चित्त में जो स्वाभाविक है, मैं उसका पीछा करूंगा। तो मैं शंका पूरी करूंगा जब तक कि हार न जाऊं। और जब तक कि मेरी शंका टूट न जाए, तब तक जहां मेरी शंका मुझे ले जाएगी, मैं जाऊंगा।

थोड़ी हिम्मत करें और शंका के रास्ते पर चलें। ज्यादा आगे आप नहीं जा सकेंगे। क्योंकि शंका का रास्ता कहां ले जाएगा? शंका का अंतिम परिणाम क्या होगा? संदेह करके कहां पहुंचेंगे? क्या मिलेगा?

आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि संदेह से उसे आनंद मिला हो। और आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि शंका से उसे जीवन की परम अनुभूति का अनुभव हुआ हो। आज तक किसी ने भी नहीं कहा कि इनकार करके उसने अस्तित्व की गहराई में प्रवेश कर लिया हो।

आज नहीं कल आपको दिखाई पड़ने लगेगा कि आप अस्तित्व के बाहर-बाहर परिधि पर भटक रहे हैं। आज नहीं कल आपको खुद ही दिखाई पड़ने लगेगा, आपकी शंका ईश्वर को नहीं मिटा रही है, आपको मिटा रही है। और आपका संदेह धर्म के खिलाफ नहीं है, आपके ही खिलाफ है; आपके ही पैरों को और जड़ों को काटे डाल रहा है।

जब तक आपको यह दिखाई न पड़ जाए कि आपकी शंका आपकी ही शत्रु है, तब तक, तब तक आप प्रार्थना की यात्रा पर नहीं निकल सकते हैं। मेरे कहने से आप नहीं निकलेंगे। किसी के कहने से आप नहीं निकलेंगे। जब आपकी शंका आपको आग की तरह जलाने लगेगी, तभी!

बुद्ध के पास एक आदमी आया था। और वह आदमी कहने लगा, आपकी बातें सुनते हैं, अच्छा लगता है; लेकिन संसार से छूटने का मन नहीं होता अभी। और आप कहते हैं कि संसार दुख है, यह भी समझ में आता है; लेकिन फिर भी अभी संसार में रस है। तो बुद्ध ने कहा, मेरे कहने से कि संसार दुख है, तुझे कैसे समझ में आ सकेगा! और जिस दिन तुझे समझ में आ जाएगा कि संसार में दुख है, तू मेरे लिए रुकेगा! तू छलांग लगाकर बाहर हो जाएगा।

बुद्ध ने कहा, तू ऐसा समझ कि तेरे घर में आग लग गई है। तो तू मुझसे पूछने आएगा कि घर से बाहर निकलूं, न निकलूं? तू किस से पूछने रुकेगा? अगर मैं तेरे घर में मेहमान भी हूं, तो भी तू मुझे भीतर ही छोड़कर बाहर निकल जाएगा। पहले तू बाहर निकल जाएगा।

लेकिन तुझे खुद ही अनुभव होना चाहिए कि घर में आग लगी है। तुझे तो लग रहा हो कि घर के चारों तरफ फूल खिले हैं और आनंद की वर्षा हो

रही है, और मैं तुझसे कह रहा हूं कि तेरे घर में आग लगी है, तो तू मुझसे कहता है, आपकी बात समझ में आती है। क्योंकि तेरी इतनी हिम्मत भी नहीं है कहने की कि आपकी बात मुझे समझ में नहीं आती। तेरा यह भी साहस नहीं है कहने का कि तुम झूठ बोल रहे हो। यह घर तो बड़े आनंद से भरा है। आग कहां लगी है! तू बिल्कुल कमजोर है। तो तू कहता है कि बात समझ में आती है कि घर में आग लगी है, फिर भी छोड़ने का मन नहीं होता।

ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर घर में आग लगी है, तो छोड़ने का मन होगा ही। छोड़ने का मन कहना भी ठीक नहीं है। घर में आग लगी हो, तो आपको पता भी नहीं चलता कि आग लगी है। जब आप घर के बाहर हो जाते हैं, ठीक से सांस लेते हैं, तब पता चलता है कि घर में आग लगी है। घर में आग लगी है, यह सोचने के लिए भी समय नहीं गंवाते। भागकर पहले बाहर हो जाते हैं।

जिस दिन आपकी शंका, संदेह, अनास्था आपके लिए अग्नि की लपटें बन जाएगी, उसी दिन आप प्रार्थना की तरफ दौड़ेंगे, उसके पहले नहीं।

इसलिए मैं आपसे कहता हूं, किसी की सुनकर प्रार्थना के रास्ते पर मत चले जाना। किसी की मानकर कि संसार दुख है, परमात्मा को मत खोजने लगना। अपनी ही मानना, क्योंकि आपके अतिरिक्त आप जब भी किसी और की मान लेंगे, आप झूठे हो जाएंगे।

तो अच्छा है; बुरा कुछ भी नहीं है। आपकी अश्रद्धा भी आपके जीवन में निखार लाएगी। आपकी नास्तिकता भी आपको तैयार करेगी आस्तिकता के लिए। आपका संदेह भी आपको छांटेगा, काटेगा, तराशेगा, और आप योग्य बनेंगे कि परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर सकें।

मेरी दृष्टि में परमात्मा के विपरीत कुछ भी नहीं है। हो भी नहीं सकता। इसलिए अगर कोई कहता है कि नास्तिक परमात्मा के विरोध में है, तो वह नासमझ है। उसे आस्तिकता की कोई खबर नहीं है।

नास्तिक भी तैयारी कर रहा है आस्तिक होने की। वह भी कह रहा है कि नहीं है परमात्मा। उसके भीतर भी खोज शुरू हो गई है। नहीं तो क्या प्रयोजन है यह कहने से भी कि परमात्मा नहीं है? क्या प्रयोजन है सोचने से कि वह है या नहीं? क्या जरूरत है कि अश्रद्धा करके हम अपनी शक्ति नष्ट करें?

वह जो अश्रद्धा कर रहा है, वह असल में श्रद्धा की तलाश में है। वह चाहता है कि हो। लेकिन उसे मालूम नहीं पड़ता कि है। इसलिए इनकार करता है। और इनकार करता है, तो पीड़ा अनुभव करता है।

इनकार पूरा होने दें। यह धार तलवार की गहरे उतर जाए और हृदय को काट डाले पूरा। आप प्रार्थना के रास्ते पर आ जाएंगे। प्रार्थना के रास्ते पर आना स्वाभाविक हो जाता है।

और जल्दी मत करें। बिना अनुभव के कहीं से भी निकल जाना खतरनाक है। बिना अनुभव के कहीं से भी भाग जाना खतरा है। क्योंकि जहां से भी आप बिना अनुभव के भाग जाते हैं, वह जगह आपका पीछा करेगी। और आपके मन में रस तो बना ही रहेगा। और आपके मन की दौड़ तो उसी तरफ होती ही रहेगी। आप भाग सकते हैं कहीं से भी। लेकिन जिससे आप बिना अनुभव के भाग रहे हैं, वह आपका पीछा करेगा; वह छाया की तरह आपके साथ होगा।

तो मेरी दृष्टि भागने की नहीं है। मेरी दृष्टि तो किसी चीज के अनुभव की परिपक्वता में उतर जाने की है। जब पका हुआ पत्ता वृक्ष से गिरता है, तो उसका सौंदर्य अनूठा है। न तो वृक्ष को पता चलता कि पत्ता कब गिर गया; न वृक्ष में कोई घाव होता है पत्ते के गिरने से; न कोई पीड़ा होती। न पत्ते को पता चलता है कि मैंने वृक्ष को कब छोड़ दिया। हवा का एक हलका-सा झोंका काफी हो जाता है।

लेकिन कच्चे पत्ते को तोड़ना, वृक्ष में भी घाव छूटता है और कच्चे पत्ते की भी नस-नस तन जाती है। कच्चे पत्ते का टूटना दुर्घटना है। पके पत्ते का गिरना एक सुखद, शांत, नैसर्गिक बात है।

आप जहां से भी हटें, पके पत्ते होकर हटना। कच्चे पत्ते की तरह मत टूट जाना, नहीं तो घाव रह जाएंगे। और पके पत्ते का जो सौंदर्य है, उससे आप वंचित रह जाएंगे।

डरें मत। अभी संदेह है, तो संदेह को पकने दें। और किसी की मत सुनना। क्योंकि चारों तरफ सुनाने वाले लोग बहुत हैं। चारों तरफ आपको सुधारने वाले लोग बहुत हैं। उनसे सावधान रहना। चारों तरफ आपको बनाने वाले लोग बहुत हैं, उनसे जरा बचना। अपनी जीवन-धारा को मौका देना कि वह स्वभावतः जो भी चाहती है, उसके पूरे अनुभव से गुजर जाए। नहीं तो बड़ा उपद्रव होता है। पूरे इतिहास में यह उपद्रव हुआ है।

हमारी तकलीफ क्या है? जिस मित्र ने पूछा है, संदेह मन में होगा, प्रार्थना का लोभ भी नहीं छूटता। क्योंकि हमने देखा है उन लोगों को, जो प्रार्थना में आनंदित हैं। तकलीफ कहां खड़ी होती है?

मीरा नाच रही है। आपको लगता है कि काश, मैं भी ऐसा नाच सकता! यह नाच संक्रामक है। यह आपके हृदय में भी पुलक जगाता है; प्रलोभन पैदा करता है। यह मीरा की मुस्कुराहट, यह उसकी आंखों की ज्योति, यह उसके चेहरे से बरसती हुई अमृत की धारा, यह आपको भी लगती है कि मेरे जीवन में भी हो।

लेकिन मीरा कहती है कि मैं कृष्ण को देखकर नाच रही हूं। भीतर संदेह खड़ा हो जाता है। कृष्ण आपको कहीं दिखाई नहीं पड़ते। मीरा पागल मालूम पड़ती है। यह कृष्ण पर भरोसा करना मुश्किल है।

मीरा जिसके लिए नाच रही है, उस पर भरोसा करना मुश्किल है; और मीरा के नाच से बचना भी मुश्किल है। इससे तकलीफ खड़ी होती है। लगता

है, काश, हम भी ऐसा नाच सकते! लेकिन जिस कारण मीरा नाच रही है, उसके लिए तर्कयुक्त प्रमाण नहीं मिलते। किस ईश्वर के लिए नाच रही है, वह ईश्वर कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हजार शंकाएं बुद्धि खड़ी करती है।

तो हम कहते हैं, कोई ईश्वर वगैरह नहीं है। तो फिर मीरा पागल है, दिमाग इसका खराब है, ऐसा कहकर अपने को समझा लेते हैं। फिर भी वह मीरा की धुन, वह नाच पीछा करता है। वह आपके सपनों में आपके साथ जाएगा। आप उठेंगे और बैठेंगे और लगेगा, कहीं मन का कोई कोना कहेगा, काश! मीरा का ईश्वर सच होता, तो हम भी नाच सकते थे।

नाचना आप चाहते हैं; आनंदित आप होना चाहते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसकी आनंद की आकांक्षा न हो। और संदेह से आनंद मिलता नहीं। अश्रद्धा से आनंद मिलता नहीं। अनास्था से आनंद मिलता नहीं। और आनंद की आकांक्षा है, और बुद्धि संदेह खड़े कर देती है। जहां आनंद मिल सकता है, वहां बुद्धि सवाल खड़ा कर देती है। और हृदय मांगता है आनंद। और बुद्धि आनंद दे नहीं सकती। इस दुविधा में प्राण उलझ जाते हैं।

तो आप भी नकली नाच नाच सकते हैं। आप भी मजीरा उठाकर नाच सकते हैं। लेकिन वह ऊपर-ऊपर होगा। क्योंकि मीरा के नाच में मीरा के पांव असली काम नहीं कर रहे हैं, मीरा की श्रद्धा असली काम कर रही है। मीरा से अच्छी नर्तकियां होंगी, जो ज्यादा अच्छा नाच लेंगी। लेकिन मीरा के नाच का गुण और है। कितनी ही बड़ी कोई नर्तकी और नर्तक हो, मीरा के नाच में जो बात है, वह उसके नाच में नहीं हो सकती। मीरा के पैर अनगढ़ होंगे। ताल न हो; लय न हो; संगीत का अनुभव न हो; लेकिन कुछ और है, जो संगीत से भी बड़ा है। और कुछ और है, जो व्यवस्था से भी बड़ा है। और कुछ इतना गहन उतर गया है भीतर कि उसके उतरने के कारण नाच हो रहा है। इस नाच के पीछे कुछ अलौकिक खड़ा है।

वह अलौकिक की श्रद्धा न हो, तो नाच तो आप भी सकते हैं, लेकिन आपकी आत्मा में आनंद पैदा नहीं होगा। नाच बाहर-बाहर रह जाएगा। आप भीतर खाली के खाली, रिक्त, उदास, वैसे के वैसे रह जाएंगे।

मीरा की श्रद्धा ही केंद्र है। आप संदेह के केंद्र पर नाच सकते हैं, लेकिन मीरा के सुख की अनुभूति आपको नहीं होगी।

और बड़ी कठिनाई इससे खड़ी होती है कि जाग्रत पुरुषों का भी बाहर का जीवन ही हमें दिखाई पड़ता है। उनके भीतर का तो हमें कुछ पता नहीं है।

हम महावीर को देखते हैं। उनकी शांत मुद्रा दिखाई पड़ती है। उनकी आंखों का मौन दिखाई पड़ता है। मन प्रलोभन से भर जाता है। काश, ऐसा हमें भी हो सके! फिर महावीर की बात सुनते हैं, उस पर श्रद्धा नहीं आती।

बुद्ध को देखते हैं। उनके आस-पास जो हवा बहती है शांति की, वह हमें भी छूती है। उनके पास पहुंचकर जो स्नान हो जाता है, कि पोर-पोर जैसे किसी ताजगी से भर गए, वह हमें भी प्रतीत होता है। लेकिन बुद्ध की बात सुनकर श्रद्धा नहीं आती।

बुद्ध के भीतर जो है, उसका हमें पता नहीं। बाहर जो है, हमें पता है। तो एक बड़ी उलटी प्रक्रिया शुरू होती है कि हम सोचते हैं, जिस भांति बुद्ध बैठे हैं, हम भी बैठ जाएं, तो शायद जो भीतर घटा है, वह हमें भी घट जाएगा। तो महावीर जैसा चलते हैं, हम भी चलने लगें। महावीर ने वस्त्र छोड़ दिए, तो हम भी वस्त्र छोड़ दें।

तो अनेक लोग महावीर को देखकर नग्न खड़े हो गए हैं! वे सिर्फ नंगे हैं; दिगंबर नहीं हैं। क्योंकि महावीर की नग्नता के पहले भीतर एक आकाश उत्पन्न हो गया है। उस आकाश में वस्त्र छोड़ दिए हैं। इनके भीतर वह आकाश उत्पन्न नहीं हुआ। इन्होंने सिर्फ वस्त्र छोड़ दिए हैं। इनकी देह भर नंगी हो गई है।

महावीर चींटी भी हो, तो पांव फूंक-फूंककर रखते हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें डर है कि कहीं चींटी मर न जाए। उनके पीछे चलने वाला भी पांव फूंक-फूंककर रखने लगता है कि कहीं चींटी मर न जाए। लेकिन इसे अपनी ही आत्मा का पता नहीं है, इसे चींटी की आत्मा का पता कैसे हो सकता है! इसे अपने ही भीतर के जीवन का कोई अनुभव नहीं है, चींटी के जीवन का अनुभव कैसे हो सकता है! इसकी अहिंसा थोथी, उथली, ऊपर-ऊपर हो जाती है। ऊपर से आचरण हो जाता है। भीतर का अंतस वैसा का वैसा बना रहता है।

भीतर अंतस बदले, तो ही बाहर जो क्रांति घटित होती है; वह वास्तविक होती है। लेकिन यह भूल होती रही है।

मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर हुआ, बालशेम। थोड़े से जमीन पर हुए कीमती फकीरों में एक। बालशेम से किसी ने पूछा कि तुम जब भी बोलते हो, तो तुम ऐसी चोट करने वाली मौजू कहानी कह देते हो। कहां से खोज लेते हो ये कहानियां? तो बालशेम ने कहा, एक कहानी से समझाता हूं।

और बालशेम ने कहा कि एक सेनापति एक छोटे गांव से गुजरता था। बड़ा कुशल निशानेबाज था। उस जमाने में उस जैसा निशानेबाज कोई भी न था। सौ में सौ निशाने उसके लगते थे। अचानक उसने देखा गांव से गुजरते वक्त अपने घोड़े पर, एक बगीचे की चारदीवारी पर, लकड़ी की चारदीवारी, फेंसिंग, उसमें कम से कम डेढ़ सौ गोली के निशान हैं। और हर निशान चाक के एक गोल घेरे के ठीक बीच केंद्र पर है। डेढ़ सौ!

सेनापति चकित हो गया। इतना बड़ा निशानेबाज इस छोटे गांव में कहां छिपा है! और जो चाक का गोल घेरा है, ठीक उसके केंद्र पर गोली का निशान है। गोली लकड़ी को आर-पार करके निकल गई है। और एकाध मामला नहीं है; डेढ़ सौ निशान हैं!

उसे लगा कि कोई मुझ से भी बड़ा निशानेबाज पैदा हो गया। पास से निकलते एक राहगीर से उसने पूछा कि भाई, यह कौन आदमी है? किसने ये निशान लगाए हैं? किसने ये गोलियां चलाई हैं? इसकी मुझे कुछ खबर दो। मैं इसके दर्शन करना चाहूंगा!

उस ग्रामीण ने कहा कि ज्यादा चिंता मत करो। गांव का जो चमार है, उसका लड़का है। जरा दिमाग उसका खराब है। नट-बोल्ट थोड़े ढीले हैं!

उस सेनापति ने कहा, मुझे उसके दिमाग की फिक्र नहीं है। जो आदमी डेढ़ सौ निशाने लगा सकता है इस अचूक ढंग से, वर्तुल के ठीक मध्य में, उसके दिमाग की मुझे चिंता नहीं। वह महानतम निशानेबाज है। मैं उसके दर्शन करना चाहता हूं।

उस ग्रामीण ने कहा कि थोड़ा समझ लो पहले। वह गोली पहले मार देता है, चाक का निशान बाद में बनाता है।

करीब-करीब धर्म के इतिहास में ऐसा हुआ है। हम सब गोली पहले मार रहे हैं, चाक का निशान बाद में बना रहे हैं! लेकिन राहगीर को तो यही दिखाई पड़ेगा कि गजब हो गया। जिसे पता नहीं, उसे तो दिखाई पड़ेगा कि गजब हो गया।

जिंदगी बाहर से भीतर की तरफ उलटी नहीं चलती है। जिंदगी की धारा भीतर से बाहर की तरफ है; वही सम्यक धारा है। गंगोत्री भीतर है। गंगा बहती है सागर की तरफ। हम सागर से गंगोत्री की तरफ बहाने की कोशिश में लगे रहते हैं।

अगर आपके भीतर संदेह है, तो घबड़ाएं मत। संदेह की गंगा को सागर तक पहुंचने दें। और रुकावट मत डालें। आज नहीं कल आप पाएंगे कि संदेह ही आपको समर्पण तक ले आया। इससे उलटा कभी भी नहीं हुआ है।

सभी संदेह करने वाले, सम्यक संदेह करने वाले, राइट डाउट करने वाले लोग समर्पण पर पहुंच गए हैं। अश्रद्धा ही श्रद्धा का द्वार बन जाती है। मगर पूरी अश्रद्धा। अनास्था ईमानदार, प्रामाणिक अनास्था आस्था की जननी है।

थोपें मत। ऊपर-ऊपर से थोपें मत। ऊपर की चिंता मत करें। मत पूछें कि मन अनास्था से भरा है, तो कैसे प्रार्थना करें। अनास्था से पूरा भर जाने दें। और मैं आपको कहता हूं कि प्रार्थना का बीज आपके भीतर छिपा है। अनास्था को पूरी तरह बढ़ने दें। यह अनास्था ही उस बीज के लिए भूमि बन जाएगी। प्रार्थना का अंकुर आपके भीतर पैदा होगा।

नास्तिक होने से मत डरें अगर आस्तिक होना है। और अगर किसी दिन ईश्वर के चरणों में पूरा सिर रखकर हां भर देनी है, तो अभी जब तक आपको लगे कि वह नहीं है, तब तक ईमानदारी से इनकार करना। जल्दी हां मत भरना। जल्दी भरी गई हां गर्भपात है, एबार्शन है। उससे जो बच्चा पैदा होता है, वह मुर्दा पैदा होता है।

अनास्था के गर्भ को कम से कम नौ महीने तक तो चलने दें। और अगर यह गर्भ पूरा हो गया हो, तो फिर मुझसे पूछने की जरूरत न रह जाएगी। अगर आप सच में ही ऊब गए हों अपनी अश्रद्धा से, तो आप उसे छोड़ ही देंगे, फेंक ही देंगे। न ऊबे हों, तो थोड़ी प्रतीक्षा करें। थोड़ा ऊबें।

डर इसलिए नहीं है मुझे, क्योंकि अश्रद्धा से कभी आनंद मिलता नहीं, इसलिए आप तृप्त नहीं हो सकते। आज नहीं कल आप उसे फेंक ही देंगे। श्रद्धा से ही आनंद मिलता है। और बिना आनंद के कोई व्यक्ति कब तक जीवित रह सकता है?

धर्म को पृथ्वी से मिटाया नहीं जा सकता तब तक, जब तक कि आदमी आनंद की मांग कर रहा है। जिस दिन आदमी आनंद के बिना जीने को राजी हो जाएगा, उस दिन धर्म को मिटाया जा सकता है, उसके पहले नहीं।

धर्म परमात्मा की खोज नहीं है, आनंद की खोज है। और जिन्हें आनंद खोजना है, उन्हें परमात्मा खोजना पड़ता है। और आनंद की खोज हमारे भीतर का नैसर्गिक स्वर है।

इससे ही संबंधित एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है, ईश्वर की ओर श्रद्धा बढ़ाना बहुत कठिन लगता है, क्योंकि उसके अस्तित्व को मानने का कोई ठोस सबूत या कारण नहीं मिलता!

इससे ही संबंधित एक प्रश्न और एक मित्र ने पूछा है, ईश्वर की ओर श्रद्धा बढ़ाना बहुत कठिन लगता है, क्योंकि उसके अस्तित्व को मानने का कोई ठोस सबूत या कारण नहीं मिलता!

ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना बहुत ही कठिन मालूम पड़ता है। बढ़ाइए ही क्यों? ऐसी झंझट करनी क्यों! कौन-सी अड़चन आ रही है आपको कि ईश्वर की श्रद्धा बढ़ानी है! मत बढ़ाइए। छोड़िए ईश्वर की बात ही। बेचैनी क्या है? क्यों चाहते हैं कि ईश्वर की श्रद्धा बढ़े?

तो अपने भीतर तलाश करिए। बिना ईश्वर के आपको शांति नहीं मालूम पड़ती। बिना ईश्वर के चैन नहीं मालूम पड़ता। इसलिए श्रद्धा बढ़ाना चाहते हैं। पहले अपने भीतर की इस बात को समझिए कि मेरे भीतर कोई बेचैनी है, जिसकी वजह से ईश्वर की श्रद्धा बढ़ाना चाहता हूं। और अगर बेचैनी ठीक से समझ में आ जाए, तो आप फिर प्रमाण नहीं पूछेंगे, सबूत नहीं पूछेंगे।

प्यासा आदमी यह नहीं पूछता कि पानी है या नहीं! प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहां है? प्यास न लगी हो, तो आदमी पूछता है, पता नहीं, पानी है या नहीं! प्यासे आदमी ने अब तक नहीं पूछा है कि पानी है या नहीं! प्यासा आदमी पूछता है, पानी कहां है? कैसे खोजूं?

ईश्वर के प्रमाण की जरूरत क्या है? आपके भीतर ईश्वर के बिना बेचैनी है, यह काफी प्यास है। और यही उसका प्रमाण है। इस बात के फर्क को समझ लें।

एक आदमी पूछता है, ईश्वर है या नहीं, इसका प्रमाण चाहिए। मैं प्रमाण नहीं देता। मैं कहता हूं, छोड़ो फिक्र। जिसका प्रमाण नहीं, उसकी फिक्र क्यों करनी? ईश्वर को जाने दो; उसकी बला। तुम अपने रास्ते पर जाओ। ईश्वर तुमसे कभी कहने आता नहीं कि मेरा प्रमाण तुमने अभी तक पता लगाया कि नहीं। तो झंझट में पड़ते क्यों हो? क्यों अपने मन को खराब करते हो? शांति से सोओ। क्यों नींद खराब करनी! अनिद्रा मोल लेनी! क्या बात है?

चैन नहीं है भीतर। कहीं भीतर कोई एक प्यास है, जो बिना ईश्वर के नहीं बुझ सकती। बिना ईश्वर के प्यास नहीं बुझ सकती। वह प्यास भीतर से धक्के देती है कि पता लगाओ ईश्वर का।

अपनी प्यास को समझो; ईश्वर को छोड़ो। पानी उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी प्यास महत्वपूर्ण है। पानी तो गौण है। अगर प्यास न हो, तो पानी का करिएगा भी क्या! और अगर प्यास हो, तो हम पानी खोज ही लेंगे।

एक नियम जीवन का है कि उसी चीज की प्यास होती है, जो है। जो नहीं है, उसकी प्यास भी नहीं होती। जो नहीं है, उसका कोई अनुभव भी नहीं होता; प्यास का भी अनुभव नहीं होता। उसके अभाव का भी अनुभव नहीं होता।

आदमी की प्यास ही प्रमाण है। इसका मतलब यह हुआ कि आपको सब कुछ मिल जाए, तो भी तृप्ति न होगी, जब तक कि आपको ईश्वर न मिल जाए। अगर आपको तृप्ति हो सकती है बिना उसके, तो आप तृप्त हो जाएं; ईश्वर को कोई एतराज नहीं है। आप मजे से तृप्त हो जाएं। वह आपकी तृप्ति में बाधा डालने नहीं आएगा।

लेकिन आप तृप्त हो नहीं सकते। यह कठिनाई ईश्वर की नहीं है। यह आदमी के होने के ढंग की कठिनाई है। आदमी इस ढंग का है कि बिना ईश्वर के तृप्त नहीं हो सकता। और इसलिए जब हम आदमी से ईश्वर छीन लेते हैं, तो वह न मालूम किस-किस तरह के ईश्वर गढ़ लेता है।

रूस में एक बड़ा प्रयोग हुआ कि कम्युनिस्टों ने ईश्वर छीन लिया। तो आपको पता है क्या हुआ? जैसे ही ईश्वर छिन गया, लोगों ने राज्य को ईश्वर मानना शुरू कर दिया। चर्च से जीसस की मूर्ति तो हट गई, लेकिन क्रेमलिन के चौराहे पर लेनिन की लाश रख दी गई। लोग उसको ही फूल चढ़ाने लगे; उसके ही चरणों में सिर रखने लगे!

यह बड़े मजे की बात है। लेनिन तो नास्तिक था। मानता नहीं है कि मृत्यु के बाद कुछ भी बचता है। लेकिन उसकी लाश रखी है क्रेमलिन में। लाखों लोग प्रतिवर्ष चरण छू रहे हैं। किसके चरण छू रहे हैं? जो नहीं है अब उसके? और जो अब नहीं है, वह कभी भी नहीं था। इस मुर्दे को क्यों छू रहे हैं?

गहरी प्यास है। कहीं किसी चरण में सिर रखने की आकांक्षा है। किसी अज्ञात के सामने झुकने का मन है। तृप्ति न होगी; तो लेनिन के ही चरणों में सिर रख रहे हैं। ईश्वर को हमने छीन लिया है। तो हमने फिर कुछ भी गढ़ लिया है। लेकिन आदमी बिना श्रद्धा के नहीं रह पाता। ईश्वर की श्रद्धा छीनो, राज्य की श्रद्धा करेगा, नेता की श्रद्धा करेगा। यहां तक कि अभिनेता की श्रद्धा करेगा! कुछ चाहिए, जो उसके श्रद्धा का आश्रय बन जाए। कुछ चाहिए, जिसके लिए वह समझे कि जी सकता हूं।

लेकिन आदमी बिना ईश्वर के नहीं रह सकता। आदमी ईश्वर के बिना बेचैन ही रहता है। एक परम आश्रय चाहिए।

तो मैं आपसे नहीं कहता कि कोई प्रमाण है उसका। कोई प्रमाण नहीं है आपकी प्यास के अतिरिक्त। अपनी प्यास को मिटा लो, आपने ईश्वर को

मिटा दिया। ईश्वर को मिटाने की फिक्र मत करो। वह आपके वश की बात नहीं है। अपनी प्यास को मिटा लो; ईश्वर मिट गया।

और आपकी प्यास के मिटाने का कोई उपाय नहीं है। आप ही हो वह प्यास। अगर प्यास आपसे कोई अलग चीज होती, तो हम उसे मिटा भी लेते। आप ही हो प्यास। आदमी परमात्मा की एक प्यास है। आदमी अलग होता, तो प्यास को हम काट देते। कोई सर्जरी कर लेते। और आदमी को अलग कर लेते। आदमी खुद ही प्यास है।

नीत्शे ने कहा है, जिस दिन आदमी अपने से ऊपर जाना बंद कर देगा, उस दिन मर जाएगा। यह अपने से ऊपर जाने की एक प्यास है आदमी के भीतर।

जैसे बीज टूटता है और आकाश की तरफ उठना शुरू हो जाता है। वह आकाश की तरफ उठने की आकांक्षा ही वृक्ष बन जाती है। आदमी भी निरंतर अपने से ऊपर उठकर आकाश की तरफ जाना चाहता है। वह आकाश की तरफ जाने की आकांक्षा ही ईश्वर है।

आप तब तक बीज ही रहेंगे, जब तक ईश्वर का वृक्ष आप में न लग जाए। जब तक आप ईश्वर न हो जाएं, तब तक कोई संतोष संभव नहीं है। ईश्वर से कम में कोई तृप्ति नहीं है।

यही प्रमाण है कि आपके भीतर प्यास है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। कोई गणित नहीं है ईश्वर का, कि सिद्ध किया जा सके कि दो और दो चार होते हैं, ऐसा कोई गणित हो। कोई तर्क नहीं है, जिससे साबित किया जा सके कि वह है।

और अच्छा है कि कोई तर्क नहीं है। क्योंकि तर्कों से जो सिद्ध होता है, वह और कुछ भी हो--गणित की थ्योरम हो, विज्ञान का फार्मूला हो--धर्म की अनुभूति नहीं होगी। और अच्छा है कि तर्क से वह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि तर्क से कोई चीज कितनी ही सिद्ध हो जाए, उससे प्यास नहीं बुझती।

समझें। प्यास तो पानी से बुझती है। लेकिन एच टू ओ का फार्मूला कागज पर लिखा रखा हो, बिल्कुल गणित से व्यवस्थित, उससे नहीं बुझती। एच टू ओ के फार्मूले को आप पी जाना घोलकर, प्यास नहीं बुझेगी। प्यास तो पानी से बुझेगी। क्योंकि प्यास एक अनुभव मांगती है; एक ठंडक मांगती है, जो आपके प्राणों में उतर जाए। एक रस मांगती है, जो आपके भीतर जाए और आपको रूपांतरित कर दे। फार्मूला तो किताब पर होता है।

ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है। और जितनी किताबें ईश्वर के लिए लिखी गई हैं, वे केवल इशारे हैं; उनमें ईश्वर का कोई फार्मूला नहीं है।

सब शास्त्र हार गए हैं; अब तक उसे कह नहीं पाए हैं। कभी उसे कहा भी नहीं जा सकेगा। लेकिन शास्त्रों ने कोशिश की है। कोशिश इशारे की तरह है; मील के पत्थर की तरह है कि और आगे, और आगे। हिम्मत देने के लिए है, कि बढ़े जाओ; दो कदम और; ज्यादा दूर नहीं है; पास ही है।

हिम्मत से कोई बढ़ा चला जाए, तो एक दिन उस अनुभव में उतर जाता है। लेकिन प्रमाण मत खोजना आप। प्रमाण कोई है नहीं। और या फिर हर चीज प्रमाण है। फिर ऐसी कौन-सी चीज है, जो उसका प्रमाण नहीं है? फिर चारों तरफ आंखें डालें। आकाश में सूरज का उगना, और रात आकाश में तारों का भर जाना, और एक बीज का फूटकर वृक्ष बनना, और एक झरने का सागर की तरफ बहना, और एक पक्षी के कंठ से गीत का निकलना। एक बच्चे की आंखों में झांकें; और एक काई जमे हुए पत्थर को देखें; और सागर के किनारे की रेत को, और सागर की लहरों को--तो फिर हर जगह उसका प्रमाण है। फिर वही वही है।

एक दफा ख्याल में आ जाए कि वह है, तो फिर सब जगह उसका प्रमाण है। और जब तक उसका ख्याल न आए, तब तक उसका कोई प्रमाण नहीं है।

और कहां आएगा उसका ख्याल? पहले सागर में नहीं आएगा। पहले फूलों में नहीं आएगा। पहले आकाश के तारों में नहीं आएगा। पहले तो अपने

में ही लाना पड़ेगा उसका ख्याल। क्योंकि मैं ही अपने निकटतम हूं। अगर वहां भी उसकी भनक मुझे नहीं सुनाई पड़ती, तो पत्थर में कैसे सुनाई पड़ेगी!

अब लोग मजेदार हैं। लोग मूर्तियों के सामने सिर टेक रहे हैं। वे मूर्तियां उनके लिए भगवान कैसे हो पाएंगी? वे कितना ही मानें कि भगवान हैं, वे हो न पाएंगी। क्योंकि जिनको अपने भीतर के चैतन्य में भी भगवत्ता का कोई स्पर्श नहीं हुआ, उनको पत्थर में छिपी भगवत्ता बहुत दूर है। वहां भी है; पर फासला बहुत ज्यादा है। और पत्थर की भाषा अलग है; आदमी की भाषा अलग है।

आदमी में भगवान नहीं दिखता और पत्थर में दिखता है! आदमी--जिसको हम समझ सकते हैं, छू सकते हैं, जिसके भीतर उतर सकते हैं, जिसकी चेतना का संस्पर्श हो सकता है--उसमें दिखाई नहीं पड़ता, और पत्थर में दिखाई पड़ जाता है! तो आप अपने को धोखा दे रहे होंगे। क्योंकि पत्थर तो बहुत दूर है; अभी आदमी में तो दिखाई पड़े, तो फिर किसी दिन पत्थर में भी दिखाई पड़ सकता है। और फिर तो ऐसा हो जाता है कि ऐसी कोई चीज नहीं दिखाई पड़ती, जिसमें वह न हो। फिर तो सारा जगत उसका प्रमाण है।

तो दो बातें हैं, या तो उसका कोई प्रमाण नहीं है। अगर आप किताबों, शब्दों, तर्कों में सोचें, उसका कोई प्रमाण नहीं है। और या अगर अस्तित्व में सोचें, तो सभी कुछ उसका प्रमाण है। फिर ऐसी कोई चीज नहीं है, जहां उसका हस्ताक्षर न हो। रेत के दाने-दाने पर उसका हस्ताक्षर है। लेकिन वह है अस्तित्व की भाषा, एक्झिस्टेंस की।

आपको अपने ही अस्तित्व का कोई पता नहीं है। आप ऐसे जीए चले जाते हैं कि पक्का करना मुश्किल है कि आप जी रहे हैं, कि मर गए हैं, कि...
।

मैंने सुना है कि अनेक लोगों को तो तभी पता चलता है कि वे जिंदा थे, जब वे मर जाते हैं। मरकर उनको पता चलता है कि अरे! यह क्या हो गया? मर गए!

जिंदगी का ही हमें कोई ख्याल नहीं आ पाता। अस्तित्व भीतर बहा चला जाता है और हम चीजें बटोरने में, फर्नीचर इकट्ठा करने में, मकान बनाने में, क्षुद्र में व्यस्त होते हैं। वह क्षुद्र की व्यस्तता इतनी ज्यादा है कि यह भीतर की जो धारा बह रही है, इसका हमें अवसर ही नहीं मिलता, मौका ही नहीं मिलता है।

मेरे पास लोग आते हैं। एक बूढ़े मित्र, एक कालेज के प्रिंसिपल हैं, वे कुछ दिन पहले मेरे पास आए। कम से कम साठ के करीब उम्र हो गई होगी। वे कहने लगे कि अब तो ऊब गया संसार से। अब तो मेरा मन परमात्मा की तरफ लगा दें। तो मैंने उनसे कहा, अगर सच में ही ऊब गए हों, तो एक छलांग लें। अब सारा जीवन ध्यानपूर्ण करने में लग जाएं।

उन्होंने कहा, सारा जीवन! घंटा, आधा घंटा रोज दे सकता हूं। क्योंकि अभी नौकरी जारी रखी है। वैसे तो कोई जरूरत नहीं है अब नौकरी की। सब है। लेकिन वक्त-बेवक्त कब जरूरत पड़ जाए, इसलिए! ऐसे तो सब लड़के कामकाज में लग गए हैं। लड़कियों की शादी हो गई है। लेकिन प्रतिष्ठा है, बंगला है, कार है, तो उस सब को तो सम्हालना पड़ता है। तो ऐसी कुछ तरकीब बताएं कि आधा घंटा रोज ध्यान कर लूं। और दो साल बाद, पक्का आपको विश्वास दिलाता हूं कि दो साल बाद पूरा जीवन ध्यान में लगा दूंगा।

मैंने कहा, माना। मुझे तो आप विश्वास दिलाते हैं, दो साल बाद। दो साल बाद आप बचेंगे, इसका कोई पक्का भरोसा है! और कहते हैं कि संसार से मन ऊब गया, लेकिन बंगले की प्रतिष्ठा है, वह नहीं छोड़ी जाती! और कहते हैं कि अब संसार में कुछ लेना-देना नहीं रहा, लेकिन नौकरी को खींचे जा रहे हैं जबरदस्ती!

क्या है, कठिनाई क्या है आदमी की? और दो साल बाद टाल रहे हैं, कि दो साल बाद। दो साल बाद भी पक्का मानिए, अगर वे बचे रहे, तो वे और आगे सरका देंगे बात को। क्योंकि यह सरकाने वाला मन दो साल बाद भी तो साथ ही रहेगा। यह पोस्टपोन करता जाता है। यह तब तक हटाता जाता है, जब तक मौत आकर इसको काट ही नहीं डालती। और कह देती है कि अब हटाने की कोई जगह न बची, समय समाप्त हो गया।

यह जो हमारी क्षुद्र में उलझी हुई चित्त की दशा है, इसके कारण उसका प्रमाण नहीं मिलता। क्षुद्र में जब चित्त लगा होगा, तो क्षुद्र का ही प्रमाण मिलता है।

क्षुद्र से थोड़ा हटें भीतर की तरफ, और विराट को थोड़ा मौका दें। उसकी आवाज आपको सुनाई पड़ सके, इसलिए थोड़ा चुप हों। अपनी आवाज थोड़ी बंद करें। क्योंकि उसकी आवाज बहुत धीमी है। और अपनी दौड़-धूप जरा रोकें और थोड़ा रुकें; ठहरें। क्योंकि ठहरेंगे, तो उसका पता चलेगा, जो भीतर सदा से ठहरा हुआ है। जब तक आप दौड़ रहे हैं, तब तक भीतर जो ठहरा हुआ है, उससे संबंध नहीं हो पाता। थोड़े रुक जाएं।

परमात्मा को खोजने के लिए कोई दौड़ने की जरूरत नहीं है। संसार खोजना हो, तो दौड़ना पड़ता है। परमात्मा को खोजना हो, तो रुकना पड़ता है। परमात्मा को खोजने के लिए कोई शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है। उसे खोजना हो, तो चुप और मौन होने की जरूरत है। तो प्रमाण मिलना शुरू हो जाएगा।

और कोई दूसरा आपको प्रमाण नहीं दे सकता। आप ही अपने को प्रमाण दे सकेंगे। अपनी प्यास को समझें और अपने भीतर झांकने की कला सीखें। प्रमाण बहुलता से है। उसी-उसी का प्रमाण है। लेकिन देखने वाली आंखें और सुनने वाले कान चाहिए।

जीसस ने बार-बार कहा है, अगर आंखें हों, तो देख लो; अगर कान हों, तो सुन लो। अगर समझ हो, तो समझ लो।

जिनसे कहा है, वे आप ही जैसे कान वाले थे, आंख वाले थे, समझ वाले थे। यह जीसस की बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। यह आंख वाले लोगों से ऐसा कहना कि आंख हो तो देख लो, कान हो तो सुन लो, समझ हो तो समझ लो, अपमानजनक मालूम पड़ता है। क्योंकि इतने अंधे, इतने बहरे, इतने बुद्धिहीन कहां खोजे होंगे! क्योंकि जिंदगीभर जीसस यही कहते हैं।

वे किन्हीं और आंखों की बात कर रहे हैं। इन आंखों से आप परमात्मा का प्रमाण न पा सकेंगे। इन आंखों से पदार्थ का ही प्रमाण मिलेगा। इन कानों से आप उसकी आवाज न सुन सकेंगे। इन कानों से तो आपको जगत का शोरगुल ही सुनाई पड़ेगा। इस बुद्धि से आप उसको न समझ पाएंगे। इस बुद्धि से तो आप हिसाब-किताब की दुनिया में ही, रुपए-पैसे की दुनिया में ही, बैंक बैलेंस को बढ़ा पाएंगे।

और भी एक आंख है। उसी आंख को कृष्ण श्रद्धा कह रहे हैं। उसी आंख को बुद्ध ध्यान कहते हैं। उसी आंख को मीरा कीर्तन कहती है, भजन कहती है, प्रार्थना कहती है।

एक और कान है--मौन का, चुप हो जाने का। जब बाहर की सब आवाजें छोड़ दी जाती हैं, तो भीतर की सतत ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

नाद भीतर बज रहा है, पर आप खाली नहीं हैं, आप उन्मुख नहीं हैं। आप उस नाद की तरफ बेमुख हैं, पीठ किए खड़े हैं। वहां सतत धीमी-धीमी चोट पड़ रही है। वहां कोई निरंतर तारों को छेड़ रहा है। और आप कहते हैं, प्रमाण कहां है?

हमारी हालत ऐसी है, मैंने सुना है कि एक संगीतज्ञ अपनी पत्नी के साथ एक चर्च के पास से गुजरता था। और सांझ को चर्च की घंटियां बज रही थीं। बड़ी प्यारी और मधुर थीं। और सांझ के सन्नाटे में, जब रास्ता सुनसान हो

गया था और चर्च के वृक्षों के पक्षी भी आकर शांति से सो गए थे, सांझ के उस सन्नाटे में उन घंटियों का बजना उस संगीतज्ञ के हृदय में लहरें लेने लगा।

उसने अपनी पत्नी से कहा--धीमे से कहा; संगीतज्ञ था, जोर से बोलने में उसे लगा होगा, हिंसा होगी; इतनी मधुर आवाज में बाधा पड़ेगी--उसने धीरे से कहा, सुनती हो; कितनी प्यारी आवाज है! घंटियां कितनी मधुर हैं!

उसकी पत्नी ने क्या कहा पता है! उसने कहा, ये चर्च के मूरख लोग घंटा बजाना बंद करें, तो तुम्हारी बात सुन सकूं कि तुम क्या कह रहे हो!

संगीतज्ञ ने दुबारा नहीं कहा होगा उससे; अब कुछ कहने का उपाय नहीं रहा। बाहर घंटा बज रहा है, उसमें शोरगुल भी सुनाई पड़ सकता है और संगीत भी। अगर संगीत को पकड़ने वाला हृदय है, तो संगीत सुनाई पड़ सकता है।

नहीं तो मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक शास्त्रीय संगीतज्ञ को सुनने चला गया था। थोड़ी ही देर में मुल्ला की पत्नी ने देखा कि मुल्ला बहुत बेचैन हो रहा है, करवट बदल रहा है अपनी कुर्सी पर। उसकी पत्नी ने कहा, तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो? उसके माथे पर पसीना भी बह रहा है।

उसने कहा कि मैं इसलिए परेशान हो रहा हूं, क्योंकि यह आदमी जैसी आवाजें कर रहा है, ऐसे ही अपना बकरा भी आवाजें करके मर गया था। इसकी हालत खराब है। यह सन्निपात में मालूम होता है। अब यह जल्दी ही मरने वाला है। अपन यहां से निकल भागें। कहीं हम भी न फंसें इस उपद्रव में कि यह कैसे मर गया! और यह मरेगा पक्का। यही हालत अपने बकरे की हो गई थी, जब वह इस तरह की आवाजें कर-करके मरा था।

संगीत की समझ कान से नहीं होती। कान से तो सुनाई पड़ रहा है उसे भी। संगीत की समझ भीतर एक हारमनी, एक समस्वरता पैदा हो, तो पकड़ में आती है।

ईश्वर तो विराटतम समस्वरता है; वह तो महानतम संगीत है। उसके योग्य हृदय बनाना होगा, तो उसका प्रमाण मिलेगा। उसका प्रमाण खोजकर आप सोचते हैं कि हम अपने को बदलेंगे, तो आपको जन्मों-जन्मों तक उसकी कोई खबर न मिलेगी। आप अपने को बदलें, तो उसका प्रमाण आपको आज भी मिल सकता है। जन्मों तक रुकने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन हम उलटे हैं। हम कहते हैं, पहले प्रमाण चाहिए, तभी तो हम उसको खोजने निकलेंगे! और उसकी खोज ही शुरू तब होती है, जब आप अपने हृदय को उसके प्रमाण को पाने योग्य बनाते हैं। यह अड़चन है।

अगर आपकी तैयारी हो, कि बिना इसकी फिक्र किए कि वह है या नहीं, हम अपने हृदय को शांत करने को तैयार हैं। और हर्ज क्या हो जाएगा? अगर वह न भी हुआ और आपका हृदय शांत हो गया, तो क्या हर्ज हो जाएगा? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और आपका हृदय प्रेम से भर गया, तो नुकसान क्या है? फायदा ही होगा। और अगर वह न भी हुआ और आप मौन हो गए और ध्यान में उतर गए, तो क्या खो देंगे आप? कुछ पा ही लेंगे।

लेकिन जो भी उस ध्यान में गए हैं, जो भी उस मौन में गए हैं, उन्होंने तत्क्षण कहा कि मिल गया प्रमाण उसका। वह है। लेकिन वे भी हमें प्रमाण नहीं दिला सकते। उनको ही प्रमाण मिला है।

धर्म की सभी अभिव्यक्तियां निजी और वैयक्तिक हैं। और धर्म के सभी गवाह निजी और वैयक्तिक हैं। वे दूसरे के लिए गवाही नहीं दे सकते हैं।

मैं अपने लिए गवाही दे सकता हूं कि मिल गया। पर मेरी गवाही आपके लिए क्या मतलब की होगी? आप फिर भी कहेंगे, प्रमाण? तो फिर मैं आपसे भी कहूंगा, स्वाद लेना पड़ेगा, चखना पड़ेगा।

तो तैयार हों चखने के लिए, स्वाद लेने के लिए। लेकिन अगर आप कहें कि जब तक हम मानें न कि वह है, तब तक हम चखें कैसे? स्वाद तो हम

पीछे लेंगे, पहले पक्का प्रमाण हो जाए कि वह है। तो फिर आपको रुकना पड़ेगा। फिर किसी के वश के बाहर हैं आप। फिर आप इंपासिबल हैं, असंभव हैं। फिर आपके साथ कुछ किया नहीं जा सकता।

तो रुकें। धीरे-धीरे थक जाएंगे अपने से किसी दिन, तो शायद आप राजी हो जाएं कि ठीक; चखेंगे पहले, प्रमाण बाद में खोज लेंगे। और जो चखने को राजी हो जाता है, उसे प्रमाण मिल जाता है।

आखिरी प्रश्न। आपने कहा है कि दो विपरीत मार्ग हैं, ध्यान और प्रेम; बुद्धि या भाव। तो बताएं कि ध्यान-साधना और प्रेम-साधना में क्या फर्क है? क्या ध्यानी व्यक्ति समाधि के पहले प्रेमपूर्ण नहीं होता?

ध्यान और प्रार्थना में बहुत फर्क है; भाषाकोश में चाहे फर्क न भी मिले। जो लोग प्रयोग करते हैं, उनके लिए बहुत फर्क है। दोनों की प्रक्रियाएं विपरीत हैं। परिणाम जब आता है, तो फर्क नहीं रह जाता। लेकिन मार्ग पर बहुत फर्क है।

ऐसा समझें कि आप एक बड़ा वर्तुल बनाएं, एक सर्किल बनाएं। और वर्तुल का एक केंद्र हो, और वर्तुल की परिधि से आप लकीरें खींचें केंद्र की तरफ। तो परिधि से जब आप दो लकीरें केंद्र की तरफ खींचेंगे, तो दोनों में फासला होगा। फिर जैसे-जैसे वे केंद्र के करीब पहुंचने लगेंगी, फासला कम होता जाएगा। और जब वे बिल्कुल केंद्र पर पहुंचेंगी, तो फासला समाप्त हो जाएगा। एक ही बिंदु पर दोनों मिल जाएंगी। परिधि पर फासला होगा; केंद्र पर फासला समाप्त हो जाएगा।

सभी मार्ग संसार की परिधि से परमात्मा के केंद्र की तरफ जाते हैं। मार्गों में बड़ा फर्क है। विपरीतता भी हो सकती है। लेकिन केंद्र पर पहुंचकर सारी विपरीतता खो जाती है, और वे एक हो जाते हैं।

प्रेम के मार्ग का अर्थ है, दूसरा महत्वपूर्ण है मुझ से, पहली बात। मुझे अपने को समाप्त करना है और दूसरे को बढ़ाना है। वह दूसरा कोई भी हो। वह क्राइस्ट हों, कृष्ण हों। कोई भी प्रतीक हो। गुरु हो, कोई धारणा हो, कोई भी भाव हो। दूसरा महत्वपूर्ण है; मैं महत्वपूर्ण नहीं हूं। मुझे अपने को छांटना है और दूसरे को बड़ा करना है।

और एक ऐसी जगह आ जाना है, जहां मैं बिल्कुल शून्य हो जाऊं और वह दूसरा ही सिर्फ शेष रह जाए। मुझे मेरी कोई खबर न रहे। मैं मिट जाऊं। मैं बचूं न। मैं ऐसा पुंछ जाऊं, जैसे कहीं था ही नहीं। जैसे पानी पर खींची लकीर मिट जाती है, ऐसे मैं मिट जाऊं; और दूसरा रह जाए। और दूसरा ही रह जाए। बस, दूसरे का ही मुझे पता हो। दूसरे की ही प्रतीति मुझे हो कि वह है, और मैं न रहूं। तू बचे और मैं खो जाए। यह तो प्रेम की प्रक्रिया है। प्रार्थना का यही रूप है।

ध्यान की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी है। ध्यान की प्रक्रिया है कि सारा जगत खो जाए और मैं ही बचूं। सब खो जाए मेरे चित्त से। जिन्हें मैं प्रेम करता हूं, वे भूल जाएं। जिन्हें मैंने चाहा है, वे भूल जाएं। ईश्वर भी मेरे ख्याल में न रह जाए। दूसरा न बचे। दूसरे का कोई बोध ही न बचे। दि अदर, वह जो दूसरा है, उसको मैं पोंछ डालूं, बिल्कुल समाप्त कर दूं। वह रहे ही न। बस, एक मैं ही रह जाऊं, अकेला। कोई विचार न हो; कोई भाव न हो; कोई विषय न हो। कुछ भी न बचे। खाली, अकेला मैं बचूं; सारा संसार खो जाए। यह ध्यान की प्रक्रिया है।

तू बिल्कुल मिट जाए और शुद्ध मैं बचे--यह ध्यान है। मैं बिल्कुल मिट जाऊं, शुद्ध तू बचे--यह प्रेम है। ये बिल्कुल उलटे चलते हैं। इसलिए रास्ता बिल्कुल अलग-अलग है।

इसलिए ध्यानी मजाक उड़ाएगा प्रेमी की, कि क्या पागलपन में पड़ा है! दूसरे को छोड़, क्योंकि दूसरा बंधन है। और प्रेमी मजाक उड़ाएगा ध्यानी

की, कि क्या कर रहे हो! खुद को बचा रहे हो? यह खुद का बचाना ही तो उपद्रव है। खुद को मिटाना है। यह मैं ही तो रोग है। और तुम इसी को बचा रहे हो! इसको समर्पित कर दो। तू के चरणों में डाल दो।

तो प्रेमी और ध्यानी मार्ग पर जब होते हैं, तब एक-दूसरे को समझ भी नहीं पाते। एक-दूसरे को गलत ही समझेंगे। क्योंकि उलटे जा रहे हो! इससे तो और भटक जाओगे। लेकिन जब दोनों पहुंच जाते हैं बिंदु पर, तो बड़ी अदभुत घटना घटती है।

वह अदभुत घटना यह है कि चाहे मैं तू को मिटाकर चलूं और मैं को बचाऊं--ध्यान का मार्ग; या मैं मैं को मिटाऊं और तू को बचाऊं--प्रार्थना का मार्ग; जिस क्षण मैं मिट जाता है, उस क्षण तू नहीं बच सकता। और जिस क्षण तू मिट जाता है, उस दिन मैं नहीं बच सकता। क्योंकि दोनों साथ-साथ बचते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। यह आखिरी बिंदु की बात है।

जब मैं अपने मैं को मिटाता चला जाता हूं और सिर्फ तू ही बचता है, तो ध्यान रहे, मुझे उस तू का पता तभी तक होगा, जब तक मुझे सूक्ष्म में मेरा भी पता चल रहा है। नहीं तो तू का पता नहीं होगा। तू कहिएगा कैसे उसे? किसके खिलाफ? किसके विरोध में? अगर सफेद लकीर दिखाई पड़ती है, तो काली पृष्ठभूमि चाहिए।

अगर मैं बिल्कुल ही मिट गया हूं, तो तू कैसे बचेगा? थोड़ा मुझे बचना चाहिए, थोड़ा; तो मुझे तू का पता चलेगा। मैं होना चाहिए। मैं को ही तो पता चलेगा कि तू है। तो मैं को भुला सकता हूं, लेकिन मिट नहीं सकता। अगर मैं बिल्कुल मिट जाऊंगा, जिस क्षण मेरा मैं बिल्कुल तिरोहित हो जाएगा, उसी क्षण तू भी खो जाएगा। एक बचेगा, जो न मैं है और न तू।

और ठीक ऐसा ही घटेगा ध्यान के मार्ग पर। जब मैं बिल्कुल अकेला मैं बचूंगा, तब भी मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं हूं? मेरे होने का बोध भी दूसरे

के बोध के कारण होता है। दूसरा चाहिए परिधि पर, तभी मुझे पता लगता है कि मैं हूं। और जब दूसरा बिल्कुल खो गया, पूरा संसार खो गया, तो मैं भी नहीं बच सकता। मैं भी उस संसार का एक हिस्सा था। मैं भी उसी संसार के साथ खो जाऊंगा। जैसे ही तू पूरा मिट जाता है, मैं भी तिरोहित हो जाता हूं। और जो बचता है, वह न मैं है, न तू है।

ये मार्ग विपरीत हैं। इन मार्गों से जहां पहुंचा जाता है, वह एक ही है। और अब आप समझ सकते हैं कि दोनों तरफ से पहुंचा जा सकता है। दो में से एक को मिटा दो, दूसरा अपने आप मिट जाता है। अब आप किसको चुनते हैं मिटाना, यह व्यक्ति की निजी रुझान पर है।

दो में से एक को मिटा देने की कला है। दूसरा मिटेगा, क्योंकि दूसरा उस एक का ही अनिवार्य हिस्सा था। अगर हम दुनिया से प्रकाश को मिटा दें, तो अंधेरा मिट जाएगा। लगेगा मुश्किल है। क्योंकि घर में आप दीया बुझा देते हैं, अंधेरा तो नहीं मिटता। अंधेरा और प्रकट हो जाता है। लेकिन दुनिया से नहीं मिट रहा है प्रकाश। अस्तित्व से अगर प्रकाश मिट जाए, तो अंधेरा मिट जाएगा। अगर अंधेरा मिट जाए, तो प्रकाश मिट जाएगा।

अगर दुनिया से हम मृत्यु को मिटा दें, तो जीवन उसी दिन मिट जाएगा। अभी हमको उलटा लगता है। अभी तो हमको लगता है कि मृत्यु जीवन को मिटाती है। आपको पता नहीं है फिर। वे एक ही चीज के दो हिस्से हैं। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन नहीं हो सकता। और जीवन न हो, तब तो मृत्यु होगी ही कैसे? एक चीज को मिटा दें, दूसरी तत्क्षण मिट जाएगी।

बहुत मजे की बात है। अगर हम दुनिया से दुख मिटा दें, तो सुख मिट जाएंगे। अगर हम दुनिया से शत्रु मिटा दें, तो मित्र मिट जाएंगे। अगर हम दुनिया से घृणा मिटा दें, तो प्रेम मिट जाएगा। आप दूसरे को नहीं बचा सकते हैं; वह अनिवार्य जोड़ा है। वे एक साथ ही होते हैं।

इसी का प्रयोग है ध्यान, इसी का प्रयोग है प्रार्थना। एक को मिटा दें, दूसरा अपने आप मिट जाएगा। उसकी फिक्र न करें। आप एक को मिटाने में लगें। फिर आपका रुझान है, जो आपको करना हो।

अपने को मिटाने की तैयारी हो, तो प्रार्थना में चल पड़ें। डर लगता हो अपने को मिटाने में, तो फिर समस्त को मिटा दें, जो भी पर है। भाव से, विचार से, सब को हटा दें। फिर अकेले रह जाएं। दोनों से ही पहुंच जाएंगे वहां, जहां दोनों नहीं बचते हैं।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा, और मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा अर्थात मेरे को ही प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मुझ में चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूपी समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूं!

जैसा मैंने कहा, प्रार्थना के मार्ग पर स्वयं को मिटाना शुरू करना होता है। तो वह जो तू है, प्रार्थना के साधक के लिए परमात्मा जो है, भगवान जो है, जो भी उसकी धारणा है परम सत्ता की, वह अपने को गलाता है, मिटाता है, उसके चरणों में समर्पित करता है। और जैसे-जैसे वह अपने को गलाता है, मिटाता है, वैसे-वैसे परमात्मा शक्तिशाली होता जाता है।

परमात्मा की शक्ति का अर्थ ही यह है कि मैं अब कोई बाधा नहीं डाल रहा हूं। मैं अपने को मिटा रहा हूं। अब मैं कोई अड़चन खड़ी नहीं कर रहा हूं। मैं अपने को हटा रहा हूं। मैं रास्ते से मिट रहा हूं। और मैं उसे कह रहा हूं कि अब तू जो भी करना चाहे, कर।

ऐसा समझें कि आप द्वार-दरवाजे बंद करके अपने घर में बैठे हैं। बाहर सूरज निकला है। सारा जगत आलोक से भरा है। और आप अपने द्वार-दरवाजे बंद करके घर के अंदर अंधेरे में बैठे हैं।

भक्त कहता है कि प्रकाश को तो भीतर लाना मुश्किल है। क्योंकि मेरी सामर्थ्य क्या? उस सूरज के प्रकाश को मैं भीतर लाऊंगा भी कैसे? कोई पोटलियां बांधकर उसे लाया भी नहीं जा सकता। और अगर आप पोटलियां बांधकर प्रकाश को भीतर लाएंगे, तो पोटलियां भीतर आ जाएंगी, प्रकाश बाहर ही रह जाएगा।

प्रकाश को लाने का, भक्त कहता है, एक ही उपाय है कि मैं अपने द्वार-दरवाजे खोल दूं। मैं कोई बाधा न डालूं। मैं किसी तरह का अवरोध खड़ा न करूं। तो प्रकाश तो अपने से आ जाएगा। प्रकाश तो आ ही रहा है। मेरे ही कारण रुका है।

भक्त की साधना का भाव यह है कि परमात्मा तो प्रतिपल उपलब्ध है। मेरे ही कारण रुका है। उसे खोजने नहीं जाना है। मैं ही उसको जगह-जगह से दीवालें बनाकर रोके हूं कि मेरे भीतर नहीं आ पाता। मैं ही इतना होशियार, इतना कुशल, इतना चालाक हूं कि मैं उसको भी सम्हाल-सम्हालकर भीतर आने देता हूं। जहां तक तो मैं उसे भीतर प्रवेश करने नहीं देता। चारों तरफ मैंने सुरक्षा की दीवाल बना रखी है। भक्त कहता है, इस दीवाल को गिरा देना है।

तो कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे ही कोई अपने चारों तरफ की अस्मिता की, अहंकार की दीवाल को गिरा देता है, मैं तत्क्षण उसका उद्धार करने में लग जाता हूं। क्योंकि प्रकाश भीतर प्रवेश करने लगता है। और उस प्रकाश की किरणें आकर आपको रूपांतरित करने लगती हैं। और जब आपको मिटने में मजा आ जाता है, तो फिर मिटने में दिक्कत नहीं रहती।

पहले ही चरण की कठिनाई है। हमें लगता है कि अगर मिट गए तो! कहीं मिट न जाएं! तो डरे हुए हैं। एक दफा आपको मिटने का जरा-सा भी मजा आ जाए, जरा-सा भी स्वाद आ जाए, तो आप कहेंगे कि अब, अब बचना नहीं है, अब मिटना है।

रामानुज के पास एक आदमी आया। और उस आदमी ने कहा कि तुम जैसे आनंद में डूब गए हो, मुझे भी डुबा दो। मुझे परमात्मा की बड़ी तलाश है। मुझे भी सिखाओ यह परमात्मा का प्रेम। तो रामानुज ने कहा कि तूने कभी किसी को प्रेम किया है? उस आदमी ने कहा कि मैं हमेशा परमात्मा की खोज करता रहा और प्रेम वगैरह से मैं हमेशा दूर रहा। इस झंझट में मैं पड़ा नहीं।

रामानुज ने कहा कि फिर भी तू सोच। थोड़ा-बहुत, किसी को भी कभी प्रेम किया हो--किसी मित्र को, किसी स्त्री को, किसी बच्चे को, किसी पशु को, पक्षी को--किसी को कभी थोड़ा प्रेम किया हो। उसने कहा कि मैं संसार की झंझट में नहीं पड़ता। मैं तो अपने को रोके हुए हूं। परमात्मा को प्रेम करना है। आप मुझे रास्ता बताओ। ये बातें आप क्यों पूछ रहे हो!

रामानुज ने तीसरी बार पूछा कि मैं तुझसे फिर पूछता हूं। थोड़ा खोज; अपने अतीत में कभी कोई थोड़ी-सी झलक भी प्रेम की तुझे मिली हो? उस आदमी ने कहा कि मैं आया हूं परमात्मा को खोजने और तुम कहां की बातों में मुझे लगा रहे हो! सीधी रस्ता बता दो। तो रामानुज ने कहा कि फिर मुश्किल है। क्योंकि अगर तूने थोड़ा-सा भी मिटना जाना होता किसी के भी प्रेम में, तो तुझे थोड़ा-सा रस होता। थोड़ा-सा ही मिटना जाना होता किसी के भी प्रेम में!

छोटा-सा भी प्रेम करो, तो थोड़ा तो मिटना ही पड़ता है। चाहे एक स्त्री से प्रेम हो, एक पुरुष से प्रेम हो। एक छोटे-से बच्चे से भी प्रेम करो, तो थोड़ा

तो मिटना ही होता है। अपने को थोड़ा तो खोना ही होता है, तभी तो वह दूसरा आप में प्रवेश कर पाता है। नहीं तो प्रवेश ही नहीं कर पाता।

तो रामानुज ने कहा कि फिर मेरे वश के बाहर है तू। तेरी बीमारी जरा कठिन है। अगर तूने किसी को प्रेम किया होता, तो मैं तुझे यह बड़े प्रेम का मार्ग भी बता देता। क्योंकि तुझे थोड़ा स्वाद होता, तो तू समझ जाता कि मिटने का मतलब क्या है। तू कहता है, कभी तूने किया ही नहीं, तो तुझे मिटने का कोई अनुभव नहीं है।

संसार के प्रेम भी परमात्मा के रास्ते पर सबक हैं। इसलिए संसार के प्रेम से भी घबड़ाना मत। उस प्रेम के भी अनुभव को ले लेना।

थोड़ा ही सही, क्षणभर को ही सही, क्षणभंगुर ही सही, थोड़ा-सा भी मिटने का अनुभव इतनी तो खबर दे जाएगा कि मिटने में दुख नहीं है, मिटने में सुख है। इतनी तो प्रतीति हो जाएगी कि मिटने में एक मजा है। क्षणभर सही; वह स्वाद क्षणभर रहा हो। एक बूंद ही मिली हो उसकी, लेकिन इतना तो समझ में आ जाएगा कि मिटने में घबड़ाने की जरूरत नहीं है। मिटने में रस है, सुख है। मिटने में मजा है, एक मस्ती है। तो फिर हम परमात्मा की तरफ मिटने की बात भी सीख सकते हैं।

परमात्मा की तरफ तो पूरा मिटना होगा, रत्ती-रत्ती। कुछ भी बचना नहीं होगा। लेकिन जैसे ही हम मिटना शुरू हो जाते हैं कि परमात्मा प्रवेश करने लगता है।

कृष्ण का यह कहना कि उन मेरे में चित्त को लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु-रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला हूं। इसमें दूसरा शब्द है मृत्यु-रूप संसार, जो सोचने जैसा है।

इस जगत में प्रेम के अतिरिक्त मृत्यु के बाहर का कोई अनुभव नहीं है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, उसने सिर्फ मृत्यु को ही जाना है। इसलिए एक

बड़ी मजेदार घटना घटती है कि प्रेमी मरने को तैयार होता है। लेकिन जिसने प्रेम नहीं किया, वह मरने से बहुत डरता है।

प्रेमी मरने को हमेशा तैयार है। प्रेमी मजे से मर सकता है। प्रेमी को मरने में जरा भी भय नहीं है। तो अगर मजनू को मरना हो, तो मर सकता है। फरिहाद को मरना हो, तो मर सकता है। कोई अड़चन नहीं है। क्या बात है? आखिर प्रेमी मरने से क्यों नहीं डरता?

जरूर प्रेमी ने कुछ जान लिया है, जो मृत्यु के आगे जाता है और मृत्यु जिसे नहीं मिटा पाती। इसलिए जिसके जीवन में प्रेम की अनुभूति हुई, वह मरने से नहीं डरेगा। मरने से तो वे ही डरते हैं, जिन्होंने जाना ही नहीं कि मृत्यु के आगे कुछ और भी है।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझ में पूरी तरह मिटने को तैयार है, मिटने को अर्थात मुझ में पूरी तरह मरने को तैयार है, उसे मैं मृत्यु-रूपी संसार से ऊपर उठा लेता हूं।

वह तो जैसे ही कोई मिटने को तैयार होता है प्रेम में, वैसे ही मृत्यु के पार उठ जाता है। प्रेम मृत्यु पर विजय है। आपका क्षुद्र प्रेम भी मृत्यु पर छोटी-सी विजय है। और अगर आपके जीवन में कोई भी प्रेम नहीं है, तो आप सिर्फ मरे हुए जी रहे हो। आपको जीवन का कोई अनुभव ही नहीं है।

इसीलिए जीवन इतना तड़पता है प्रेम को पाने के लिए। जीवन की यह तड़प मृत्यु के ऊपर कोई अनुभव पाने की आकांक्षा है। यह तड़प इतनी जोर से है, कि प्रेम! कहीं से प्रेम! किसी को मैं प्रेम कर सकूं और कोई मुझे प्रेम कर सके! यह असल में किसी भांति मैं जान सकूं--एक क्षण ही सही--जो मृत्यु के बाहर है, अतीत है, पार है, अतिक्रमण कर गया हो मृत्यु का।

तो प्रभु का प्रेम तो पूरा मिटा डालता है। प्रेमियों का प्रेम पूरा नहीं मिटाता है। क्षणभर को मिटाता है। कभी-कभी मिटाता है। क्षणभर बाद हम वापस अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। द्वार-दरवाजे मिटते नहीं। जैसे हवा का

तेज झोंका आता है, जरा-सा खुलते हैं और फिर बंद हो जाते हैं। जरा-सी झलक बाहर की रोशनी की, और द्वार फिर बंद हो जाते हैं। ऐसा साधारण प्रेम है।

लेकिन परमात्मा का प्रेम तो सारे द्वार-दरवाजे गिरा देने का है। सब जलाकर राख कर देने का है। अपने को उसमें ही खत्म कर देने का है। फिर जो अनुभूति होती है, वह अमृत की है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मृत्यु के पार उद्धार करने वाला हूं। इसलिए हे अर्जुन, तू मेरे में मन को लगा; मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मुझ में ही निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मुझ में मन को लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा। दो बातें कही हैं। मुझ में मन को लगा, मुझ में ही बुद्धि को लगा। लेकिन पहले कहा कि मुझ में मन को लगा।

हम सब कोशिश करते हैं, पहले बुद्धि को लगाने की। प्रमाण चाहिए, तर्क चाहिए, तब हम भाव करेंगे! यह नहीं हो सकता, यह उलटा है। पहले भाव। तो कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा। बुद्धि को भी लगा।

एक दफा मन लग जाए, तो फिर बुद्धि भी लग जाती है। तर्क तो हमेशा भाव का अनुसरण करता है। क्योंकि भाव गहरा है और तर्क तो उथला है। बच्चा भाव के साथ पैदा होता है; तर्क तो बाद में सीखता है। तर्क तो दूसरों से सीखता है; भाव तो अपना लाता है। बुद्धि तो उधार है; मन तो अपना है, निजी है। यह जो निजी भाव अगर एक दफा चल पड़े, तो फिर बुद्धि इसके पीछे चलती है।

इसलिए देखें, हमारे तर्कों में बड़ा फर्क होता है, अगर हमारे भाव में फर्क हो। अगर हमारा भाव अलग हो, तो वही स्थिति हमें दूसरा तर्क सुझाती है।

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर शराब पीकर और प्रार्थना कर रहा था। उसके गुरु को खबर दी गई। जिन्होंने खबर दी, वे शिकायत लाए थे, और उन्होंने कहा कि निकाल बाहर करो अपने इस शिष्य को। यह शराब पीकर प्रार्थना कर रहा है! और अगर लोग देख लेंगे कि प्रार्थना करने वाले लोग शराब पीते हैं, तो कैसी बदनामी न होगी!

गुरु सुनकर नाचने लगा। और उसने कहा कि धन्यवाद तेरा, कि मेरे शिष्य शराब भी पी लें, तो भी प्रार्थना करना नहीं भूलते हैं! और गजब हो जाएगा, अगर दुनिया यह जान लेगी कि अब शराबी भी प्रार्थना करने लगे हैं!

स्थिति एक थी। तर्क अलग हो गए। वे खबर लाए थे कि अलग करो इसको आश्रम से। और गुरु ने कहा कि मैं जाऊंगा और स्वागत से उसे वापस लाऊंगा कि तूने तो गजब कर दिया। हम तो बिना शराब पीए भी कभी-कभी प्रार्थना करना भूल जाते हैं। बिना शराब पीए कभी-कभी प्रार्थना करना भूल जाते हैं! तू तो हद कर दिया कि शराब पीए है, तो भी प्रार्थना करने गया है! तेरी याददाश्त, तेरा स्मरण शराब भी नहीं मिटा पाती!

स्थिति एक है, भाव अलग हैं, तो तर्क बदल जाते हैं। तर्क भाव के पीछे चलें, तो ही कोई परमात्मा की खोज में जा सकता है। अगर तर्क के पीछे आप भावों को घसीटेंगे, तो आपने बैलगाड़ी के पीछे बैल बांध रखे हैं। फिर आप कितनी ही कोशिश करें, बैलगाड़ी कहीं जा नहीं सकती। और अगर जाएगी भी, तो किसी गड्ढे में जाएगी।

सीधा करें व्यवस्था को। भाव से बहें, क्योंकि भाव स्वभाव है, निसर्ग है। बुद्धि को पीछे चलने दें। बुद्धि हिसाबी-किताबी है। अच्छा है; उसकी जरूरत है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा। पहले अपने भाव को मुझ से जोड़ दे। फिर कोई हर्जा नहीं तेरी बुद्धि का।

इसलिए ऐसा मत सोचना कि आस्तिक जो हैं, वे कोई तर्कहीन हैं। अतर्क्य हैं, तर्कहीन नहीं हैं। आस्तिक जो हैं, वे भी तर्क करते हैं, और खूब गहरा तर्क करते हैं। लेकिन भाव के ऊपर तर्क को नहीं रखते हैं। कोई तार्किकों की कमी नहीं है आस्तिकों के पास। लेकिन भाव पहले है। और जो उन्होंने भाव से जाना है, उसे ही वे तर्क की भाषा में कहते हैं।

अब कोई शंकर से बड़ा तार्किक खोजना आसान थोड़े ही है। लेकिन शंकर का तर्क है भाव से बंधा। भाव पहले घट गया है। और अब तर्क केवल उस भाव को प्रस्थापित करने के लिए, उस भाव को समझाने के लिए, उस भाव को पुष्ट करने के लिए है।

जब कोई आदमी तर्क को पहले रखता है, तो वह अपने को पहले रखता है। जब कोई आदमी भाव को पहले रखता है, तो वह निसर्ग को पहले रखता है। निसर्ग आपसे बड़ा है, विराट है। बड़े को पीछे मत बांधिए छोटे के। छोटे को बड़े के पीछे चलने दीजिए।

तो कृष्ण कहते हैं, मुझ में मन को लगा; मुझ में बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मुझ में ही निवास करेगा। तू फिर मेरे हृदय में आ जाएगा।

तो ऐसा मत सोचना कि भगवान ही भक्त के हृदय तक आता है। जिस दिन भक्त राजी हो जाता है कि भगवान उसके हृदय में आ जाए, उस दिन भक्त भी भगवान के हृदय में पहुंच जाता है। तो ऐसा ही नहीं है कि भक्त ही याद कर-करके भगवान को अपने हृदय में रखता है। शुरुआत भक्त को ऐसे ही करनी पड़ती है। जिस दिन यह घटना घट जाती है... ।

कबीर ने कहा है कि बड़ी उलटी हालत हो गई है। हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर। पहले हम चिल्लाते फिरते थे कि हे प्रभु, कहां हो! और अब हालत ऐसी हो गई है कि हम कहीं भी भागें--हरि लागे पाछे फिरैं, कहत कबीर कबीर--अब हरि पीछे-पीछे भागते हैं और कहते हैं, कबीर! कबीर! कहां जाते हो कबीर?

भक्त शुरू करता है भगवान को अपने भीतर लेने से और आखिर में पाता है कि भगवान ने उसे अपने भीतर ले लिया है।

कृष्ण कहते हैं, उसके उपरांत तू मुझमें ही निवास करेगा, मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

अगर भाव से शुरू करें, तो कुछ भी संशय नहीं है। अगर बुद्धि से शुरू करें, तो संशय ही संशय है। जरा-सा फर्क कि आप बुद्धि को पहले रख लें, फिर संशय ही संशय है। भाव को पहले रख लें, फिर कोई संशय नहीं है।

अपने भीतर खोज करनी चाहिए कि मैंने किस चीज को प्राथमिकता दे रखी है। हमारा अहंकार अपने को ही प्राथमिकता दिए हुए है। और हम को तो ऐसा लगता है कि हमारे ही ऊपर तो सारा सब कुछ टिका है। अगर हम ही जरा डांवाडोल हो गए अपने अहंकार से, तो सारा जगत न गिर जाए! सब को ऐसा लगता है।

सुना है मैंने, छिपकलियां मकानों को सम्हाले रहती हैं। छिपकलियां सोचती हैं कि अगर वे हट गईं, तो कहीं मकान की छत न गिर जाए! हम सब को भी ऐसा लगता है कि अगर हमने अपना तर्क छोड़ दिया, बुद्धि छोड़ दी, तो यह सारा जगत अभी भूमिसात हो जाए! सब गिर न जाए।

एक छोटी-सी कहानी से अपनी बात मैं पूरी करूं। नाजी जर्मनी में जब हिटलर की हुकूमत थी, एक दिन अखबार में एक विज्ञापन निकला। किसी पुलिस के बड़े आफिसर की जगह खाली थी। और कोई बड़ा महत्वपूर्ण पद था। जिस आफिसर को इंटरव्यू लेना था उस जगह के लिए, सुबह ही उसने देखा कि एक यहूदी बूढ़ा अखबार हाथ में लिए है और जहां विज्ञापन निकला था अखबार में, एडवरटाइजमेंट निकला था, उस पर लाल स्याही से गोल घेरा बनाए हुए अंदर आया।

वह आफिसर थोड़ा चकित हुआ कि यह बूढ़ा यहूदी क्या इस विज्ञापन के लिए आया हुआ है! उसने पूछा कि क्या आप इस विज्ञापन के लिए आए

हुए हैं? उस बूढ़े ने कहा, जी हां। तो आफिसर और भी चकित हुआ। उसने कहा, थोड़ा देखिए तो कि विज्ञापन में क्या लिखा है! कि आदमी जवान चाहिए, और आपकी उम्र कम से कम सत्तर पार कर चुकी है। आदमी स्वस्थ-सुडौल चाहिए, और आपकी हालत ऐसी है कि आप जिंदा कैसे हैं, इस पर आश्चर्य होता है। इसमें लिखा हुआ है कि आंखें बिल्कुल स्वस्थ और ठीक होनी चाहिए, और आप इतना मोटा चश्मा लगाए हुए हैं कि मुझे शक है कि आपने यह विज्ञापन पढ़ा कैसे! और फिर इसमें लिखा हुआ है कि आदमी आर्यन जाति का चाहिए, और स्पष्टतः आप यहूदी हैं। तो आप किस लिए आए हैं?

तो उस यहूदी बूढ़े ने कहा, टु टेल यू जस्ट दिस, दैट डोंट डिपेंड आन मी--सिर्फ यही खबर करने आया हूं कि मुझ पर निर्भर मत रहना। कोई और आदमी खोज लो। इतना भर सूचन करने आया हूं कि मुझ पर निर्भर मत रहना।

हंसी आती है, लेकिन थोड़ा खोजेंगे, तो उस यहूदी को अपने भीतर पाएंगे। सारी दुनिया जैसे आपकी ही सोच-समझ, आपकी बुद्धि, आपके तर्क पर निर्भर है! और अगर आप जरा डांवाडोल हुए वहां से, तो यह सारी व्यवस्था टूट जाएगी!

कुछ नहीं है वहां भीतर सम्हालने को, लेकिन बस, सम्हाले हुए हैं! और कोई आप पर निर्भर नहीं है। लेकिन बड़ी जिम्मेवारी उठाए हुए हैं। सारा भार सारे संसार का आपकी ही समझ पर है! अगर आप नासमझ हो गए, तो सारा जगत रास्ते से विचलित हो जाएगा।

यह जो तर्क की दृष्टि है, यह जो अहंकार का बोध है, इसकी वजह से हम भाव को कभी भी आगे रखने में डरते हैं, क्योंकि भाव अराजक है। और भाव कहां ले जाएगा, नहीं कहा जा सकता। इसलिए हम सदा भाव को दबाए रखते हैं, क्योंकि भाव क्या करेगा, वह भी अनजान, अपरिचित, अज्ञात है।

तो भाव से हम भयभीत हैं। न तो कभी हम हंसते हैं खुलकर, क्योंकि डर लगता है कि कहीं सीमा के बाहर न हंस दें! न हम कभी रोते हैं हृदयपूर्वक, क्योंकि लगता है कि लोग क्या कहेंगे कि अभी भी बच्चों जैसा काम कर रहे हो!

नहीं; हम कुछ भी भाव से नहीं करने देते। सब पर बुद्धि को अड़ा देते हैं। तो भीतर आंसू भी इकट्ठे हो जाते हैं। सागर में भी इतना खारापन नहीं है, जितना आपके भीतर एक जिंदगी में इकट्ठा हो जाता है। आंसू ही आंसू इकट्ठे हो जाते हैं। हंसे भी कभी नहीं, तो मुर्दा हंसियां इकट्ठी हो जाती हैं, उनकी लाशें सड़ जाती हैं। सब जहर हो जाता है भीतर। भाव कहीं बाहर निकल न जाए, तो बुद्धि को सम्हाल-सम्हालकर चलते हैं।

इस दुनिया में इसलिए लोगों को इतनी ज्यादा शराब पीने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि शराब पीकर थोड़ी देर को बुद्धि एक तरफ हट जाती है और भाव बाहर आ जाता है। और जब तक हम भाव को आगे नहीं रखते, तब तक दुनिया से शराब नहीं मिट सकती।

अब यह बड़े मजे का और उलझा हुआ मामला है। अक्सर जो लोग दुनिया से शराब मिटाना चाहते हैं, वे ही इस दुनिया में शराब के जिम्मेवार हैं। क्योंकि वे ही लोग बुद्धि को थोपते हैं, कि शराब में यह खराबी है, यह खराबी है, इसलिए मत पीओ। इससे यह नुकसान है, यह नुकसान है, इसलिए मत पीओ। ये ही लोग हैं, जिन्होंने सब नुकसान और खराबियां बता-बताकर भाव के जगत को भीतर बिल्कुल कुंठित कर दिया है। और इन्हीं की कृपा है कि उस कुंठित आदमी को थोड़ी देर को तो राहत चाहिए, तो वह पीकर राहत ले लेता है। थोड़ी देर को वह खुल जाता है।

आप देखें, एक आदमी शराब पीता है; जैसे-जैसे शराब पकड़ने लगती है उसको, उसके चेहरे पर रौनक आने लगती है। मुस्कुराने लगता है। जिंदगी

में गति मालूम पड़ने लगती है। क्या हो रहा है? यह आदमी अभी मरा-मरा क्यों था? इस आदमी में यह ताजगी कहां से चली आ रही है?

यह शराब से नहीं आ रही है। शराब तो जहर है; उससे क्या ताजगी आएगी! यह ताजगी इसलिए आ रही है कि ताजगी तो सदा से भाव में भरी थी, लेकिन दबाकर बैठा था। अब वह जो दबाने वाली थी बुद्धि, शराब उसको बेहोश कर रही है। वह पहरेदार बेहोश हो रहा है। तो भीतर के दबे हुए भाव बाहर आ रहे हैं।

इसलिए शराब पीकर आदमी ज्यादा आदमी मालूम पड़ता है, जिंदा मालूम पड़ता है, अच्छा मालूम पड़ता है, भला मालूम पड़ता है। शराब यह सब कुछ नहीं कर रही है। लेकिन शराब पहरे को हटा रही है। वह जो तर्क का और बुद्धि का झंडा गड़ा हुआ था और बंदूक लिए पहरेदार खड़ा था, वह पी रहा है शराब, वह बेहोश हो जाएगा।

यही काम नींद कर रही है। सुबह आप ताजे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि रात सपनों में तर्क से नहीं चलते, भाव से चलते हैं। रात सपने में तर्क सो जाता है और भाव की दुनिया मुक्त हो जाती है। आकाश में उड़ना हो, तो उड़ते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि मैं संदेह करता हूं, आकाश में उड़ना कैसे हो सकता है? हम उड़ते हैं। सुबह भला संदेह करें। लेकिन रात मजे से उड़ते हैं। और जिससे प्रेम करना है, उससे सपने में प्रेम कर लेते हैं। उस वक्त यह नहीं कहते कि यह मैं क्या कर रहा हूं! यह अनैतिक है।

सपने में आप भाव से जीने लगते हैं; बुद्धि हट जाती है। इसलिए रात ताजगी देती है। सुबह आप ताजे उठते हैं। आप सोचते होंगे कि सपनों की वजह से आपको नुकसान होता है, तो आप गलती में हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपना न आए, तो आप सुबह ताजे होकर न उठ सकेंगे। सपना आपको ताजा कर रहा है, क्योंकि सपना छुटकारा दे रहा है बुद्धि से।

अभी वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं कि अगर नींद में बाधा डाली जाए, तो ज्यादा नुकसान नहीं होता। लेकिन सपने में बाधा डाली जाए, तो ज्यादा नुकसान होता है। रात में कुछ घड़ी आप सपना देखते हैं, कुछ घड़ी सोते हैं। तो वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किए हैं--अब तो जांचने का उपाय है कि कब आप सपना ले रहे हैं और कब सो रहे हैं--तो जब आप सपना ले रहे हैं, तब जगा दिया हड़बड़ाकर। जब भी सपना लिया, तब जगा दिया। और जब शांति से सोए रहे, तो सोने दिया। तो पाया कि आदमी तीन दिन से ज्यादा बिना सपने के नहीं रह सकता। बिल्कुल टूट जाता है।

दूसरा प्रयोग भी किया है कि जब नींद आई, तब जगा दिया। और जब सपना आया, तब सोने दिया। कोई तकलीफ नहीं होती। सुबह आदमी उतना ही ताजा उठता है। इसलिए पहले ख्याल था कि नींद से ताजगी मिलती है। अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सपने से ताजगी मिलती है।

बड़ी हैरानी की बात है। सपने से ताजगी क्यों मिलती होगी? सपने से ताजगी इसीलिए मिलती है कि बुद्धि का बोझ हट जाता है। और जब बुद्धि का बोझ हट जाता है, तो आप जिंदगी का रस लेकर वापस लौट आते हैं।

भक्त जागते जिंदगी का बोझ फेंक देता है और एक आध्यात्मिक स्वप्न में लीन हो जाता है। उस स्वप्न में वह सब कुछ न्योछावर कर देता है। और कृष्ण कहते हैं, तब उसे मैं उठा लेता हूं।

तुम्हारी बुद्धि से जो सत्य दिखाई पड़ रहा है, वह इतना सत्य नहीं है, जितना प्रेम और भाव से दिखाई पड़ने वाला स्वप्न भी सत्य होता है।

अब पांच मिनट कीर्तन करें। लेकिन कोई बीच में न उठे। कीर्तन पूरा करें और फिर जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

पांचवां प्रवचन

अहंकार घाव है

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।। 9।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।। 10।।

और तू यदि मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप-योग से मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।

और यदि तू ऊपर कहे हुए अभ्यास में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, क्या संसारी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता? घर-बार और स्त्री ही क्या ईश्वर को पाने में बाधा है? संसारी के लिए क्या ईश्वर को पाने का कोई उपाय नहीं है?

ऐसी भ्रांति प्रचलित है कि संसारी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता है। इससे बड़ी और कोई भ्रांति की बात नहीं हो सकती, क्योंकि होने का अर्थ ही संसार में होना है। आप संसार में किस ढंग से होते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। संसार में होना ही पड़ता है, अगर आप हैं। होने का अर्थ ही संसार

में होना है। फिर आप घर में बैठते हैं कि आश्रम में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

घर भी उतना ही संसार में है, जितना आश्रम। और आप पत्नी-बच्चों के साथ रहते हैं या उनको छोड़कर भागते हैं, जहां आप रहते हैं, वह भी संसार है; जहां आप भागते हैं, वह भी संसार है। होना है संसार में ही।

और जब परमात्मा भी संसार से भयभीत नहीं है, तो आप इतने क्यों भयभीत हैं? और जब हम परमात्मा को मानते हैं कि वही कण-कण में समाया हुआ है; इस संसार में भी वही है; संसार भी वही है... ।

संसार से भागकर वह नहीं मिलेगा। क्योंकि गहरे में तो जो भाग रहा है, वह उसे पा ही नहीं सकेगा। उसे तो पाता वह है, जो ठहर गया है। भगोड़ों के लिए नहीं है परमात्मा। ठहर जाने वाले लोगों के लिए है, थिर हो जाने वाले लोगों के लिए है।

आप कहां हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता। अगर आप शांत हैं और ठहरे हुए हैं, तो वहीं परमात्मा से मिलन हो जाएगा। अगर आप दुकान पर बैठे हुए भी शांत हैं और आपके मन में कोई दुविधा, कोई अड़चन, कोई द्वंद्व, कोई संघर्ष, कोई तनाव नहीं है, तो उस दुकान पर ही परमात्मा उतर आएगा। और आप आश्रम में भी बैठे हो सकते हैं, और मन में द्वंद्व और दुविधा और परेशानी हो, तो वहां भी परमात्मा से कोई संपर्क न हो पाएगा।

न तो पत्नी रोकती है, न बच्चे रोकते हैं। आपके मन की ही द्वंद्वग्रस्त स्थिति रोकती है। संसार नहीं रोकता, आपके ही मन की विक्षिप्तता रोकती है।

संसार से भागने से कुछ भी न होगा। क्योंकि संसार से भागना एक तो असंभव है। जहां भी जाएंगे, पाएंगे संसार है। और फिर आप तो अपने साथ ही चले जाएंगे, कहीं भी भागें। घर छूट सकता है, पत्नी छूट सकती है, बच्चे छूट सकते हैं। आप अपने को छोड़कर कहां भागिएगा?

और पत्नी वहां आपके कारण थी, और बच्चे आपके कारण थे। आप जहां भी जाएंगे, वहां पत्नी पैदा कर लेंगे। आप बच नहीं सकते। वह घर आपने बनाया था। और जिसने बनाया था, वह साथ ही रहेगा। वह फिर बना लेगा। आप असली कारीगर को तो साथ ले जा रहे हैं। वह आप हैं।

अगर यहां धन को पकड़ते थे, तो वहां भी कुछ न कुछ आप पकड़ लेंगे। वह पकड़ने वाला भीतर है। अगर यहां मुकदमा लड़ते थे अपने मकान के लिए, तो वहां आश्रम के लिए लड़िएगा। लेकिन मुकदमा आप लड़िएगा। यहां कहते थे, यह मेरा मकान है; वहां आप कहिएगा, यह मेरा आश्रम है। लेकिन वह मेरा आपके साथ होगा।

आप भाग नहीं सकते। अपने से कैसे भाग सकते हैं? और आप ही हैं रोग। यह तो ऐसा हुआ कि टी.बी. का मरीज भाग खड़ा हो। सोचे कि भागने से टी.बी. से छुटकारा हो जाएगा। मगर वह टी.बी. आपके साथ ही भाग रही है। और भागने में और हालत खराब हो जाएगी।

भागना बचकाना है। भागना नहीं है, जागना है। संसार से भागने से परमात्मा नहीं मिलता, और न संसार में रहने से मिलता है। संसार में जागने से मिलता है। संसार एक परिस्थिति है। उस परिस्थिति में आप सोए हुए हों, तो परमात्मा को खोए रहेंगे। उस परिस्थिति में आप जाग जाएं, तो परमात्मा मिल जाएगा।

ऐसा समझें कि एक आदमी सुबह एक बगीचे में सो रहा है। सूरज निकल आया है, और पक्षी गीत गा रहे हैं, और फूल खिल गए हैं, और हवाएं सुगंध से भरी हैं, और वह सो रहा है। उसे कुछ भी पता नहीं कि क्या मौजूद है। आंख खोले, जागे, तो उसे पता चले कि क्या मौजूद है। जब तक सो रहा है, तब तक अपने ही सपनों में है।

हो सकता है--यह फूलों से भरा बगीचा, यह आकाश, ये हवाएं, यह सूरज, ये पक्षियों के गीत तो उसके लिए हैं ही नहीं--हो सकता है, वह एक

दुखस्वप्न देख रहा हो, एक नरक में पड़ा हो। इस बगीचे के बीच, इस सौंदर्य के बीच वह एक सपना देख रहा हो कि मैं नरक में सड़ रहा हूं और आग की लपटों में जल रहा हूं।

जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह संसार नहीं है। हमारा सपना, हमारा सोया हुआ होना ही संसार है। परमात्मा तो चारों तरफ मौजूद है, पर हम सोए हुए हैं। वह अभी और यहां भी मौजूद है। वही आपका निकटतम पड़ोसी है। वही आपकी धड़कन में है; वही आपके भीतर है; वही आप हैं। उससे ज्यादा निकट और कुछ भी नहीं है। उसे पाने के लिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। वह यहां है, अभी है। लेकिन हम सोए हुए हैं।

इस नींद को तोड़ें। भागने से कुछ भी न होगा। इस नींद को हटाएं। यह मन होश से भरे, इस मन के सपने विदा हो जाएं, इस मन में विचारों की तरंगें न रहें, यह मन शांत और मौन हो जाए, तो आपको अभी उसका स्पर्श शुरू हो जाएगा। उसके फूल खिलने लगेंगे; उसकी सुगंध आने लगेगी; उसका गीत सुनाई पड़ने लगेगा; उसका सूरज अभी-अभी आपके अंधेरे को काट देगा और आप प्रकाश से भर जाएंगे।

इसलिए मेरी दृष्टि में, जो भाग रहा है, उसे तो कुछ भी पता नहीं है। यह हो सकता है कि आप संसार से पीड़ित हो गए हैं, इसलिए भागते हों। लेकिन संसार की पीड़ा भी आपका ही सृजन है। तो आप भागकर जहां भी जाइएगा, वहां आप नई पीड़ा के स्रोत तैयार कर लेंगे।

यह ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता, तो आप जाकर देखें। आश्रमों में बैठे हुए लोगों को देखें, संन्यासियों को देखें। अगर वे जागे नहीं हैं, तो आप उनको पाएंगे वे ऐसी ही गृहस्थी में उलझे हैं जैसे आप। और उनकी उलझनें भी ऐसी ही हैं, जैसे आप। उनकी परेशानी भी यही है। वे भी इतने ही चिंतित और दुखी हैं।

इतना आसान नहीं परमात्मा को पाना कि आप घर से निकलकर मंदिर में आ गए और परमात्मा मिल गया! कि आप जंगल में चले गए, और परमात्मा मिल गया! परमात्मा को पाने के लिए आपकी जो चित्त-अवस्था है, इससे निकलना पड़ेगा और एक नई चित्त-अवस्था में प्रवेश करना पड़ेगा।

ये ध्यान और प्रार्थनाएं उसके ही मार्ग हैं कि आप कैसे बदलें। आम हमारी मन की यही तर्कना है कि परिस्थिति को बदल लें, तो सब हो जाए। हम जिंदगीभर इसी ढंग से सोचते हैं। लेकिन परिस्थिति हमारी उत्पन्न की हुई है। मनःस्थिति असली चीज है, परिस्थिति नहीं।

एक आदमी गाली देता है, तो आप सोचते हैं, इसके गाली देने से दुख होता है, पीड़ा होती है, क्रोध होता है। इस आदमी से हट जाएं, तो न क्रोध होगा, न पीड़ा होगी, न अपमान होगा, न मन में संताप होगा।

लेकिन जो आदमी गाली देता है, वह क्रोध पैदा नहीं करता। क्रोध तो आपके भीतर है; उसको केवल हिलाता है। आप भाग जाएं; क्रोध को आप भीतर ले जा रहे हैं। अगर कोई आदमी न होगा, तो आप चीजों पर क्रोध करने लगेंगे।

लोग दरवाजे इस तरह लगाते हैं, जैसे किसी दुश्मन को धक्का मार रहे हों! लोग जूतों को गाली देते हैं और फेंकते हैं। लोग लिखती हुई कलम को जमीन पर, फर्श पर पटक देते हैं। क्रोध में चीजें... एक कलम क्या क्रोध पैदा करेगी? एक दरवाजा क्या क्रोध पैदा करेगा?

लेकिन क्रोध भीतर भरा है। उसे आप निकालेंगे; कोई न कोई बहाना आप खोजेंगे। और बहाने मिल जाएंगे। बहानों की कमी नहीं है। तब फिर आप सोचेंगे, इस परिस्थिति से हटूं, तो शायद किसी दिन शांत हो जाऊं। तो आप जन्मों-जन्मों से यही कर रहे हैं, परिस्थिति को बदलो और अपने को जैसे हो वैसे ही सम्हाले रहो!

आप अगर रहे, तो आप ऐसा ही संसार बनाते चले जाएंगे। आप स्रष्टा हैं संसार के। मन को बदलें; वह जो भीतर चित्त है, उसको बदलें। अगर कोई गाली देता है, तो उससे यह अर्थ नहीं है कि उसकी गाली आप में क्रोध पैदा करती है। उसका केवल इतना ही अर्थ है, क्रोध तो भीतर भरा था, गाली चोट मार देती है और क्रोध बाहर आ जाता है। ऐसे ही जैसे कोई कुएं में बालटी डाले और पानी भरकर बालटी में आ जाए। बालटी पानी नहीं पैदा करती, वह कुएं में भरा हुआ था। खाली कुएं में डालिए बालटी, खाली वापस लौट आएगी।

बुद्ध में, महावीर में गाली डालिए, खाली वापस लौट आएगी। कोई प्रत्युत्तर नहीं आएगा। वहां क्रोध नहीं है।

और आपको जो आदमी गाली देता है, अगर समझ हो, तो आपको उसका धन्यवाद करना चाहिए कि आपके भीतर जो छिपा था, उसने बाहर निकालकर बता दिया। उसकी बड़ी कृपा है। वह न मिलता, तो शायद आप इसी ख्याल में रहते कि आप अक्रोधी हैं, बड़े शांत आदमी हैं। उसने मिलकर आपकी असली हालत बता दी कि भीतर आप क्रोधी हैं; बाहर-बाहर, ऊपर-ऊपर से रंग-रोगन किया हुआ है। सब व्हाइट-वाश है; भीतर आग जल रही है। यह आदमी मित्र है, क्योंकि इसने आपके रोग की खबर दी। यह आदमी डाक्टर है, इसने आपका निदान कर दिया। इसकी डायग्नोसिस से पता चल गया कि आपके भीतर क्या छिपा है। इसे धन्यवाद दें और अपने को बदलने में लग जाएं।

पत्नी आपको नहीं बांधे हुए है। स्त्री के प्रति आपका आकर्षण है, वह बांधेगा। पत्नी से क्या तकलीफ है? या पति से क्या तकलीफ है? आप भाग सकते हैं। लेकिन आकर्षण तो भीतर भरा है। कोई दूसरी स्त्री उसे छू लेगी, और वह आकर्षण फिर फैलना शुरू हो जाएगा। फिर आप संसार खड़ा कर लेंगे।

वह जो बेटा है आपका, वह आपको बांधे हुए नहीं है। बेटे से आप बंधे हैं, क्योंकि आप अपने को चलाना चाहते हैं मृत्यु के बाद भी। बेटे के कंधों से आप जीना चाहते हैं। आप तो मर जाएंगे; यह पता है कि यह शरीर गिरेगा; तो आप अब बेटे के सहारे इस जगत में रहना चाहते हैं। कम से कम नाम तो रहेगा मेरा मेरे बेटे के साथ! वह आपको बांधे हुए है।

बेटे को छोड़कर भाग जाइए; शिष्य मिल जाएगा। फिर आप उसके सहारे संसार में बचने की कोशिश में लग जाएंगे। बाकी कोशिश वही रहेगी, जो आप भीतर हैं। नाम बदल जाएंगे, रंग बदल जाएंगे, लेबल बदल जाएंगे, लेकिन आप इतनी आसानी से नहीं बदलते हैं।

तो ध्यान रखें, क्षुद्र धर्म परिस्थिति बदलने की कोशिश करता है। सत्य धर्म मनःस्थिति बदलने की कोशिश करता है। आप बदल जाएं, जहां भी हैं। और आप पाएंगे, संसार मिट गया। आप बदले कि संसार खो जाता है; और जो बचता है, वही परमात्मा है। यहीं संसार की हर पर्त के पीछे वह छिपा है।

आपको संसार दिखाई पड़ता है, क्योंकि आप संसार को ही देखने वाला मन लिए बैठे हैं। जो आपको दिखाई पड़ रहा है, वह आपके कारण दिखाई पड़ रहा है। जैसे ही आप बदले, आपकी दृष्टि बदली, देखने का ढंग बदला, संसार तिरोहित हो जाता है और आप पाते हैं कि चारों तरफ वही है। फिर वृक्ष में वही दिखाई पड़ता है और पत्थर में भी वही दिखाई पड़ता है। मित्र में भी वही दिखाई पड़ता है और शत्रु में भी वही दिखाई पड़ता है। फिर जीवन का सारा विस्तार उसका ही विस्तार है।

संसार आपकी दृष्टि के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है। और परमात्मा भी आपकी दृष्टि के ही अनुभव में उतरेगा; आपके दृष्टि के परिवर्तन में उतरेगा।

क्रांति चाहिए आंतरिक, भीतरी, स्वयं को बदलने वाली। भागने में समय खराब करने की कोई भी जरूरत नहीं है। भागने में व्यर्थ उलझने की कोई भी जरूरत नहीं है। संसार परमात्मा को पाने का अवसर है; एक मौका है। उस मौके का उपयोग करना आना चाहिए।

सुना है मैंने कि एक घर में एक बहुत पुराना वाद्य रखा था, लेकिन घर के लोग पीढ़ियों से भूल गए थे उसको बजाने की कला। वह कोने में रखा था। बड़ा वाद्य था। जगह भी घिरती थी। घर में भीड़ भी बढ़ गई थी। और आखिर एक दिन घर के लोगों ने तय किया कि यह उपद्रव यहां से हटा दें।
वह उपद्रव हो गया था। क्योंकि जब संगीत बजाना न आता हो और उसके तारों को छेड़ना न आता हो... । तो कभी बच्चे छेड़ देते थे, तो घर में शोरगुल मचता था। कभी कोई चूहा कूद जाता, कभी कोई बिल्ली कूद जाती। आवाज होती। रात नींद टूटती। वह उपद्रव हो गया था।

तो उन्होंने एक दिन उसे उठाकर घर के बाहर कचरेघर में डाल दिया। लेकिन वे लौट भी नहीं पाए थे कि कचरेघर के पास से अनूठा संगीत उठने लगा। देखा, राह चलता एक भिखारी उसे उठा लिया है और बजा रहा है। भागे हुए वापस पहुंचे और कहा कि लौटा दो। यह वाद्य हमारा है। पर उस भिखारी ने कहा, तुम इसे फेंक चुके हो कचरेघर में। अगर यह वाद्य ही था, तो तुमने फेंका क्यों? और उस भिखारी ने कहा कि वाद्य उसका है, जो बजाना जानता है। तुम्हारा वाद्य कैसे होगा?

जीवन एक अवसर है। उससे संगीत भी पैदा हो सकता है। वही संगीत परमात्मा है। लेकिन बजाने की कला आनी चाहिए। अभी तो सिर्फ उपद्रव पैदा हो रहा है, पागलपन पैदा हो रहा है। आप गुस्सा होते हैं कि इस वाद्य को छोड़कर भाग जाओ, क्योंकि यह उपद्रव है।

यह वाद्य उपद्रव नहीं है। एक ही है जगत का अस्तित्व। जब बजाना आता है, तो वह परमात्मा मालूम पड़ता है। जब बजाना नहीं आता, तो वह संसार मालूम पड़ता है।

अपने को बदलें। वह कला सीखें कि कैसे इसी वाद्य से संगीत उठ आए। और कैसे ये पत्थर प्राणवान हो जाएं। और कैसे ये एक-एक फूल प्रभु की मुस्कुराहट बन जाएं। धर्म उसकी ही कला है।

तो जो धर्म भागना सिखाता है, समझना कि वह धर्म ही नहीं है। कहीं कोई भूल-चूक हो रही है। जो धर्म रूपांतरण, आंतरिक क्रांति सिखाता है, वही वास्तविक विज्ञान है।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने बताया कि बेहोशी में किया हुआ कृत्य पाप है। लेकिन भाव से भी तो बेहोशी होती है? कृपया समाधान कीजिए।

बेहोशी बेहोशी में बड़ा फर्क है। एक बेहोशी नींद में होती है, तब आपको कुछ भी पता नहीं होता। एक बेहोशी शराब पीने से भी होती है, तब भी आपको कुछ पता नहीं होता। एक बेहोशी भाव से भी होती है, आप पूरे बेहोश भी होते हैं और आपको पूरा पता भी होता है। जब आप मग्न होकर गीत में नाच रहे होते हैं, तो यह नृत्य भी होता है, इस नृत्य में पूरा डूबा हुआ होना भी होता है; और भीतर दीए की तरह चेतना भी जलती है, जो जानती है, जो देखती है, जो साक्षी होती है।

अगर आपके भाव में बेहोशी शराब जैसी आ जाए, तो आप समझना कि चूक गए। तो समझना कि यह भाव भी फिर शराब ही हो गई।

प्रार्थना में बेहोशी का मतलब इतना है कि आप इतने लीन हो गए हैं कि मैं हूं, इसका कोई पता नहीं है। मैं हूं, इसका कोई शब्द निर्मित नहीं होता। लेकिन जो भी हो रहा है, उसके आप साक्षी हैं। जो साक्षी है, उसमें

कोई मैं का भाव नहीं है। और वह जो साक्षी है, वह आप नहीं हैं; आप तो लीन हो गए हैं। और आपके लीन होने के बाद जो भीतर असली आपका स्वरूप है, वह भर देखता है। उस दर्शन में, उस द्रष्टा के होने में, जरा भी बेहोशी नहीं है।

भाव की बेहोशी में आपके जो-जो रोग हैं, वे सो गए होते हैं; और आपके भीतर जो शुद्ध चेतन है, वह जाग गया होता है।

जब चैतन्य नाच रहे हैं सड़कों पर, तो आप यह मत सोचना कि वे बेहोश हैं। हालांकि वे कहते हैं कि मैं बेहोश हूं। और हालांकि वे कहते हैं कि हमने शराब पी ली परमात्मा की। वे सिर्फ इसलिए कहते हैं कि आप इन्हीं प्रतीकों को समझ सकते हैं।

उमर खय्याम ने कहा है कि अब हमने ऐसी शराब पी ली है, जिसका नशा कभी न उतरेगा। और अब बार-बार पीने की कोई जरूरत न रहेगी। अब तो पीकर हम सदा के लिए खो गए हैं।

शराब का उपयोग किया है प्रतीक की तरह। क्योंकि आप एक ही तरह का खोना जानते हैं, जिसमें आपकी सारी चेतना ही शून्य हो जाती है।

भाव में शराब का थोड़ा-सा हिस्सा है। आपकी सब बीमारियां सो जाती हैं, आपका अहंकार सो जाता है, आपका मन सो जाता है, आपके विचार सो जाते हैं। लेकिन आप? आप पूरी तरह जाग गए होते हैं और भीतर पूरा होश होता है। लेकिन यह तो अनुभव से ही होगा, तो ही ख्याल में आएगा। यह तो बात जटिल है। यह तो आपको कैसे ख्याल में आएगी! भाव में डूबकर देखें।

लेकिन हम डरते हैं। डर यही होता है, कहीं अगर भाव में पूरे डूब गए, तो जो-जो हमने दबा रखा है, अगर वह बाहर निकल पड़ा, तो लोग क्या कहेंगे! डरते हैं हम, क्योंकि हमने बहुत कुछ छिपा रखा है। और हमने चारों तरफ से अपने को बांध रखा है नियंत्रण में। तो कहीं नियंत्रण ढीला हो गया,

और जरा-सा भी कहीं छिद्र हो गया, और हमने जो रोक रखा है, वह बाहर निकल पड़ा तो? उस भय के कारण हम अपने को कभी छोड़ते नहीं, समर्पण नहीं करते।

हम कहीं भी अपने को शिथिल नहीं करते। हम चौबीस घंटे डरे हुए हैं और अपने को सम्हाले हुए हैं। यह जिंदगी नरक जैसी हो जाती है। इसमें सिवाय संताप के और विष के कुछ भी नहीं बचता। यह रोग ही रोग का विस्तार हो जाता है।

खुलें; फूल की तरह खिल जाएं। माना कि बहुत-सी बीमारियां आपके भीतर पड़ी हैं। लेकिन आप उनको जितना सम्हाले रखेंगे, उतनी ही वे आपके भीतर बढ़ती जाएंगी। उनको भी गिर जाने दें। उनको भी परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दें। और आप जल्दी ही पाएंगे कि बीमारियां हट गईं और आपके भीतर फूल का खिलना शुरू हो गया। आपके भीतर का कमल खिलने लगा।

जिस दिन यह भीतर का कमल खिलना शुरू होता है, उसी दिन पता चलता है कि बेहोशी भी है और होश भी है। एक तल पर हम बिल्कुल बेहोश हो गए हैं, और एक तल पर हम पूरी तरह होशवान हो गए हैं। ये घटनाएं एक साथ घटती हैं।

शराब में हम केवल बेहोश होते हैं, कोई होश नहीं होता। इसलिए कुछ साधकों ने तो इस भाव की जागरूकता को पाने के बाद शराबें पीकर भी देखी हैं, कि क्या हमारी इस भाव की जागरूकता को शराब डुबा सकती है?

आपको पता हो या न हो, योग और तंत्र के ऐसे संप्रदाय रहे हैं, जहां कि शराब भी पिलाई जाएगी। जब भाव की पूरी अवस्था आ जाएगी और साधक कहेगा कि अब मैं बाहर से तो बिल्कुल बेहोश हो जाता हूं, लेकिन मेरा भीतर होश पूरा बना रहता है, तो फिर गुरु उसको शराब भी पिलाएगा, अफीम भी खिलाएगा। और धीरे-धीरे बेहोशी की, मादकता की मात्रा बढ़ाई

जाएगी और उससे कहा जाएगा कि यहां बाहर बेहोशी घेरने लगे, शरीर बेहोश होने लगे, तो भी तू भीतर अपने होश को मत खोना।

और यह बात यहां तक प्रयोग की गई है कि सब तरह की शराब और सब तरह के मादक द्रव्य पीकर भी साधक भीतर होश में बना रहता है, तब फिर सांप को भी कटवाते हैं उसकी जीभ पर; कि जब सांप काट ले, उसका जहर भी पूरे शरीर में फैल जाए, तो भी भीतर का होश जरा भी न डिगे, तभी वे मानते हैं कि अब तूने उस होश को पा लिया, जिसको मौत भी न हिला सकेगी।

पर अनुभव के बिना कुछ ख्याल न आ सकेगा। थोड़ा भाव में डूबना सीखें। भाव में जो डूबता है, वह उबर जाता है। और भाव से जो बचता है, वह डूब ही जाता है, नष्ट ही हो जाता है।

लेकिन कुछ चीजें हैं, जो समझ से नहीं समझाई जा सकतीं। कोई उपाय नहीं है। और जितनी भीतरी बात होगी, उतना ही अनुभव पर निर्भर रहना पड़ेगा।

अगर मेरे पैर में दर्द है, तो आपको मानना ही पड़ेगा कि दर्द है। और क्या उपाय है! और अगर मैं आपको समझाने जाऊं और आपके पैर में कभी दर्द न हुआ हो, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। मैं कितना ही कहूं कि पैर में दर्द है, लेकिन आपको अगर दर्द का कोई अनुभव नहीं है, तो शब्द ही सुनाई पड़ेगा; अर्थ कुछ भी समझ में न आएगा। आपको भी दर्द हो, तो ही... । अनुभव को शब्द से हस्तांतरित करने की कोई भी सुगमता नहीं है।

बुद्ध के पास कोई आया और उसने कहा कि जो आपको हुआ है, थोड़ा मुझे भी समझाएं। तो बुद्ध ने कहा कि समझा मैं न सकूंगा। तुम रुको और वर्षभर जो मैं कहूं, वह करो। समझ में आ जाएगा।

क्योंकि जब तक भीतर प्रतीति न हो इस बात की कि सब बेहोशी हो गई है और फिर भी भीतर कोई जागा है, दीया जल रहा है, तब तक कैसे,

तब तक आप बाहर से ही देखेंगे। तो आप बाहर से नाचते हुए देखेंगे मीरा को, तो आपको लगेगा कि बेहोश है, होश नहीं है इसे। लगेगा ही। कपड़ा गिर गया। साड़ी का पल्लू गिर गया। अगर होश होता, तो मीरा अपना पल्लू सम्हालती, कपड़ा सम्हालती। होश में नहीं है, बेहोश है।

निश्चित ही, शरीर के तल पर बेहोशी है। कपड़े के तल से होश हट गया है। वहां मीरा अब नहीं है। न कपड़े में है, न शरीर में है। भीतर कहीं सरक गई है। लेकिन वहां होश है।

पर यह तो आप भी मीरा हो जाएं, तभी ख्याल में आए, अन्यथा कैसे ख्याल में आए! मीरा के भीतर झांकने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई खिड़की-दरवाजा नहीं, जिससे हम भीतर झांक सकें। अगर मीरा के भीतर झांकना है, तो अपने ही भीतर झांकना पड़े, और कोई उपाय नहीं है। बुद्ध को समझना हो, तो बुद्ध हुए बिना कोई रास्ता नहीं है।

इसलिए शिष्य जब तक गुरु ही नहीं हो जाता, तब तक गुरु को नहीं समझ पाता है। कैसे समझेगा? अलग-अलग तल पर खड़े हुए लोग हैं। वे अलग भाषाएं बोल रहे हैं। अलग अनुभवों की बातें कर रहे हैं। तब तक मिसअंडरस्टैंडिंग ज्यादा होगी, नासमझी ज्यादा होगी, समझ कम होगी। अगर सच में ही समझना चाहते हैं, तो प्रयोग की हिम्मत जुटानी चाहिए।

विज्ञान भी प्रयोग पर निर्भर करता है और धर्म भी। दोनों एक्सपेरिमेंटल हैं। विज्ञान भी कहता है कि जाओ प्रयोगशाला में और प्रयोग करो। और जब तुम भी पाओ कि ऐसा होता है, तो ही मानना, अन्यथा मत मानना। धर्म भी कहता है कि जाओ प्रयोगशाला में, प्रयोग करो। हालांकि प्रयोगशालाएं दोनों की अलग हैं। विज्ञान की प्रयोग शाला बाहर है, धर्म की प्रयोगशाला भीतर है। आप ही हो धर्म की प्रयोगशाला।

इसलिए विज्ञान की प्रयोगशाला तो निर्मित करनी पड़ती है, और आप अपनी प्रयोगशाला अपने साथ लिए चल रहे हो। नाहक ढो रहे हो वजन।

बड़ा अदभुत यंत्र आपको मिला है, उसमें आप प्रयोग कर लो, तो अभी आपको ख्याल में आ जाए कि क्या हो सकता है।

भाव की बेहोशी बहुत गहन होश का नाम है। वह किसी दूसरे तल पर होश है, जागरूकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि अपने आप को भगवान के चरणों में समर्पित कर देने के बाद क्या सुख-दुख के भाव हममें नहीं उठेंगे? उन्हें उठने देने से रोकने का क्या उपाय है?

फिर आपको रोकने की जरूरत नहीं, जब भगवान के चरणों में समर्पित ही कर दिया। तो समर्पण पूरा नहीं कर रहे हैं। पीछे आप भी इंतजाम रखेंगे अपना जारी!

हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या सोचते हैं, किस ढंग से सोचते हैं! अगर अपने को भगवान के हाथ में समर्पण कर दिया, तो फिर सुख-दुख के भाव उठेंगे या नहीं, यह भी भगवान पर छोड़ दें। क्या पहले तय कर लेंगे, फिर समर्पण करेंगे? तब तो समर्पण झूठा हो जाएगा, सशर्त, कंडीशनल हो जाएगा। क्या भगवान से यह कहकर समर्पण करेंगे कि समर्पण करता हूं, लेकिन ध्यान रहे, अब सुख-दुख का भाव नहीं उठना चाहिए! अगर उठा, तो समर्पण वापस ले लूंगा। रद्द कर दूंगा कांट्रेक्ट।

यह कोई समझौता तो नहीं है कि आप इसमें शर्त रखेंगे। समर्पण का मतलब है, बेशर्त। आप कहते हैं, छोड़ता हूं तुम्हारे हाथ में। अब दुख देना हो तो दुख देना, मैं राजी रहूंगा। समर्पण का मतलब यह है। सुख देना तो सुख देना, मैं राजी रहूंगा। दोनों छीन लेना, राजी रहूंगा। दोनों जारी रखना, राजी रहूंगा। मेरी तरफ से, तुम कुछ भी करो, राजीपन रहेगा। समर्पण का

यह अर्थ है। तुम क्या करोगे, अब मैं उस पर कोई विचार न करूंगा। मैं सिर्फ राजी रहूंगा।

यह जो राजीपन है... । स्वीकार कर लूंगा कि तुम्हारी मर्जी है; जरूर कुछ बात होगी, जरूर कुछ लाभ होगा। सुख-दुख कैसे बचेंगे! जिस आदमी ने अपने को छोड़ दिया, उसके सुख-दुख बच सकते हैं?

सुख-दुख है क्या? आपकी अपने आप पर पकड़ ही तो जड़ में है। और समर्पण में आप अपनी पकड़ छोड़ते हैं। जो आदमी कहता है कि सुख होगा तो राजी, दुख होगा तो राजी, क्या उसको सुख-दुख हो सकते हैं? सवाल यह है। कैसे हो सकते हैं! क्योंकि सुख का मतलब ही होता है कि चाहता हूं। दुख का मतलब होता है, नहीं चाहता हूं। सुख का मतलब होता है, कहीं छिन न जाए, यह भय। दुख का मतलब होता है, कहीं टिक न जाए, यह भय।

समर्पण का अर्थ है, सुख तो राजी, दुख तो राजी। सुख छिन जाए तो राजी, दुख बना रहे तो राजी। सुख-दुख बचेंगे कैसे? सुख-दुख के बचने की आधारशिला खो गई।

सुख है क्या? जिसको आप चाहते हैं। दुख है क्या? जिसको आप नहीं चाहते हैं। और कभी आपने ख्याल किया कि कैसा चमत्कार है कि आज जिसे आप चाहते हैं, वह सुख है; और कल अगर न चाहें, तो वही दुख हो जाता है। और आज जिसे आप नहीं चाहते थे, वह दुख था; और कल अगर आप उसी को चाहने लगें, तो सुख हो जाता है।

एक प्रेमी है। वह कहता है कि इस स्त्री के बिना मैं जी न सकूंगा। यही मेरा सुख है। और लगता है उसे कि इसके बिना मैं नहीं जी सकूंगा। और कल शादी हो जाती है। और परसों वह अदालतों में घूम रहा है कि तलाक कैसे करूं! स्त्री वही है। पहले कहता था, इसके बिना न जी सकूंगा। अब कहता है, इसके साथ न जी सकूंगा। वह कल सुख था, आज दुख हो गया। और आप ऐसा मत सोचना, कुछ हैरानी की बात नहीं है। ऐसी घटनाएं घटती हैं।

मेरे एक परिचित हैं। स्पेन में रहते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी को तलाक दिया और दो साल बाद उसी स्त्री से दुबारा शादी कर ली! पहले सुख पाया, फिर दुख पाया। दो साल उसके बिना रहे, और फिर लगा कि वह सुख है। जब उन्होंने मुझे खबर की, तो मैंने कहा कि तुम पहले अनुभव से कुछ भी सीखे नहीं मालूम पड़ता। यह स्त्री कभी सुख थी, फिर दुख हो गई थी। अभी फिर सुख हो गई है! कितनी देर चलेगा? और कब दुख हो जाए, ज्यादा देर नहीं चलेगा मामला। क्योंकि व्यक्ति वे वही के वही हैं। फिर दुख हो जाएगा।

इतने दूर जाने की जरूरत नहीं है। आपकी पत्नी ही थोड़े दिन मायके चली जाती है, तो सुखद मालूम पड़ने लगती है। लौट आती है, तो देखते ही से फिर तबीयत घबड़ाती है कि वापस आ गई!

दूरी सुख के भावों को जन्म देने लगती है, निकटता उबाने लगती है। जो भी हमारे पास है, उससे ही हम ऊब जाते हैं। तो ऐसा कुछ नहीं है कि कोई चीज सुख है और कोई चीज दुख है। भाव! आपका भाव अगर चाह का है, तो सुख है; और अगर बेचाह का हो गया, तो दुख है। चीज वही हो, इससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता है।

लेकिन समर्पण करने वाले ने अपनी चाह छोड़ दी, अपना भाव छोड़ दिया। अब उसे दुख देना मुश्किल है। अब उसे सुख देना भी मुश्किल है। और जिस व्यक्ति को सुख और दुख दोनों देना मुश्किल हो जाता है, वही आनंद को उपलब्ध होता है।

आनंद सुख नहीं है। शब्दकोश में ऐसा ही लगता है, भाषा में ऐसा ही लगता है कि महासुख का नाम आनंद है। भूलकर भी ऐसा मत सोचना। आनंद का सुख से उतना ही संबंध है, जितना दुख से। या उतना ही संबंध नहीं है। आनंद का अर्थ है, जहां सुख-दुख दोनों व्यर्थ हो गए, वह चित्त की दशा।

समर्पण के बाद आनंद है। लेकिन अगर न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। यह मत समझना कि समर्पण के बाद आनंद नहीं है। समर्पण के बाद आनंद न हो, तो समझना कि समर्पण नहीं है। समर्पण के बाद आनंद है ही। समर्पण शरीर है और आनंद उसकी आत्मा है। लेकिन समर्पण पूरा होना चाहिए।

पूरे समर्पण का अर्थ है कि अब मेरा कोई चुनाव नहीं। अब मैं नहीं कहता, यह मिले; अब मैं यह नहीं कहता, यह न मिले। अब मैं हूं ही नहीं। अब मेरा कोई निर्णय नहीं है। अब मैंने अपनी बागडोर उसके हाथ में डाल दी है। वह पूरब ले जाए तो ठीक, पश्चिम ले जाए तो ठीक, कहीं न ले जाए तो ठीक। जो भी वह करे, ठीक। मेरी हां बेशर्त है। वह जो भी कहेगा, मैं कहूंगा, हां।

फिर चिंता आपको नहीं रह जाएगी कि सुख-दुख के भाव उठेंगे, तो हम उनको कैसे रोकेंगे। आप ही न बचेंगे, उनको रोकने की आपको कोई भी जरूरत न रह जाएगी। वे भी न बचेंगे। आपके साथ ही समाप्त हो जाएंगे। वे आपके ही संगी-साथी हैं।

अहंकार का ही पहलू है एक सुख, और एक दुख। अहंकार को जो बात रुचती है वह सुख, जो बात नहीं रुचती वह दुख। अहंकार खो जाता है, दोनों भी खो जाते हैं। जो शेष रह जाता है, उसको नियंत्रण करने की जरूरत भी नहीं है।

और जिसने परमात्मा के हाथ में अपनी नाव छोड़ दी, अब उसको अपने साथ नियंत्रण की समझदारी ले जाने की जरूरत नहीं है। उसकी समझदारी अब काम भी नहीं पड़ेगी।

एक मित्र ने पूछा है, आपकी बातों को समझने के लिए तो बुद्धि की ही आवश्यकता पड़ती है, तो इस अवसर पर बुद्धि को ही प्राथमिकता देनी

चाहिए या भाव को? क्या सिर्फ भाव को प्रधानता देने से आपकी बातें समझ में आ जाएंगी?

निश्चित ही, मेरी बात समझनी है, तो बुद्धि से समझनी पड़ती है। लेकिन अगर मेरी बात अनुभव करनी है, तो भाव से करनी पड़ेगी। समझ के लिए बुद्धि जरूरी है। लेकिन समझ अनुभव नहीं है। अगर समझ पर ही रुक गए और समझदार होकर ही रुक गए, तो आप बड़े नासमझ हैं।

मैं जो कह रहा हूं, उसे समझने के लिए बुद्धि की जरूरत है। लेकिन मैं जो कह रहा हूं, उसका अनुभव करने के लिए भाव की जरूरत है। तो बुद्धि से समझ लेना, और फिर भाव से करने में उतर जाना। अगर बुद्धि पर ही रुक गए और भाव तक न गए, तो वह समझ बेकार हो गई और मैं आपका दुश्मन साबित हुआ। आप वैसे ही काफी बोझ से भरे थे और मैंने थोड़ा बोझ बढ़ा दिया। आपके मस्तिष्क पर ऐसे ही काफी कूड़ा-करकट इकट्ठा है, उसमें मैंने और थोड़ा उपद्रव जोड़ दिया।

बुद्धि का काम है समझ लेना। लेकिन वहीं रुक जाना बुद्धिमान का लक्षण नहीं है। समझकर उसे प्रयोग में ले आना और भाव में उतार देना, अनुभव बना लेना।

और जब तक कोई चीज अनुभव न बन जाए, तब तक ऐसी ही हालत होती है कि आप कोई चीज पेट में गटक लें और पचा न पाएं। तो बीमारी पैदा करेगी, विजातीय हो जाएगी, जहर बन जाएगी, और शरीर से बाहर निकालने का उपाय करना पड़ेगा। लेकिन आप कोई चीज चबाएं, ठीक से पचाएं, तो खून बनती है, मांस-मज्जा बनती है। बीमारी नहीं होती; फिर उससे स्वास्थ्य पैदा होता है।

बुद्धि का काम है कि आपके भीतर ले जाए, लेकिन भाव का काम है कि पचाए। और जब तक आप भाव से पचा न सकें, डायजेस्ट न कर सकें, तब

तक सब ज्ञान जहर हो जाता है। तो अच्छा हो कि अपने कान बंद कर लेना चाहिए। जो बात भाव में न उतारनी हो, उसे न सुनना ही बेहतर है। क्या सार है?

हम खाने में उन्हीं चीजों को खाते हैं, जिन्हें हमें पचाना है। जिन्हें नहीं पचाना है, उन्हें नहीं खाते। नहीं खाना चाहिए, क्योंकि उन्हें खाने का अर्थ है कि हम पेट पर व्यर्थ का बोझ डाल रहे हैं और शरीर की व्यवस्था को रुग्ण कर रहे हैं। और अगर इस तरह की चीजें हम खाते ही चले जाएं, तो हम शरीर को पूरी तरह नष्ट कर डालेंगे। तो भोजन हमारा जीवन नहीं बनेगा, मृत्यु बन जाएगा।

शब्द भी भोजन हैं। आप ऐसा मत सोचना कि सुन लिया। सुन लिया नहीं, आपके भीतर चली गई बात। अब आप इससे बच नहीं सकते। कुछ करना पड़ेगा। या तो इसे पचाना पड़ेगा और या फिर यह आपके भीतर बीमारी पैदा करेगी।

बहुत लोग ज्ञान से बीमार हैं। उनको ज्ञान का अपच हो गया है। काफी सुन लिया है, पढ़ लिया है, चारों तरफ से इकट्ठा कर लिया है और पचाने की उन्हें कोई सुध-बुध नहीं है। वे भूल ही गए कि पचाना भी है। अब वह सब पत्थर की तरह उनकी छाती पर बैठ गया है। उससे तो बेहतर है सुनना ही मत, पढ़ना ही मत। जब लगे कि पचाने की तैयारी है, तो!

बुद्धि भीतर ले जाने का द्वार है। भाव पचाने की व्यवस्था है। सुनें, बुद्धि से समझें, और भाव तक पहुंचने दें।

निश्चित ही, बुद्धि दो तरह के काम कर सकती है। या तो भाव तक पहुंचने दे और या बाहर ठेलने की कोशिश करे, भीतर न आने दे। अगर आप सिर्फ तर्क का ही भरोसा करते हों, तो आपकी बुद्धि चीजों को बाहर धक्का देना शुरू कर देगी। क्योंकि जो बात तर्क की पकड़ में नहीं आएगी, बुद्धि कहेगी, भीतर मत लाओ। और जितनी कीमती बातें हैं, कोई भी तर्क की

पकड़ में नहीं आतीं। क्योंकि तर्क की पकड़ में वही बात आ सकती है, जो केवल तर्क हो। अनुभव की कोई भी बात तर्क की पकड़ में नहीं आ सकती। तर्क और अनुभव का कहीं मेल नहीं होता।

एक अंधा आदमी है; उसको प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। आप उसको कितना ही तर्क करिए, समझ में नहीं आ सकता। वह इनकार करता चला जाएगा। वह तर्क देगा; आपको गलत सिद्ध करेगा। उसकी बुद्धि अगर तर्क से ही चले... ।

हम सब भी ऐसा ही कर रहे हैं परमात्मा के संबंध में। तर्क से ही चलते हैं, इनकार करते चले जाते हैं। इनकार का एक अवरोध खड़ा हो जाता है। फिर कोई चीज भीतर प्रवेश नहीं करती। तर्क पहले ही कह देता है, बेकार है। गणित में नहीं आती। अनुभव की बात रहस्य मालूम पड़ती है। यह अपनी सीमा नहीं। तर्क कह देता है, इसे बाहर छोड़ो।

बुद्धि दूसरा काम कर सकती है कि द्वार बन जाए। जो अनुभव में आने योग्य हो, चाहे तर्क की समझ में न भी आता हो, उस पर भी प्रयोग करने की हिम्मत सदबुद्धि है। नहीं तो बुद्धि दुर्बुद्धि हो जाती है। तर्क कुतर्क हो जाता है। नहीं, मुझे अनुभव में नहीं है, लेकिन मैं प्रयोग करके देखूंगा।

हजार चीजें हैं, जो आपके अनुभव में नहीं हैं। लेकिन आप प्रयोग करके देखें, तो आपका अनुभव बढ़ सकता है। और अनुभव में चीजें आ सकती हैं। और न आएं अनुभव में, तो मत मानना। लेकिन अनुभव के पहले इनकार कर देना अज्ञान है।

तो ईश्वर को, आत्मा को, मुक्ति को, आनंद को, अद्वैत को बिना अनुभव के इनकार कर देना अज्ञान है। अनुभव का एक मौका अपने को दें। अब तक जिसने भी अनुभव किया, वह इनकार नहीं कर पाया। और जिन्होंने इनकार किया, उन्होंने अनुभव नहीं किया, सिर्फ तर्क से ही बात चलाई है।

तर्क बड़े खतरनाक हो सकते हैं और गलत चीजों के पक्ष में भी दिए जा सकते हैं। सही चीजों के विपरीत भी दिए जा सकते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने लड़के का विवाह करना चाहता था। एक धनी लड़की थी--कुरूप, बेडौल, बदशक्ल। मुल्ला का इरादा धन पर था। तो अपने लड़के को कहा कि सुना तूने, सुलताना से तेरे विवाह की बात चलाई है।

लड़के ने कहा, सुलताना! क्या मतलब? गांव के नगरसेठ की लड़की? उससे? लेकिन उसे तो कम दिखाई पड़ता है!

मुल्ला ने कहा, अभागे, अपने को भाग्यवान समझ। पत्नी को कम दिखाई पड़ता हो, इससे ज्यादा अच्छी बात पति के लिए और क्या हो सकती है! तू सदा स्वतंत्र रहेगा। जो भी करना हो कर। पत्नी को कुछ दिखाई भी नहीं पड़ेगा।

लड़का थोड़ा चौंका। उसने कहा, लेकिन मैंने सुना है कि वह तुतलाती भी है, हकलाती भी है!

मुल्ला ने कहा, अगर मुझे शादी करनी होती दोबारा, तो मैं ऐसी ही स्त्री से शादी करता। यह तो भगवान का वरदान समझ। क्योंकि स्त्री अगर तुतलाए, हकलाए, तो ज्यादा बोलने की हिम्मत नहीं जुटाती। पति शांति से जीता है!

उसके लड़के ने कहा, लेकिन मैंने तो सुना है कि वह बहरी भी है! उसे ठीक सुनाई भी नहीं पड़ता!

नसरुद्दीन ने कहा कि नालायक, मैं तो सोचता था तुझमें थोड़ी बुद्धि है। अरे, पत्नी बहरी हो, इससे बेहतर और क्या। तू गाली दे, चिल्ला, नाराज हो, वह कुछ भी नहीं समझ पाएगी।

लड़के ने आखिरी बार हिम्मत जुटाई। उसने कहा, यह भी सब ठीक। लेकिन उसकी उम्र मुझसे बीस साल ज्यादा है!

मुल्ला ने कहा, एक छोटे-से दोष के लिए कि वह बीस साल पहले पैदा हुई, इतना महान अवसर चूकता है! इतनी-सी छोटी-सी बात को नाहक शोर-गुल मचाता है! ऐसी सुंदर स्त्री तेरे लिए ढूंढ़ रहा हूं और तू छोटी-सी बात कि बीस साल ज्यादा है! तो दुनिया में पूर्णता तो कहीं भी नहीं होती।

आदमी किस-किस बात के लिए क्या-क्या तर्क नहीं खोज सकता है! ऐसी कोई बात आपने सुनी, जिसके विपरीत तर्क न खोजा जा सके? या ऐसी कोई बात सुनी, जिसके पक्ष में तर्क न खोजा जा सके? तर्क का अपना कोई पक्ष नहीं है, न कोई विपक्ष है। तर्क तो नंगी तलवार है। उससे मित्र को भी काट सकते हैं, शत्रु को भी काट सकते हैं। और चाहें तो अपने को भी काट सकते हैं। तलवार का कोई आग्रह नहीं है कि किसको काटें।

इसलिए जरा तलवार सम्हालकर हाथ में लेना। उससे क्या काट रहे हैं, थोड़ा सोच लेना। बहुत-से लोग अपने ही तर्क से खुद को काट डालते हैं।

तर्क का उपयोग करना, अगर वह अनुभव की तरफ ले जाए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह जीवन की गहराई की तरफ ले जाए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह शिखरों का दर्शन कराए। तर्क का उपयोग करना, अगर वह गहराइयों में उतारे। अगर तर्क गहराइयों में उतरने से रोकता हो, तो ऐसे तर्क को कुतर्क समझना; छोड़ देना, क्योंकि वह आत्महत्या है।

मेरी बात बुद्धि से समझें। लेकिन वह बात केवल बुद्धि की नहीं है। बुद्धि का हम उपयोग कर रहे हैं एक माध्यम की तरह, एक साधन की तरह। वह बात भाव की है। और जब तक आपके भाव में न आ जाए, तब तक यात्रा अधूरी है। और यात्रा शुरू ही करनी हो, तो मंजिल तक जाने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि तभी रहस्य खुलता है।

आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि क्या यह संभव है कि अहंकार से भरे हुए इस जगत में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर जी सके और सफल भी

हो सके? क्या जहां सारे लोग अहंकार से भरे हैं, वहां निरहंकारी होकर जीना धारा के विपरीत तैरना न होगा? क्या इससे अड़चन, कठिनाइयां, असफलताएं न आएंगी?

थोड़ा समझें। पहली तो बात कि क्या अहंकार से भरे हुए इस जगत में कोई व्यक्ति निरहंकारी होकर सफल हो सकता है? निरहंकार सफलता की मांग नहीं करता। अहंकार सफलता की मांग करता है। निरहंकार सफलता की मांग ही नहीं करता।

सफलता का मतलब क्या है? सफलता का मतलब है कि मैं दूसरों से आगे। सफलता का मतलब है कि क्या मैं दूसरों को असफल कर सकूंगा? सफलता का मतलब है, क्या मैं दूसरों को पीछे छोड़कर उनके आगे खड़ा हो सकूंगा? सफलता का अर्थ है, महत्वाकांक्षा, एंबीशन। ये सब तो अहंकार के लक्षण हैं। अहंकार कहता है कि मुझे आगे खड़े होना है, नंबर एक होना है। नंबर दो में बड़ी पीड़ा है। पंक्ति में पीछे खड़ा हूं, क्यू में, तो भारी दुख है। जितना पीछे हूं, उतनी पीड़ा है। नंबर एक होना है।

अहंकार की खोज महत्वाकांक्षा की खोज है। और जब मुझे नंबर एक होना है, तो दूसरों को मुझे हटाना पड़ेगा; और दूसरों को मुझे रौंदना पड़ेगा; और दूसरों के सिरों का मुझे सीढ़ियों की तरह उपयोग करना पड़ेगा; और दूसरों के ऊपर, छाती पर चढ़कर मुझे आगे जाना पड़ेगा। सिंहासनों के रास्ते लोगों की लाशों से पटे हैं।

तो अहंकार की तो खोज ही यही है कि मैं सफल हो जाऊं। तो आपको ख्याल में नहीं है। जब आप पूछते हैं कि अगर मैं निरहंकारी हो जाऊं, तो क्या मैं सफल हो सकूंगा? इसका मतलब हुआ कि आप निरहंकारी भी सफल होने के लिए होना चाहते हैं! तो आप चूक गए बात ही।

निरहंकारी होने का अर्थ यह है कि सफलता का मूल्य अब मेरा मूल्य नहीं है। मैं कहां खड़ा हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं पंक्ति में सबसे पीछे खड़ा हूं, तो भी उतना ही आनंदित हूं, जितना प्रथम खड़ा हो जाऊं।

जीसस ने कहा है, इस जगत में जो सबसे पीछे खड़े हैं, मेरे प्रभु के राज्य में वे सबसे प्रथम होंगे। लेकिन इस जगत में जो सबसे पीछे खड़े हैं!

निरहंकार का मतलब है कि पीछे खड़े होने में भी मुझे उतना ही मजा है। मेरे मजे में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह मेरे खड़े होने में है। मेरे होने में मेरा मजा है।

लाओत्से ने कहा है, मुझे कभी कोई हरा न सका, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हारा हुआ हूं। मेरा कोई कभी अपमान न कर सका, क्योंकि मैंने अपने मान की कोई चेष्टा नहीं की। और सभाओं में जहां लोग जूते उतारते हैं, वहां मैं बैठ जाता हूं, ताकि कभी किसी को उठाने का मौका न आए। तो लाओत्से ने कहा है कि मेरी विजय असंदिग्ध है। मुझे कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं लड़ने के पहले ही हार जाता हूं। मैं हारा ही हुआ हूं।

निरहंकार का अर्थ है कि जो कहता है, हमने तुम्हारे लड़ने की नासमझी, विजय की मूढ़ता, तुम्हारा संघर्ष, तुम्हारी महत्वाकांक्षा, इसका पागलपन अच्छी तरह समझ लिया और अब हम इसमें सम्मिलित नहीं हैं। निरहंकार सफल नहीं होना चाहता।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल होगा नहीं। बारीक फासले हैं। निरहंकार सफल नहीं होना चाहता, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह सफल नहीं होगा। वही सफल होता है। लेकिन उसकी सफलता की यात्रा का पथ बिल्कुल दूसरा है।

लोग धन इकट्ठा कर लेते हैं बाहर का। निरहंकारी भीतर के धन को उपलब्ध हो जाता है। लोग बाहर की विजय इकट्ठी कर लेते हैं। निरहंकारी भीतर उस जगह पहुंच जाता है, जहां कोई हार संभव नहीं है। लोग जीवन

के लिए सामान जुटा लेते हैं, निरहंकारी जीवन को ही पा लेता है। लोग क्षुद्र को इकट्ठा करने में समय व्यतीत कर देते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं; निरहंकारी विराट से जुड़ जाता है।

निरहंकार की सफलता अदभुत है। लेकिन वह सफलता का आयाम दूसरा है। उसे कौड़ियों में, रुपए-पैसे में नहीं तौला जा सकता। इस संसार की सफलता से उस सफलता का कोई सीधा संबंध नहीं है। लेकिन इस संसार में भी निरहंकारी से ज्यादा शांत और आनंदित आदमी नहीं पाया जा सकता।

तो अगर आप सफल होना चाहते हैं, तो कृपा करके अहंकार के रास्ते पर ही चलें। अगर आपको सफलता की मूढ़ता दिखाई पड़ गई है कि सफल होकर भी कौन सफल हुआ है? कौन नेपोलियन, कौन सिकंदर, कहां है? किसने क्या पा लिया है? अगर आपको यह समझ में आ गया हो, तो सफलता शब्द को छोड़ दें। वह अज्ञानपूर्ण है। बच्चों के लिए शोभा देता है। आप सफलता की बात ही छोड़ दें।

किसी से आगे होने का मतलब भी क्या है? और आगे होकर भी क्या करिएगा? आगे ही क्यू में खड़े हो गए, तो वहां है क्या? जो आगे खड़े हो जाते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। क्योंकि फिर उनको तकलीफ यह होती है कि अब क्या करें!

सिकंदर से किसी ने कहा था कि अगर तू सारी दुनिया जीत लेगा, तो तूने कभी सोचा है कि फिर क्या करेगा! तो सिकंदर एकदम उदास हो गया था और उसने कहा कि नहीं, मुझे यह ख्याल नहीं आया। लेकिन तुम ऐसी बात मत करो। इससे मन बड़ा उदास होता है। कि अगर मैं सारी दुनिया जीत लूंगा, तो कोई दूसरी दुनिया तो है नहीं। तो फिर मैं क्या करूंगा!

पूछें राष्ट्रपतियों से, प्रधानमंत्रियों से कि जब वे क्यू के आगे पहुंच जाते हैं, तो वहां कोई बस भी नहीं जिस पर सवार हो जाएं। वहां कुछ भी नहीं

है। बस, क्यू के आगे खड़े हैं। और पीछे से लोग धक्का दे रहे हैं, क्योंकि वे आगे आने की कोशिश कर रहे हैं।

और वह जो आगे आ गया है, उसकी हालत ऐसी हो जाती है कि अब वह यह भी नहीं कह सकता कि अपनी पूंछ कट गई; यहां आकर कुछ मिला नहीं। और अब पीछे लौटने में भी बेचैनी मालूम पड़ती है कि अब क्यू में कहीं भी खड़ा होना बहुत कष्टपूर्ण होगा। इसलिए वह कोशिश करता है कि जमा रहे वहीं।

लेकिन वह अकेला ही तो नहीं है। सारी दुनिया वहीं पहुंचने की कोशिश कर रही है। तो पीछे धक्के हैं! लोग टांग खींच रहे हैं। सब उतारने की कोशिश में लगे हैं। सब मित्र भी शत्रु हैं वहां। क्योंकि वे जो आस-पास खड़े हैं, वे सब वहीं पहुंचना चाह रहे हैं।

इसलिए राजनीतिज्ञ का कोई दोस्त नहीं होता। हो नहीं सकता। सब मित्र शत्रु होते हैं। मित्रता ऊपर-ऊपर होती है, भीतर शत्रुता होती है। क्योंकि वे भी उसी जगह के लिए, क्यू में नंबर एक आने की कोशिश में लगे हैं।

इसलिए राजनीतिज्ञ को जितना अपने शत्रुओं से सावधान रहना पड़ता है, उससे ज्यादा अपने मित्रों से। क्योंकि शत्रु तो काफी दूर रहते हैं, उनके आने में काफी वक्त लगता है। उतनी देर में कुछ तैयारी हो सकती है। मित्र बिल्कुल करीब रहते हैं। जरा-सा धक्का और वे छाती पर सवार हो जाएंगे। तो उनको ठिकाने पर रखना पड़ता है चौबीस घंटे।

तो प्राइम मिनिस्टर्स का काम इतना है कि अपने कैबिनेट के मित्रों को ठिकाने पर रखे। कि कोई भी जरा ज्यादा न हो जाए! और जरा ज्यादा अकड़ न दिखाने लगे, और जरा तेजी में न आ जाए कोई। तेजी में आया, तो उसको दुरुस्त करना एकदम जरूरी है। क्योंकि वह वही काम कर रहा है, जो कि पहले इन सज्जन ने किया था!

तो यह जो मूढ़ता है, जिसको दिखाई पड़ जाए--चाहे धन का हो, चाहे पद का हो, चाहे यश का हो--जिसको यह मूढ़ता दिखाई पड़ जाए कि यह विक्षिप्तता है, कि पहले पहुंचकर करिएगा क्या! तो आदमी निरहंकार की यात्रा पर चलता है।

निरहंकार सफलता-असफलता की व्यर्थता का बोध है। लेकिन तब सफलता होती है। पर वह आंतरिक है। हो सकता है, इस जगत में उसका कोई मूल्यांकन भी न हो। बुद्ध को कितनी सफलता मिली, हम कैसे आंकें? क्योंकि बैंक बैलेंस तो कुछ है नहीं। बुद्ध को कुछ मिला कि नहीं मिला, हम कैसे पहचानें? क्योंकि इतिहास में कहीं कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। जो मिला है, वह कुछ दूसरे आयाम, किसी दूसरे डायमेंशन का है। इस जगत में उसकी कोई पहचान नहीं है।

लेकिन फिर भी हमको उसकी सुगंध लगती है। बुद्ध के उठने में, बैठने में हमें लगता है कि कुछ मिल गया है। उनकी आंखों में लगता है कि कुछ मिल गया है। उनका मौन, उनकी शांति, उनका आनंद! जीवन में उनका अभय, जीवन के प्रति उनकी गहन आस्था! मृत्यु से भी जरा-सा संकोच नहीं। खो जाने की सदा तैयारी। जैसे वह पा लिया हो, जो खोता ही नहीं है। अमृत का कोई अनुभव उन्हें हुआ है। उसकी हमें सुगंध, उसकी थोड़ी झलक, उसकी भनक, उनके स्पर्श से, उनकी मौजूदगी से लगती है। लेकिन संसार की भाषा में उसे तौलने का कोई उपाय नहीं, कोई तराजू नहीं, कोई कशिश नहीं कि नाप लें, जांच लें, क्या मिला है।

सफलता तो निरहंकार की है। सच तो यह है कि सिर्फ निरहंकार ही सफल होता है। लेकिन वे फल, जो निरहंकार की सफलता में लगते हैं, आंतरिक हैं, भीतरी हैं। संसार की सफलता निरहंकार की सफलता नहीं है। लेकिन संसार की कोई सफलता सफलता ही नहीं है।

तो यह मत पूछें। और यह भी मत पूछें कि इतने जहां लोग अहंकार से भरे हैं, अगर हम इन सबके विपरीत बहने लगें, तो बड़ी अड़चन होगी! आप गलती में हैं। अहंकार का मतलब ही होता है, धारा के विपरीत बहना। अहंकार का मतलब होता है कि नदी से विपरीत बहना। नदी की धार बह रही है पश्चिम की तरफ, तो आप बह रहे हैं पूरब की तरफ। अहंकार का मतलब ही होता है, उलटे जाना। क्योंकि लड़ने में अहंकार का रस है। जब धारा से कोई विपरीत लड़ता है, तभी तो पता चलता है कि मैं हूं। जब आप नदी में धारा के साथ बहते हैं, तो कैसे पता चलेगा कि आप हैं! जब आप लड़ते हैं धारा से, तब पता चलता है कि मैं हूं।

तो अहंकार है, जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकार है, धारा के साथ। माना कि और सब लोग जो ऊपर की तरफ जा रहे हैं धारा में, आप उनसे नीचे की तरफ जाएंगे। लेकिन आप यह मत सोचिए कि इससे वे दुखी होंगे। इससे वे प्रसन्न होंगे, क्योंकि एक कांपिटीटर कम हुआ, एक प्रतियोगी अलग हटा।

इसलिए आप जरा देखें, अहंकारी भी निरहंकारियों को सम्मान देते हैं! राजनीतिज्ञ भी कभी साधु के चरणों में आकर बैठता है। यह आदमी अलग हट गया मैदान से। एक दुश्मन कम हुआ। इसने लड़ाई छोड़ दी। यह बहने लगा धारा में।

तो आपको लगता है कि आप विपरीत धारा में बहेंगे निरहंकारी होकर, तो गलत लगता है। आप अहंकारी होकर धारा के विपरीत बह रहे हैं, जीवन की धारा के विपरीत। निरहंकारी होकर आप जीवन की धारा में बहेंगे। हां, और अहंकारियों के विपरीत आप जाएंगे, लेकिन इससे कोई अड़चन न होगी। अड़चन हो सकती है, अगर आप निरहंकार से भी संसार का धन, संसार की प्रतिष्ठा और पद पाना चाहते हों। तो हो सकती है।

सुना है मैंने, एक सम्राट प्रार्थना कर रहा था एक मंदिर में। वर्ष का पहला दिन था और सम्राट वर्ष के पहले दिन मंदिर में प्रार्थना करने आता था। वह प्रार्थना कर रहा था और परमात्मा से कह रहा था कि मैं क्या हूं! धूल हूं तेरे चरणों की। धूल से भी गया बीता हूं। पापी हूं। मेरे पापों का कोई अंत नहीं है। दुष्ट हूं, क्रूर हूं, कठोर हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं। आई एम जस्ट ए नोबडी, ए नथिंग। बड़े भाव से कह रहा था।

और तभी पास में बैठा एक फकीर भी परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था और वह भी कह रहा था कि मैं भी कुछ नहीं हूं। आई एम नोबडी, नथिंग। सम्राट को क्रोध आ गया। उसने कहा, लिसेन, हू इ.ज क्लेमिंग दैट ही इ.ज नथिंग? एंड बिफोर मी! सुन, कौन कह रहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं? और मेरे सामने! जब कि मैं कह रहा हूं कि मैं कुछ भी नहीं हूं, तो कौन प्रतियोगिता कर रहा है?

जो आदमी कह रहा है, मैं कुछ भी नहीं हूं, वह भी इसकी फिक्र में लगा हुआ है कि कोई दूसरा न कह दे कि मैं कुछ भी नहीं हूं। कोई प्रतियोगिता न कर दे। अब जब तुम कुछ भी नहीं हो, तो अब क्या दिक्कत है! अब क्या डर है! लेकिन कहीं दूसरा इसमें भी आगे न निकल जाए!

अहंकार के खेल बहुत सूक्ष्म हैं। तो अगर आप किसी निरहंकारी से कहें कि तुमसे भी बड़े निरहंकारी को मैंने खोज लिया है, तो उसको भी दुख होता है, कि अच्छा, मुझसे बड़ा? मुझसे बड़ा भी कोई विनम्र है? तुम गलती में हो। मैं आखिरी हूं। उसके आगे, मुझसे बड़ा विनम्र कोई भी नहीं है। उसको भी पीड़ा होती है। निरहंकारी को भी लगता है कि मुझसे आगे कोई न निकल जाए! तो फिर यह अहंकार की ही यात्रा रही। फिर यह निरहंकार झूठा है, थोथा है।

निरहंकार का मतलब है, हम प्रतियोगिता के बाहर हट गए। अब हमसे कोई आगे-पीछे कहीं भी हो, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। हम अपने होने से राजी हो गए। अब हमारी दूसरे से कोई स्पर्धा नहीं है।

निरहंकार का मतलब है, मैं जैसा हूं, हूं। अब मैं किसी के आगे और पीछे अपने को रखकर नहीं सोचता। अब मैं अपनी तुलना नहीं करता हूं। और मेरा मूल्य मैं तुलना से नहीं आंकता हूं।

जिस दिन कोई व्यक्ति अपना मूल्य तुलना से नहीं आंकता, उसने संसार के तराजू से अपने को हटा लिया। लेकिन ऐसा व्यक्ति परमात्मा की आंखों में मूल्यवान हो जाता है। जो व्यक्ति पड़ोसियों की आंखों का मूल्य खोने को राजी है, वह परमात्मा की आंखों में मूल्यवान हो जाता है। और जो व्यक्ति पड़ोसियों की आंखों में ही अपने मूल्य को थिर करने में लगा है, उसका कोई मूल्य परमात्मा की आंखों में नहीं हो सकता है।

यहां से जो हटता है प्रतियोगिता से, तत्क्षण परमात्मा के हाथों में उसका गौरव है। इसलिए जीसस ने कहा कि जो यहां अंतिम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जाएंगे।

लेकिन आप अंतिम होने की कोशिश इसलिए मत करना कि प्रभु के राज्य में प्रथम होना है! नहीं तो आप अंतिम हो ही नहीं रहे हैं।

जीसस जिस दिन पकड़े गए और जिस दिन, दूसरे दिन उनकी मौत हुई, रात जब उनके शिष्य उन्हें छोड़ने लगे, तो एक शिष्य ने उनसे पूछा कि जाते-जाते यह तो बता दो! माना कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में हम प्रथम होंगे, लेकिन हम भी बारह हैं। तो सबसे प्रथम कौन होगा? माना कि तुम तो प्रभु के पुत्र हो, तो बिल्कुल सिंहासन के बगल में बैठोगे। लेकिन तुम्हारे बगल में कौन बैठेगा?

वे बारह जो शिष्य हैं, उनको भी चिंता है कि वहां बारह की पोजीशन! कौन कहां बैठेगा? तो बात ही चूक गई। जीसस को खो गए। फिर जीसस को समझे ही नहीं।

प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे, यह परिणाम है, अगर आप अंतिम होने को राजी हैं। लेकिन अगर यह आपकी वासना है, तो यह कभी भी नहीं होगा। क्योंकि तब आप अंतिम होने को राजी ही नहीं हैं। तब तो आप प्रथम ही होने को राजी हैं। यह संसार हो कि वह संसार हो, कहीं भी, लेकिन होना प्रथम है। आप लगे हैं उपद्रव में प्रतियोगिता के।

निरहंकार का अर्थ है कि परमात्मा की आंखों में जैसा भी मैं हूं, मैं आनंदित हूं। और अब मैं किसी से तुलना नहीं करता हूं। और मैं छोड़ता हूं प्रतियोगिता। यह समझ, यह बोध जिसे आ जाए, फिर वह इसकी फिक्र नहीं करेगा कि क्या तकलीफें होंगी। कोई तकलीफ न होगी। सब तकलीफें अहंकार से होती हैं। निरहंकारी को कोई भी तकलीफ नहीं है। चुभता ही कांटा, अहंकार के घाव में है।

एक आदमी निकला और उसने नमस्कार नहीं किया। रोज करता था। तकलीफ शुरू हो गई! कुछ भी नहीं था। यह हाथ जोड़ लेता था, तो क्या मिलता था! और आज नहीं जोड़े, तो क्या तकलीफ हो रही है! किसी ने गाली दे दी, तो तकलीफ हो गई! किसी ने जरा ढंग से न देखा, तो तकलीफ हो गई! रास्ते से जा रहे थे, कोई हंसने लगा, तो तकलीफ हो गई! कहां, यह घाव है कहां?

यह आपका अहंकार है, जिसमें यह घाव है। तो आप सोचते हैं कि कोई हंस रहा है, तो बस, मुझे ही सोचकर हंस रहा है। कोई गाली दे रहा है, तो मुझे नीचे उतार रहा है। आप ऊपर चढ़े क्यों हैं? कोई गाली भी देकर कितना नीचे उतारेगा? आप उससे पहले ही नीचे खड़े हो जाएं।

कोई सम्मान नहीं कर रहा है, तो पीड़ा हो रही है। क्योंकि सम्मान की मांग है। दुख दूसरा नहीं दे रहा है। दुख का घाव आप पहले बनाए हैं; दूसरा तो घाव को छू रहा है सिर्फ।

अहंकार छूटते ही पीड़ा का विसर्जन हो जाता है। आपका घाव ही समाप्त हो गया।

आपने ख्याल किया है, अगर पैर में चोट लग जाए किसी दिन, तो फिर दिनभर उसी जगह चोट लगती है। लेकिन आपने ख्याल किया कि सारी जमीन आपके घाव की इतनी फिक्र कर रही है! दरवाजे से निकलें, तो दरवाजा उसी में चोट मारता है। कुर्सी के पास जाएं, तो कुर्सी उसमें चोट मारती है। बच्चे से बात करने लगें, तो बच्चा उस पर पैर रख देता है। यह मामला क्या है कि सारी दुनिया को पता हो गया है कि आपके पैर में चोट लगी है! और सब उसी को चोट मार रहे हैं!

किसी को पता नहीं है। लेकिन आज आपको चोट लगती है, क्योंकि घाव है। कल भी लगती थी, लेकिन पता नहीं चलता था, क्योंकि घाव नहीं था। कल भी इस बच्चे ने यहीं पैर रखा था, और यह कुर्सी कल भी यहीं छू गई थी, लेकिन तब आपको पता भी नहीं चला था, क्योंकि घाव नहीं था।

अहंकार घाव है। फिर हर चीज उसी में लगती है। आप तैयार ही खड़े हैं कि आओ और लगो! और जब तक कुछ न लगे, तब तक आपको बेचैनी लगती है कि आज बात क्या है, कुछ लग नहीं रहा है! और हर आदमी सम्हला हुआ चल रहा है कि कोई न कोई लगाने आ रहा है।

इतनी भीड़ है, इतनी बड़ी दुनिया है, किसी को मतलब है आपसे! कोई आपको चोट पहुंचाने को उत्सुक नहीं है। और अगर कोई पहुंचा भी देता है, तो वह चोट आपको इसलिए पहुंचती है कि आप घाव तैयार रखे हैं। नहीं तो पता भी नहीं चलता। ठीक था, किसी ने गाली दी और आप अपने रास्ते पर चले गए।

बुद्ध को लोगों ने गालियां दी हैं। तो बुद्ध ने कहा है कि जब तुम गाली देते हो, तब मैं सोचता हूं कि तुम किसको गाली दे रहे हो! इस शरीर को? तो यह तो मिट ही जाएगा। और जो मिट ही जाने वाला है उसके साथ गाली का क्या लेना-देना! तुम मुझको गाली दे रहे हो? तुम्हें मेरा क्या पता होगा? तुम्हें अपना ही पता नहीं है। तो मैं सोचता हूं और हंसता हूं कि क्या हो गया है!

स्वामी राम कहते थे कि कोई उन्हें गाली दे दे, तो वे हंसते हुए आते थे और कहते थे, आज बाजार में बड़ा मजा आ गया। राम को लोग गालियां देने लगे। और हम खड़े होकर हंसने लगे कि अच्छे फंसे राम! और चाहो नाम, उपद्रव होगा!

जब वे पहली दफा अमेरिका गए, तो लोग समझे नहीं कि वे किसको राम कहते हैं। वे खुद को ही राम कहते थे, खुद के शरीर को। वे कहते कि राम को आज बड़ी भूख लगी है; हम बड़े हंसने लगे। या राम को लोगों ने गालियां दीं, और हम हंसने लगे। तो लोग पूछते कि आप किसकी बात कर रहे हैं? तो वे कहते, इस राम की। इसको जब गाली पड़ती है, तो हम पीछे खड़े होकर हंसते हैं कि देखो, अब क्या होता है! अब यह राम क्या करता है! यह अहंकार अब क्या करता है!

अगर आप पीछे खड़े होकर हंसने लगें, तो फिर यह कुछ भी नहीं कर सकेगा। यह गिर ही जाएगा। यह करता ही तब तक है, जब तक आप मानते हैं कि यही मैं हूं। जब तक यह आइडेंटिफिकेशन है, यह तादात्म्य है, तभी तक इसकी पीड़ा है।

अहंकार से हटकर देखें। अहंकार से हटते ही आप नरक से हट गए। अहंकार से हटते ही स्वर्ग का द्वार खुल गया। अहंकार से हटते ही इस जगत में आपका न कोई संघर्ष है, न कोई प्रतिस्पर्धा है। अहंकार से हटते ही यह

जगत आपको स्वीकार कर लेगा, जैसे आप हैं। अहंकार से हटते ही आप परमात्मा की आंखों में ऊपर उठ गए।

अब हम सूत्र को लें।

और यदि तू मन को मेरे में अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन, अभ्यासरूप-योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।

कृष्ण ने कहा, और अगर तू पाए कि एकदम से भाव कैसे करूं, और एकदम से मन को कैसे लगा दूं प्रभु में, और एकदम से कैसे डूब जाऊं, लीन हो जाऊं; अगर तुझे ऐसा प्रश्न उठे कि कैसे, तो फिर अभ्यासरूप-योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने की इच्छा कर।

यह बात समझ लेने जैसी है।

दो तरह के लोग हैं। एक तो वे लोग हैं, जिनको यह कहते से ही कि डूब जाओ, डूब जाएंगे। वे नहीं पूछेंगे, कैसे?

छोटे बच्चे हैं। उनसे कहो कि नाचो और नाच में डूब जाओ। तो वे यह नहीं पूछेंगे, कैसे? नाचने लगेंगे और डूब जाएंगे। और अगर कोई बच्चा पूछे कैसे, तो समझना कि बूढ़ा उसमें पैदा हो गया, वह अब बच्चा है नहीं। कैसे का मतलब ही यह है कि पहले कोई तरकीब बताओ, तब हम डूबेंगे। डूब सीधा नहीं सकते। इसका मतलब यह हुआ कि डूबने और हमारे बीच में कोई बाधा है, जिसको तोड़ने के लिए तरकीब की जरूरत होगी।

बच्चा डूब जाएगा; नाचने लगेगा। बच्चा जानता ही है। खेल में डूब जाता है। बच्चे को खेल से निकालना पड़ता है, डुबाना नहीं पड़ता। बच्चा डूबा होता है; मां-बाप को खींच-खींचकर बाहर निकालना पड़ता है, कि निकल आओ। अब चलो। और वह है कि खिंचा जा रहा है। खेल में डूबा हुआ था। ये मां-बाप उसे कहां खाने की, पीने की, सोने की, व्यर्थ की बातें कर रहे हैं! वह

लीन था। उस लीनता में वह अस्तित्व के साथ एक था। चाहे वह गुड्डी हो, चाहे वह कोई खिलौना हो, चाहे कोई खेल हो। वह जानता है।

बच्चे कभी नहीं पूछते कि खेल में कैसे डूबें? आपने किसी बच्चे को सुना है पूछते कि खेल में कैसे डूबें? वह डूबना जानता है। वह पूछता नहीं।

जो लोग बच्चों की तरह ताजे होते हैं--थोड़े से लोग, और उनकी संख्या रोज कम होती जाती है--वे लोग सीधे डूब सकते हैं।

पुरानी कहानियां हैं साधकों की। तिलोपा ने अपने शिष्य नारोपा को कहा कि तू आंख बंद कर और डूब जा। और नारोपा ने आंख बंद कर लीं और डूब गया। और ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। इतना मामला आसान! हम भी आंख बंद करते हैं। और कोई कितना ही कहे, डूब जाओ, आंख बंद हो जाती है, विचार चलते रहते हैं। डूबने का कुछ पता नहीं चलता। बल्कि आंख बंद करके और ज्यादा चलने लगते हैं। आंख खुली रहती है, थोड़े कम चलते हैं। बाहर उलझे रहते हैं, तो थोड़ा ख्याल कम रहता है। आंख बंद की कि मुश्किल हो जाती है।

आपसे लोग कहते हैं, एकांत में बैठ जाओ। आप कहते हैं, एकांत में तो और मुसीबत हो जाती है। इतना तो लोगों से बातचीत करते रहते हैं, तो मन सुलझा रहता है। उलझा रहता है, इसलिए लगता है, सुलझा है! अकेले में तो हम ही रह जाते हैं, और बड़ी तकलीफ होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने डाक्टर के पास गया था। और डाक्टर से कहने लगा, एक बड़ी मुसीबत हो गई है। सुबह-सांझ, रात-सुबह, जागूं कि सोऊं, बस एक मुश्किल हो गई है, अपने से बातें, अपने से बातें, अपने से बातें करने में लगा हूं। कुछ इलाज?

डाक्टर ने कहा, इतने परेशान मत होओ। लाखों लोग अपने से बातें करते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, आप समझे नहीं। तुम्हें पता नहीं है, अपने

से बात करने से मैं भी इतना न घबड़ाता। लेकिन मैं इतना उबाने वाला हूं कि अभी तक मैं दूसरों को बोर करता था, अब खुद ही को कर रहा हूं। अभी तक दूसरों को उबाता था। तब तक भी थोड़ी राहत थी। अब मैं अपने को ही उबाता हूं चौबीस घंटे। वही बातें जो हजार दफे कह चुका हूं, कह रहा हूं।

इसलिए हम भागते हैं अकेलेपन से। जल्दी पकड़ो किसी को। कहीं भी कोई मिल जाए, तो एकदम झपट पड़ते हैं, आक्रमण कर देते हैं। हमारे प्रश्न, हमारी बातचीत कुछ नहीं है, भीतर की बेचैनी है।

अब मौसम आपको भी पता है कि कैसा है। जिससे आप पूछ रहे हैं, उसको भी पता है कि कैसा है। आप कहते हैं, कहो, कैसा मौसम है?

क्या पूछना है! नहीं लेकिन सिलसिला शुरू कर रहे हैं आप सिर्फ। ये तो सिर्फ ट्रिक्स हैं प्राथमिक। फिर जल्दी से आप जो आपके भीतर उबल रहा है, वह उसके ऊपर उबाल देंगे। फिर जो ज्यादा ताकतवर होगा, वह दूसरे को दबाकर उसकी खोपड़ी में बातें डालकर भाग खड़ा होगा। जो कमजोर होगा, वह बेचारा सुन लेगा, कि ठीक है। अब दुबारा जरा सावधान रहना इस आदमी से। जब यह पूछे कि मौसम कैसा है, तभी निकल जाना।

लेकिन अकेले में घबड़ाहट होती है, क्योंकि अकेले में आप ही अपने से पूछ रहे हैं कि मौसम कैसा है और आपको पता है कि मौसम कैसा है। कुछ... ।

लेकिन तिलोपा ने नारोपा को कहा, आंख बंद कर और डूब जा। और वह डूब गया। छोटे बच्चे जैसा रहा होगा।

जमीन बचपन में थी। अब जमीन जवान है; अडल्ट हो गई है। हजार, दो हजार, तीन हजार साल पहले, पांच हजार साल पहले जो लोग थे, बच्चों जैसे थे। उनसे कहा कि डूब जाओ, तो वे डूब गए। उन्होंने नहीं पूछा कि कैसे? हम पूछेंगे, कैसे?

तो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि अगर तू डूब सकता हो मुझमें, तो डूब जा। फिर तो कोई बात करने की नहीं है। लेकिन अर्जुन सुसंस्कृत क्षत्रिय है। पढ़ा-लिखा है। उस समय का बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी है। तो कृष्ण को भी शक है कि वह डूब सकेगा कि नहीं। तो वे कहते हैं, और अगर न डूब सके, तो फिर अभ्यासरूप-योग द्वारा मुझको प्राप्त होने की इच्छा कर। फिर तुझे अभ्यास करना पड़ेगा।

भक्त बिना योग के पहुंच जाता है। जो भक्त नहीं हो सकता, उसको योग से जाना पड़ता है। योग का मतलब है, टेक्नालाजी। अगर सीधे नहीं डूब सकते, तो टेक्नीक का उपयोग करो। तो फिर एक बिंदु बनाओ। उस पर चित्त को एकाग्र करो। कि एक मंत्र लो। सब शब्दों को छोड़कर, ओम, ओम, एक ही मंत्र को दोहराओ, दोहराओ। सारा ध्यान उस पर एकाग्र करो।

अगर मंत्र से काम न चलता हो, तो शरीर को बिल्कुल थिर करके आसन में रोक रखो। क्योंकि जब शरीर बिल्कुल थिर हो जाता है, तो मन को थिर होने में सहायता पहुंचाता है। तो शरीर को बिल्कुल पत्थर की तरह, मूर्ति की तरह थिर कर लो। सिद्धासन है, पद्मासन है, उसमें बैठ जाओ।

अगर आंख खोलने से बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, और आंख बंद करने से भीतर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, तो आधी आंख खोलो। तो नाक ही दिखाई पड़े बस, इतना बाहर। और भीतर भी नहीं, बाहर भी नहीं। तो नाक पर ही अपने को थिर कर लो।

ये सब टेक्नीक हैं। ये उनके लिए हैं, जो भक्त नहीं हो सकते। जो प्रेम नहीं कर सकते, उनके लिए हैं। योग उनके लिए है, जो प्रेम में असमर्थ हैं। जो प्रेम में समर्थ हैं, उनके लिए योग की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन जो प्रेम में समर्थ नहीं हैं, उनको पहले अपने को तैयार करना पड़े कि कैसे डूबें। तो नाक के बिंदु पर डूबो; कि नाभि पर ध्यान को केंद्रित करो; कि बंद कर लो अपनी

आंखों को और भीतर एक प्रकाश का बिंदु कल्पित करो, उस पर ध्यान को एकाग्र करो। वर्षों मेहनत करो। अभ्यासरूप-योग द्वारा!

और जब इन छोटे-छोटे, छोटे-छोटे प्रयोगों से अभ्यास करते-करते वर्षों में तुम इस जगह आ जाओ कि अब तुम न पूछो कि कैसे। क्योंकि तुम्हें पता हो गया कि ऐसे डूबा जा सकता है; तब सीधे परमात्मा में डूब जाओ। तब अपने बिंदु, और अपने मंत्र, और अपने यंत्र, सब छोड़ दो, और सीधी छलांग लगा लो।

जो सीधा कूद सके, इससे बेहतर कुछ भी नहीं है। प्रेमी सीधा कूद सकता है। लेकिन अगर बुद्धि बहुत काम करती हो, तो फिर पूछेगी, हाउ? कैसे? तो फिर योग की परंपरा है, पतंजलि के सूत्र हैं, फिर साधो। फिर उनको साध-साधकर पहले सीखो एकाग्रता, फिर तन्मयता में उतरो।

अभ्यासरूप-योग के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर। और यदि तू ऊपर कहे हुए अभ्यास में भी असमर्थ हो... ।

यह भी हो सकता है कि तू कहे कि बड़ा कठिन है। कहां बैठें! और कितना ही बैठो सम्हालकर, शरीर कंपता है। और मन को कितना ही रोको, मन रुकता नहीं। और ध्यान लगाओ, तो नींद आती है, तल्लीनता नहीं होती।

अगर तू इसमें भी समर्थ न हो, तो फिर एक काम कर। तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ मेरी प्राप्ति, मेरी सिद्धि को पा सकेगा।

अगर तुझे यह भी तकलीफ मालूम पड़ती हो, अगर भक्ति-योग तुझे कठिन मालूम पड़े, तो फिर ज्ञान-योग है। ज्ञान-योग का अर्थ है, योग की साधना, अभ्यास। अगर तुझे वह भी कठिन मालूम पड़ता हो, तो फिर कर्म-योग है। तो फिर तू इतना ही कर कि सारे कर्मों को मुझमें समर्पित कर दे। और ऐसा मान ले कि तेरे भीतर मैं ही कर रहा हूं। और मैं ही तुझसे करवा रहा हूं। और तू ऐसे कर जैसे कि मेरा साधन हो गया है, एक उपकरण मात्र।

न पाप तेरा, न पुण्य तेरा। न अच्छा तेरा, न बुरा तेरा। सब तू छोड़ दे और कर्म को मेरे प्रति समर्पित कर दे।

ये तीन हैं। श्रेष्ठतम तो प्रेम है। क्योंकि छलांग सीधी लग जाएगी। नंबर दो पर साधना है। क्योंकि प्रयास और अभ्यास से लग सकेगी। अगर वह भी न हो सके, तो नंबर तीन पर जीवन का कर्म है। फिर पूरे जीवन के कर्म को प्रभु-अर्पित मानकर चलता जा।

इन तीन में से ही किसी को चुनाव करना पड़ता है। और ध्यान रहे, जल्दी से तीसरा मत चुन लेना। पहले तो कोशिश करना, ख्याल करना पहले की, प्रेम की। अगर बिल्कुल ही असमर्थ अपने को पाएं कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता... ।

कुछ लोग प्रेम में बिल्कुल असमर्थ हैं। असमर्थ हो गए हैं अपने ही अभ्यास से। जैसे कोई आदमी अगर धन को बहुत पकड़ता हो, पैसे को बहुत पकड़ता हो, तो प्रेम में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि विपरीत बातें हैं। अगर पैसे को जोर से पकड़ना है, तो आदमी को प्रेम से बचना पड़ता है। क्योंकि प्रेम में पैसे को खतरा है। प्रेमी पैसा इकट्ठा नहीं कर सकता। जिनसे प्रेम करेगा, वे ही उसका पैसा खराब करवा देंगे। प्रेम किया कि पैसा हाथ से गया।

तो जो पैसे को पकड़ता है, वह प्रेम से सावधान रहता है कि प्रेम की झंझट में नहीं पड़ना है। वह अपने बच्चों तक से भी जरा सम्हलकर बोलता है। क्योंकि बाप भी जानते हैं, अगर जरा मुस्कुराओ, तो बच्चा खीसे में हाथ डालता है। मत मुस्कुराओ, अकड़े रहो, घर में अकड़कर घुसो। बच्चा डरता है कि कोई गलती तो पता नहीं चल गई! गलती तो बच्चे कर ही रहे हैं। और बच्चे नहीं करेंगे, तो कौन करेगा! तो समझता है कि कोई गड़बड़ हो गई है; जरा दूर ही रहो। लेकिन बाप अगर मुस्कुरा दे, तो बच्चा फौरन खीसे में हाथ डालता है।

तो बाप पत्नी से भी सम्हलकर बात करता है। क्योंकि जरा ही वह ढीला हुआ और उसकी जरा कमर झुकी कि पत्नी ने बताया कि उसने साड़ियां देखी हैं! फलां देखा है।

तो जिसको पैसे पर बहुत पकड़ है, वह प्रेम से तो बहुत डरा हुआ रहता है। और हम सबकी पैसे पर भारी पकड़ है। एक-एक पैसे पर पकड़ है। और बहाने हम कई तरह के निकालते हैं कि पैसे पर हमारी पकड़ क्यों है। लेकिन बहाने सिर्फ बहाने हैं। एक बात पक्की है कि पैसे की पकड़ हो, तो प्रेम जीवन में नहीं होता।

तो जितना ज्यादा पैसे की पकड़ वाला युग होगा, उतना प्रेमशून्य होगा। और प्रेमपूर्ण युग होगा, तो बहुत आर्थिक रूप से संपन्न नहीं हो सकता। पैसे पर पकड़ छूट जाएगी।

प्रेमी आदमी बहुत समृद्ध नहीं हो सकता। उपाय नहीं है। पैसा छोड़कर भाग जाएगा उसके हाथ से। किसी को भी दे देगा। कोई भी उससे निकाल लेगा।

तो हम अगर प्रेम में समर्थ हो सकें, तब तो श्रेष्ठतम। अगर न हो सकें, तो फिर अभ्यास की फिक्र करनी चाहिए। फिर योग-साधन हैं। अगर उनमें भी असफल हो जाएं, तो ही तीसरे का प्रयोग करना चाहिए, कि फिर हम कर्म को... । क्योंकि वह मजबूरी है। जब कुछ भी न बने, तो आखिरी है।

जैसे पहले आप एलोपैथ डाक्टर के पास जाते हैं। अगर वह असफल हो जाए, फिर होमियोपैथ के पास जाते हैं। वह भी असफल हो जाए, तो फिर नेचरोपैथ के पास जाते हैं। वह नेचरोपैथी है, वह आखिरी है। जब कि ऐसा लगे कि अब कुछ होता ही नहीं है; कि ज्यादा से ज्यादा नेचरोपैथ मारेगा और क्या करेगा, तो ठीक है अब। सब हार गए, तो अब कहीं भी जाया जा सकता है।

कर्म-योग आखिरी है। क्योंकि उसके बाद फिर कुछ भी नहीं है उपाय। तो सीधा कर्म-योग से प्रयोग शुरू मत करना, नहीं तो दिक्कत में पड़ जाएंगे। क्योंकि उससे नीचे गिरने की कोई जगह नहीं है।

पहले प्रेम से शुरू करना। अगर हो जाए, अदभुत। न हो पाए, तो अभी दो उपाय हैं। अभी दो इलाज बाकी हैं। फिर अभ्यास का प्रयोग करना। और जल्दी मत छोड़ देना। क्योंकि अभ्यास तो वर्षों लेता है। तो वर्षों मेहनत करना। अगर हो जाए, तो बेहतर है। अगर न हो पाए, तो फिर कर्म पर उतरना।

और ध्यान रहे, जिसने प्रेम का प्रयोग किया और असफल हुआ, और जिसने योग का अभ्यास किया--अभ्यास किया, मेहनत की--और असफल हुआ, वह कर्म-योग में जरूर सफल हो जाता है। लेकिन जिसने न प्रेम का प्रयोग किया, न असफल हुआ; न जिसने योग साधा, न असफल हुआ; वह कर्म-योग में भी सफल नहीं हो पाता।

वे दो असफलताएं जरूरी हैं तीसरे की सफलता के लिए। क्योंकि फिर वह आखिरी कदम है और जीवन-मृत्यु का सवाल है। फिर आप पूरी ताकत लगा देते हैं। क्योंकि उसके बाद फिर कोई विकल्प नहीं है। इसलिए निकृष्ट से शुरू मत करना।

कई लोग अपने को धोखा देते रहते हैं। वे कहते हैं, हम तो कर्म-योग में लगे हैं! मेरे पास लोग आ जाते हैं। धंधा करते हैं, नौकरी करते हैं। वे कहते हैं, हम तो कर्म-योग में लगे हैं! जैसे कोई भी काम करना कर्म-योग है!

कोई भी काम करना कर्म-योग नहीं है। कर्म-योग का मतलब है, काम आप नहीं कर रहे, परमात्मा कर रहा है, यह भाव। दुकान आप नहीं चला रहे, परमात्मा चला रहा है। और फिर जो भी सफलता-असफलता हो रही है, वह आपकी नहीं हो रही है, परमात्मा की हो रही है। और जिस दिन आप दीवालिया हो जाएं, तो कह देना कि परमात्मा दीवालिया हो गया। और

जिस दिन धन बरस पड़े, तो कहना कि उसका ही श्रेय है। मैं नहीं हूं। अपने को हटा लेना और सारा कर्म उस पर छोड़ देना।

अब हम कीर्तन करें। बीच में उठें मत। थोड़े-से पांच मिनट के लिए नासमझी कर देते हैं। और जब कीर्तन चलता है, तब आप खड़े हो जाते हैं, तो फिर सबको खड़ा होना पड़ता है। पांच मिनट बैठकर कीर्तन में सम्मिलित हों।

गीता दर्शन अध्याय 12

छठवां प्रवचन

कर्म-योग की कसौटी

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।। 11।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागः त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। 12।।

और यदि इसको भी करने के लिए असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग कर।

क्योंकि मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग करना श्रेष्ठ है। और त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, बुद्धि और भाव का विकास क्या साथ-साथ संभव नहीं है? स्वस्थ व्यक्ति क्या ध्यान और भक्ति एक साथ नहीं कर सकता? व्यक्ति तो पूरा है--बुद्धि भी, भाव भी, कर्म भी--तो फिर साधना का मार्ग एकांगी क्यों होना चाहिए?

व्यक्ति तो पूरा है, लेकिन वह व्यक्ति है आदर्श। वह आप नहीं हैं, जो पूरे हैं। जब व्यक्ति अपनी पूर्णता को प्रकट होता है, उपलब्ध होता है, तब उसमें

सभी बातें पूरी हो जाती हैं। उसकी बुद्धि भी उतनी ही प्रखर होती है, जितना उसका भाव। उसका कर्म, उसकी बुद्धि, उसका हृदय, सभी मिल जाते हैं, त्रिवेणी बन जाते हैं।

लेकिन यह है अंतिम लक्ष्य। आप अभी ऐसे हैं नहीं। और यात्रा करनी है आपको। तो आप तो जिस तरफ ज्यादा झुके हैं, जिस आयाम में आपकी रुचि, रुझान ज्यादा है, उससे ही यात्रा कर सकेंगे।

और आप अभी खंड-खंड हैं, अधूरे हैं। कोई है, जिसके पास भाव ज्यादा है और बुद्धि कम है। कोई है, जिसके पास कर्म की कुशलता है और कर्म का लगाव है, न बुद्धि है, न भाव है; या तुलना में कम है। और कोई है कि बुद्धि गहन है, भाव कोरा है, कर्म की वृत्ति नहीं है। ऐसे हम अधूरे-अधूरे हैं।

पूर्णता तो होगी उपलब्ध, अभी है नहीं। और यह जो अधूरा आदमी है, इसे तो अपने अधूरेपन से ही प्रारंभ करना होगा। तो जो आपके पास ज्यादा हो, वैसा ही मार्ग चुनना उचित है।

और मार्ग तो सदा ही एकांगी होता है। मंजिल पूर्ण होती है। मार्ग ही अगर पूर्ण हो, तो फिर मंजिल का कोई अर्थ ही न रहा।

मार्ग और मंजिल में फर्क क्या है? मार्ग और मंजिल में बड़ा फर्क यही है कि मार्ग तो अधूरा होगा। और इसलिए जितने लोग हैं इस जगत में, उतने मार्ग होंगे। हर आदमी अपनी जगह से चलेगा; और हर आदमी वहीं से शुरू करेगा, जहां है और जो है। पहुंचना है वहां, जहां व्यक्ति समाप्त हो जाता है, और जहां अव्यक्ति, निराकार, पूर्ण उपलब्ध होता है।

सभी नदियां यात्रा करती हैं सागर की तरफ। सागर कोई यात्रा नहीं करता। कोई नदी पूरब से चलती है, कोई पश्चिम से चलती है। कोई दक्षिण की तरफ बहती है; कोई उत्तर की तरफ बहती है। नदियों के रास्ते होंगे। और नदियों को रास्ते पकड़ने ही पड़ेंगे। अगर नदी यह सोचे कि सागर का तो कोई आयाम, कोई दिशा नहीं है, इसलिए मैं भी कोई आयाम और दिशा न

पकड़ूं, तो फिर सागर तक न पहुंच पाएगी। सागर तक पहुंचने के लिए रास्ता पकड़ना होगा।

हम जहां खड़े हैं, वहां से सागर दूर है।

तो ज्यादा विचारणीय यह नहीं है कि पूर्ण पुरुष क्या है; ज्यादा विचारणीय यह है कि अपूर्ण पुरुष आप कैसे हैं। और अपने को समझकर यात्रा पर निकलना होगा। अगर आप पैदल चल सकते हैं, तो ठीक; बैलगाड़ी से चल सकते हैं, तो ठीक; घोड़े की सवारी कर सकते हैं, तो ठीक; हवाई जहाज से यात्रा कर सकते हैं, तो ठीक।

आप क्या साधन चुनते हैं, वह आपकी सामर्थ्य पर निर्भर है। और साधन महत्वपूर्ण है। और साधन एकांगी होगा। क्योंकि जो आपका साधन है, वह दूसरे का नहीं होगा; उसमें फर्क होंगे।

एक भक्त है। अब जैसे मीरा है। मीरा को बुद्ध का मार्ग समझ में नहीं आ सकता। मीरा को--मीरा के पास है हृदय एक स्त्री का, एक प्रेमपूर्ण हृदय--इस प्रेमपूर्ण हृदय को यह तो समझ में आ सकता है कि परमात्मा से अपने को भर ले; परमात्मा को अपने में विराजमान कर ले; परमात्मा के लिए अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दे और उसे प्रवेश कर जाने दे। मीरा को बुद्ध की बात समझ में नहीं आ सकती कि अपने को सब भांति खाली और शून्य कर लिया जाए।

थोड़ा समझें। पुरुष को आसान है समझ में आना कि अपने को खाली कर लो। स्त्री को सदा आसान है समझ में आना कि अपने को भर लो, पूरी तरह भर लो। स्त्री गर्भ है, शरीर में भी और मन में भी। वह अपने को भर सकती है। भरने की वृत्ति उसमें सहज है। पुरुष अपने को खाली करता है। शरीर के तल पर भी अपने को खाली करता है। भरना उसे थोड़ा कठिन मालूम होता है।

तो मीरा को समझ में आती है बात कि परमात्मा से अपने को भर ले। गर्भ बन जाए और परमात्मा उसमें समा जाए। बुद्ध को समझ में आनी मुश्किल है। बुद्ध को लगता है, अपने को उलीच दूं और सब भांति खाली कर दूं; और जब मैं शून्य हो जाऊंगा, तो जो सत्य है, उससे मेरा मिलन हो जाएगा।

बुद्ध शून्य होकर सत्य बनते हैं। मीरा अपने को भरकर पूर्ण से सत्य बनती है। उन दोनों के रास्ते अलग हैं। न केवल अलग, बल्कि विपरीत हैं। लेकिन जहां वे पहुंच जाते हैं, वह मंजिल एक है।

मंजिल पर पहुंचकर बुद्ध और मीरा में फर्क करना मुश्किल हो जाएगा। सारा फर्क रास्ते का फर्क था। जैसे-जैसे मंजिल करीब आएगी, अंतर कम होता जाएगा। और जब मंजिल बिल्कुल आ जाएगी, तो आप मीरा की शक्ल में और बुद्ध की शक्ल में फर्क न कर पाएंगे। आप पहचान भी न पाएंगे, कौन मीरा है, कौन बुद्ध!

लेकिन यह तो आखिरी घटना है। इस आखिरी घटना के इंचभर पहले भी बुद्ध और मीरा को पहचाना जा सकता है। उनमें फर्क होंगे। यह मैंने मोटी बात कही। लेकिन एक-एक व्यक्ति में फर्क होंगे।

इसीलिए दुनिया में इतने धर्म हैं। क्योंकि अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग रास्तों से चलकर उस सत्य की झलक पाई है। और जिसने जिस रास्ते से चलकर झलक पाई है, स्वभावतः वह कहेगा, यही रास्ता ठीक है। उसके कहने में कोई गलती भी नहीं है। दूसरे रास्ते वह जानता भी नहीं है। दूसरे रास्तों पर वह चला भी नहीं है। और जिन रास्तों पर आप चले नहीं हैं, उनके संबंध में आप क्या कहेंगे? जिस रास्ते से आप गुजरे हैं, कहेंगे, यही ठीक है। और कहेंगे कि इसी पर आ जाओ। और समझाएंगे लोगों को कि कहीं भटक मत जाना किसी और रास्ते पर।

इसलिए जब दुनिया में अलग-अलग धर्मों के लोग कहते हैं कि आ जाओ हमारे रास्ते पर, तो जरूरी नहीं है कि उनके इस कहने में करुणा न हो और सिर्फ आपको बदलने की राजनैतिक आकांक्षा हो। जरूरी नहीं है। हो सकता है करुणा हो; और हो सकता है कि जिस रास्ते पर चलकर उनको आनंद की खबर मिल रही है, वे चाहते हों कि आप भी उसी पर चलें।

लेकिन इससे खतरा पैदा होता है। इससे हर रास्ते को जानने वाला दूसरे रास्ते को गलत कहने को तैयार हो जाता है। तब संघर्ष, विवाद, वैमनस्य स्वभावतः पैदा हो जाते हैं।

लेकिन अगर यह बात हमारे ख्याल में आ जाए कि जितने लोग हैं इस जमीन पर, जितने हृदय हैं, उतने ही रास्ते परमात्मा की तरफ जाते हैं। जाएंगे ही। न मैं आपकी जगह खड़ा हो सकता हूं, न आपकी जगह से चल सकता हूं। न तो मैं आपकी जगह जी सकता हूं, और न आपकी जगह मर सकता हूं। कोई लेन-देन संभव नहीं है। आप ही जीएंगे अपने लिए और आपको ही मरना पड़ेगा अपने लिए। और आप ही चलेंगे। मैं अपने ही ढंग से चलूंगा। अगर यह बोध साफ हो जाए--और होना चाहिए--तो दुनिया बेहतर हो सके।

अगर यह बोध साफ हो जाए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही रास्ते से चलेगा, अपने ही ढंग से चलेगा, तो हम धर्मों के बीच कलह का कोई कारण न खोज पाएं। लेकिन सबको ऐसा ख्याल है कि जिस रास्ते से मैं चलता हूं, वही ठीक है। उपद्रव होता है।

जैसे आप हैं, वैसा ही आपका रास्ता होगा। क्योंकि आपका रास्ता आपसे ही निकलता है। वह पहुंचेगा परमात्मा तक, लेकिन निकलता आपसे है। पहुंचते-पहुंचते आप समाप्त होते जाएंगे और जिस दिन परमात्मा पर आप पहुंच जाएंगे, पाएंगे कि आप बचे नहीं।

इसलिए आज तक किसी व्यक्ति का परमात्मा से मिलना नहीं हुआ है। जब तक व्यक्ति रहता है, तब तक परमात्मा की कोई खबर नहीं रहती। और जब परमात्मा होता है, तो व्यक्ति समाप्त हो गया होता है, मिट गया होता है, खो गया होता है।

जैसे बूंद सागर में गिरती है, तो जब तक बूंद रहती है, तब तक सागर से दूर रहती है, चाहे फासला इंचभर का ही क्यों न हो। आधे इंच का क्यों न हो, जरा-सा रत्तीभर का फासला क्यों न हो, लेकिन जब तक अभी सागर से दूर है, तभी तक बूंद है। जिस क्षण मिलेगी, बूंद खो गई और सागर ही रह गया।

तो यह कहना कि बूंद सागर से मिलती है, बड़ा मुश्किल है। मिलती तब है, जब बूंद नहीं रह जाती। और जब तक बूंद रहती है, तब तक मिलती नहीं, तब तक दूर रहती है।

आप मिट जाएंगे रास्ते पर। रास्ता आपको समाप्त कर लेगा। रास्ते का मतलब ही है, अपने मिटने का उपाय, अपने को खोने का उपाय, समाप्त करने का उपाय।

धर्म एक अर्थ में मृत्यु है और एक अर्थ में जीवन। इस अर्थ में मृत्यु है कि आप मिट जाएंगे; और इस अर्थ में महा जीवन कि परमात्मा उपलब्ध होगा। बूंद खो जाएगी और सागर हो जाएगा।

लेकिन अभी आप प्रथम चरण पर पूर्णता का ख्याल न करें। अभी तो आप अपना झुकाव समझ लें। और अपने झुकाव को समझकर चलें। अन्यथा बहुत समय, बहुत शक्ति व्यर्थ ही चली जाती है।

अब मैं देखता हूं कि अगर एक व्यक्ति ऐसे घर में पैदा हो जाए, जिसका जन्मगत संस्कार भावना का है और वह भावना वाला न हो... । एक व्यक्ति जैन घर में पैदा हो जाए, महावीर की परंपरा में पैदा हो जाए, और उसके पास हृदय हो मीरा जैसा, तो मुश्किल में पड़ेगा। अगर कोई भक्ति के संप्रदाय

में पैदा हो जाए, और उसके पास बुद्धि हो बुद्ध या महावीर जैसी, तो मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि जो सिखाया जाएगा, वह उसके अनुकूल नहीं है। और जो उसके अनुकूल हो सकता है, वह उसका संप्रदाय नहीं है।

तो अपने विपरीत चलने से बहुत कष्ट होगा। और अपने विपरीत चलकर कोई पहुंच नहीं सकता।

आज दुनिया में जो इतनी अधार्मिकता दिखाई पड़ती है, उसका एक कारण यह भी है कि आप इस बात की खोज ही नहीं करते कि आपके अनुकूल क्या है। आप इसकी फिक्र में लगे रहते हैं, मैं किस घर में पैदा हुआ हूं। कौन-सा शास्त्र मुझे पढ़ाया गया, कुरान, कि बाइबिल, कि गीता? आप इसकी फिक्र नहीं करते कि मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? क्या गीता मुझसे मेल खाएगी? या कुरान मुझसे मेल खाएगा? या बाइबिल मुझसे मेल खाएगी? जो आपसे मेल खाता हो, वही आपके लिए रास्ता है।

दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है, अगर हम धर्म को जन्म के साथ जोड़ना बंद कर दें। और बच्चों को सारे धर्मों की शिक्षाएं दी जाएं और यह बच्चे के निर्णय पर हो कि जब वह इक्कीस वर्ष का हो जाए, एक उम्र पा ले प्रौढ़ता की, तब अपना धर्म चुन ले। उसे सारे धर्मों की शिक्षा दे दी जाए और उसे अपने हृदय की पहचान के मार्ग समझा दिए जाएं और इक्कीस वर्ष का होकर वह अपना धर्म चुन ले। तो यह दुनिया ज्यादा धार्मिक हो सकती है। क्योंकि तब व्यक्ति अपने अनुकूल चुनेगा।

अभी आपकी अनुकूलता का सवाल नहीं है। संयोग की बात है कि आप कहां पैदा हो गए हैं। उससे आपका तालमेल बैठता है कि नहीं बैठता है, कहना मुश्किल है। इसलिए देखें, जब भी कोई धर्म प्रारंभ होता है, तो उसमें जो जान होती है, वह बाद में नहीं रह जाती।

अब मोहम्मद पैदा हों। तो मोहम्मद जब पैदा होते हैं, तो जो लोग मुसलमान बनते हैं, वे उनकी च्वाइस से बनते हैं। वे मुसलमान घर्म में पैदा

नहीं हुए हैं, क्योंकि मुसलमान धर्म तो था नहीं। जब मोहम्मद के प्रभाव में वे आते हैं, तो अपने चुनाव से आते हैं। वे चुनते हैं इस्लाम को। फिर उनके बच्चे तो इस्लाम में पैदा होते हैं, वे मुर्दा होंगे।

बुद्ध जब पैदा होते हैं, तो जो आदमी बौद्ध बनता है, वह चुनता है। वह सोचता है कि बुद्ध से मेरी बात मेल खाती है कि नहीं? यह मुझे अनुकूल पड़ती है या नहीं? तो वह तो चुनकर बनता है। लेकिन उसका बेटा, उसके बेटों के बेटे, वे तो बिना चुने बनेंगे।

बस, जैसे ही जन्म से धर्म जुड़ेगा, वैसे मुर्दा होता जाएगा। इसलिए बुद्ध जब जिंदा होते हैं, तो जो ताजगी होती है; महावीर जब जिंदा होते हैं, तो उनके आस-पास जो हवा होती है; मोहम्मद या जीसस जब जिंदा होते हैं, तो उनके पास जो फूल खिलते हैं, फिर वे बाद में नहीं खिलते। वे धीरे-धीरे मुर्झाते जाते हैं। मुर्झा ही जाएंगे। बाद में धर्म एक बोझ हो जाता है।

हजार, दो हजार साल पहले आपके किसी बाप-दादे ने धर्म चुना था, तो उसके लिए तो चुनाव था, क्रांति थी। आपके लिए? आपके लिए बपौती है। आपको मुफ्त मिल गया है, बिना चुनाव किए, बिना मेहनत किए, बिना सोचे, बिना समझे। बस, आपको रटा दिया गया बचपन से। तो आप उस अर्थ में बौद्ध, मुसलमान, हिंदू नहीं हो सकते।

मेरी अपनी समझ है कि दुनिया बेहतर होगी, जिस दिन हम धर्मों की शिक्षा देंगे--सब धर्मों की--और व्यक्ति को स्वतंत्र छोड़ देंगे कि अपना धर्म चुन ले। उस दिन दुनिया से धर्मों के झगड़े भी समाप्त हो जाएंगे। क्योंकि एक-एक घर में पांच-पांच, सात-सात धर्मों के लोग मिल जाएंगे। क्योंकि कोई बेटा चुनेगा सिक्ख धर्म को, कोई बेटा चुनेगा इस्लाम धर्म को, कोई बेटा हिंदू रहना चाहेगा, कोई बेटा ईसाई होना चाहेगा। यह उनकी मौज होगी। और एक घर में जब सात धर्म, आठ धर्म, दस धर्म हो सकेंगे, तो दुनिया

से धार्मिक दंगे बंद हो सकते हैं, उसके पहले बंद नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है उसके पहले बंद करने का।

इसलिए धार्मिक आदमियों के लिए तो एक बड़ी जिम्मेवारी है और वह यह कि वे अपने बच्चों को अगर सच में धार्मिक बनाना चाहते हैं, तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई न बनाएं। सिर्फ धर्मों की शिक्षा दें। और उनसे कह दें कि तुम समझ लो ठीक से, और जब तुम्हारी मौज आए, और जब तुम्हें भाव पैदा हो, तब तुम चुनाव कर लेना। और तुम जो भी चुनाव करो तुम्हारे लिए, वह तुम्हारा चुनाव है।

तो हम दुनिया से बहुत-सा उपद्रव अलग कर सकते हैं।

सभी रास्ते सही हैं। लेकिन सभी रास्ते सभी के लिए सही नहीं हैं। हर रास्ता पहुंचाता है, लेकिन हर रास्ता आपको नहीं पहुंचाएगा। आपको तो एक ही रास्ता पहुंचा सकता है। इसलिए खोजना जरूरी है कि कौन-सा रास्ता आपको पहुंचा सकता है।

एक संगीतज्ञ है। एक कवि है। एक चित्रकार है। निश्चित ही, इनके धर्म अलग-अलग होंगे। क्योंकि इनके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं।

अगर एक कवि को एक ऐसा धर्म पकड़ाया जाए, जो गणित की तरह रूखा-सूखा, नियमों का धर्म है, तो उसे समझ में नहीं आएगा। उससे कोई मेल नहीं बैठेगा। और अगर वह मजबूरी में उसको ओढ़ भी ले, तो वह ऊपर से ओढ़ा हुआ होगा। उसकी आत्मा से कभी भी उसका संबंध नहीं जुड़ेगा। वह धर्म उसके भीतर बीज नहीं बनेगा, अंकुरित नहीं होगा। उसमें फल-फूल नहीं लगेंगे। उसे तो कोई काव्य-धर्म चाहिए। ऐसा धर्म जो नाचता हो, गाता हो। उसे तो उसी धर्म से मेल बैठ पाएगा।

अब एक चित्रकार हो, एक मूर्तिकार हो, उसे तो कोई धर्म चाहिए, जो परमात्मा को सौंदर्य की भांति देखता हो। उसे तो कोई धर्म चाहिए, जो सौंदर्य की पूजा करता हो, तो ही उसके अनुकूल बैठेगा। ऐसा कोई धर्म जो

सौंदर्य का दुश्मन हो, विरोध करता हो रस का, राग का, उसके अनुकूल नहीं बैठेगा। और अगर वह किसी तरह उस धर्म में अपने को समाविष्ट भी कर ले, तो कभी भी उसका हृदय उसे छुएगा नहीं। फासला बना ही रहेगा।

एक गणितज्ञ हो और गणित की तरह साफ-सुथरा काम चाहता हो और दो और दो चार ही होते हों, तो उसे कोई कविता वाला धर्म प्रभावित नहीं कर सकता। उसे उपनिषद प्रभावित नहीं करेंगे, क्योंकि उपनिषद काव्य हैं। उसे पतंजलि का योग-सूत्र प्रभावित करेगा, क्योंकि वह विज्ञान है।

अपनी खोज पहले करनी चाहिए, इसके पहले कि आप परमात्मा की खोज पर निकलें। वह नंबर दो है। आप नंबर एक हैं। और अगर आप गलत, अपने को ही नहीं समझ पा रहे हैं ठीक से कि मैं कैसा हूं, क्या हूं, तो आप परमात्मा को न खोज पाएंगे। क्योंकि रास्ता आपसे निकलेगा।

इसलिए आत्म-विश्लेषण पहला कदम है। और ठीक आत्म-विश्लेषण न हो पाए, तो रुकना; जल्दी मत करना। कोई हर्जा नहीं है। वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष, दस वर्ष इसमें ही खोना पड़े कि मैं क्या हूं, कैसा हूं, मेरा रुझान क्या है, मेरा व्यक्तित्व क्या है, तो हर्जा नहीं है।

एक बार ठीक से आप अपनी नस को पकड़ लें और अपनी नाड़ी को पहचान लें, तो रास्ता बहुत सुगम हो जाएगा। अन्यथा आप अनेक दरवाजों पर भटकेंगे, जो दरवाजे आपके लिए नहीं थे। और आप बहुत-से रास्तों पर जाएंगे और सिर्फ धूल-धवांस खाकर वापस लौट आएंगे, क्योंकि वे रास्ते आपके लिए नहीं थे।

लेकिन तब अगर ऐसा भी हो, तो भी यह भूल मत करना कि जिस रास्ते से आपको न मिला हो, तब भी किसी से मत कहना कि वह रास्ता गलत है। क्योंकि वह रास्ता भी किसी के लिए सही हो सकता है। वह आपके लिए गलत सिद्ध हुआ है, इससे सबके लिए गलत सिद्ध नहीं हो गया है।

इतनी विनम्रता मन में रखनी ही चाहिए खोजी को कि जिस रास्ते से मैं नहीं पहुंच पाया, जरूरी नहीं है कि वह रास्ता गलत हो। इतना ही सिद्ध होता है कि मुझमें और उस रास्ते में मेल नहीं बना, तालमेल नहीं बना। मैं उस रास्ते के योग्य नहीं था। वह रास्ता मेरे योग्य नहीं था। लेकिन किसी के योग्य हो सकता है।

और उस व्यक्ति का ख्याल रखकर हमेशा एक स्मरण बनाए रखना चाहिए कि जब भी कोई चीज गलत हो, तब कहना चाहिए, मेरे लिए गलत हो गई। और जब भी कोई चीज सही हो, तो कहना चाहिए, मेरे लिए सही हो गई। लेकिन उसे सार्वजनिक, युनिवर्सल ट्रुथ, सार्वभौम सत्य की तरह घोषणा नहीं करनी चाहिए। उससे अनेक लोगों को कष्ट, पीड़ा और उलझाव पैदा होता है।

एक मित्र ने पूछा है, भक्ति-योग में आपने प्रेम को आधारभूत स्थान दिया है। पता नहीं हम सामान्य लोग प्रेम से परिचित हैं या केवल कामवासना से! दोनों में क्या फर्क है? और क्या कामवासना प्रेम बन सकती है?

पूछने जैसा है और समझने जैसा है। क्योंकि हम कामवासना को ही प्रेम समझ लेते हैं। और कामवासना प्रेम नहीं है, प्रेम बन सकती है। कामवासना में संभावना है प्रेम की। लेकिन कामवासना प्रेम नहीं है। केवल बीज है। अगर ठीक-ठीक उपयोग किया जाए, तो अंकुरित हो सकता है। लेकिन बीज वृक्ष नहीं है।

इसलिए जो कामवासना से तृप्त हो जाए या समझ ले कि बस, अंत आ गया, उसके जीवन में प्रेम का पता ही नहीं होता।

कामवासना प्रेम बन सकती है। कामवासना का अर्थ है, दो शरीर के बीच आकर्षण; शरीर के बीच। प्रेम का अर्थ है, दो मनों के बीच आकर्षण। और भक्ति का अर्थ है, दो आत्माओं के बीच आकर्षण। वे सब आकर्षण हैं। लेकिन तीन तलों पर।

जब एक शरीर दूसरे शरीर से आकृष्ट होता है, तो काम, सेक्स। और जब एक मन दूसरे मन से आकर्षित होता है, तो प्रेम, लव। और जब एक आत्मा दूसरी आत्मा से आकर्षित होती है, तो भक्ति, श्रद्धा।

हम शरीर के तल पर जीते हैं। हमारे सब आकर्षण शरीर के आकर्षण हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर का आकर्षण बुरा है।

शरीर का आकर्षण बुरा बन जाता है, अगर वह उससे ऊपर के आकर्षण तक पहुंचने में बाधा डाले। और शरीर का आकर्षण सहयोगी हो जाता है, सीढ़ी बन जाता है, अगर वह ऊपर के आकर्षण में सहयोगी हो।

अगर आप किसी के शरीर की तरफ आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसके मन की तरफ भी आकर्षित होने लगें, और किसी के मन के प्रति आकर्षित होकर धीरे-धीरे उसकी आत्मा के प्रति भी आकर्षित होने लगें, तो आपकी कामवासना विकृत नहीं हुई, ठीक मार्ग से चली और परमात्मा तक पहुंच गई।

लेकिन किसी के शरीर पर आप रुक जाएं, तो ऐसा जैसे आप कहीं गए और किसी के घर के बाहर ही घूमते रहे और दरवाजे से भीतर प्रवेश ही न किया। तो गलती घर की नहीं है; गलती आपकी है। घर तो बुला रहा था कि भीतर आओ। दीवालें बाहर से दिखाई जो पड़ती हैं, वे घर नहीं हैं।

शरीर तो केवल घर है। उसके भीतर निवास है। उसके भीतर दोहरा निवास है। उसके भीतर व्यक्ति का निवास है, जिसको मैं मन कह रहा हूं। और अगर व्यक्ति के भी भीतर प्रवेश करें, तो अंतर्गर्भ में परमात्मा का निवास है, जिसको मैं आत्मा कह रहा हूं।

हर व्यक्ति अपने गहरे में परमात्मा है। अगर थोड़ा उथले में उसको पकड़ें, तो व्यक्ति है। और अगर बिल्कुल बाहर से पकड़ें, तो शरीर है। हर व्यक्ति की तीन स्थितियां हैं। शरीर की भांति वह पदार्थ है। मन की भांति वह व्यक्ति है, चेतन। और परमात्मा की भांति वह निराकार है, महाशून्य है, पूर्ण।

काम, प्रेम, भक्ति, तीन कदम हैं। पर समझ लेना जरूरी है कि जब तक आप किसी के शरीर से आकृष्ट हो रहे हैं... । और ध्यान रहे, आवश्यक नहीं है कि आप जीवित मनुष्यों के शरीर से ही आकृष्ट होते हों। यह भी हो सकता है कि कृष्ण की मूर्ति में आपको कृष्ण का शरीर ही आकृष्ट करता हो, तो वह भी काम है।

कृष्ण का सुंदर शरीर, उनकी आंखें, उनका मोर-मुकुट, उनके हाथ की बांसुरी, उनका छंद-बद्ध व्यक्तित्व, उनका अनुपात भरा शरीर, उनकी नीली देह, वह अगर आपको आकर्षित करती हो, तो वह भी काम है। वह भी फिर अभी प्रेम भी नहीं है; भक्ति भी नहीं है।

और अगर आपको अपने बेटे के शरीर में भी, शरीर भूल जाता हो और जीवन का स्पंदन अनुभव होता हो। ख्याल ही न रहता हो कि वह देह है, बल्कि इतना ही ख्याल आता हो कि एक अभूतपूर्व घटना है, एक चैतन्य की लहर है। ऐसी अगर प्रतीति होती हो, तो बेटे के साथ भी प्रेम हो गया। और अगर आपको अपने बेटे में ही परमात्मा का अनुभव होने लगे, तो वह भक्ति हो गई।

किस के साथ पर निर्भर नहीं है भक्ति और प्रेम और काम। कैसा संबंध! आप पर निर्भर है। आप किस भांति देखते हैं और किस भांति आप गति करते हैं!

तो सदा इस बात को ख्याल रखें, क्या आपको आकृष्ट कर रहा है--देह, पदार्थ, आकार?

पर इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि कुछ बुरा है। भला है। इतना भी है, यह भी क्या कम है! कुछ तो ऐसे लोग हैं, जिनको देह भी आकृष्ट नहीं करती। तो भीतर के आकर्षण का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। उन्हें कुछ आकृष्ट ही नहीं करता। वे मरे हुए लोग हैं; वे लाश की तरह चलते हैं। उन्हें कुछ खींचता ही नहीं। उन्हें कुछ पुकारता नहीं। उनके लिए कोई आह्वान नहीं मालूम पड़ता। वे इस जगत में अकेले हैं, अजनबी हैं। इस जगत से उनका कहीं कोई संबंध नहीं जुड़ता।

कोई हर्ज नहीं। कम से कम शरीर खींचता है; यह भी तो खबर है कि आप जिंदा हैं। कोई चीज खींचती है। कोई चीज आपको पुकारती है। आपको बाहर बुलाती है। यह भी धन्यभाग है। लेकिन इस पर ही रुक जाना खतरनाक है। आप बहुत सस्ते में अपने जीवन को बेच दिए। आप कौड़ियों पर रुक गए। अभी और आगे यात्रा हो सकती थी। आप दरवाजे पर ही ठहर गए। अभी तो यात्रा शुरू ही हुई थी और आपने समझ लिया कि मंजिल आ गई! आपने पड़ाव को मंजिल समझ लिया। ठहरें; लेकिन आगे बढ़ते रहें।

मैंने सुना है, यहूदी फकीर हिलेल से किसी ने पूछा कि अध्यात्म का क्या अर्थ है? तो उसने कहा, और आगे, और आगे। वह आदमी कुछ समझा नहीं। उसने कहा, मैं कुछ समझा नहीं! तो हिलेल ने कहा कि जहां भी तेरा रुकने का मन होने लगे, इस वचन को याद रखना, और आगे, और आगे। जब तक तू ऐसी जगह न पहुंच जाए, जहां और आगे कुछ बचे ही नहीं, तब तक तू बढ़ते जाना। यही अध्यात्म का अर्थ है।

शरीर पर रुकना मत। और आगे। शरीर भी परमात्मा का है। इसलिए बुरा कुछ भी नहीं है। निंदा मेरे मन में जरा भी नहीं है। लेकिन शरीर शरीर ही है, चाहे परमात्मा का ही हो। वह बाहरी परकोटा है। और आगे। मन भी एक परकोटा है, शरीर से गहरा, शरीर से सूक्ष्म, लेकिन फिर भी परकोटा

है। और आगे। और जब हम शरीर और मन दोनों को छोड़कर भीतर प्रवेश करते हैं, तो सब परकोटे खो जाते हैं और सिर्फ आकाश रह जाता है।

इसलिए किसी भी व्यक्ति के प्रेम से परमात्मा को पाया जा सकता है। एक पत्थर की मूर्ति के प्रेम में गिरकर भी परमात्मा को पाया जा सकता है। परमात्मा को कहीं से भी पहुंचा जा सकता है। सिर्फ ध्यान रहे कि रुकना नहीं है। उस समय तक नहीं रुकना है, जब तक कि शून्य न आ जाए और आगे कुछ भी यात्रा ही बाकी न बचे। रास्ता खो जाए, तब तक चलते ही जाना है।

लेकिन कामवासना के संबंध में मनुष्य का मन बहुत रुग्ण है। और हजारों-हजारों साल से आदमी को कामवासना के विपरीत और विरोध में समझाया गया है। शरीर की निंदा की गई है। और कहा गया है कि शरीर जो है वह शत्रु है। उसे नष्ट करना है, उससे दोस्ती तोड़नी है। उससे सब संबंध छोड़ देने हैं। शरीर ही बाधा है, ऐसा समझाया गया है।

इस समझ के दुष्परिणाम हुए हैं। क्योंकि यह नासमझी है, समझ नहीं है। और जो व्यक्ति अपने शरीर से लड़ने में लग जाएगा, वह इसी लड़ाई में नष्ट हो जाएगा। उसकी सारी खोज भटक जाएगी, इसी लड़ने में नष्ट हो जाएगा।

शरीर भी परमात्मा का है। ठीक आस्तिक इस जगत में ऐसी कोई चीज नहीं मानता, जो परमात्मा की नहीं है। आस्तिक मानता है, सभी कुछ उसका है। इसलिए सभी तरफ से उसकी तरफ जाया जा सकता है। और हर चीज उसका मंदिर है।

जिन्होंने ये बातें समझाई हैं, दुश्मनी की, घृणा की, कंडेमनेशन की, शरीर को दबाने, नष्ट करने की, वे पैथालाजिकल रहे होंगे; वे थोड़े रुग्ण रहे होंगे। उनका चित्त थोड़ा मनोविकार से ग्रसित रहा होगा। वे स्वस्थ नहीं थे। क्योंकि स्वस्थ व्यक्ति तो अनुभव करेगा कि शरीर तक भी उसी की खबर है।

शरीर भी है इस दुनिया में इसीलिए, क्योंकि परमात्मा है। नहीं तो शरीर भी नहीं हो सकेगा। और शरीर भी जीवित है, क्योंकि परमात्मा की किरण उस तक आती है और उसे छूती है।

इस भांति जब कोई देखने को चलता है, तो सारा जगत स्वीकार योग्य हो जाता है। कामवासना भी स्वीकार योग्य है। वह आपकी शक्ति है। और परमात्मा ने उसका उपयोग किया है, बहुलता से उपयोग किया है।

फूल खिलते हैं; आप जानते हैं क्यों? पक्षी सुबह गीत गाते हैं; जानते हैं क्यों? मोर नाचता है; जानते हैं क्यों? कोयल बहुत प्रीतिकर मालूम पड़ती है, क्यों?

वह सब कामवासना है। मोर नाच रहा है, वह प्रेमी के लिए निमंत्रण है। कोयल गा रही है, वह साथी की तलाश है। फूल खिल रहे हैं, वह तितलियों की खोज है, ताकि फूलों के वीर्यकणों को तितलियां अपने साथ ले जाएं और दूसरे फूलों पर मिला दें।

सेमर का वृक्ष देखा आपने! जब सेमर का फूल पकता है और गिरता है, तो उस फूल के साथ जो बीज होते हैं, उनमें रुई लगी होती है। वनस्पतिशास्त्री बहुत खोजते थे कि इन फूलों के बीज में रुई की क्या जरूरत है? सेमर में रुई की क्या जरूरत है? बहुत खोज से पता चला कि वे बीज अगर सेमर के नीचे ही गिर जाएं, तो सेमर इतना बड़ा वृक्ष है कि वे बीज उसके नीचे सड़ जाएंगे, पनप नहीं सकेंगे। उन बीजों को दूर तक ले जाने के लिए वृक्ष रुई पैदा करता है। ताकि वे बीज रुई में उलझे रहें और हवा के झोंके में रुई वृक्ष से दूर चली जाए। कहीं दूर जाकर बीज गिरें, ताकि नए वृक्ष पैदा हो सकें।

वे बीज क्या हैं? बीज वृक्ष के वीर्यकण हैं, वे कामवासना हैं।

अगर सारे जगत को गौर से देखें, तो सारा जगत काम का खेल है। और इस सारे जगत में केवल मनुष्य है, जो काम से प्रेम तक उठ सकता है। वह केवल मनुष्य की क्षमता है।

कामवासना तो पूरे जगत में है। पौधे में, पशु में, पक्षी में, सब में है। अगर आपके जीवन में भी कामवासना ही सब कुछ है, तो आप समझना कि आप अभी मनुष्य नहीं हो पाए। आप पौधे, पशु-पक्षियों के जगत का हिस्सा हैं। वह तो सब के जीवन में है।

मनुष्य प्रेम तक उठ सकता है। मनुष्य की संभावना है प्रेम। जिस दिन आप प्रेमपूर्ण हो जाते हैं; वासना से उठते हैं और प्रेम से भर जाते हैं। दूसरे के शरीर का आकर्षण महत्वपूर्ण नहीं रह जाता। दूसरे के व्यक्तित्व का आकर्षण, दूसरे की चेतना का आकर्षण, दूसरे के गुण का आकर्षण; दूसरे के भीतर जो छिपा है! आपकी आंखें जब देखने लगती हैं शरीर के पार और जब व्यक्ति की झलक मिलने लगती है, तब आप मनुष्य बने।

और जब आप मनुष्य बन जाते हैं, तब आपके जीवन में दूसरी संभावना का द्वार खुलता है, वह है भक्ति। जिस दिन आप भक्त बन जाते हैं, उस दिन आप देव हो जाते हैं; उस दिन आप दिव्यता को उपलब्ध हो जाते हैं।

काम तो सारे जगत की संभावना है। अगर आप भी कामवासना में ही जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं, तो आपने कोई उपलब्धि नहीं की; मनुष्य जीवन व्यर्थ खोया। अगर आपके जीवन में प्रेम के फूल खिल जाते हैं, तो आपने कुछ उपलब्धि की।

और प्रेम के बाद दूसरी छलांग बहुत आसान है। प्रेम आंख गहरी कर देता है और हम भीतर देखना शुरू कर देते हैं। और जब शरीर के पार हम देखने लगते हैं, तो मन के पार देखना बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि शरीर बहुत ग्रॉस, बहुत स्थूल है। जब उसके भीतर भी हम देख लेते हैं, तो मन तो बहुत पारदर्शी है, कांच की तरह है। उसके भीतर भी दिखाई पड़ने लगता

है। तब हर व्यक्ति भगवान का मंदिर हो जाता है। तब आप जहां भी देखें, आंख अगर गहरी जाए, तो भीतर वही दीया जल रहा है। दीए होंगे करोड़ों, लेकिन दीए की ज्योति एक ही परमात्मा की है।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं कर्म-योग की साधना में लगा हूं, पर डर होता है कि पता नहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा हूं! क्योंकि न मैं भक्ति करता हूं, न मैं ध्यान करता हूं। मैं तो, जो कर्म है जीवन का, उसे किए चला जाता हूं। पर मापदंड क्या है कि मुझे पक्का पता चल सके कि जो मैं कर रहा हूं, वह कर्म-योग है, और आत्मवंचना नहीं हो रही है? और यह कर्म-योग मेरा स्वभाव है, मेरे अनुकूल है या नहीं, इसका भी कैसे पता लगे?

प्रश्न कीमती है। और जिसने पूछा है, उसके मन में सिर्फ जिज्ञासा नहीं है, मुमुक्षा है। पीड़ा से उठा हुआ प्रश्न है, बुद्धि से नहीं।

निश्चित ही, आदमी अपने को धोखा देने में समर्थ है, बहुत कुशल है। और दूसरे को हम धोखा दें, तो वहां तो दूसरा भी होता है, कभी पकड़ ले। हम खुद को ही धोखा दें, तो वहां कोई भी नहीं होता पकड़ने वाला। हम ही होते हैं। सिर्फ देने वाला ही होता है। इसलिए लंबे समय तक हम दे सकते हैं। खुद को धोखा हम जन्मों-जन्मों तक दे सकते हैं। दे सकते ही नहीं, हमने दिया है। हम दे रहे हैं।

तो यह स्वाभाविक है साधक के मन में प्रश्न उठना कि न मैं ध्यान कर रहा हूं, न मैं भक्ति कर रहा हूं, मैं अपने कर्म को किए चला जा रहा हूं; कहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा?

तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, अगर आप अपने कर्म को परमात्मा पर छोड़ दिए हैं, तो जो ध्यान से होता है, वह इस छोड़ने से होना शुरू हो जाएगा। आप शांत होने लगेंगे।

अगर आप अशांत हों, तो समझना कि कर्म-योग आप जो कर रहे हैं, वह सिर्फ धोखा है। क्योंकि जैसे ही मैं परमात्मा पर छोड़ देता हूं कि सारा कर्म उसका, मुझे अशांत होने की जगह नहीं रह जाती। अशांति तो तभी तक है, जब तक मैं अपने पर सारा बोझ लिए हुए हूं।

अगर आपके कर्म-योग में आपकी अशांति खो रही हो, खो गई हो, और आप शांत होते जा रहे हों, तो समझना कि ठीक रास्ते पर हैं; धोखा नहीं है।

दूसरी बात, अगर आपने कर्म परमात्मा पर छोड़ दिया है, तो फल कोई भी आए, आपके भीतर समभाव निर्मित रहेगा। चाहे सुखी हों, चाहे दुखी हों; चाहें सफलता आए, चाहे असफलता आए। अगर सफलता अच्छी लगती हो और असफलता बुरी लगती हो, तो समझना कि आप अपने को धोखा दे रहे हैं। क्योंकि जब मैंने छोड़ ही दिया परमात्मा पर, तो मेरी न सफलता रही और न असफलता रही। अब वह जाने। और उसे अगर असफल होना है, तो उसकी मर्जी। और उसे अगर सफल होना है, तो उसकी मर्जी। मैं बाहर हो गया।

कर्म-योग का अर्थ है कि मैंने सब परमात्मा पर छोड़ दिया और मैं केवल वाहन रह गया। अब मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। सब जिम्मेवारी उसकी है। मैं बाहर हूं। मैं एक साक्षी-मात्र हो गया। समभाव पैदा होगा। सफलता आएगी तो ठीक, असफलता आएगी तो ठीक। और आपके भीतर रंचमात्र भी फर्क नहीं पड़ेगा। आप वैसे ही रहेंगे सफलता में, वैसे ही असफलता में। ऐसी समबुद्धि पैदा हो रही हो, बढ़ रही हो, तो समझना कि कर्म-योग ठीक है; आप धोखा नहीं दे रहे हैं।

और तीसरी बात, जैसे ही कोई व्यक्ति सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, यह सारा जगत उसे स्वप्नवत दिखाई पड़ने लगता है, नाटक हो जाता है। तभी तक यह असली मालूम पड़ता है, जब तक लगता है कि मैं। और जब

मैं सभी उस पर छोड़ देता हूं, तो सारी बात नाटक हो जाती है। आप दर्शक हो जाते हैं; आप कर्ता नहीं रह जाते।

ध्यान रहे, जब तक मैं कर्ता हूं, तब तक जगत और है। और जब मैंने सब परमात्मा पर छोड़ दिया, तो कर्ता वह हो गया। अब आप कौन रहे? आप सिर्फ दर्शक हो गए। एक फिल्म में बैठे हुए हैं। एक फिल्म देख रहे हैं। नाटक चल रहा है, आप सिर्फ देख रहे हैं। आप सिर्फ देखने वाले रह गए हैं।

तो तीसरी बात, जैसे ही आप सब परमात्मा पर छोड़ देते हैं और कर्म-योग में प्रवेश करते हैं, जगत स्वप्न हो जाता है, एक खेल हो जाता है। आप सिर्फ देखने वाले रह जाते हैं।

तो तीसरी बात, अगर आप में साक्षीभाव बढ़ रहा हो, शांति बढ़ रही हो, समभाव बढ़ रहा हो, साक्षीभाव बढ़ रहा हो, तो आप जानना कि ठीक रास्ते पर हैं; धोखे का कोई उपाय नहीं है। और अगर यह न बढ़ रहा हो, तो समझना कि आप धोखा दे रहे हैं। और अगर यह न बढ़ रहा हो और आप बहुत चेष्टा कर रहे हों, फिर भी न बढ़ रहा हो, तो समझना कि यह आपके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। चेष्टा करके देख लेना। अगर बढ़ने लगे गति इन तीन दिशाओं में, तो समझना कि आपके अनुकूल है। अगर न बढ़े, तो किसी और दिशा से चेष्टा करना।

लेकिन लोग क्या समझते हैं कर्म-योग से? लोग समझते हैं, अपने कर्तव्य को निभाना कर्म-योग है। पत्नी है, बच्चे हैं; ठीक है। अब उलझ गए संसार में, तो नौकरी करनी है; धंधा करना है; कमाकर खिला-पिला देना है। अपना कर्तव्य पूरा करना है।

लेकिन ऐसे जो लोग हैं, जो कहते हैं, कर्तव्य पूरा करना है, इनका चेहरा उदास होगा, आनंद से भरा हुआ नहीं होगा। ये ढो रहे हैं बोझ। इनके मन में भीतर तो कहीं चल रहा है कि ये पत्नी-बच्चे सब समाप्त हो जाते, तो बड़ा अच्छा होता। हत्या का मन बहुत गहरे में है। या यह भूल न की होती, तो

बड़ा अच्छा होता। फंस गए, तो अब ढोना है, तो ढो रहे हैं। कर्तव्य अपना पूरा कर रहे हैं। इसको लोग कहते हैं, कर्म-योग कर रहे हैं!

यह कर्म-योग नहीं है। यह तो एक तरह की नपुंसकता है। न तो भाग सकते हैं और न रह सकते हैं। दोनों के बीच में अटके हैं। संन्यासी होने की भी हिम्मत नहीं है कि छोड़ दें; कि ठीक है, जो गलती हो गई, हो गई। अब माफ करो; अब जाते हैं। वह भी हिम्मत नहीं है। यह भी हिम्मत नहीं है कि जो है, उसका पूरा आनंद लें, उसको परमात्मा की कृपा समझें, अहोभाव मानें। यह भी हिम्मत नहीं है। दोनों के बीच में त्रिशंकु की तरह अटके हैं। इसको कहते हैं, कर्तव्य कर रहे हैं।

ध्यान रहे, यह कर्तव्य शब्द बहुत गंदा है। इसका मतलब होता है, बोझ ढो रहे हैं।

दो तरह के लोग हैं। एक तो जो अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं, इसलिए नौकरी कर रहे हैं। वे नहीं कहेंगे कभी कि हम कर्तव्य कर रहे हैं। वे कहेंगे, हमारी खुशी है। जिस स्त्री को चाहा है, उसके लिए एक मकान बनाना है; एक गाड़ी लानी है। उसके लिए एक बगीचा लगाना है। जिसको चाहा है, उसे सुंदरतम जगह देनी है। इसलिए हम आनंदित हैं। और कर्तव्य शब्द उपयोग वे नहीं करेंगे।

बच्चे हमारे हैं। हम खुश हैं उनकी खुशी में। उनकी आंखों में आती हुई ताजगी और उनकी आंखों में आता उल्लास हमें आनंदित करता है, इसलिए हम मेहनत कर रहे हैं। यह मेहनत हमारी खुशी है, कर्तव्य नहीं है। यह भी आदमी अच्छा है। कम से कम एक बात तो अच्छी है कि खुश है।

एक दूसरा आदमी है, जो कहता है कि हमने सब परमात्मा पर छोड़ दिया है। इसलिए परमात्मा की आज्ञा है कि बच्चों को बड़ा करो, तो हम कर रहे हैं। खुश है, क्योंकि परमात्मा की आज्ञा पूरी कर रहा है। यह भी आनंदित है। यह भी कर्तव्य नहीं निभा रहा है। यह परमात्मा की जो मर्जी, उसको

पूरा कर रहा है। और अपने को परमात्मा पर छोड़ दिया है। एक पत्नी के प्रेम में आनंदित था; यह परमात्मा के प्रेम में आनंदित है। लेकिन दोनों आनंदित हैं। इनमें कर्तव्य कुछ भी नहीं है।

इन दोनों के बीच में एक तीसरा त्रिशंकु है। वह न परमात्मा का उसे कुछ पता है और पत्नी का भी पता खो गया है। वह बीच में अटका है। वह कहता है, कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। इसको वह कर्म-योग कहता है। यह कर्म-योग नहीं है। यह आदमी मुर्दा है। इसमें हिम्मत ही नहीं है। इसको कुछ न कुछ तय करना चाहिए।

लेकिन एक बात हमेशा ख्याल रखिए, जब भी आप सही दिशा में चलेंगे, तो आपके भीतर आनंद बढ़ेगा। और जब आप गलत दिशा में चलेंगे, तो उदासी बढ़ेगी। अगर आपका कर्तव्य आपको उदास कर रहा है, तो कहीं न कहीं भूल हो रही है। या तो परमात्मा की तरफ बढ़ें। या पत्नी की तरफ भी बढ़ें, तो भी हर्जा नहीं, लेकिन कम से कम खुश हों। क्योंकि पत्नी की तरफ खुश हुआ आदमी, कभी परमात्मा की तरफ भी खुश हो सकता है। क्योंकि खुशी तो उसे आती है। आनंद तो उसे आता है। कम से कम एक बात तो आती है कि वह आनंदित होना जानता है।

और जो पत्नी तक की खुशी में इतना आनंदित हो जाता है, जिस दिन उसे परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू होगी, उसकी खुशी का कोई अंत न होगा। जो अपने बच्चे की आंखों में खुशी देखकर इतना खुश हो रहा था, जिस दिन उसे इस सारे जगत में परमात्मा की प्रतीति होने लगेगी, उस दिन उसकी खुशी का कोई अंत होगा! कोई सीमा होगी!

लेकिन यह बीच वाला आदमी बहुत उपद्रव है। इस बीच वाले आदमी से सावधान रहना। यह धोखे की बात है।

जहां-जहां आनंद चुकने लगे, सूखने लगे धारा, समझना कि आप गलत जा रहे हैं। क्योंकि जीवन का सम्यक विकास आनंद की तरफ है। अगर आप उदास होने लगें... ।

इसलिए उदास साधु को मैं साधु नहीं मानता। वह बीमार है। उससे तो बेहतर वह गृहस्थ है, जो आनंदित है। कम से कम एक बात तो ठीक है उसमें कि आनंदित है। लेकिन हम जिन साधु-संतों को जानते हैं, आमतौर से सब लटके हुए चेहरे वाले लोग हैं। उनके पास जाओ, तो वे आपका भी चेहरा लटकाने की पूरी कोशिश करते हैं। अगर आप हंस रहे हो, प्रसन्न हो, तो जरूर पाप कर रहे हो। कहीं न कहीं कोई गड़बड़ है!

इन उदास लोगों से जरा बचना। ये बीमारियां हैं। और हमने और तरह की बीमारियों से तो धीरे-धीरे छुटकारा पा लिया, एंटीबायोटिक्स खोज लिए। अभी इनसे छुटकारा नहीं हो सका। ये मन पर, छाती पर गहरी बीमारियां हैं, नासूर हैं। इनसे बचना।

क्योंकि जो साधु आनंदित नहीं है, समझना कि भूल में पड़ गया है। साधु के आनंद का तो कोई अंत नहीं होना चाहिए! हम क्षुद्र चीजों में इतने आनंदित हैं और तुम परमात्मा के साथ भी इतने आनंदित नहीं हो! हम असार में इतने प्रसन्न हो रहे हैं, और तुम सार को पाकर भी उदास बैठे हुए हो! हम कौड़ियों में नाच रहे हैं और तुम कहते हो, हमने हीरे पा लिए हैं; और तुम्हारी शक्ल से पता लगता है कि तुमने कौड़ियां भी गंवा दी हैं। हीरे वगैरह तुम्हें मिले नहीं हैं।

जिंदगी की सहज सम्यक धारा आनंद की तरफ है। आनंद को कसौटी समझ लें। वह निकष है। उस पर हमेशा कस लें। जो चीज आनंद न दे, समझना कि कहीं न कहीं कोई भूल हो रही है।

और आनंद से भयभीत मत होना। और कोई कितना ही कहे कि आनंद गलत है, भूलकर उसकी बात में मत पड़ना। क्योंकि अगर आनंद गलत है, तो फिर इस जगत में कुछ भी सही नहीं हो सकता। कसना।

यह भी हो सकता है कि आनंद भूल भरा हो। जहां आप आनंद पा रहे हों, वहां आनंद पाने योग्य कुछ न हो। यह हो सकता है। लेकिन आप आनंद पा रहे हैं, यह सही है, चाहे वह स्थिति सही न रही हो। तो आनंद पाने को बढ़ाए जाना। जिस दिन आप पाएंगे कि आपका आनंद ज्यादा हो गया और स्थिति छोटी पड़ने लगी, उस दिन आप स्थिति के ऊपर उठने लगेंगे।

एक आदमी के हाथ में... एक छोटा बच्चा है। कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लेता है। और खुश होता है। रंगीन पत्थर बच्चे इकट्ठे कर लेते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं। खीसों में भर लेते हैं, बोझिल हो जाते हैं। मां-बाप कहते हैं, फेंको! कहां कचरा ढो रहे हो? लेकिन वे नहीं फेंकना चाहते। रात अपने बिस्तर में लेकर सो जाते हैं। उनको आनंद आ रहा है। और अच्छा नहीं है वह बाप, जो कहता है, फेंको। क्योंकि वह उनसे पत्थर ही नहीं छीन रहा है, उनका आनंद भी छीन रहा है। वह उसको पता नहीं है कि वह क्या गड़बड़ कर रहा है।

उसे तो ठीक है कि यह पत्थर है। उसकी समझ बढ़ गई है। लेकिन बच्चे की समझ अभी उसकी समझ नहीं है। और जब वह बच्चे से पत्थर छीनकर फेंक देता है, तो उसे पता नहीं कि उसने एक और अदृश्य चीज भी छीनकर फेंक दी, जो बहुत कीमती थी। पत्थर तो बेकार थे, लेकिन भीतर बच्चे का सुख भी उसने छीन लिया। और इस बच्चे को अभी समझ में आना मुश्किल है कि जो उससे छीन लिया गया, वह व्यर्थ था। क्योंकि कैसे व्यर्थ था! बच्चा जानता है, उससे आनंद मिल रहा था।

कई बार समझदार लोग नासमझियां कर देते हैं। बच्चे से पत्थर छीनने की जरूरत नहीं है। बच्चे को बुद्धि, समझ देने की जरूरत है। जैसे-जैसे बच्चे की समझ बढ़ेगी, एक दिन आप अचानक पाएंगे, पत्थर एक कोने में पड़े रह

गए। अब वह उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देता, क्योंकि उसने नए आनंद खोज लिए हैं। अब वह पत्थरों पर ध्यान नहीं देता। आप उनको उठाकर फेंक दें, अब उसे पता भी नहीं चलेगा। वह खुद ही एक दिन उनको फेंक देगा।

जैसे समझ बढ़ती है, वैसे आनंद के नए क्षेत्र खुलते हैं। सम्यक धर्म आपसे आनंद नहीं छीनता, सिर्फ आपकी समझ बढ़ाता है। तो जो व्यर्थ होते जाते हैं आनंद, वे छूटते जाते हैं।

निश्चित ही, इस संसार में जो आप आनंद ले रहे हैं, वह लेने जैसा नहीं है। उसमें कुछ खास है नहीं मामला। बच्चों के हाथ में रंगीन पत्थर जैसी बात है। लेकिन कोई हर्ज नहीं है। आप आनंद ले रहे हैं, यह भी ठीक है। समझ बढ़ानी चाहिए।

इस फर्क को आप समझ लें।

अगर आप उदास साधुओं के पास जाते हैं, तो वे आपसे आपका आनंद छीनते हैं। आपके कंकड़-पत्थर छीनते हैं। उनके साथ ही आपके भीतर का आनंद भी छिन जाता है। वे आपको समझ नहीं दे रहे हैं, आपका आनंद छीन रहे हैं। आनंद छीनने से समझ नहीं बढ़ती।

ठीक धर्म आपकी समझ बढ़ाता है, आपकी अंडरस्टैंडिंग बढ़ाता है। समझ बढ़ने से, जो व्यर्थ था, वह छूटता चला जाता है; और जो सार्थक है, उस पर हाथ बंधने लगते हैं। और धीरे-धीरे आप पाते हैं कि संसार अपने आप ऐसे छूट गया, जैसे बच्चे के हाथ से कंकड़-पत्थर। और इसी संसार में उस सारभूत पर दृष्टि पहुंच जाती है और उससे मिलन हो जाता है।

समझ बढ़नी चाहिए। और समझ बढ़ने के साथ आनंद बढ़ता है, घटता नहीं। अगर आप आनंद छोड़ने लगे, तो आनंद भी घटता है और आपकी समझ भी घटती है।

आप जो भी कर रहे हों, एक बात निरंतर कसते रहना कि उससे आपका आनंद बढ़ रहा है, तो आप निर्भय होकर बढ़ते जाना उसी दिशा में। अगर

आनंद न भी होगा ठीक, तो भी कोई चिंता की बात नहीं। दिशा ठीक है। आज नहीं कल, जो गलत है, वह छूट जाएगा; और जो सही है, वह आपकी आंखों में आ जाएगा। पर अपने को साधक को कसते रहना चाहिए। और अगर आपको लगता हो, यह कुछ भी नहीं हो रहा, तो उचित है कि किसी और दिशा से परमात्मा को खोजना शुरू करें।

अब हम सूत्र को लें।

और यदि इसको भी करने के लिए असमर्थ है, तो जीते हुए मन वाला और मेरी प्राप्तिरूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग कर।

कृष्ण ने कहा, तू सब कर्म मैं कर रहा हूं, ऐसा समझ ले। लेकिन अगर यह भी न हो सके! हो सकता है, यह भी तुझे कठिन हो कि कैसे समझ लूं कि सब आप कर रहे हैं। कर तो मैं ही रहा हूं।

निश्चित ही कठिन है। अगर कोई आपसे कहे कि सब परमात्मा कर रहा है, तो भी आप कहेंगे कि कैसे मान लूं कि सब परमात्मा कर रहा है?

मैंने ऐसे लोग देखे हैं कि अगर उनको समझा दो कि सब परमात्मा कर रहा है, तो वे सब करना छोड़कर बैठ जाते हैं। वे कहते हैं, जब परमात्मा ही कर रहा है, तो फिर हमको क्या करना है! लेकिन यह बैठना वे कर रहे हैं। इतना वे बचा लेते हैं। इसको वे यह नहीं कहते कि परमात्मा बिठा रहा है, तो ठीक। नहीं, वे कहते हैं, बैठ हम रहे हैं। हम क्या करें अब! जब परमात्मा ही सब कर रहा है, तो फिर हम कुछ न करेंगे।

लेकिन हम कुछ न करेंगे, इसका मतलब इतना तो हम कर ही सकते हैं। इतना हमने अपने लिए बचा लिया। इसका मतलब यह भी हुआ कि जो भी वे कर रहे थे, वे मानते नहीं कि परमात्मा कर रहा था। वे खुद कर रहे थे, इसलिए अब वे कहते हैं, हम रोक लेंगे। अब देखें, परमात्मा कैसे करता है!

कठिन है यह मानना कि परमात्मा कर रहा है, क्योंकि अहंकार मानने को राजी नहीं होता कि मैं नहीं कर रहा हूं। हां, अगर कुछ बुरा हो जाए, तो मानने को राजी हो भी सकता है कि परमात्मा कर रहा है।

असफलता आ जाए, तो आदमी आसानी से छोड़ देता है कि परमात्मा, भाग्य। सफलता आ जाए, तो वह कहता है, मैं। सफलता को उस पर छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्यों? क्योंकि सफलता से अहंकार परिपुष्ट होता है। तो जिस चीज से अहंकार परिपुष्ट होता है, वह तो हम अपने लिए बचाना चाहते हैं।

सुनी है मैंने एक कहानी। एक संन्यासी छोटा-सा आश्रम बनाकर रहता था। आश्रम मैंने बनाया, ऐसा लोगों से कहता था। ज्ञान मैंने पाया, त्याग मैंने किया, ऐसा लोगों से कहता था। एक दिन एक गाय उसके आश्रम में घुस गई और फूल और बगिया को चर गई। बगिया को चरते देखकर उसे बहुत क्रोध आया। लकड़ी उठाकर उसने गाय को मार दी। गाय मर गई।

एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा था। उसने पूछा कि यह तुमने क्या किया! गाय को मार डाला! तो उस संन्यासी ने कहा कि सब परमात्मा कर रहा है, मैं क्या! तो उसकी मर्जी! उसके बिना मारे गाय मर सकती है? उसके बिना हाथ उठाए, मेरा हाथ उठ सकता है? उसकी बिना आज्ञा के पत्ता नहीं हिलता।

लेकिन आश्रम उसने बनाया है। ज्ञान उसने पैदा किया है। त्याग उसने किया है। गाय भगवान ने मारी है!

ये हमारे मन की तरकीबें हैं। हम सब यही करते रहते हैं। जब आप हार जाते हैं जिंदगी में, तो कहते हैं, भाग्य। और जब जीत जाते हैं, तो कहते हैं, मैं। पर सभी कुछ परमात्मा पर छोड़ना मुश्किल है। असफलता तो छोड़ना बिल्कुल आसान है, सफलता छोड़नी मुश्किल है। सब में दोनों आ जाते हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, मुश्किल होगा शायद तुझे यह भी करना कि कर्म तू मुझ पर छोड़ दे। क्योंकि खुद को छोड़ना पड़ेगा। और अति कठिन है बात खुद को छोड़ने की। तो फिर तू एक काम कर। कर्म न छोड़ सके, तो कम से कम कर्म का फल छोड़ दे।

यह थोड़ा आसान है पहले वाले से। क्योंकि फल हमारे हाथ में है भी नहीं। कर्म हम कर सकते हैं, लेकिन फल क्या आएगा, इसको हम सुनिश्चित रूप से तय नहीं कर सकते हैं।

मैं एक पत्थर उठाकर मार सकता हूं। लेकिन आप उस पत्थर से मर ही जाएंगे, यह कहना मुश्किल है। यह भी हो सकता है कि पत्थर आपको लगे और आपकी कोई बीमारी ठीक हो जाए। ऐसा हुआ है। ऐसा अनेक बार हो जाता है कि आप किसी का नुकसान करने गए थे और उसको फायदा हो गया।

चीन में ऐसा हुआ, उससे अक्युपंक्चर नाम की चिकित्सा-पद्धति पैदा हुई। आज से कोई तीन हजार साल पहले एक युद्ध में एक सैनिक को पैर में गोली लगी। उसको जिंदगीभर से सिर में दर्द था। पैर में गोली लगी; गोली आर-पार हो गई। गोली के लगते ही दर्द एकदम गायब हो गया। वह जिंदगीभर का दर्द था। और चिकित्सक हार गए थे, और वह दर्द अलग होता नहीं था।

तो बड़ी हैरानी हुई कि पैर में गोली लगने से दर्द सिर का कैसे चला गया! तो फिर खोजबीन की गई, तो पाया गया कि शरीर में जो नाड़ियों का संस्थान है और जो ऊर्जा का प्रवाह है, उसमें कुछ बिंदु हैं। अगर उन पर चोट की जाए, तो उनका परिणाम दूसरे बिंदुओं पर होता है।

तो फिर चीन में आठ सौ शरीर में बिंदु खोज लिए गए। तो फिर गोली मारने की जरूरत नहीं है, उन पर जरा-सी भी चोट की जाए... । इसलिए अक्युपंक्चर में सुई चुभा देते हैं। आपके सिर में दर्द है, तो वे जानते हैं कि

आपके शरीर में कुछ बिंदु हैं, जहां सुई चुभा दो। सुई चुभाते ही से सिरदर्द नदारद हो जाएगा।

अक्युपंक्चर हजारों तरह की बीमारियां ठीक करता है बिना इलाज के, सिर्फ सुई चुभाकर। जरा-सी जगह पर, ठीक जगह पर सुई चुभाकर। वह आपके भीतर जो ऊर्जा है शरीर की... ।

अब जिस आदमी ने गोली मारी थी, उसने सोचा नहीं था कि इसका सिर ठीक करना है। और उसने यह नहीं सोचा था कि उसके गोली मारने से अक्युपंक्चर पैदा होगा! और सारी दुनिया में--इसका ही सिर ठीक नहीं होगा--करोड़ों लोगों का सिर ठीक होगा। और सिर ही ठीक नहीं होगा, लाखों बीमारियां ठीक होंगी।

आप क्या करते हैं, वह तो सोच सकते हैं कि आप कर रहे हैं। लेकिन क्या होगा, वह आप तय नहीं कर सकते कि क्या होगा। होना आपके हाथ में नहीं है। आप किसी को जहर दें और हो सकता है कि वह अमृत सिद्ध हो जाए। और कई बार आप जहर देकर देख भी लिए हैं। और कई बार आप अमृत देते हैं और जहर हो जाता है। जरूरी नहीं है। क्योंकि फल आप पर निर्भर नहीं है। फल बहुत बड़ी विराट व्यवस्था पर निर्भर है। फल क्या होगा, कहना मुश्किल है।

तो कृष्ण कहते हैं कि कर्म न छोड़ सके, क्योंकि कर्म तो तुझे लगता है कि तू करता है, लेकिन फल तो छोड़ ही सकता है। क्योंकि फल तो पक्का नहीं है कि तू करता है। कर्म तू करता है; फल होता है। और फल निश्चित नहीं किया जा सकता। और तू नियंता नहीं है फल का। इसलिए कम से कम फल ही छोड़ दे। इतना भी कर ले। तो कर्म तू कर और फल मुझ पर छोड़ दे। जो भी होगा, वह भगवान कर रहा है तू कर रहा है, ठीक। लेकिन परिणाम भगवान ला रहा है।

सब कर्मों का फल त्याग कर दे, मेरे ऊपर छोड़ दे। क्योंकि मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

बहुत-से लोग अभ्यास करते रहते हैं, मर्म को न जानते हुए। उन्हें पता नहीं है, क्यों कर रहे हैं। अभ्यास करते रहते हैं! बहुत लोग हैं। रोज मुझे ऐसे लोग मिलने आ जाते हैं। वर्षों से कुछ कर रहे हैं। उनको पता नहीं, क्यों कर रहे हैं। किसी ने बता दिया, इसलिए कर रहे हैं।

एक सज्जन को मेरे पास लाया गया। उनका दिमाग खराब होने की हालत में आ गया, तब उनके परिचित लोग उन्हें ले आए। किसी ने उनको बता दिया है कि दोनों कान को बंद करके दोनों अंगूठों से, और भीतर बादलों की गड़गड़ाहट सुननी चाहिए। तो उन्होंने सुनना शुरू कर दिया। तीन साल से वे सुन रहे हैं।

अब गड़गड़ाहट इतनी ज्यादा सुनाई पड़ने लगी कि अब और कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता। अब अंगूठे न भी लगाएं, तो भी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। दूसरा बात भी करे, तो उन्हें सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी गड़गड़ाहट भीतर चल रही है!

मैंने उनसे पूछा कि तुमने गड़गड़ाहट सुनने की कोशिश काहे के लिए की थी? उन्होंने कहा, मैं तो गया था कि कैसे शांति मिले! उन्होंने कहा कि ऐसे शांति मिलेगी, तुम गड़गड़ाहट सुनो।

तुम सोचते भी तो कि गड़गड़ाहट सुनने से शांति मिलेगी? कि थोड़ी बहुत शांति होगी, वह और नष्ट हो जाएगी! है एक प्रयोग, वह भी ध्यान का एक प्रयोग है। लेकिन तुम समझ तो लेते मर्म उसका! कि तुम करने ही लगे! और अब सफल हो गए, तो परेशान हो रहे हो? अब वे सफल हो गए हैं। अब गड़गड़ाहट से छुटकारा चाहिए!

बहुत-से लोग हैं, न मालूम क्या-क्या करते रहते हैं। कोई शीर्षासन कर रहा है, बिना फिक्र किए कि वह क्या कर रहा है। क्योंकि किसी ने कह दिया;

कि पंडित नेहरू की आत्मकथा में पढ़ लिया; कि फलां आदमी सिर के बल खड़ा था, तो बड़ा बुद्धिमान हो गया था।

इतना आसान होता बुद्धिमान होना सिर के बल खड़े होने से, तो दुनिया में बुद्धू पाने मुश्किल थे। क्योंकि बुद्धू कम से कम सिर के बल तो खड़े हो ही सकते हैं। इसमें कोई ऐसी अड़चन की बात कहां है? निश्चित ही, लाभ हो सकता है। लेकिन मर्म को जाने बिना!

मस्तिष्क में अगर ज्यादा खून चला जाए, तो नुकसान हो जाएगा। कितना खून जाना जरूरी है आपके मस्तिष्क में, न आपको पता है, न जिनसे आप सीख के आ रहे हैं, उनको पता है।

आपको पता है कि आदमी में बुद्धि ही इसलिए पैदा हुई, क्योंकि वह सीधा खड़ा हो गया। और मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, इसलिए बुद्धि पैदा हो सकी। जानवरों को बुद्धि पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि खून मस्तिष्क में ज्यादा जा रहा है। खून जब ज्यादा जाता है, तो पतले महीन तंतु पैदा नहीं हो पाते। आदमी सीधा खड़ा हो गया; मस्तिष्क में खून कम जा रहा है, तो महीन, बारीक तंतु, डेलिकेट तंतु पैदा हो सके। उन्हीं तंतुओं की वजह से आप बुद्धिमान हैं।

इसलिए रात अगर आप बिना तकिए के सोएं, तो नींद नहीं आती। क्यों? क्योंकि वे जो महीन तंतु हैं, खून की धारा उनको छेड़ने लगती है, और आप रात सो नहीं सकते। तकिए पर सिर रख लेते हैं, खून की धारा कम हो जाती है सिर की तरफ, तो महीन तंतु शांति से सो पाते हैं।

अब आप शीर्षासन कर रहे हैं। अब आपको पहले पक्का कर लेना चाहिए कि कितना खून आपके तंतु सह सकेंगे, नहीं तो टूट जाएंगे।

तो मैंने तो अभी तक शीर्षासन करने वालों को बहुत बुद्धिमान नहीं देखा। आप बता दें, एकाध शीर्षासन करने वाले ने कोई विज्ञान का

आविष्कार किया हो! कि एकाध शीर्षासन करने वाले को नोबल प्राइज मिली हो!

इसका यह मतलब नहीं कि शीर्षासन का फायदा नहीं हो सकता। लेकिन मर्म को समझे बिना! और फिर पढ़ लिया कि बड़ा लाभ होता है, तो घंटों खड़े हैं शीर्षासन में। सिर्फ खोपड़ी खराब हो जाएगी। फायदा हो सकता है, लेकिन बहुत बारीक मामले हैं। और ठीक प्रशिक्षित व्यवस्था के भीतर ही हो सकता है। जब आपके पूरे मस्तिष्क की जांच हो गई हो और आपके रग-रग का पता हो कि कितना खून कम है। वैसे ही तो कहीं ज्यादा नहीं जा रहा है!

जो लोग रात को नहीं सो पाते, उनका कारण ही यह है कि खून ज्यादा जा रहा है। और मस्तिष्क में खून ज्यादा जा रहा हो, तो नींद नहीं आ सकती; इन्सोमेनिया, अनिद्रा पैदा हो जाएगी। खून की मात्रा मस्तिष्क में कम होनी ही चाहिए, तो ही नींद आ पाएगी, तो ही विश्राम हो पाएगा।

जब आप सोचते रहते हैं, तब नींद नहीं आती। क्योंकि सोचने की वजह से ज्यादा खून की जरूरत पड़ती है मस्तिष्क में; तंतुओं को चलना पड़ता है। इसलिए नींद नहीं आती। तो नींद के लिए जरूरी है; विश्राम के लिए जरूरी है।

लेकिन अगर आपके मस्तिष्क में कम खून जा रहा हो, तो थोड़ी-सी खून की झलक तेजी से पहुंचा देना फायदा भी कर सकती है। तो जो तंतु मुरदा हो गए हैं, वे सजीव भी हो सकते हैं। उनको खून मिल जाए। लेकिन कितना? उस मर्म को बिना समझे जो किए चला जाता है, वह अक्सर लाभ की जगह हानि कर लेता है।

लोग बैठ जाते हैं, कुछ भी कर लेते हैं। अध्यात्म के जगत में तो बहुत अंधापन है, क्योंकि मामला अंधेरे का है। और सब टटोल-टटोलकर चलना पड़ता है। और कोई भी मिल जाता है! और गुरु बनने का मजा इतना है कि

आपको भी कोई मिल जाए, तो आप भी बिना बताए नहीं मानते कि ऐसा करो, तो सब ठीक हो जाएगा। आपको खुद को अभी हुआ नहीं है!

मेरे पास रोज ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनके सैकड़ों शिष्य हैं! अब वे मुझसे पूछने आ जाते हैं कि ध्यान कैसे करना?

तुम इतने शिष्य कहां से इकट्ठे कर लिए हो? तुम्हें खुद पता नहीं है, तो तुम इन्हें क्या समझा रहे हो? तो वे कहते हैं, शास्त्रों को पढ़कर!

कृष्ण कहते हैं, मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से तो परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

ऐसे अभ्यास में मत पड़ जाना, जिसको तुम जानते नहीं हो, क्योंकि अभ्यास आग से खेलना है। अभ्यास का मतलब है, कुछ होकर रहेगा अब। और अगर तुम्हें पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो और क्या होकर रहेगा, तो तुम कहीं ऐसा न कर लो कि अपने को नुकसान पहुंचा लो।

और जिंदगी बहुत जटिल है। ऐसे ही जैसे आपकी घड़ी गिर गई। खोलकर बैठ गए ठीक करने! तो घड़ी तो कोई बहुत जटिल चीज नहीं है। लेकिन घड़ी भी आप और खराब कर लोगे। वह घड़ीसाज के पास ही ले जानी चाहिए। वह रुपए, दो रुपए में ठीक कर देगा। आप सौ, दो सौ की चीज ऐसे ही खराब कर लोगे।

लेकिन जब घड़ी गिरती है, तो बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी का मन खोलने का होता है। क्योंकि बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी बचकाना है। वह बच्चा जो भीतर है, क्युरिआसिटी जो है, कि जरा खोलकर हम ही ठीक न कर लें, जरा हिलाकर। कहां जाना? तो जरा हिला लें!

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हिलाने से ठीक हो जाती है। मगर इससे आप यह मत समझ लेना कि आप कलाकार हो गए और आपको पता चल गया कि... । तो दूसरों की घड़ी मत हिलाने लगना, नहीं तो बंद भी हो सकती है। कभी-कभी संयोग सफल हो जाते हैं। कभी आपकी घड़ी बंद है।

आपने जरा हिलाई। और आप समझे कि अरे! चल गई! नाहक दो-चार रुपए खराब करने पड़ते। अब हम भी जानकार हो गए। अब जहां भी घड़ी बंद दिखे, उसे हिला देना।

संयोग कभी-कभी जीवन में भी सफल होते हैं। कभी-कभी उनसे लाभ भी हो जाता है। पर उनको विज्ञान नहीं कहा जा सकता।

पर जिंदगी तो बहुत जटिल है। घड़ी में तो कुछ भी नहीं है। आपके छोटे-से मस्तिष्क में कोई सात करोड़ सेल हैं, सात करोड़ जीवंत कोष्ठ हैं! उन सात करोड़ जीवंत कोष्ठ की व्यवस्था पर सब निर्भर है--आपका होना, आपकी चेतना, आपकी बुद्धि, सोच, विचार, भाव--सब।

आप उलटा सिर खड़े हो गए, आपको पता नहीं कि उन सात करोड़ कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। कि आपने प्राणायाम शुरू कर दिया। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों के साथ क्या हो रहा है। आपको पता नहीं कि उन कोष्ठों को कितने आक्सीजन की जरूरत है। और जितनी आप दे रहे हैं, उतनी जरूरत है या नहीं है! क्योंकि ज्यादा आक्सीजन हो जाए, तो भी मूर्च्छा आ जाएगी। कम हो जाए, तो भी मूर्च्छा आ जाएगी। जीवन एक संतुलन है, और बहुत बारीक संतुलन है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि बिना मर्म को जाने हुए अभ्यास में तो पड़ना मत, अर्जुन। उससे तो बेहतर परोक्ष ज्ञान है।

परोक्ष ज्ञान का अर्थ है, शास्त्र ने जो कहा है। शास्त्र ने जो कहा है, वह बेहतर है, बजाय इसके कि तू अभ्यास अपना करके, बिना मर्म को समझे, कुछ उपद्रव में पड़ जाए। उससे तो शास्त्र ने जो कहा है... । शास्त्र का अर्थ होता है, जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया, और अपने अनुभव को लिपिबद्ध किया, कि उनके काम आ सके, जो जानते नहीं हैं।

इस बात को ठीक से समझ लें।

जिन्होंने जाना, जिन्होंने अनुभव किया, प्रयोग किया, अभ्यास किया, प्रतीत किया, जो पहुंच गए, उनके वचन हैं। सिर्फ वचन नहीं हैं, उनके लिए, जो नहीं जानते हैं। इसमें फर्क है। क्योंकि वे बोल सकते हैं, जैसा उन्होंने जाना। लेकिन अगर आपका ध्यान न रखा जाए, तो उनका ज्ञान आपके लिए खतरनाक हो जाएगा। वह इस भांति बोला गया है शास्त्र। जो अज्ञानी को ख्याल में रखकर बोला गया है कि वह इससे उपद्रव न कर सके।

जीसस ने छोटी-छोटी कहानियां कही हैं। और सभी बातें कहानियों में कही हैं। बड़ी मजे की बात है। और कहानियां इतनी सरल हैं कि कोई भी समझ ले। और इतनी कठिन भी हैं कि बहुत मुश्किल है समझना। पर कहानियों में इस ढंग से कहा है कि जो कहानी समझेगा, उसे पता ही नहीं चलेगा कि भीतर क्या छिपा है। वह सिर्फ कहानी का मजा लेगा; बात खतम हो जाएगी। उसे कहानी कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाएगी। थोड़ी उसकी समझ बढ़ेगी।

लेकिन जो कहानी में उतर सकता है गहरा, जितना गहरा उतर सकता है, उतना ही अर्थ बदल जाएगा। जीसस की एक-एक कहानी में सात-सात अर्थ हैं। और सात मन की स्थितियां हैं। पहली स्थिति पर सिर्फ कहानी है। उसको बच्चा भी पढ़े तो आनंदित होगा। एक कहानी का मजा आएगा। बात खतम हो जाएगी। लेकिन दूसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी दूसरा अर्थ लेगा। तीसरी स्थिति में खड़ा हुआ आदमी तीसरा अर्थ लेगा।

शास्त्र का अर्थ है, जो अज्ञानियों को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। और कुंजियां इस भांति छिपाई गई हैं कि गलत आदमियों के हाथ में न पड़ जाएं। और उसी वक्त कुंजी हाथ में पड़े, जब वह आदमी उसका ठीक उपयोग कर सके। उसके पहले हाथ में न पड़े। इतनी सारी व्यवस्था जहां की गई हो, उसका नाम शास्त्र है। हर किसी किताब का नाम शास्त्र नहीं है।

शास्त्र बहुत वैज्ञानिक आयोजन है। और हजारों साल बाद भी उसी ढंग से शास्त्र कारगर है।

लेकिन बड़ा मुश्किल है। इसलिए शास्त्र तो आप पढ़ लेते हैं, उसका अर्थ आपको पता चलता है कि नहीं, यह कहना मुश्किल है। आपको उतना ही पता चलता है, जितना आपको पता चल सकता है। बस, उससे ज्यादा पता नहीं चलता। इसलिए फिर शास्त्रों पर टीकाओं और व्याख्याओं की जरूरत पड़ी। क्योंकि जिनको ज्यादा पता चल गया उन शास्त्रों में--जितना आपको पता चलता था, उससे ज्यादा पता चल गया--तो उन्होंने टीकाएं लिखी हैं। लेकिन उन टीकाओं में भी उन्हीं नियमों का उपयोग किया गया है कि गलत आदमी के हाथ ज्ञान न पड़ जाए।

गलत आदमी अज्ञान में बेहतर है, क्योंकि अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं किया जा सकता।

आपने आमतौर से सुना होगा कि अज्ञान में खतरा होता है। अज्ञान में ज्यादा खतरा नहीं होता। लेकिन अज्ञानी के हाथ में ज्ञान हो, तो फिर ज्यादा खतरा होता है। ऐसा जैसे कि बच्चे के हाथ में तलवार दे दी। और उन्होंने उठाकर पिता की ही गरदन काट दी। वे सिर्फ देख रहे थे कि तलवार काम करती है कि नहीं करती है! असली है कि नकली है!

आज विज्ञान में यही उपद्रव खड़ा हो गया है। आज विज्ञान ने फिर कुछ कुंजियां खोज लीं। आइंस्टीन मरने के पहले कहकर मरा है कि अगर मुझे दुबारा जन्म मिले, तो मैं वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। मैं एक प्लंबर हो जाऊंगा, लेकिन अब वैज्ञानिक नहीं होना चाहता। क्योंकि जो मैंने दिया है, वह उनके हाथ में पड़ गया है, जो सारी दुनिया को नष्ट कर देंगे। और मेरा कोई वश नहीं रहा।

अभी वैज्ञानिक विचार करते हैं कि हमें अपना ज्ञान छिपाना चाहिए अब। वह राजनीतिज्ञों के हाथ में न पड़े, क्योंकि राजनीतिज्ञों से ज्यादा

नासमझ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उनके हाथ में ज्ञान पड़ने का मतलब है, अज्ञानियों के, नेताओं के हाथ में ज्ञान पड़ गया! वे खतरा कर देंगे। वे उपद्रव कर देंगे। अब आज सारी दुनिया के पास ताकत विज्ञान ने दे दी है। और चाबी भी दे दी है।

शास्त्र का अर्थ है, कभी एक बार ऐसा पहले भी हो चुका है। अध्यात्म के जगत में हमने इतने ही मूल्यवान सूत्र खोज लिए थे। लेकिन वे हर किसी को दे देना खतरनाक है। तो उन्हें शास्त्रों में प्रकट भी किया है और छिपाया भी है।

शास्त्र का अर्थ है, जो प्रकट भी करता है और छिपाता भी है। प्रकट उतना करता है, जितना आप आत्मसात कर लो। और उतना छिपाए रखता है, जितना अभी आपके काम का नहीं है। और जब आप एक कड़ी आत्मसात कर लेंगे, तो दूसरी कड़ी आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। एक सीढ़ी से ज्यादा आपको कभी दिखाई नहीं पड़ पाती। जब दूसरी सीढ़ी आप आत्मसात कर लोगे, तब तीसरी आपको दिखाई पड़ेगी। हर कुंजी जब आप उपयोग कर लोगे, तो दूसरी कुंजी आपके हाथ में दे जाएगी और दूसरा ताला खुलने लगेगा।

शास्त्र एक वैज्ञानिक व्यवस्था है। इसलिए शास्त्र साधारण किताब का नाम नहीं है। आज तो किताबें बहुत हैं। पांच हजार किताबें प्रति सप्ताह छपती हैं। इन किताबों की भीड़ में शास्त्र खो गया। अब शास्त्र का कुछ पता लगाना मुश्किल है कि कौन-सा शास्त्र है!

लेकिन कृष्ण कहते हैं कि न मर्म को समझकर किया हुआ अभ्यास, उससे तो परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है।

परोक्ष ज्ञान का मतलब, दूसरों ने, लेकिन जिन्होंने जाना है, उनका कहा हुआ ज्ञान। उसको ही स्वीकार कर लेना उचित है।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

लेकिन परोक्ष ज्ञान उधार है। शास्त्र से कितना ही पता चल जाए, वह आपका स्वानुभव तो नहीं है। किसी को पता चला, पतंजलि को। किसी को पता चला, वशिष्ठ को। किसी को पता चला, शंकर को, रामानुज को। आपने सुना, उन्हें पता चला है। आपने मान लिया। आपकी थोड़ी बुद्धि तो बढ़ी, लेकिन आप नहीं बढ़े। आपका संग्रह बढ़ा, जानकारी बढ़ी, लेकिन बोध नहीं बढ़ा। बोध तो बढ़ेगा स्वानुभव से।

तो कृष्ण कहते हैं, परोक्ष ज्ञान से, शास्त्र ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

तो बेहतर है कि तू सीधा न तो अभ्यास की उलझन में पड़, क्योंकि मर्म को बिना समझे खतरा है। न शास्त्रों की समझ में पड़, क्योंकि कितना ही समझ ले, तो भी वह दूसरे का ज्ञान होगा। और सेकेंड हैंड होगा। तेरे लिए नया और ताजा नहीं होगा। अपना नहीं है, वह ताजा भी नहीं है।

और ज्ञान के संबंध में एक बात जान लेनी जरूरी है कि जो अपना नहीं है, वह अपना है ही नहीं। वह कितना ही ठीक पकड़ में आ जाए, तो भी वह दूसरे का है। और दूसरे के ज्ञान से आपकी आंख काम नहीं कर सकती। दूसरे के पैर से आप चल नहीं सकते। दूसरे की छाती से आप श्वास नहीं ले सकते। दूसरे की प्रज्ञा आपकी प्रज्ञा नहीं बन सकती। आपकी प्रज्ञा तो तभी बनती है, जब सीधा ध्यान परमात्मा की तरफ लगता है।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है।

तो जितनी देर आप अभ्यास में लगाते हों, उससे बेहतर है, उतना समय आप शास्त्र में लगाएं। जितना आप शास्त्र में लगाते हों, उससे भी बेहतर है कि उतना परमात्मा के ध्यान में लगाएं। बेहतर है, किताबें बंद कर दें, आंख बंद कर लें और परमात्मा का स्मरण करें।

क्या करेंगे परमात्मा के स्मरण में? कैसे होगा परमात्मा का ध्यान? क्या करना पड़ेगा? एक छोटा-सा ख्याल समझ लें।

कुछ भी न करें। सिर्फ लेट जाएं या बैठ जाएं और बिल्कुल ढीला छोड़ दें अपने को। कुछ भी न करें, श्वास भी न लें। अपने आप जितनी चलती है, चलने दें। एक पांच मिनट तो सिर्फ इतना ही ध्यान रखें कि मैं कुछ न करूं, सिर्फ पड़ा रहूं मुर्दे की भांति।

एक पांच मिनट में सिर्फ अपने को शांत कर लें। दस मिनट, पंद्रह मिनट, जितनी देर आपको लगे। सिर्फ शांत पड़ जाएं, जैसे मुर्दा हैं, आप हैं ही नहीं। सारी क्रिया को शिथिल छोड़ दिया, रिलैक्स कर दिया। और जब यह सब शिथिल और शांत हो जाए, सिर्फ श्वास ही सुनाई पड़े... । कभी-कभी कोई विचार मन में तैर जाएगा। कभी कोई चींटी काटती है, तो पता चलेगा। कभी कोई बाहर से आवाज आएगी, तो भनक पड़ेगी। मगर आप अपनी तरफ से बिल्कुल शांत पड़े हैं, जैसे हैं ही नहीं।

इस क्षण में सिर्फ एक ही भावना करें। आपके मन में जो भी इष्ट हो, जिस परमात्मा का जैसा नाम आपको प्यारा लगता हो, या मूर्ति प्यारी लगती हो, आकृति प्यारी लगती हो, बुद्ध की प्रतिमा प्यारी लगती हो, तो बस, इस शांत अवस्था में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा का स्मरण करें। इस शून्य मन में सिर्फ बुद्ध की प्रतिमा बने। या आपको अच्छा लगता हो ओम का उच्चार, तो सिर्फ ओम का उच्चार भीतर गूंजने दें। या आपको अच्छा लगता हो राम-राम तो राम-राम का उच्चार भीतर गूंजने दें। कोई भी एक चीज पकड़ लें, जो आपको प्यारी लगती हो और प्रभु का स्मरण दिलाती हो।

ऐसा हुआ है। मैंने सुना, एक सूफी फकीर हुआ। एक सम्राट उसकी सेवा में आता था। और उसने उसे कहा कि तू ईश्वर का स्मरण कर। उस सम्राट को एक हीरे से बहुत प्रेम था। वह हीरा उसने बड़ी मुश्किल, बड़े युद्धों के बाद पाया था। और वह चौबीस घंटे उसको अपने पास रखता था।

जब वह परमात्मा के स्मरण को बैठा, तो परमात्मा का तो स्मरण न आए, उसको उसी हीरे-हीरे का ही ख्याल आए। और वह हीरा दिखाई पड़े।

तो वह वापस फकीर के पास आया। उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई है। यह हीरा मुझे बाधा डालता है। मैं कैसे इसका त्याग करूं!

तो फकीर ने कहा, तू त्याग मत कर, क्योंकि त्याग से और ज्यादा बाधा डालेगा। तू ऐसा कर कि परमात्मा को छोड़, तू हीरे की ही याद कर। तू आंख बंद कर ले और हीरे को ही देख। और सिर्फ इतना ही ख्याल कर कि यह हीरा परमात्मा का रूप है।

वह सम्राट चकित हुआ। उसने सोचा, फकीर कहेगा, हीरे का त्याग कर। कहां की क्षुद्र चीज में उलझा है!

लेकिन फकीर निश्चित समझदार रहा होगा। सम्राट ने हीरे पर ध्यान करना शुरू कर दिया। जब हीरे पर ध्यान किया, तो हीरे ने बाधा डालनी बंद कर दी, स्वभावतः। बाधा वह इसलिए डालता था कि कहां जा रहे हो? जब कहीं जाने की कोई बात न रही, तो हीरे ने बाधा डालनी बंद कर दी। और कुछ था नहीं उसका उलझाव; एक हीरा ही था। और हीरे में वह परमात्मा को अनुभव करने लगा। थोड़े ही दिनों में हीरा खो गया और परमात्मा ही शेष रह गया।

तो जो भी आपका हीरा हो, आपकी पत्नी का चेहरा हो, आपके बेटे की आंख हो, आपके मित्र की छवि हो, कृष्ण का रूप हो, राम का हो, जीसस का हो--आपका जहां सहज रुझान हो--कुछ भी हो। और कुछ भी न हो, तो अपनी ही फोटो। वह तो कम से कम होगी। तो आईने में अपनी शक्ल देख ली। आंख बंद कर लिया और कहा कि यह परमात्मा का रूप है। उसी पर... । उससे भी पहुंच जाएंगे। कुछ घबड़ाना मत कि अपनी ही तस्वीर कैसे!

अपना ही नाम भी, अगर आपको वही प्यारा हो, तो फिर राम का नाम लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो प्यारा ही नहीं है, उसको लेकर कुछ फायदा नहीं होगा। प्रेम के बिना कुछ फायदा नहीं होगा।

आपको अगर अपना ही नाम जंचता हो... । सबको जंचता है। और दिल होता है कि कहां राम-राम कर रहे हैं! अपना ही नाम दोहराएं। कोई हर्जा नहीं है, उसी को दोहराना। और समझना कि यह परमात्मा का नाम है। और आप थोड़े ही दिन में पाओगे कि आप खो गए और परमात्मा बच रहा।

परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से भी श्रेष्ठ है सब कर्मों के फल का मेरे लिए त्याग करना।

क्योंकि ध्यान भी आपका कर्म है। आपको लगता है, मैं ध्यान कर रहा हूं। इतनी अड़चन बनी रहती है। मैं ध्यानी हूं, और मैंने ध्यान किया परमात्मा का। तो वह भीतर मैं की सूक्ष्म रेखा बनी रहती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, उससे भी श्रेष्ठ है सब कर्मों के फल का त्याग करना। और त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है। सब कर्मों के त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है।

जैसे ही कोई सब प्रभु पर छोड़ देता है, अशांत होने का सारा कारण ही खो जाता है। अगर अशांति चाहिए, तो सब अपने सिर पर रखना। दूसरों का भी उतारकर अपने सिर पर रख लेना। सारी दुनिया में जो-जो तकलीफें हैं, उनको अपने सिर पर रख लेना। तो अशांति आपकी आप कुशलता से बढ़ा सकोगे।

और करीब-करीब इसी तरह लोग बढ़ाए हुए हैं। सारी दुनिया की तकलीफें, सारी दुनिया का बोझ, आप अकेले के सिर पर पड़ गया है। अगर यह बोझ कम करना हो और शांति चाहिए हो, तो यह परमात्मा पर छोड़ देना।

और आप नाहक ही परेशान हो रहे हो। बोझ आपके सिर पर है नहीं। आपकी हालत उस देहाती आदमी जैसी है, जो पहली दफा ट्रेन में सवार हुआ था। तो उसने अपना सब बिस्तर-बोरिया अपने सिर पर रख लिया था। उसने सोचा कि टिकट तो मैंने केवल अपनी ही दी है। और यह बिस्तर-बोरा

ट्रेन में रखूं, तो पता नहीं, कोई आ जाए और कहे कि कहां रखा है! इसे अपने सिर पर ही रखना ठीक है। और फिर उसने यह भी सोचा कि इतने आदमियों का बोझ वैसे ही ट्रेन पर है, मैं भी चढ़ा हूं, और इस वजन का, इस बिस्तर का बोझ भी और बढ़ जाए, तो कहीं ट्रेन रुक ही न जाए। तो अपने सिर पर रख लूं।

लेकिन आप अपने सिर पर भी रखकर बैठे रहें, तो भी ट्रेन पर ही बोझ पड़ रहा है। आप भी झेल रहे हैं, यह मुफ्त में। इसको नीचे रखा जा सकता है। यह ट्रेन लिए जा रही है।

परमात्मा के ऊपर सब छोड़ते ही आप निर्बोझ हो जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि जो बोझ था, वह आप ढो रहे थे। आप अकारण ढो रहे थे। परमात्मा उसे ढो ही रहा है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सब कर्म को जो छोड़ देता मेरे ऊपर, वह श्रेष्ठतम है। उसे तो फिर ध्यान की भी जरूरत नहीं है। उसे तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। एक ही बात कर ली कि सब हो गया। एक करने से सब हो जाता है, कि वह परमात्मा पर छोड़ देता है। त्याग से तत्काल परम शांति होती है। होगी ही।

लेकिन त्याग का मतलब आप यह मत समझ लेना कि घर छोड़ दिया, मकान छोड़ दिया, कपड़े छोड़ दिए, भाग गए। वह त्याग का मतलब नहीं है। उस त्याग में तो त्याग आपको पकड़े ही रहेगा। और आप जहां भी जाओगे, खबर करोगे कि मैं सब त्याग करके आ रहा हूं। वह मैं त्याग करके आ रहा हूं, साथ जाएगा।

नहीं; त्याग का गहन अर्थ है कि मैं कर नहीं रहा हूं; मैं कर भी नहीं सकता हूं; जो करने वाला है, वह वही है। मैं नाहक ही बीच में... ।

मैंने सुना है कि रथ निकलता था पुरी में और एक छोटा कुत्ता रथ के आगे चलने लगा। और सब लोग नमस्कार कर रहे थे और रथ के सामने गिर-

गिरकर साष्टांग दंडवत कर रहे थे। उस कुत्ते ने कहा कि अरे! बेचारे! वह सबको मन ही मन आशीर्वाद देता रहा, खुश रहो। मगर क्यों इतने परेशान हो रहे हो!

उसकी अकड़ बढ़ती चली गई। उसे लगा कि मेरे लिए रथ निकल रहा है। मेरे लिए सारे लोग दंडवत कर रहे हैं। गजब हो गया। वैसे मैं जानता तो था पहले ही से कि मेरी हालत इतनी ऊंची है! लेकिन दुनिया स्वीकार नहीं करती थी। अब सब ने स्वीकार कर लिया है।

रात कुत्ता सो नहीं सका होगा। और हार्टफेल हो गया हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं।

पर हम सब की हालत भी यही है। हम सब ऐसे ही चल रहे हैं कि रथ हमारे लिए चल रहा है। यह सारा जगत हमारे लिए चल रहा है! बड़े परेशान हो रहे हैं। नाहक ही परेशान हो रहे हैं। बिना कारण परेशान हो रहे हैं।

ईश्वर-समर्पण का अर्थ है कि ये परेशानियां मैं छोड़ता हूं। यह सब मेरे लिए नहीं चल रहा है। यह सब मैं नहीं चला रहा हूं। मैं व्यर्थ ही परेशान हो रहा हूं। इसलिए धार्मिक आदमी परम शांत हो जाता है, क्योंकि सब परमात्मा कर रहा है। वह अपने को करने के भाव से मुक्त कर लेता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अकर्मण्य हो जाता है। इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि वह छोड़ देता है उस पर। वह काम लेना चाहे, तो काम ले। कर्म लेना चाहे, तो कर्म ले। और अकर्मण्य करके बिठालना चाहे, तो अकर्मण्य करके बिठाल दे।

अपनी तरफ अब उसकी कोई भी स्वयं की चेष्टा नहीं है। अब वह बहता है नदी की धारा में, जहां नदी ले जाए। डुबा दे, तो वह डुबाना भी उसके लिए किनारा है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से न उठे। दो-तीन बातें ख्याल रखें। कुछ लोग आकर बीच में बैठ जाते हैं; फिर बीच से उठकर जाने की कोशिश करते

हैं। बाहर बैठें; जाना हो तो किनारे पर बैठें। और कीर्तन के समय कोई भी उठे न। पांच मिनट कीर्तन करने के बाद जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

सातवां प्रवचन

परमात्मा का प्रिय कौन

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।। 13।।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 14।।

इस प्रकार शांति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित और सुख-दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात अपराध करने वालों को भी अभय देने वाला है तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट है तथा मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि निराकार की साधना इतनी कठिन क्यों है?

निराकार शब्द भी समझ में नहीं आता। निराकार शब्द भी हमारे मन में आकार का ही बोध देता है। असीम भी हम कहते हैं, तो ऐसा लगता है, उसकी भी सीमा होगी--बहुत दूर, बहुत दूर--लेकिन कहीं उसकी भी सीमा होगी। मन असीम का ख्याल भी नहीं पकड़ सकता। मन का द्वार इतना छोटा

है, सीमित है कि उससे अनंत आकाश नहीं पकड़ा जा सकता। इसलिए निराकार की साधना कठिन है। क्योंकि निराकार की साधना का अर्थ हुआ, मन को अभी इसी क्षण छोड़ देना पड़ेगा, तो ही निराकार की तरफ गति होगी।

मन से तो जो भी दिखाई पड़ेगा, वह आकार होगा। और मन से जहां तक पहुंच होगी, वह सीमा और गुण की होगी। मन के तराजू पर निराकार को तौलने का कोई उपाय नहीं है। जो तौला जा सकता है, वह साकार है। और हम मन से भरे हैं। हम मन ही हैं। मन के अतिरिक्त हमारे भीतर कुछ है, इसका हमें कोई पता नहीं। कहते हैं आत्मा की बात; सुनते हैं; लेकिन आपको उसका कुछ पता नहीं है। पता तो मन का है। उसका भी पूरा पता नहीं है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दस में से केवल एक हिस्सा मन का हमें थोड़ा-थोड़ा पता है। नौ हिस्सा मन का भी हमें पता नहीं है। मन भी अभी ज्ञात नहीं है। अभी सीमित को भी हम नहीं जान पाए हैं, तो असीम को जानने में कठिनाई होगी।

निराकार शब्द तो ख्याल में आ जाता है, लेकिन अर्थ बिल्कुल ख्याल में नहीं आता। अगर कोई आपसे कहे, यह जो आकाश है, अनंत है, तो भी मन में ऐसा ही ख्याल बना रहता है कि कहीं न कहीं जाकर समाप्त जरूर होता होगा। कितनी ही दूर हो वह सीमा, लेकिन कहीं समाप्त जरूर होता होगा। समाप्त होता ही नहीं है, यह बात मन को बिगूचन में डाल देती है; मन घबड़ा जाता है। मन विक्षिप्त होने लगता है, अगर कोई भी सीमा न हो। मन की तकलीफ है।

मन की व्यवस्था सीमा को समझने के लिए है। इसलिए निराकार को पकड़ना कठिन हो जाता है।

सुना है मैंने, एक सम्राट अपने एक प्रतिद्वंद्वी को, जिससे प्रतिद्वंद्विता थी एक प्रेयसी के लिए, द्वंद्व में उतरने की स्वीकृति दे दिया। द्वंद्व का समय भी तय हो गया। कल सुबह छः बजे गांव के बाहर एकांत निर्जन में वे अपनी-अपनी पिस्तौल लेकर पहुंच जाएंगे। और दो में से एक ही बचकर लौटेगा। तो प्रेयसी की कलह और झगड़ा शेष न रहेगा।

सम्राट तो पहुंच गया ठीक समय पर; समय से पूर्व; लेकिन दूसरा प्रतिद्वंद्वी समय पर नहीं आया। छः बज गया। छः दस बज गए; छः पंद्रह, छः बीस--बेचैनी से प्रतीक्षा रही। तब एक घुड़सवार दौड़ता हुआ आया प्रतिद्वंद्वी का एक टेलीग्राम, एक संदेश लेकर।

थोड़े से वचन थे उस टेलीग्राम में; लिखा था, अन-एवायडेबली डिलेड, बट इट विल बी ए सिन टु डिसएप्वाइंट यू, सो प्लीज डोंट वेट फार मी, शूट। अनिवार्य कारणों से देरी हो गई। न पहुंचूंगा, तो आप निराश होंगे। इसलिए मेरी प्रतीक्षा मत करें, आप गोली चलाएं।

लेकिन गोली किस पर चलाएं? जो उस राजा की अवस्था हो गई होगी, वही निराकार के साधक की होती है। किस पर? किसकी पूजा? किसकी अर्चना? किसके चरणों में सिर झुकाएं? किसको पुकारें? किस पर ध्यान करें? किसका मनन? किसका चिंतन? कोई भी नहीं है वहां! वह राजा भी बिना गोली चलाए वापस लौट आया होगा!

निराकार का अर्थ है, वहां कोई भी नहीं है, जिससे आप संबंधित हो सकें। और मनुष्य का मन संबंध चाहता है। आप अकेले हैं! निराकार का अर्थ हुआ कि आप अकेले हैं; वहां कोई भी नहीं है आपके सामने।

इसलिए अति कठिन है। कल्पना में भी दूसरा हो, तो हम संबंधित हो पाते हैं। न भी हो वहां दूसरा, हमें सिर्फ ख्याल हो कि दूसरा है, तो भी हम बात कर पाते हैं; तो भी हम रो पाते हैं; तो भी हम नाच पाते हैं।

यह मन, दूसरा हो, तो संबंधित हो जाता है, और गतिमान हो पाता है। दूसरा न हो, तो अवरुद्ध हो जाता है। कोई गति नहीं रह जाती है। इसलिए निराकार कठिन है।

निराकार की कठिनाई निराकार की नहीं, आपके मन की कठिनाई है। अगर आप मन छोड़ने को राजी हों, तो निराकार फिर कठिन नहीं है। फिर तो साकार कठिन है। अगर मन छोड़ने को आप राजी हों, फिर साकार कठिन है। क्योंकि मन के बिना आकार नहीं बनता।

इसका यह अर्थ हुआ कि सारा सवाल आपके मन का है। इसलिए आप इसको ऐसा मत सोचें कि निराकार को चुनें कि आकार को चुनें। यह बात ही गलत है। आप तो यही सोचें कि मैं मन को छोड़ सकता हूं या नहीं छोड़ सकता हूं। अगर नहीं छोड़ सकता हूं, तो निराकार के धोखे में मत पड़ें। आपका निराकार झूठा होगा। फिर उचित है कि आप साकार से ही चलें। अगर आप मन को छोड़ सकते हों, तो साकार की कोई भी जरूरत नहीं है। आप निराकार में खड़े ही हो गए।

साकार भी छूट जाता है, लेकिन क्रमशः। साकार की प्रक्रिया का अर्थ है कि धीरे-धीरे आपके मन को गलाएगा। और एक ऐसी घड़ी आएगी कि मन पूरा गल जाएगा, और आप मन से छुटकारा पा जाएंगे। जिस दिन मन छूटेगा, उसी दिन साकार भी छूट जाएगा। जब तक मन है, तब तक साकार भी रहेगा।

तो साकार एक ग्रेजुअल प्रोसेस, एक क्रमिक विकास है। और निराकार छलांग है, सडेन, आकस्मिक। अगर आपकी तैयारी हो आकस्मिक छलांग लगाने की, कि रख दिया मन और कूद गए, तो निराकार कठिन नहीं है। पर रख सकेंगे मन? कपड़े जैसा नहीं है कि उतारा और रख दिया। चमड़ी जैसा है; बड़ी तकलीफ होगी। चमड़ी से भी ज्यादा तकलीफ होगी। अपनी चमड़ी निकालकर कोई रखता हो, उससे भी ज्यादा तकलीफ होती है, जब कोई

अपने मन को निकालकर रखता है। क्योंकि मन और भी चमड़ी से भी गहरा भीतर है। हड्डी-हड्डी, एक-एक कोष्ठ से जुड़ा है। और हमने अपने को मान ही रखा है कि हम मन हैं। इसलिए मन को उतारकर रखना अपने को ही उतारकर रखना है। अपने से ही खाली हो जाना है। अपनी ही हत्या है।

इसलिए निराकार के साधकों ने, खोजियों ने कहा है कि जब तक अमनी, नो-माइंड, अमन की स्थिति न हो जाए, तब तक निराकार की बात का कोई अर्थ ही समझ में नहीं आएगा।

सगुण के साथ अड़चन मालूम पड़ती है, अहंकार के कारण। साकार के साथ बुद्धि विवाद करती है। तो आदमी कहता है कि नहीं, मेरे लिए तो निराकार है। यह साकार से बचने का उपाय है सिर्फ कि मेरे लिए तो निराकार है।

लेकिन पता है कि निराकार की पहली शर्त है कि अपने मन को छोड़ें! उसी मन की मानकर तो साकार को छोड़ रहे हैं, और निराकार की बात कर रहे हैं। और जब कोई आपको कहेगा कि निराकार का अर्थ हुआ कि अपने मन की आकार बनाने वाली कीमिया को बंद करें, हटाएं इस मन को। तब आपको अड़चन शुरू हो जाएगी।

बहुत-से लोग हैं, जिन्होंने साकार को छोड़ दिया है निराकार के पक्ष में; और निराकार में उतरने की उनकी कोई सुविधा नहीं बनती। जब भी कुछ छोड़ें, तो सोच लें कि जिस विपरीत के लिए छोड़ रहे हैं, उसमें उतर सकेंगे? अगर न उतर सकते हों, तो छोड़ने की जल्दी मत करें।

पर हम बहुत होशियार हैं। हमारी हालत ऐसी है, जैसे मैंने सुना है कि एक शेखचिल्ली एक दुकान पर गया है। और उसने कहा कि यह मिठाई क्या भाव है? तो दुकानदार ने कहा, पांच रुपया सेर। तो उसने कहा, अच्छा, एक सेर दे दो।

जब वह तौल चुका था और पुड़िया बांध चुका था और ग्राहक को दे रहा था, तब उसने कहा, अच्छा, इसे तो रहने दो। मेरा मन बदल गया। यह दूसरी मिठाई क्या भाव है? तो उसने कहा, यह ढाई रुपए सेर है। तो उसने कहा, दो सेर, इसकी जगह वह तौल दो।

उसने दो सेर मिठाई तुलवा ली और चलने लगा। जब चलने लगा, तो दुकानदार ने पूछा कि पैसे? तो उसने कहा कि मैंने तो यह उस मिठाई के बदले में ली है; तो पैसे किस बात के?

तो उस दुकानदार ने कहा, और उस मिठाई के पैसे? उसने कहा, जो मैंने ली ही नहीं, उसके पैसे मांगते हैं?

साकार और निराकार के बीच में हम ऐसे ही गोते खाते रहते हैं। जब निराकार का सवाल उठता है, तब हम कहते हैं कि नहीं, यह अपने बस की बात नहीं है। साकार ही ठीक होगा। और जब साकार की बात उठती है, तो हम कहते हैं कि कैसे मानें कि परमात्मा का कोई आकार हो सकता है। तब बुद्धि विचार उठाने लगती है। और कैसे मानें कि परमात्मा की कोई देह हो सकती है। और कैसे मानें कृष्ण को; कैसे मानें बुद्ध को कि ये भगवान हैं!

नहीं, मन मानने का नहीं होता। हमारे जैसी ही हड्डी, मांस, मज्जा है। हमारे जैसा ही शरीर है। हम जैसे ही जीते हैं, मर जाते हैं, तो कैसे मानें कि ये भगवान हैं! नहीं, इनको नहीं मान सकते। भगवान तो निराकार है।

जब साकार में उतरने का सवाल उठे, तब बुद्धि से हम निराकार की बात करते हैं। और जब निराकार में उतरना हो, तब हिम्मत नहीं जुटती; तब हम साकार का सोचने लगते हैं। इसको मैं बेईमानी कहता हूं। और जो व्यक्ति इसको ठीक से नहीं पहचान लेता, वह जिंदगीभर ऐसे ही व्यर्थ शक्ति और समय को गंवाता रहता है।

सोच लें ठीक से कि आपकी सामर्थ्य क्या है, और अपनी सामर्थ्य के अनुसार चलें। परमात्मा कैसा है, इसकी फिक्र छोड़ें। आपसे कौन पूछ रहा है

कि परमात्मा कैसा है! और आपके तय करने के लिए परमात्मा रुका नहीं है। और आप क्या तय करेंगे, इससे परमात्मा में कोई फर्क नहीं पड़ता है। आप मानें निराकार, मानें साकार, इससे परमात्मा में क्या फर्क पड़ेगा! आपकी मान्यता से आप में फर्क पड़ेगा।

तो अपनी तरफ सोचें कि मैं जैसा मानूंगा, वैसा मानने से मुझमें क्या फर्क पड़ेगा!

एक मित्र एक पंद्रह दिन हुए मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपको भगवान नहीं मान सकता। मैंने कहा, बिल्कुल अच्छी बात है। बात खतम हो गई। अब क्या इरादा है? तो उन्होंने कहा, मैं तो ज्यादा से ज्यादा आपको मित्र मान सकता हूं। मैंने कहा, यह भी बड़ी कृपा है! ऐसा आदमी भी खोजना कहां आसान है, जो किसी को मित्र भी मान ले! यह भी बात पूरी हो गई। तब वे मुझसे कहने लगे कि मेरी सहायता करिए। मुझे शांति चाहिए, आनंद चाहिए, और मुझे परमात्मा का दर्शन चाहिए। आपकी कृपा हो, तो सब हो सकता है।

तो मैंने उनको पूछा कि एक मित्र की कृपा से यह कुछ भी नहीं हो सकता। मित्र की तो कृपा ही क्या हो सकती है! आप मुझसे मांग तो ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान से हो सके! कि आपको शांति दे दूं, आनंद दे दूं, सत्य का ज्ञान दे दूं। मांग तो आप ऐसी कर रहे हैं, जो भगवान से हो सके। लेकिन किसी को भगवान मानने की मर्जी भी नहीं है। तो मित्र से जितना हो सकता है, उतना मैं करूंगा। और जिस दिन उतना चाहिए हो जितना भगवान से हो सकता है, उस दिन तैयारी कर के आना कि मैं भगवान हूं। तभी मांगना।

मैं भगवान हूं या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यह है कि आप क्या चाहते हैं अपनी जिंदगी में? क्या रूपांतरण चाहते हैं? उसको ध्यान में रखें। यहां मेरे पास बहुत-से प्रश्न हैं कि कृष्ण को हम भगवान नहीं मान सकते! बुद्ध को हम भगवान नहीं मान सकते!

तुमसे कह कौन रहा है? तुम नाहक परेशान हो रहे हो। न कृष्ण तुमसे कह रहे हैं; न बुद्ध तुमसे कह रहे हैं। और तुम्हारे कहने पर उनका होना कोई निर्भर भी नहीं है। यह कोई वोट का मामला थोड़े ही है, कि आपकी वोट मिलेगी, तो कृष्ण भगवान हो पाएंगे!

आप अकारण परेशान हैं। आप अपना सोचें कि कृष्ण से कितना लाभ लेना है! अगर कृष्ण से भगवान जैसा लाभ लेना है, तो भगवान मान लें। और न लेना हो, तो बात खतम हो गई। यह आपका ही लाभ और आपकी ही हानि और आपकी ही जिंदगी का सवाल है। इससे कृष्ण का कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन लोग बड़े परेशान होते हैं। लोग दूसरों के लिए परेशान हैं कि कौन क्या है! इसकी बिल्कुल चिंता नहीं है कि मैं अपनी फिक्र करूं, जिंदगी बहुत थोड़ी है।

एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। और वे कहने लगे, एक ही बात आपसे पूछनी है। सच में आप भगवान हैं? आपने ही दुनिया बनाई है?

तो मैंने उनको कहा कि आप जरा पास आ जाएं। क्योंकि यह मामला जरा गुप्त है। और मैं सिर्फ कान में ही कह सकता हूं। और एक ही शर्त पर कि आप किसी और को मत बताना।

वे बड़ी प्रसन्नता से पास हट आए। बूढ़े भी बच्चों जैसे ही होते हैं। बुद्धि नहीं बढ़ती। उन्होंने कान मेरे पास कर दिया। मैंने उनसे कहा, बनाई तो मैंने ही है यह दुनिया। लेकिन दुनिया की हालत देख रहे हैं कितनी खराब है! कि किसी से कह नहीं सकता हूं कि मैंने बनाई है। और आप किसी को बताना मत। वह जिसने बनाई है, वही फंस जाएगा! हालत इतनी खराब है।

तो आपसे भगवान इसीलिए छिपा फिरता है कि अगर कहीं भी किसी ने कहा कि मैं हूं, तो आप गर्दन पकड़ लेंगे कि तुम ही हो? यह दुनिया तुम्हीं ने बनाई है? तो कौन जुर्मी होगा इस दुनिया के लिए!

तो तुमको बताए देता हूं, लेकिन किसी को कहना मत। अगर कहा, तो मैं बदल जाऊंगा। लेकिन मैंने उन बूढ़े सज्जन से पूछा कि इससे तुम्हें क्या फर्क पड़ेगा कि किसने दुनिया बनाई, किसने नहीं बनाई? और मैं कह दूं, हां और न। इससे तुम्हें होगा क्या? मौत करीब आ रही है, एक क्षण का कोई भरोसा नहीं है, तुम्हारे हाथ-पैर हिलने शुरू हो गए हैं। और तुम अभी बच्चों की बातों में पड़े हो? कुछ फिक्र करो अपनी!

बुद्धिमान आदमी वह है, जो अपनी फिक्र कर रहा है। नासमझ वह है, जो व्यर्थ की बातों में पड़ा है। और कई बार हम समझते हैं कि व्यर्थ की बातें बड़ी कीमती हैं, बड़ी कीमती हैं। क्या कीमत है इस बात की?

एक बात सदा ध्यान में रखें कि जो भी आप मानना चाहते हों, जो भी करना चाहते हों, जो भी धारणा बनाना चाहते हों, उससे आपको क्या होगा? क्या आप बदल सकेंगे? आपकी नई जिंदगी शुरू होगी? आपका पुराना कचरा बहेगा, जल जाएगा? आपको कोई नई ज्योति मिलेगी? इसका ख्याल करें।

अगर निराकार से मिलती हो, तो निराकार की तरफ चल पड़ें। अगर साकार से मिलती हो, तो साकार की तरफ चल पड़ें। जहां से मिलती हो आनंद की किरण, वहां चल पड़ें। चलने से यात्रा पूरी होगी, बैठकर सोचने से यात्रा पूरी नहीं होगी।

कुछ लोग जिंदगीभर विचार ही करते रहते हैं कि साकार कि आकार कि निराकार; निर्गुण कि सगुण; कि कृष्ण, कि राम, कि क्राइस्ट!

कब तक सोचते रहेंगे? सोचने से कोई यात्रा नहीं होती। चलें। और मैं मानता हूं, गलत भी चल पड़ें, तो हर्जा नहीं है; क्योंकि गलत से भी सीखने मिलेगा। और गलत चल पड़े, तो कम से कम चले तो। चलना तो कम से कम आ ही जाएगा, गलत रास्ते पर ही सही। वह चलना हाथ में होगा, तो कभी सही रास्ते पर भी चल सकते हैं। लेकिन साहस बिल्कुल चलने का नहीं है।

और हम सिर्फ सिर में ही, खोपड़ी के भीतर ही चलते रहते हैं। उस चलने से कुछ भी न होगा।

एक मित्र ने पूछा है, अनेक-अनेक दुर्लभ भक्त हुए--चैतन्य, मीरा, कबीर, रैदास, तुलसी, नरसी--और उन्होंने व्यापक पैमाने पर भक्ति का सारे देश में प्रचार भी किया। किंतु इस सब के बावजूद भी आज भक्ति-भाव से देश रिक्त दिखाई पड़ता है। क्या कारण है?

नरसी को, या रैदास को, या दादू को, या कबीर को जो मिला है, वह उनके प्रचार से आपको नहीं मिल सकता। धर्म प्रचार से नहीं मिलता। धर्म कोई राजनीति नहीं है कि प्रचार से फैला दी जाए।

कबीर प्रचार करते भी नहीं। कबीर तो केवल खबर दे रहे हैं कि जो उन्हें मिला है, वह तुम्हें भी मिल सकता है। लेकिन कबीर के कहने से नहीं मिल जाएगा। कबीर ने जो किया है, वह तुम्हें भी करना पड़ेगा, तो ही मिलेगा।

भक्ति दी नहीं जा सकती। ज्ञान हस्तांतरित नहीं होता। यह कोई दे नहीं सकता कि लो, ले जाओ; यह ज्ञान रहा। बाप मरे, तो बेटे को दे दे। गुरु मरे, तो शिष्य को दे दे। ट्रांसफरेबल नहीं है।

अनुभव तो कबीर के साथ कबीर का मर जाएगा। जिन्होंने कबीर की बात सुनकर कर ली होगी, उनके भीतर फिर पैदा हो जाएगा। लेकिन यह कबीर वाला ज्ञान नहीं है। यह इनका अपना ज्ञान है, जो पैदा होगा।

कबीर के दीए से अगर आप अपना दीया जला लें, तो ही! कबीर के प्रचार से नहीं। कबीर के कहने से नहीं। कबीर की किताबों को सम्हालकर पढ़ लेने से नहीं। उससे कुछ भी न होगा। आप मूल बात तो चूक ही रहे हैं।

इस मुल्क में--इस मुल्क में ही नहीं, सारी जमीन पर, सभी मुल्कों में भक्त हुए, ज्ञानी हुए। उन्होंने जो पाया, वह कहा भी। जो नहीं कहा जा सकता था, उसको भी कहा। जिसको कहना बिल्कुल असंभव था, उसको भी शब्दों में बांधने की अथक कोशिश की। सिर पटका आपके सामने। आपने सुना भी। पहले तो आपने कभी भरोसा नहीं किया कि ये जो कहते हैं, वह ठीक होगा।

कौन कबीर पर भरोसा करता है? मन में आपको ऐसा ही लगा रहता है कि पता नहीं, यह आदमी होश में है या बेहोश है? यह जो कह रहा है, सच है कि झूठ है? यह जो कह रहा है, यह सपना है या अनुभव है? आपको यह शक तो बना ही रहता है।

आप हजार तरकीब से यह तो कोशिश करते ही रहते हैं कि कहीं न कहीं कोई भूल-चूक कबीर से हो गई है। क्योंकि जो हमको नहीं हुआ, वह इसको कैसे हो सकता है? और हम जैसे बुद्धिमान को नहीं हुआ, तो ये कबीर जैसे गैर पढ़े-लिखे आदमी को हो गया!

काशी के पंडितों को बड़ा शक था कि यह कबीर को हो नहीं सकता। कैसे होगा? इतने शास्त्र हम जानते हैं और हम को नहीं हुआ! किसी के पास धन है; वह सोचता है, इतना धन मेरे पास है और मुझको नहीं हुआ और इसको हो गया! जरूर कहीं कोई गड़बड़ है। यह जुलाहा या तो बहक गया, या दिमाग इसका खराब हो गया!

लेकिन कबीर जैसे लोग सुनते नहीं इस तरह के लोगों की। वे कहे ही चले जाते हैं, कहे ही चले जाते हैं। पहले लोग हंसते हैं, पहले लोग अविश्वास करते हैं। फिर नहीं मानते, तो कुछ न कुछ मानने वाले भी मिल जाते हैं। और कबीर कहे ही चले जाते हैं, तो फिर कुछ लोग कहने लगते हैं कि हो ही गया होगा! इतने दिन तक आदमी कहता है।

लेकिन कोई भी प्रयोग करने को राजी नहीं होता है कि यह जो कह रहा है, वह हम भी करके देख लें। क्योंकि प्रयोग करके देखने का मतलब तो जीवन को बदलना है। वह कठोर बात है। वह श्रमसाध्य है। इसलिए हम सुन लेते हैं कबीर को और उनकी वाणी को संगृहीत कर लेते हैं। और फिर विश्वविद्यालय में उस पर शोधकार्य और रिसर्च और डाक्टरेट बांटते रहते हैं। बस, इतना उपयोग होता है!

बड़े मजे की बात है कि जो पंडित कबीर को सुनने नहीं जा सकते थे, वे सब पंडित विश्वविद्यालयों में डाक्टरेट कबीर पर लेकर और बड़े-बड़े पदों पर बैठ जाते हैं। कबीर को कोई विश्वविद्यालय डाक्टरेट देने को राजी नहीं हो सकता था। लेकिन कबीर पर सैकड़ों लोग शोध करके डाक्टर हो जाते हैं। और इन डाक्टरों में से एक भी, कबीर अगर मौजूद हो, तो उसके पास जाने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि ये पढ़े-लिखे सुसंस्कृत लोग, यह कबीर, गैर पढ़ा-लिखा, जुलाहा, इसके पास... !

हमें लगता है, इतने संत हुए, फिर भी दुनिया संतत्व से खाली क्यों है?

संत दुनिया को संतत्व से नहीं भर सकते। संत तो केवल खबर दे सकते हैं कि यह घटना भी संभव है। और संत अपने व्यक्तित्व से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उनके जीवन में वह घट गया है, जिसको परमात्मा कहते हैं। लेकिन वह तो संत के साथ तिरोहित हो जाएगा। दीया टूटेगा कबीर का और लौ परमात्मा में लीन हो जाएगी। आप उसको कहां सम्हालकर रखेंगे? वह तो आपका भी दीया जल जाए, आप में भी ज्योति जल जाए, तो!

लेकिन हम संतों के आस-पास संप्रदाय बना लेते हैं। मंदिर खड़े कर लेते हैं, मस्जिद बना लेते हैं, गुरुद्वारे खड़े कर लेते हैं। और संतों को उन्हीं में दफना देते हैं। बात खतम हो गई। उनसे छुटकारा हो गया!

संतों से छुटकारे के दो रास्ते हैं, या तो उनको सूली लगा दो, और या उनकी पूजा करने लगो। बस, दो ही उपाय हैं उनसे छुटकारे के। सूली लगाने

वाला भी कहता है, झंझट मिटी। पूजा करने वाला भी कहता है कि चलो, फूल चढ़ा दिए दो, झंझट मिटी, तुमसे छुटकारा हुआ। अब हम अपने काम पर जाएं!

जरूर इतने संत हुए हैं, लेकिन कहीं कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यह नहीं है कि संतों को जो हुआ था, वह असत्य है। इसका कारण यह है कि हम असाध्य बीमारियां हैं। कितने ही संत हों, हम अपनी बीमारी को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि हम उनको असफल करके ही रहते हैं। यह हमारी सफलता का परिणाम है, यह जो दिखाई पड़ रहा है! हम सफल हो रहे हैं। और हमारी संख्या बड़ी है, ताकत बड़ी है।

और मजा यह है कि अज्ञान में जीने के लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए हम उसमें मजे से जी लेते हैं। ज्ञान में जीने के लिए श्रम करना पड़ता है। ज्ञान चढ़ाई है पर्वत के शिखर की तरफ। हम समतल जमीन पर मजे से बैठे रहते हैं। समतल पर भी कहना ठीक नहीं है। हम तो खाई की तरफ लुढ़कते रहते हैं। वहां कोई मेहनत नहीं लगती। गड्ढे की तरफ गिरने में कोई मेहनत है?

श्रम से हम बचते हैं। और अध्यात्म सबसे बड़ा श्रम है। इसलिए दुनिया में बुद्ध होते हैं, महावीर होते हैं, क्राइस्ट, मोहम्मद होते हैं, खो जाते हैं। हम मजबूत हैं, वे हमें हिला भी नहीं पाते। हम अपनी जगह अडिग बने रहते हैं।

फिर अध्यात्म के साथ कुछ कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि अध्यात्म कोई बाह्य संपत्ति नहीं है, जो संगृहीत हो सके। अगर आपके पिता मरेंगे, तो जो मकान बनाएंगे, वह आपके पास छूट जाएगा। जो धन इकट्ठा करेंगे, वह आपके नाम छूट जाएगा। कोई क्रेडिट होगी बाजार में, उसको भी आप उपयोग कर लेंगे। लेकिन अगर आपके पिता को कोई प्रार्थना का अनुभव हुआ, तो वह कहां छूटेगा! अगर कोई ज्ञान की झलक मिली, तो वह कैसे छूटेगी! उसकी कहीं कोई रेखा ही न बनेगी पदार्थ पर। वह तो पिता के साथ

ही विलीन हो जाएगी। और पिता के जाने के बाद उस पर भरोसा भी न आएगा कि वह थी।

इसलिए हम सबको संदेह है कि बुद्ध कभी सच में हुए? क्राइस्ट सच में हुए या कहानी है? क्योंकि वह जो घटना है, वह इतनी अनहोनी है कि दिखाई तो पड़ती नहीं कहीं। तो शक पैदा होता है। तो लगता है कि कहानी ही होगी।

इसलिए जिंदा संत को मानने में हमें ज्यादा कठिनाई होती है, बजाय मुर्दा संत को मानने के। क्योंकि मुर्दा संत को मानने में अड़चन इसलिए नहीं होती कि हमारे पास कोई प्रमाण भी नहीं होता कि उसको हम कहें कि नहीं, यह नहीं हुआ।

जिंदा संत को मानने में बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि हम पच्चीस कारण निकाल सकते हैं कि इस कारण से शक होता है। इस कारण से शक होता है। तुमको भी भूख लगती है। तो फिर हममें तुममें फर्क क्या है? तुमको भी सर्दी लगती है; तुमको भी बुखार आ जाता है। फिर हममें तुममें फर्क क्या है? फिर कुछ ज्ञान वगैरह नहीं हुआ। जैसे कि बुखार ज्ञान से डरता हो! जैसे कि मौत ज्ञानी को घटित न होती हो!

मौत भी ज्ञानी को घटित होती है। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है। आपको भी मौत आती है, ज्ञानी को भी मौत आती है। आपको जब मौत आती है, तो आप भयभीत होते हैं। ज्ञानी को जब मौत आती है, तो भयभीत नहीं होता। फर्क मौत में नहीं पड़ता, फर्क ज्ञानी में पड़ता है।

हां, अगर मौत न आए, तो हम मान लें कि यह आदमी हो गया परम ज्ञान को उपलब्ध। लेकिन मौत तो आती है बुद्ध को भी। कृष्ण भी मरते हैं। शरीर तो खोता है उसी तरह, जिस तरह हमारा खोता है। और शरीर से गहरी हमारी आंख नहीं जाती कि भीतर कुछ और भी है।

तो बुद्ध मिट जाते हैं जमीन से, कहानी रह जाती है। और फिर कहानी पर धीरे-धीरे हमें शक भी आता है। लेकिन अब दो हजार साल पुरानी कहानी से झगड़ा भी कौन करे!

पर आपको ख्याल है कि जिंदा गुरु का हमेशा विरोध होता है! बुद्ध जिंदा होते हैं, तो विरोध होता है; बुद्ध मर जाते हैं, तो कोई विरोध नहीं करता।

एक और मजे की बात है कि लोग मरे हुए गुरु को मानते हैं। कोई मरी हुई पत्नी से विवाह नहीं करता! आप जिंदा पत्नी चाहेंगे, अगर विवाह करना है। दो हजार साल पहले कोई औरत हुई हो, चाहे वह कितनी ही सुंदरी रही हो, आम्रपाली क्यों न रही हो, वह कितनी ही सुंदरी रही हो जगत की, दो हजार साल पहले हुई हो और मर गई, आप उससे शादी करने को राजी न होंगे। कि होंगे? आप दो हजार साल पहले की सुंदरतम स्त्री से शादी न करके आज मौजूद जिंदा स्त्री से, चाहे वह उतनी सुंदर न भी हो, उससे शादी करना पसंद करेंगे। क्यों?

लेकिन अगर जिंदा गुरु हो, तो आप उसको नहीं मान सकते। दो हजार साल पुराना मरा हुआ गुरु हो, उसको ही मान सकते हैं। कुछ मामला गड़बड़ दिखता है।

असल में गुरु से आप बचना चाहते हैं। मरा हुआ गुरु अच्छा है, वह आपका पीछा नहीं कर सकता। जिंदा गुरु आपको दिक्कत में डालेगा। इसलिए मरा गुरु ठीक है। आप जो चाहें, मरे गुरु के साथ कर सकते हैं। जिंदा गुरु के साथ आप जो चाहें, वह नहीं कर सकते। वह जो चाहता है आपके साथ, वही करेगा। इसलिए मुर्दा गुरु के साथ दोस्ती बन जाती है।

मुर्दा पत्नी कोई नहीं चाहता, मुर्दा पति कोई नहीं चाहता। मुर्दा गुरु सब चाहते हैं। क्योंकि गुरु से लोग बचना चाहते हैं, बचाव कर रहे हैं।

नरसी हैं, कबीर हैं, इनकी क्या फिक्र करते हैं! आज भी लोग वैसे ही मौजूद हैं। लेकिन उनकी बात आप दो-तीन सौ साल बाद करेंगे, जब वे मर जाएंगे।

उनको खोजिए, जो जिंदा हैं। आपके बीच अभी भी, जमीन कभी भी खाली नहीं है। उसमें हमेशा एक अनुपात में उतने ही लोग सदा ज्ञान को उपलब्ध होते हैं हर युग में। लेकिन आपकी आंखें अंधी हैं। उनको आप देख नहीं पाते। आप तो दो हजार साल जब प्रचार चलता है किसी की कहानी का, तब उसे देख पाते हैं। आपके मानते-मानते वह आदमी खो गया होता है, तब आप मान पाते हैं। और जब वह होता है, तब आप उसे मान नहीं पाते।

जीसस को जिन्होंने सूली दे दी, वे ही अब दो हजार साल बाद पूजा कर रहे हैं। इसलिए परिणाम नहीं हो पाता।

जिंदा गुरु की तलाश करें। जिंदा भक्त को खोजें। और एक ही बात ध्यान रखें कि आपको इसकी चिंता नहीं करनी है कि वह भक्त, है भक्त या नहीं। आपको यही चिंता करनी है कि उसके सान्निध्य में मुझमें भक्ति उतरती है या नहीं। उतरे, तो समझना कि है। न उतरे, तो कोई और खोज लेना। लेकिन जिंदा दीए की तलाश करें, ताकि आपका बुझा दीया जल सके।

और जिंदा दीया हमेशा उपलब्ध है। लेकिन आप हमेशा मरे हुए दीयों के आस-पास मंडराते हैं। फिर आपका दीया नहीं जलता, तो आप पूछते हैं, नरसी हुए, मीरा हुई, कबीर हुए, दादू हुए, कुछ हुआ नहीं? वे अभी भी हैं। उनके नाम कुछ और होंगे। उन्हें खोजें। और उनकी बातें मत सुनें; उनसे जीवन की कला सीखें; अपने को बदलने की कीमिया सीखें। और साहस करें थोड़ा बदलने का।

थोड़ी-सी बदलाहट भी आपको जिंदगी में इतने रस से भर देगी कि फिर आप और बदलने के लिए राजी हो जाएंगे।

अभी आपकी जिंदगी में सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ भी नहीं है। सिवाय उदासी और निराशा के कुछ भी नहीं है। सिवाय विषाद और संताप के कुछ भी नहीं है। अभी आप एक जीते-जागते नरक हैं। इसमें कुछ प्रकाश की किरण कहीं से भी मिलती हो, तो लाने की कोशिश करें। और कहीं से भी कुछ फूल खिल सकते हों, तो खिलाएं।

लेकिन कहीं से भी आपको फूल की खबर आए, तो पहले तो आप यह शक करते हैं कि फूल असली नहीं हो सकता। क्या कारण है? आप इतने नरक से भरे हैं कि आप मान ही नहीं सकते कि कहीं स्वर्ग हो सकता है। स्वर्ग बहुत-से हृदयों में अभी भी है, लेकिन आपके पास आंख, खुला मन, सीखने का भाव चाहिए।

दुनिया में गुरु तो सदा उपलब्ध होते हैं, लेकिन शिष्य सदा उपलब्ध नहीं होते। इससे गड़बड़ होती है। ये नरसी और कबीर और दादू असफल जाते हैं, क्योंकि गुरु हो जाना तो उनके हाथ में है; लेकिन शिष्य तो आपके हाथ में है।

तो दुनिया में गुरु भी हो, लेकिन उसे शिष्य न मिल पाएं, तो मुसीबत हो जाती है। कोई सीखने को तैयार नहीं है। सब सिखाने को तैयार हैं। क्योंकि सीखने के लिए झुकना पड़ता है। आप भी सिखाने को तैयार हैं। आप भी लोगों को सिखाते रहते हैं बिना इसकी फिक्र किए कि आप क्या सिखा रहे हैं।

अगर आपका बेटा आपसे पूछता है, ईश्वर है? तो आप में इतनी हिम्मत है कि आप कहें कि मुझे पता नहीं है? आप कहते हैं, है, बिल्कुल है। और अगर आप नास्तिक हैं, कम्युनिस्ट हैं, तो आप कहते हैं, नहीं है, बिल्कुल नहीं है। लेकिन एक बात पक्की है कि आप जवाब मजबूती से देते हैं, बिना इस बात की फिक्र किए कि आपको कुछ भी पता नहीं है। या तो हां कहते हैं, या

न कहते हैं। लेकिन आप यह नहीं कहते कि नहीं, मुझे पता नहीं है। मैं सिखाने में असमर्थ हूं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे के साथ बगीचे में घूम रहा था। तो उसके बेटे ने पूछा कि पिताजी, सूरज किसने बनाया?

मुल्ला ने एक क्षण तो सोचा। क्योंकि कोई भी बाप यह स्वीकार करना मुश्किल अनुभव करता है कि मुझे पता नहीं है। लेकिन ऐसे मुल्ला ईमानदार आदमी था। उसने कहा कि नहीं, मेरा मन तो उत्तर देने का होता है, लेकिन आज नहीं कल तू पता लगा ही लेगा। इसलिए मैं तुझसे साफ ही कह दूं। मुझे पता नहीं है।

घूम रहे थे। फिर उस बच्चे ने पूछा कि ये वृक्ष कौन बड़े कर रहा है? मुल्ला ने कहा कि मुझे पता नहीं है। फिर उस लड़के ने पूछा कि रात को चांद निकलता है, तो उसका एक ही पहलू हमें हमेशा दिखाई पड़ता है। दूसरा पहलू क्यों दिखाई नहीं पड़ता? मुल्ला ने कहा, मुझे पता नहीं है।

बार-बार लड़के ने यह सुनकर कि मुझे पता नहीं, मुझे पता नहीं, लड़का उदास हो गया। उसके उदास चेहरे को देखकर मुल्ला ने पूछा, बेटा पूछ। दिल खोलकर पूछ। पूछेगा नहीं, तो सीखेगा कैसे?

कुछ भी पता नहीं है, फिर भी पूछेगा नहीं तो सीखेगा कैसे! हम सब सिखा रहे हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि हमें पता है या नहीं है।

धार्मिक व्यक्ति इस बात से शुरुआत करता है कि मुझे पता नहीं है और अब मैं सीखने निकलता हूं। फिर वह विनम्र होगा, फिर वह झुका हुआ होगा। फिर जहां से भी सीखने को मिल जाए, वह सीखेगा।

सीखने वालों की कमी है, इसलिए कबीर, दादू असफल चले जाते हैं। और जो हम उनसे सीखते हैं, वह शब्द हैं, ज्ञान नहीं सीखते; उनके शब्द सीख लेते हैं।

कबीर के पद याद हो जाते हैं। तुलसी की चौपाइयां याद हो जाती हैं। लोग तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। जब तक वह अनुभव आपको न हो जाए, जो उन पदों में छिपा है, तब तक वे पद तोते की तरह हैं। अच्छा है मत दोहराएं। क्योंकि तोता होना अच्छा नहीं है। जब तक जान न लें, तब तक चुप रहें। और जो ताकत है, वह बोलने में न लगाकर, खोजने में लगाएं। तो कबीर सफल हो सकते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य तो अपने भाग्य को लेकर जन्मता है, तो अगर खोज भाग्य में होगी भगवान की, तो हो जाएगी। नहीं होगी, तो नहीं होगी!

यह बात मतलब की भी हो सकती है और खतरनाक भी। मतलब की तो तब, जब जीवन के और हर पहलू पर भी यही दृष्टि हो। फिर सुख को भी मत खोजें। मिलना होगा, मिल जाएगा। फिर दुख से भी मत बचें; क्योंकि भोगना है, तो भोगना ही पड़ेगा। फिर जिंदगी में जो कुछ भी हो, उसको स्वीकार कर लें; और जो न हो, उसको भी स्वीकार कर लें कि वह नहीं होना है। तो फिर मैं आपको कहता हूं कि भगवान को भी मत खोजें। भगवान आपको खोजता हुआ आ जाएगा। लेकिन फिर भाग्य की इतनी गहरी निष्ठा चाहिए कि जो होगा, ठीक है।

सिर्फ भगवान के संबंध में यह बात और धन के संबंध में खोज जारी रखें, तो फिर बेईमानी है। धन के संबंध में खोज जारी रखें, और उसमें तो कहें कि पुरुषार्थ के बिना क्या होगा! और खोजेंगे नहीं तो मिलेगा कैसे! और जो लोग खोज रहे हैं, उनको मिल रहा है। तो ऐसे हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे, तो गंवा देंगे। तो धन की तो खोज जारी रखें, क्योंकि धन पुरुषार्थ के बिना कैसे होगा! और जब भगवान को खोजने का सवाल आए, तब कहें कि

सब भाग्य की बात है। होगा, तो हो जाएगा। नहीं होगा, तो नहीं होगा। तो फिर धोखा है, आत्मवंचना है।

तो मैं मानता हूं कि अगर भाग्य को कोई पूरी तरह स्वीकार कर ले, तो उसे भगवान को खोजने की जरूरत नहीं है। भगवान ही उसे खोजेगा। लेकिन भाग्य को पूरा स्वीकार करने का अर्थ समझ लेना। फिर कुछ भी मत खोजना। फिर खोजना ही मत। फिर यह बात ही छोड़ देना कि मेरे हाथ में करने का कुछ भी है। फिर तो जो भी हो, होने देना। जो भी हो, होने देना। अपनी तरफ से कुछ करना ही मत।

अगर कोई व्यक्ति इतने भाग्य पर अपने को छोड़ दे, तो समर्पण हो गया। उसे भगवान का पता न भी हो, तो भी भगवान उसे मिल ही गया, इसी क्षण मिल गया। कोई बाधा न रही।

लेकिन यह कानूनी बात न हो। यह कोई लीगल तरकीब न हो हमारी। क्योंकि हम बड़े कानूनविद हैं। और हम ऐसी तरकीबें निकालते हैं, जिनका हिसाब नहीं है!

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमार थी। मरने के करीब थी। डाक्टर को नसरुद्दीन ने बुलाया। मरने के करीब थी पत्नी, बीमारी खतरनाक थी, तो डाक्टर ने कहा कि इलाज जरा महंगा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि कितना ही महंगा हो, मैं सब चुकाऊंगा; अपना सब घर बेचकर चुकाऊंगा। लेकिन इसे बचाओ। तो डाक्टर ने कहा कि और यह भी हो सकता है, यह न बचे। तो नसरुद्दीन ने कहा कि अगर तुम बचा सको तो, और तुम मार डालो तो, जो भी खर्च होगा, वह तो मैं चुकाऊंगा ही।

फिर डाक्टर इलाज में लग गया। सात दिन बाद पत्नी मर गई। काफी खर्च हुआ। डाक्टर ने बिल भेजा। तो नसरुद्दीन ने कहा कि ऐसा करें कि हम

गांव के पुरोहित के पास चले चलें। डाक्टर ने कहा, क्या मतलब? नसरुद्दीन ने कहा, मैं गरीब आदमी हूं, यह बिल पुरोहित जैसा कह देगा, वैसा कर लेंगे।

पुरोहित के पास नसरुद्दीन गया। पुरोहित के सामने नसरुद्दीन ने कहा कि डाक्टर बोलो, हमारी क्या शर्त थी? तो डाक्टर ने कहा, शर्त थी हमारी कि मैं बचाऊं या मारूं, दोनों हालत में तुम मूल्य चुकाओगे।

तो नसरुद्दीन ने कहा, तुमने मेरी पत्नी को बचाया? तो डाक्टर ने कहा कि नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा, तुमने मेरी पत्नी को मारा? तो डाक्टर ने कहा कि नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि किस समझौते के बल पर ये पैसे मांग रहे हो? किस हिसाब से? न तुमने बचाया, न तुमने मारा। और मैंने कहा था, बचाओ या मारो, दोनों हालत में पैसे चुका दूंगा।

हम भी ऐसा रोज-रोज करते रहते हैं। कुछ कानूनी व्यवस्थाएं खोजते रहते हैं।

यह ख्याल आपको भगवान को खोजते वक्त ही आया, कि भाग्य, या पहले भी कभी आया?

असल में जिसकी खोज से बचना है, उसको हम भाग्य पर छोड़ देते हैं। और जिसे खोजना ही है, उसे हम अपने हाथ में रखते हैं। मगर इसमें ऐसा भी लगता है कि हम तो खोजना चाहते हैं, लेकिन भाग्य में ही न हो, तो क्या कर सकते हैं!

एक तरफ राजी हो जाएं। और पूरी तरह राजी हो जाएं। और कोई तरकीबें न निकालें। तो परमात्मा को खोजना भी जरूरी नहीं है।

भाग्य परमात्मा को खोजने की गहरी व्यवस्था है। शायद आपने इस तरह न सोचा होगा। भाग्यवाद का भाग्य से कोई संबंध नहीं है। भाग्यवाद का संबंध परमात्मा की खोज की एक विधि से है। इसलिए जो लोग कहते हैं कि सच में भाग्य है या नहीं, वे लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं। यह तो एक

डिवाइस है, यह तो एक उपाय है परमात्मा की खोज का। यह तो जगत में परम शांति पाने की एक विधि है।

जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसे आप अशांत नहीं कर सकते। भाग्य सच में है या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह असंगत है बात। यह तो सिर्फ एक उपाय है कि जो व्यक्ति सब कुछ भाग्य पर छोड़ देता है, उसने सब कुछ पा लिया। उससे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। उसकी शांति परम हो जाएगी। उसका आनंद अखंड हो जाएगा। और अगर भगवान है, तो भगवान उसे मिल जाएगा। जो भी है, वह उसे उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि अनुपलब्धि की भाषा ही उसने छोड़ दी है। और अगर भगवान उसे न भी मिले, तो भी उसे बेचैनी नहीं होगी। यह मजा है। उसे कोई बेचैनी ही नहीं है। वह कहेगा कि जो भाग्य में है, वह होगा।

लेकिन यह बात बड़ी गहरी है। आप यह मत समझना कि आप भाग्यवादी हैं, क्योंकि आप चौरस्ते पर बैठे हुए किसी ज्योतिषी को हाथ दिखाते हैं। इसलिए आप भाग्यवादी हैं, यह आप मत सोचना। अगर भाग्यवादी ही होते, तो चौरस्ते के ज्योतिषी पर जो चार आने लेकर आपका भाग्य देखता है, उस पर आपका भरोसा नहीं हो सकता।

भाग्यवादी का हाथ तो परमात्मा देख रहा है। उसको बीच के दलालों की जरूरत नहीं है। और चार आने में यह दलाल क्या बताएगा? कितना बताएगा? और आपको पता नहीं है कि यह भी बेचारा दूसरे ज्योतिषी को हाथ दिखाता है!

मैंने सुना है कि दो ज्योतिषी पास ही पास रहते थे। सुबह जब अपने धंधे पर निकलते थे, तो एक-दूसरे से पूछते थे, मेरे बाबत आज क्या ख्याल है? आज कैसा धंधा रहेगा?

एक ज्योतिषी एक बार मेरे पास आया। एक मित्र ले आए थे। ज्योतिषी बहुत कीमती था। और एक हजार एक रुपया लेकर ही हाथ देखते था। मेरे

मित्र पीछे पड़े थे कि हाथ दिखाना ही है। एक हजार एक रुपया वे दे देंगे। मैंने कहा कि अगर हाथ दिखाना है, तो रुपये मैं दूंगा। तुम्हें नहीं देने दूंगा।

हाथ मैंने दिखाया। हाथ देखकर उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। फिर वे रुपए की राह देखने लगे। लेकिन मैंने उनसे कहा कि आप इतना भी मेरे हाथ से न समझ सके कि यह आदमी रुपए नहीं देगा! आप इतनी मेहनत कर रहे हैं! अपना हाथ देखकर घर से निकले थे? सुबह ख्याल कर लिया करें कि कितना मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ये तो नहीं मिलने वाले। ये आपके भाग्य में नहीं हैं।

वह आदमी रोने-धोने लगा कि पांच सौ भी दे दें। फिर सौ पर भी राजी हो गया, कि मैं इतनी दूर आया हूं! मैंने कहा, भाग्य इतनी आसानी से नहीं बदलता कि हजार से पांच सौ पर आ गया, सौ पर आ गया! भाग्य में तेरे है ही नहीं!

यह जो ज्योतिषी को हाथ दिखाने वाला आदमी है, यह भाग्यवादी नहीं है। भाग्यवादी पंडितों के पास नहीं जाएगा, तांत्रिकों के पास नहीं जाएगा। क्योंकि भाग्यवादी यह कह रहा है कि जो होने वाला है, वह होगा; उसमें बदलने का भी कोई उपाय नहीं है।

एक तांत्रिक कह रहा है कि यह मंत्र पूरा कर लो, यह पूजा करवा दो, यह पांच सौ रुपये खराब कर दो, ऐसा करो, तो भाग्य बदल जाएगा। जो बदल सकता है, वह भाग्य ही नहीं है। जो नहीं बदल सकता... ।

और ध्यान रहे, जो नहीं बदल सकता, उसको जानने का कोई उपाय नहीं हो सकता। क्योंकि जानने से भी बदलाहट शुरू हो जाती है। जानना भी एक बदलाहट है।

अगर आपको यह पता चल जाए कि कल सुबह आप मर जाएंगे, तो कल सुबह तक की जो जिंदगी बिना पता चलने में रहती, वही नहीं हो सकती पता चलने के बाद। फर्क हो जाएगा। वह जो बोध आपको आ गया कि मैं मर

जाऊंगा कल सुबह, वह आपकी पूरी रात को बदल देगा। यह रात वैसी ही नहीं हो सकती अब, जैसी कि बिना पता चले आप सोए होते। अब आप सो नहीं सकते।

भाग्यवादी तो मानता है कि जो भी होगा, वह होगा। कुछ करने का उपाय नहीं है। करने वाले की कोई सामर्थ्य नहीं है। विराट की लीला है; मैं उसका एक अंग मात्र हूं। एक लहर हूं सागर पर। मेरा अपना कुछ होना नहीं है।

ऐसी समझ एक विधि है, एक उपाय है। ऐसी समझ में जो गहरा उतर जाता है, उसे फिर कुछ भी नहीं खोजना है। परमात्मा भी नहीं खोजना है। परमात्मा खुद उसे खोजता हुआ उसके पास चला आता है।

पर सोचकर! बाकी सब आप खोजें और परमात्मा आपको खोजे, ऐसा नहीं होगा। बाकी सब खोजना है, तो परमात्मा भी आपको ही खोजना पड़ेगा। कुछ भी नहीं खोजना है, तो वह आपको खोज लेगा।

अब हम सूत्र को लें।

इस प्रकार शांति को प्राप्त हुआ जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी है और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित और सुख-दुखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट है तथा मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

क्या है परमात्मा को प्रिय? यह प्रश्न हजारों-हजारों साल में हजारों बार पूछा गया है।

क्या है परमात्मा को प्रिय? क्योंकि जो उसे प्रिय है, वही हमारे लिए मार्ग है। क्या है उसे प्यारा? काश! हमें यही पता चल जाए, तो फिर हम

उसके प्यारे हो सकते हैं। कैसा चाहता है वह हमें? कब हमें चाह सकेगा? कब हमें समझेगा कि हम योग्य हुए उसके आलिंगन के? तो उसकी क्या रुझान है? उसका क्या लगाव है? उसकी क्या पसंद है? उसकी क्या रुचि है? वह अगर हमें पता चल जाए, तो मार्ग का पता चल गया।

क्या है परमात्मा को प्रिय? इसमें बहुत बातें सोचने जैसी हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि जो उसे प्रिय है, उसके साथ वह पक्षपात करेगा; जो उसे अप्रिय है, उसके साथ वह भेद-भाव करेगा। इसका यह मतलब नहीं है। नहीं तो हमें यह भी ख्याल होता है कि जो उसका प्रिय है, उसके पाप भी माफ कर देगा, उसके गुनाह भी क्षमा हो जाएंगे। और जो उसे प्रिय नहीं है, वह पुण्य भी करे, तो पुरस्कार न पा सकेगा।

नहीं; ऐसा नहीं है। परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ समझ लें। परमात्मा के प्रिय होने का अर्थ है, एक शाश्वत नियम, ऋत। जिसको लाओत्से ने ताओ कहा है। परमात्मा के प्रिय होने का इतना ही अर्थ है कि वह तो हमें हर क्षण उपलब्ध है, लेकिन जब हम एक खास ढंग में होते हैं, तब हम उसके लिए खुले होते हैं और वह हमारे भीतर प्रवेश कर जाता है। और जब हम उस खास ढंग में नहीं होते हैं, तो वह हमारे पास ही खड़ा अटका रह जाता है, क्योंकि हम अवरोध खड़ा करते हैं।

ऐसे ही जैसे सूरज निकला है और मैं अपनी आंख बंद किए खड़ा हूं। तो सूरज निकला रहे, मैं अंधेरे में खड़ा रहूंगा। और ठीक मेरी पलकों पर सूरज की किरणें नाचती रहेंगी। और प्रकाश इतने करीब था, एक पलक झपने की बात थी और मैं प्रकाश से भर जाता। लेकिन मैं आंख बंद किए हूं, तो मैं अंधेरे में खड़ा हूं।

सूरज को खुली आंखें प्रिय हैं, इसका मतलब समझ लेना। इसका कुल मतलब इतना है कि खुली आंख हो, तो सूरज प्रवेश कर पाता है। बंद आंख

हो, तो सूरज प्रवेश नहीं कर पाता। और सूरज आक्रामक नहीं है कि जबरदस्ती आपकी आंख खोल दे। अनाक्रमक है।

प्रेम अनाक्रमक होगा ही। जबरदस्ती आपकी आंख भी खोली जा सकती है कि सूरज चोट करे और आपकी आंख खोल दे। लेकिन इस जगत में अस्तित्व की कोई भी व्यवस्था आक्रामक नहीं है। आपके लिए प्रतीक्षा करेगा। सूरज प्रतीक्षा करेगा कि खोलना जब आंख, तब प्रकाश भर जाएगा।

परमात्मा के लिए प्रिय होने का यही अर्थ है कि कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम खुले होते हैं, रिसेप्टिव होते हैं, ग्राहक होते हैं और परमात्मा भीतर प्रवेश कर पाता है। और कुछ ढंग है व्यक्तित्व का, जब हम बंद होते हैं, और सब तरफ से द्वार, दरवाजे, खिड़कियों पर ताले पड़े होते हैं, और परमात्मा बाहर-बाहर भटकता रहता है, हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता।

कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि वह कौन-सा ढंग है जो परमात्मा को प्रिय है। कैसे तुम हो जाओ कि वह तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएगा। समझें।

शांति को प्राप्त हुआ पुरुष!

अशांत चित्त में क्या होता है? अशांत चित्त अपने में ग्रसित होता है। आप रास्ते पर चलते लोगों को देखें। जितना अशांत आदमी होगा, उतना ही रास्ते पर बेहोश चलता हुआ दिखाई पड़ेगा। अनेक लोग खुद से बातचीत करते हुए चलते जाते हैं। होंठ हिल रहे हैं; हाथ हिला रहे हैं। किससे बात कर रहे हैं? कोई वहां है नहीं उनके साथ। खुद से ही, भीतर परेशान हैं। भीतर परेशानी की तरंगें चल रही हैं।

अगर आप भी दस मिनट बैठकर अपना लिख डालें, आपके मन में क्या चलता है, तो आप खुद ही घबड़ा जाएंगे कि यह क्या मेरे भीतर चल रहा है! लगेगा, मैं पागल हूं! आप, जो आपके भीतर चलता है, किसी को भी नहीं

बताते। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसको भी नहीं बताते जो आपके भीतर चलता है।

तो मनसविद कहते हैं कि अगर कोई आदमी अपने भीतर जो चलता है, सब बता दे, तो फिर दुनिया में मित्र खोजना मुश्किल है। आप सब दबाए हैं भीतर; बाहर तो कुछ-कुछ थोड़ी-सी झलक देते हैं। वह भी काफी दुखदायी हो जाती है। सम्हाले रहते हैं।

यह जो भीतर अशांति का तूफान चल रहा है, यह दीवाल है। इसके कारण आप परमात्मा से नहीं जुड़ पाते। आपके और परमात्मा के बीच में एक तूफान है अशांति का, विचार का, विक्षिप्तता का, पागलपन का। यह हट जाए।

कृष्ण कहते हैं, शांति को प्राप्त हुआ!

और शांति को वही प्राप्त होता है--या तो ध्यान से चले, विचारशून्य हो जाए; या प्रेम से चले और भक्तिपूर्ण हो जाए। या तो सारे विचार समाप्त हो जाएं या सारे विचार प्रेम में डूबकर प्रेममय हो जाएं और प्रेम ही रह जाए, विचार खो जाएं। या तो सब विचार पिघलकर प्रेम बन जाए और या सब विचार भाप बन जाएं, और भीतर शून्य, शांत अवस्था रह जाए।

जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित... ।

और जैसे ही कोई शांत होगा, द्वेष समाप्त हो जाता है। या उलटा भी समझ लें। जैसे ही द्वेष समाप्त होता है, शांत हो जाता है। जब तक आपका द्वेष है कहीं, तब तक आप शांत नहीं हो सकते। क्योंकि जिस से द्वेष है, वही कारण बनेगा आपके भीतर अशांति का।

स्वार्थरहित, सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु... ।

क्या है हमारी अशांति? स्वार्थ। चौबीस घंटे सोचते हैं अपनी ही भाषा में।

सुना है मैंने, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उस दिन उस गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। और जिस रास्ते से लोग जीसस को ले जा रहे थे सूली चढ़ाने, उसी रास्ते पर उसका घर था। सारे गांव से वह परिचित था। लोग देखने जा रहे थे। सारे गांव में तहलका था कि जीसस को आज सूली लग रही है। जो भी गांव का आदमी वहां से निकलता--वह आदमी, आंख में उसके आंसू थे; पीड़ा से कराह रहा था; क्योंकि उसकी दाढ़ में दर्द था।

तो लोग उससे पूछते कि अरे, क्या तुम भी जीसस के प्रेमी हो? वह कहता, भाड़ में जाए जीसस; मेरी दाढ़ में दर्द है। पूरा गांव वहां से निकला। और हर आदमी ने पूछा कि अरे, कभी हमने सोचा नहीं था कि तुम भी, जीसस से तुम्हारा कोई लगाव है! वह कहता, कैसा जीसस! कहां की बातें कर रहे हो! मेरी दाढ़ में दर्द है; रातभर से सो नहीं सका।

जीसस को सूली लग रही है, वह जरा भी मूल्य नहीं है। उसकी दाढ़ में दर्द है, वह मूल्यवान है!

वियतनाम में हजारों लोग मरते रहे हैं, वह सवाल नहीं है। आपके पैर में जरा-सा कांटा लग जाए, वह मूल्यवान है। सारी जमीन पर कुछ होता रहे, आपकी जेब कट जाए, सब गड़बड़ हो गया!

हम जीते हैं, एक स्वार्थ का केंद्र बनाकर। और जितना ही यह स्वार्थ का केंद्र मजबूत होता है, उतनी ज्यादा अशांति होती है। अपने संबंध में जो जितना ज्यादा सोचता है, उतना परेशान होगा। जो अपने संबंध में जितना कम सोचता है, उतनी परेशानी क्षीण हो जाती है। जो इस विराट जगत को चारों तरफ देखता है--इसकी पीड़ा को, इसके सुख को, इसके दुख को--उसे मौका भी नहीं रह जाता यह सोचने का कि मेरे पैर में कांटा है। स्वार्थ की जो बुद्धि है, वह अशांति जन्माती है।

इसलिए कुछ, जैसे जीसस ने सेवा पर बहुत जोर दिया। वह इसी कारण दिया। इसलिए नहीं कि सेवा से दूसरे को लाभ होगा। वह तो होगा, पर वह

गौण है। सेवा पर इसलिए जोर दिया कि उससे तू अपना ख्याल भूल सकेगा। और अगर खुद का ख्याल भूलता चला जाए, तो वह समर्पण बन जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, स्वार्थरहित जो व्यक्ति हो, वह परमात्मा के लिए खुला होता है। जो स्वार्थ से भरा हो, वह बंद होता है।

तो चौबीस घंटे में कुछ समय तो स्वार्थरहित होना सीखना चाहिए। फिर धीरे-धीरे उसका आनंद आने लगेगा। कभी स्वार्थरहित छोटा-मोटा कृत्य भी करके देखें। कभी किसी की तरफ यूं ही अकारण मुस्कुराकर देखें।

अकारण कोई मुस्कुराता तक नहीं। हालांकि मुस्कुराहट में कुछ खर्च नहीं होता। लेकिन आप तभी मुस्कुराते हैं, जब कोई मतलब हो। और जब आप मुस्कुराते हैं, तो दूसरा भी सावधान हो जाता है कि जरूर कोई मतलब है। क्योंकि कोई गैर-मतलब के मुस्कुराता भी नहीं है। कोई गैर-मतलब के किसी से राम-राम भी नहीं करता।

गांव में लोग करते थे, अब तो धीरे-धीरे बात समाप्त वहां भी होती जा रही है। गांव में कोई किसी से भी राम-राम कर लेता था अजनबी से भी। तो शहर का आदमी गांव जाए और कोई राम-राम करे, तो वह बहुत डरता है। क्योंकि जिससे जान-पहचान नहीं, वह राम-राम क्यों कर रहा है! जरूर कोई मतलब होगा। मतलब के बिना तो हम राम-राम भी नहीं करते; किसी को नमस्कार भी नहीं करते। करेंगे भी क्यों? जब कोई प्रयोजन होता है।

मैं एक यूनिवर्सिटी में पढ़ता था। मेरे जो वाइस-चांसलर थे, नए-नए आए थे। तो मैं उनसे मिलने गया। जैसे ही मैं उनसे मिलने पहुंचा, उन्होंने मुझसे कहा, कैसे आए? तो मैंने कहा, जाता हूं। क्योंकि किसी काम से नहीं आया। सिर्फ राम-राम करने आया।

उन्होंने कहा, क्या मतलब! वे थोड़े हैरान हुए कि पढ़ा-लिखा लड़का, राम-राम करने! मैंने कहा, आप अजनबी आए हैं, नए-नए आए हैं। मैं आपके पड़ोस में ही हूं। पड़ोसी हैं। सिर्फ राम-राम करने आया। और अब कभी नहीं

आऊंगा। क्योंकि मैंने यह नहीं सोचा था कि आप पूछेंगे, कैसे आए? इसका मतलब यह है कि आपके पास जो लोग आते हैं, काम से ही आते हैं, कोई गैर-काम नहीं आता। और आप भी जिनके पास जाते होंगे, काम से ही जाते होंगे, गैर-काम नहीं जाते। तो आपकी जिंदगी फिजूल है। सिर्फ काम ही काम है या कुछ और भी है उसमें!

मैं तो चला गया कहकर; वे नाराज भी हुए होंगे, परेशान भी हुए होंगे, सोचते भी रहे होंगे। दूसरे दिन उन्होंने मुझे बुलवाया कि मैं रात सो नहीं सका। तुम्हारा क्या मतलब है? सच में मुझे ऐसा लगने लगा रात, उन्होंने मुझसे कहा, कि मैंने यह पूछकर ठीक नहीं किया कि कैसे आए?

मैंने भी कहा, कम से कम मुझे बैठ तो जाने देते। यह बात पीछे भी हो सकती थी। राम-राम तो पहले हो जाती। मुझे कुछ काम नहीं है और कभी आपसे कोई काम पड़ने का काम भी नहीं है। कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन हम सोच ही नहीं सकते... ।

फिर तो उनसे मेरा काफी संबंध हो गया। लेकिन अब भी वे मुझे कभी मिलते हैं, तो वे कहते हैं, वह मैं पहला दिन नहीं भूल पाता, जिस दिन मैंने तुम से पूछ लिया कि कैसे आए? और तुमने कहा कि सिर्फ राम-राम करने आया; कुछ काम से नहीं आया। उस दिन से पहले मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि बेकाम कोई आएगा!

जिंदगी हमारी धंधे जैसी हो गई है। सब काम है। उसमें प्रेम, उसमें कुछ खेल, उसमें कुछ सहज--नहीं; कुछ भी नहीं है।

स्वार्थरहित का अर्थ है, जीवन के उत्सव में सम्मिलित, अकारण। कोई कारण नहीं है; खुश हो रहे हैं। और सदा अपने को केंद्र नहीं बनाए हुए हैं। सारी दुनिया को सदा अपने से नहीं सोच रहे हैं, कि मेरे लिए क्या होगा! मुझे क्या लाभ होगा! मुझे क्या हानि होगी! हर चीज के पीछे अपने को खड़ा नहीं कर रहे हैं।

चौबीस घंटे में अगर दो-चार घंटे भी ऐसे आपकी जिंदगी में आ जाएं, तो आप पाएंगे कि धर्म ने प्रवेश शुरू कर दिया। और आपकी जिंदगी में कहीं से परमात्मा आने लगा। कभी अकारण कुछ करें। और अपने को केंद्र बनाकर मत करें।

सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु... ।

दया तो हम करते हैं, लेकिन उसमें हेतु हो जाता है। और हेतु बड़े छिपे हुए हैं।

आप बाजार से निकलते हैं और एक भिखमंगा आपसे दो पैसे मांगता है। अगर आप अकेले हों और कोई न देख रहा हो, तो आप उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। लेकिन अगर चार साथी साथ में हों, तो इज्जत का सवाल हो जाता है। अब दो पैसे के लिए मना करने में ऐसा लगता है कि लोग क्या सोचेंगे कि अरे, इतने कृपण! ऐसे कंजूस कि दो पैसे न दे सके?

भिखमंगा भी देखता है; अकेले में आपको नहीं छेड़ता। अकेले में आपसे निकालना मुश्किल है। चार आदमी देख रहे हों, भीड़ खड़ी हो, बाजार में हों, पकड़ लेता है पैर। आपको देना पड़ता है। भिखमंगे को नहीं, अपने अहंकार की वजह। हेतु है वहां, कि लोग देख लेंगे, तो समझेंगे कि चलो, दयावान है। देता है। या देते हैं कभी, तो उसके पीछे कोई पुण्य-अर्जन का ख्याल होता है। देते हैं कभी, तो उसके पीछे किसी भविष्य में, स्वर्ग में पुरस्कार मिलेगा, उसका ख्याल होता है।

लेकिन बिना किसी कारण, हेतुरहित दया, दूसरा दुखी है इसलिए! इसलिए नहीं कि आपको इससे कुछ मिलेगा। दूसरा दुखी है इसलिए, दूसरा परेशान है इसलिए अगर दें, तो दान घटित होता है। अगर आप किसी कारण से दे रहे हैं, जिसमें आपका ही कोई हित है... ।

मैं गया था एक कुंभ के मेले में। तो कुंभ के मेले में पंडित और पुजारी लोगों को समझाते हैं कि यहां दो; जितना दोगे, हजार गुना वहां, भगवान

के वहां मिलेगा। हजार गुने के लोभ में कई नासमझ दे फंसते हैं। हजार गुने के लोभ में! कि यहां एक पैसा दो, वहां हजार पैसा लो! यह तो धंधा साफ है। लेकिन देने के पीछे अगर लेने का कोई भी भाव हो, तो दान तो नष्ट हो गया; धंधा हो गया, सौदा हो गया।

कृष्ण कहते हैं, हेतुरहित दयालु अगर कोई हो, तो परमात्मा उसमें प्रवेश कर जाता है। वह परमात्मा को प्यारा है।

सब का प्रेमी... ।

प्रेम हम भी करते हैं। किसी को करते हैं, किसी को नहीं करते हैं। तो जिसको हम प्रेम करते हैं, उतना ही द्वार परमात्मा के लिए हमारी तरफ खुला है। वह बहुत संकीर्ण है। जितना बड़ा हमारा प्रेम होता है, उतना बड़ा द्वार खुला है। अगर हम सबको प्रेम करते हैं, तो सभी हमारे लिए द्वार हो गए, सभी से परमात्मा हममें प्रवेश कर सकता है।

लेकिन हम एक को भी प्रेम करते हैं, यह भी संदिग्ध है। सबको तो प्रेम करना दूर, एक को भी करते हैं, यह भी संदिग्ध है। उसमें भी हेतु है; उसमें भी प्रयोजन है। पत्नी पति को प्रेम कर रही है, क्योंकि वही सुरक्षा है, आर्थिक आधार है। पति पत्नी को प्रेम कर रहा है, क्योंकि वही उसकी कामवासना की तृप्ति है। लेकिन यह सब लेन-देन है। यह सब बाजार है। इसमें प्रेम कहीं है नहीं।

जब आप प्रेम भी कर रहे हैं और प्रयोजन आपका ही है कुछ, तो वह प्रेम परमात्मा के लिए द्वार नहीं बन सकता। इसीलिए हम कुछ को प्रेम करते हैं, जिनसे हमारा स्वार्थ होता है। जिनसे हमारा स्वार्थ नहीं होता, उनको हम प्रेम नहीं करते। जिनसे हमारे स्वार्थ में चोट पड़ती है, उनको हम घृणा करते हैं। मगर हमेशा केंद्र में मैं हूं। जिससे मेरा लाभ हो, उसे मैं प्रेम करता हूं; जिससे हानि हो, उसको घृणा करता हूं। जिससे कुछ भी न हो, उसके प्रति मैं तटस्थ हूं, उपेक्षा रखता हूं; उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

परमात्मा के लिए द्वार खोलने का अर्थ है, सब के प्रति। लेकिन सब के प्रति कब होगा? वह तभी हो सकता है, जब मुझे प्रेम में ही आनंद आने लगे, स्वार्थ में नहीं। इस बात को थोड़ा समझ लें।

जब मुझे प्रेम में ही आनंद आने लगे; प्रेम से क्या मिलता है, यह सवाल नहीं है। कोई पत्नी है, उससे मुझे कुछ मिलता है; कोई बेटा है, उससे मुझे कुछ मिलता है। कोई मां है, उससे मुझे कुछ मिलता है। कोई पिता है, कोई भाई है, कोई मित्र है, उनसे मुझे कुछ मिलता है। उन्हें मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि उनसे मुझे कुछ मिलता है। अभी मुझे प्रेम का आनंद नहीं आया। अभी प्रेम भी एक साधन है, और कुछ मिलता है, उसमें मेरा आनंद है।

लेकिन प्रेम तो खुद ही अदभुत बात है। उससे कुछ मिलने का सवाल ही नहीं है। प्रेम अपने आप में काफी है। प्रेम इतना बड़ा आनंद है कि उससे आगे कुछ चाहने की जरूरत नहीं है।

जिस दिन मुझे यह समझ में आ जाए कि प्रेम ही आनंद है, और यह मेरा अनुभव बन जाए कि जब भी मैं प्रेम करता हूं, तभी आनंद घटित हो जाता है; आगे-पीछे लेने का कोई सवाल नहीं है। तो फिर मैं काहे को कंजूसी करूंगा कि इसको करूं और उसको न करूं? फिर तो मैं खुले हाथ, मुक्त-भाव से, जो भी मेरे निकट होगा, उसको ही प्रेम करूंगा। वृक्ष भी मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूंगा, क्योंकि वह भी आनंद का अवसर क्यों छोड़ देना! एक पत्थर मेरे पास होगा, तो उसको भी प्रेम करूंगा, क्योंकि वह भी आनंद का अवसर क्यों छोड़ देना!

जिस दिन आपको प्रेम में ही रस का पता चल जाएगा, उस दिन आप जो भी है, जहां भी है, उसको ही प्रेम करेंगे। प्रेम आपकी श्वास बन जाएगी।

आप श्वास इसलिए नहीं लेते हैं कि उससे कुछ मिलेगा। श्वास जीवन है; उससे कुछ लेने का सवाल नहीं है। प्रेम और गहरी श्वास है, आत्मा की श्वास

है; वह जीवन है। जिस दिन आपको यह समझ में आने लगेगा, उस दिन आप प्रेम को स्वार्थ से हटा देंगे। और प्रेम तब आपकी सहज चर्या बन जाएगी।

कृष्ण कहते हैं, प्रेमी सबका; ममता से रहित... ।

यह बड़ा उलटा लगेगा। क्योंकि हम तो समझते हैं, प्रेमी वही है, जो ममता से भरा हो। ममता प्रेम नहीं है। ममता और प्रेम में ऐसा ही फर्क है, जैसे कोई नदी बह रही हो, यह तो प्रेम है। और कोई नदी बंध जाए और डबरा बन जाए और बहना बंद हो जाए और सड़ने लगे, तो ममता है।

जहां प्रेम एक बहता हुआ झरना है; किसी पर रुकता नहीं, बहता चला जाता है। कहीं रुकता नहीं; कोई रुकावट खड़ी नहीं करता। यह नहीं कहता कि तुम पर ही प्रेम करूंगा; तुम्हें ही प्रेम करूंगा। अगर तुम नहीं हो, तो मैं मर जाऊंगा। अगर तुम नहीं हो, तो मेरी जिंदगी गई। तुम्हारे बिना सब असार है। बस, तुम ही मेरे सार हो। ऐसा जहां प्रेम डबरा बन जाता है, वहां प्रेम धारा न रही; वहां प्रेम में सड़ांध पैदा हो गई।

सड़ा हुआ प्रेम ममता है, रुका हुआ प्रेम ममता है। ममता से आदमी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। ममता से तो डबरा बन गया। नदी सागर तक कैसे पहुंचेगी? वह तो यहीं रुक गई। उसकी तो गति ही बंद हो गई।

इसलिए कृष्ण तत्काल जोड़ते हैं, सब का प्रेमी, हेतुरहित दयालु, ममता से रहित... ।

प्रेम कहीं रुकता न हो; किसी पर न रुकता हो, बहता जाए; जो भी करीब आए, उसको नहला दे और बहता जाए। कहीं रुकता न हो, कहीं आग्रह न बनाता हो। और कहीं यह न कहता हो कि बस, यही मेरे प्रेम का आधार है।

ऐसा जो करेगा, वह दुख में पड़ेगा और ऐसा प्रेम भी बाधा बन जाएगा। इसलिए ममता का विरोध किया है। वह प्रेम का विरोध नहीं है। वह प्रेम बीमार हो गया, उस बीमार प्रेम का विरोध है।

ममता हटे और प्रेम बढ़े, तो आप परमात्मा की तरफ पहुंचेंगे। लेकिन हमें आसान है दो में से एक। अगर हम प्रेम करें, तो ममता में फंसते हैं। और अगर ममता से बचें, तो हम प्रेम से ही बच जाते हैं। ऐसी हमारी दिक्कत है। अगर किसी से कहो कि ममता मत करो, तो फिर वह प्रेम ही नहीं करता किसी को। क्योंकि वह डरता है कि किया प्रेम, कि कहीं ममता न बन जाए; तो वह प्रेम से रुक जाता है।

ममता से बचते हैं, तो प्रेम रुक जाता है। तब भी दरवाजा बंद हो गया। अगर प्रेम करते हैं, तो फौरन ममता बन जाती है। तो भी दरवाजा बंद हो गया। प्रेम हो और ममता न हो। नदी तो बहे और कहीं सरोवर न बने। इसको ख्याल में रखें।

बच्चे को प्रेम करें। आप अपने बेटे को प्रेम करें, इसमें कुछ भी हर्ज नहीं है। शुभ है। लेकिन वह प्रेम आपके ही बेटे पर समाप्त क्यों हो? वह और थोड़ा बहे। और भी पड़ोसियों के बेटे हैं, उनको भी छुए। क्यों रुके बेटे तक? और सच में अगर आप असली बाप हैं और आपने बेटे का प्रेम जाना है, तो आप चाहेंगे कि जितने बेटे बढ़ जाएं, उतना अच्छा। क्योंकि उतना प्रेम आपको आनंद देगा।

एक बेटा इतना आनंद देता है, अगर सारी जमीन के बेटे आपके बेटे हों, तो कितना आनंद होगा! एक मित्र जब इतना आनंद देता है, तो फिर क्यों कंजूसी कर रहे हैं! बढ़ने दें। सारी पृथ्वी मित्रता बन जाए, तो और गहरा आनंद होगा। अंतहीन आनंद होगा।

जब मनुष्यों को प्रेम करने से इतना आनंद मिलता, तो पशुओं को क्यों वंचित करना! फैलने दें। पौधों को क्यों वंचित करना! फैलने दें। जब प्रेम इतना आनंद देता है, तो रोकते क्यों हैं? उसे बढ़ने दें, उसे फैलने दें। उसे सारी जमीन को, सारे अस्तित्व को घेर लेने दें। तो आप परमात्मा के लिए

प्रिय हो जाएंगे। क्योंकि आप खुल जाएंगे सब तरफ से। आपका रंध्र-रंध्र खुल जाएगा। सब तरफ से प्रभु की किरणें प्रवेश कर सकती हैं।

अहंकार से रहित, सुख-दुखों की प्राप्ति में सम, क्षमावान, अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला। अहंकार से रहित... ।

जितना गहन होता है प्रेम, उतना अहंकार अपने आप शांत और शून्य हो जाता है। जितना कम होता है प्रेम, उतना अहंकार होता है ज्यादा। अहंकार और प्रेम विरोधी हैं। अगर प्रेम बढ़ता है, तो अहंकार पिघल जाता है।

लेकिन बहुत लोग पूछते हैं, एक मित्र ने आज भी पूछा है कि अहंकार से कैसे छुटकारा हो?

अहंकार से सीधे छुटकारा न होगा। आप प्रेम को बढ़ाएं। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, अहंकार विसर्जित होने लगेगा। क्योंकि जो शक्ति अहंकार बनती है, वही प्रेम बनती है। प्रेम और अहंकार में एक ही शक्ति काम करती है। इसलिए अगर आप बड़े अहंकारी हैं, तो निराश मत हों। आपके पास प्रेम की बड़ी क्षमता छिपी पड़ी है। दुखी मत हों; आपके पास बड़ा स्रोत है। यही ऊर्जा मुक्त हो जाए, तो प्रेम बन जाएगी।

लेकिन सीधा अहंकार से मत लड़ें। आप जो कुछ भी करेंगे सीधा, उससे अहंकार नहीं मिटेगा। आप तो प्रेम की तरफ फैलाव शुरू कर दें। कहीं से भी प्रेम को फैलाना शुरू करें। जिस तरफ लगाव जाता हो, उसी तरफ प्रेम को बहाएं। एक ही ख्याल रखें कि उसको रुकने मत दें। उसे बढ़ते जाने दें। उसकी सीमाएं जितनी विस्तीर्ण होने लगें, होने दें। यह विस्तीर्ण होती सीमा, एक दिन आप अचानक पाएंगे आपके अहंकार का घाव तिरोहित हो गया। आप प्रेम से भर गए हैं और मैं का कोई भाव नहीं रह गया है।

सुख-दुखों की प्राप्ति में सम... ।

सुख आता है, दुख भी आता है। लेकिन आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख के पीछे ही दुख छिपा होता है; उसका ही संगी-साथी है। और दोनों में तलाक का कोई भी उपाय नहीं है। दोनों सदा साथ हैं। उनका जोड़ा कभी छूटता नहीं। जब दुख आता है, तब उसके पीछे सुख छिपा रहता है। लेकिन हमारी आंखें संकीर्ण हैं। जो होता है, उसको ही हम देखते हैं। जो पीछे छिपा है, उसको नहीं देखते हैं।

जब आप खुश हो रहे हैं, तब अब की दफा ध्यान रखना, जब सुख आए, तब ध्यान रखना कि जरूर उसके पीछे उससे जुड़ा हुआ दुख आएगा। और आप घड़ी, दो घड़ी में ही पाएंगे कि दुख आ गया। और इस दुख की क्वालिटी वही होगी, जो आपने सुख भोगा था उसकी थी; वही गुणधर्म होगा।

हर दुख के पीछे उसका सुख है। और हर सुख के पीछे उसका दुख है। रुपए में जैसे दो पहलू होते हैं, ऐसे वे दो पहलू हैं।

मगर हम कभी ध्यान नहीं करते। हमने कभी निरीक्षण नहीं किया। नहीं तो आप यह पहचान जाएंगे कि हर सुख का अनिवार्य दुख है। हर दुख का अनिवार्य सुख है। और दोनों मिलते हैं, एक नहीं मिलता। अगर आप अपना दुख कम करना चाहते हैं, तो आपको अपना सुख कम करना पड़ेगा। अगर आप अपना सुख बढ़ाना चाहते हैं, आपको अपना दुख बढ़ाना पड़ेगा।

इसलिए एक बड़ी अदभुत घटना घटी है इस जमीन पर। अब हमें ख्याल में आती है। जमीन पर जितना सुख बढ़ता जाता है, उतना दुख भी बढ़ता जाता है। यह बड़े मजे की बात है।

विज्ञान ने सुख के बहुत उपाय किए हैं। और सुख निश्चित ही आदमी का बढ़ गया है। लेकिन आदमी जितना आज दुखी है, इतना कभी भी नहीं था। लोगों को लगता है, इसमें बड़ा कंट्राडिक्शन है, इसमें बड़ा विरोधाभास है। विज्ञान ने इतना सुख बढ़ा दिया, तो आदमी इतना दुखी क्यों है?

इसीलिए। इसमें विरोध नहीं है। जितना सुख बढ़ेगा, उसके ही अनुपात में दुख भी बढ़ेगा। वे साथ ही बढ़ेंगे।

एक गांव का आदमी कम दुखी है, क्योंकि कम सुखी भी है। एक आदिवासी कम दुखी है। यह तो हमको भी दिखाई पड़ता है कि कम दुखी है। लेकिन दूसरी बात भी आप ध्यान रखना, वह कम सुखी भी है। एक धनपति ज्यादा सुखी है, ज्यादा दुखी भी है। एक भिखमंगा कम सुखी है, कम दुखी भी है।

जिस मात्रा में सुख बढ़ता है, उसी मात्रा में दुख बढ़ता है। वह उसी के साथ-साथ है। वह उसी की छाया है। आप उससे भाग नहीं सकते। उससे आप बच नहीं सकते।

जिस दिन व्यक्ति को यह दिखाई पड़ जाता है कि सुख-दुख दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं, उस दिन वह समभावी हो जाता है। उस दिन वह कहता है कि अब इसमें सुख को चाहने और दुख से बचने की बात मूढ़तापूर्ण है।

यह तो ऐसे हुआ, जैसे मैं अपने प्रेमी को चाहता हूं और नहीं चाहता कि उसकी छाया उसके साथ मेरे पास आए। और छाया को देखकर मैं दुखी होता हूं। और मैं कहता हूं, छाया नहीं आनी चाहिए, सिर्फ प्रेमी आना चाहिए। वह प्रेमी के साथ उसकी छाया भी आती है। वह आएगी ही। अगर मैं छाया नहीं चाहता हूं, तो मुझे प्रेमी की चाह कम कर देनी पड़ेगी। और अगर मैं प्रेमी को चाहता हूं, तो मुझे छाया को भी चाहना शुरू कर देना पड़ेगा। बस, ये दो उपाय हैं।

दोनों ही अर्थों में बुद्धि सम हो जाती है। या तो सुख को भी मत चाहें, अगर दुख से बचना है। और अगर सुख को चाहना ही है, तो फिर दुख को भी उसी आधार पर चाह लें। और जिस दिन आप दोनों की चाह-अचाह में बराबर हो जाते हैं, उस दिन सम हो जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो सम है सुख-दुख की प्राप्ति में, वह प्रभु के लिए उपलब्ध हो जाता है।

क्षमावान, अपराध करने वाले को भी जो अभय देने वाला है।

क्षमा बड़ी कठिन है। क्यों इतनी कठिन है? किसी को भी आप क्षमा नहीं कर पाते हैं। क्या कारण है? क्योंकि आप अपने को नहीं जानते हैं, इसलिए क्षमा नहीं कर पाते।

कभी आप ख्याल करें अब, जिन-जिन चीजों पर आप दूसरों पर नाराज होते हैं, विचार किया आपने कि वे सब चीजें आपके भीतर भी छिपी पड़ी हैं! कोई क्रोध करता है, तो आप कहते हैं, बुरी बात है। लेकिन आपने सोचा कि क्रोध आपके भीतर भी पड़ा है! कोई चोरी करता है, तो आप कहते हैं, पाप! बड़ा शोरगुल मचाते हैं। लेकिन आपने सोचा कि चोर आपके भीतर भी मौजूद है! हो सकता है, इतना कुशल चोर हो कि आप भी नहीं पकड़ पाते। पुलिस वाले तो पकड़ ही नहीं पाते, आप भी नहीं पकड़ पाते। लेकिन क्या चोरी की वृत्ति भीतर मौजूद नहीं है?

हत्या कोई करता है। आप नाराज होते हैं। लेकिन क्या आपने कई बार हत्या नहीं करनी चाही? यह दूसरी बात है कि नहीं की। हजार कारण हो सकते हैं। सुविधा न रही हो, साहस न रहा हो, अनुकूल समय न रहा हो। लेकिन हत्या आपने करनी चाही है। चोरी आपने करनी चाही है।

ऐसा कौन-सा पाप है जो आपने नहीं करना चाहा है? किया हो, न किया हो, यह गौण बात है। और अगर जितने पाप जमीन पर हो रहे हैं, सब आप भी करना चाहे हैं, कर सकते थे, करने की संभावना है, तो इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं दूसरे पर?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं बड़ी उलटी बात। वे कहते हैं कि अगर कोई आदमी चोरी का बहुत ही विरोध करता हो, तो समझ लेना कि उसके भीतर काफी बड़ा चोर छिपा है। अगर कोई आदमी कामवासना का बहुत ही पागल

की तरह विरोध करता हो, तो समझ लेना, उसके भीतर कामवासना छिपी है। क्यों? क्योंकि वह उस चीज का विरोध करके अपने को भी दबाने की कोशिश कर रहा है। चिल्लाता है दूसरे पर, नाराज होता है, तो उसको अपने को भी दबाने में सुविधा मिलती है।

जिस चीज का आप विरोध करते हैं बहुत, गौर से ख्याल करना, कहीं आपके भीतर अचेतन में वह दबी पड़ी है। इसीलिए इतना जोर से विरोध कर रहे हैं।

लेकिन जो व्यक्ति जितना आत्म-निरीक्षण करेगा, उतना ही क्षमावान हो जाएगा। क्योंकि वह पाएगा, ऐसा कोई पाप नहीं, जिसे मैं करने में समर्थ नहीं हूं। और ऐसी कोई भूल नहीं है, जो मुझसे न हो सके। तो दूसरे पर इतना नाराज होने की क्या बात है! दूसरा भी मेरे जैसा ही है। वह भी मेरा ही एक रूप है। जो मेरे भीतर छिपा है, वही उसके भीतर छिपा है।

तो क्षमा का भाव पैदा होता है। क्षमा का मतलब यह नहीं है कि आप बड़े महान हैं, इसलिए दूसरे को क्षमा कर दें। वह क्षमा थोथी है। वह तो अहंकार का ही हिस्सा है।

ठीक क्षमा का अर्थ है कि आप पाते हैं कि सारी मनुष्यता आप में है। और मनुष्य जो करने में समर्थ है, वह आप भी समर्थ हैं। मनुष्य जिस नरक तक जा सकता है, आप भी जा सकते हैं। एक बात। इससे क्षमा आती है।

और दूसरी बात, कि आप जिस ऊंचाई तक पहुंच सकते हैं, दूसरा मनुष्य भी उसी ऊंचाई तक पहुंच सकता है। दूसरी बात। निकृष्टतम भी आपके भीतर छिपा है, यह बोध; और श्रेष्ठतम भी दूसरे के भीतर छिपा है, यह बोध; आपके जीवन में क्षमा का जन्म हो जाएगा।

अभी हम उलटा कर रहे हैं। अभी श्रेष्ठतम हम मानते हैं हमारे भीतर है, और निकृष्टतम सदा दूसरे के भीतर है। दूसरे का जो बुरा पहलू है, वह देखते

हैं। और खुद का जो भला पहलू है, वह देखते हैं। इससे बड़ी तकलीफ होती है। इससे बड़ी अस्तव्यस्तता फैल जाती है। दोनों देखें।

और जिस नरक में आप दूसरे को देख रहे हैं, उसमें आप भी खड़े हैं कहीं। और जिस स्वर्ग में आप सोचते हैं कि आप हो सकते हैं, या हैं, उसमें दूसरा भी हो सकता है। तब आपके जीवन में क्षमा का भाव आ जाएगा। और यह क्षमा सहज होगी। इससे कोई अहंकार निर्मित नहीं होगा कि मैंने क्षमा किया।

तथा जो योग में युक्त हुआ योगी निरंतर लाभ-हानि में संतुष्ट, मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है, वह मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

परमात्मा को जो प्रिय है, वही उस तक पहुंचने का द्वार है। ये गुण विकसित करें, अगर उसे खोजना है। इन गुणों में गहरे उतरें, अगर चाहना है कि कभी उससे मिलन हो जाए। सीधे परमात्मा की भी फिक्र न की, तो भी हल हो जाएगा। अगर इतने गुण आ गए, तो परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम ठीक जीवन ही जीए चले जाएं, तो क्या परमात्मा से मिलना न होगा?

बिल्कुल हो जाएगा। लेकिन ठीक जीवन! ठीक जीवन का अर्थ ही धर्म है। और ये जितनी विधियां बताई जा रही हैं, ये ठीक जीवन के लिए ही हैं।

उन मित्र ने पूछा है कि धर्म की क्या जरूरत है, अगर हम ठीक जीवन जीएं?

ठीक जीवन बिना धर्म के होता ही नहीं। ठीक जीवन का अर्थ ही धार्मिक जीवन है। शब्दों का ही फासला है। कोई हर्ज नहीं, ठीक जीवन कहें या धार्मिक जीवन कहें। लेकिन ठीक जीवन का क्या अर्थ है?

ये जो गुण कृष्ण ने बताए, ये हैं ठीक जीवन। अहंकारशून्यता, सहज सबके प्रति प्रेम अकारण, क्षमा, एकाग्र चित्त--ये घटनाएं अगर बिना ईश्वर के भी घट जाएं... ।

घटी हैं। महावीर ईश्वर को नहीं मानते हैं। बुद्ध तो आत्मा तक को नहीं मानते हैं। लेकिन महावीर भगवत्ता को उपलब्ध हो गए। जो भगवान को नहीं मानते हैं, उनको लोगों ने भगवान कहा। बुद्ध आत्मा-परमात्मा को कुछ भी नहीं मानते। और बुद्ध जैसा पवित्र, और बुद्ध जैसा खिला हुआ फूल पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ है।

ठीक जीवन पर्याप्त है। लेकिन ठीक जीवन का अर्थ यही है। ठीक जीवन ही तो प्रभु के लिए खुलना है। ठीक जीवन के प्रति ही तो उसका प्रेम है। गैर-ठीक जीवन में हम पीठ किए खड़े होते हैं। ठीक जीवन में हमारा मुंह ईश्वर की तरफ उन्मुख हो जाता है।

उन्मुख हो जाना उसकी तरफ ठीक जीवन है। या ठीक जीवन हो जाए, तो उन्मुखता आ जाती है। अभी हम जैसे हैं, वह विमुखता है।

पांच मिनट रुकें। कोई बीच से उठे न। कीर्तन पूरा करके जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

आठवां प्रवचन

उद्वेगरहित अहंशून्य भक्त

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।। 15।।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 16।।

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिकों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है।

और जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर-भीतर से शुद्ध और दक्ष है अर्थात जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, भगवान को पाने के लिए इतना कठिन, लंबा और कष्टमय मार्ग क्यों है? उसे पाने के लिए सुगम, सरल और आनंदमय मार्ग क्यों नहीं है?

मार्ग कष्टमय जरा भी नहीं है। और न ही कठिन है। मार्ग तो अति सुगम है, सरल है, और आनंदपूर्ण है। लेकिन हम जैसे हैं, उसके कारण कठिनाई पैदा होती है। कठिनाई मार्ग के कारण पैदा नहीं होती। कठिनाई हमारे

कारण पैदा होती है। और अगर प्रभु का रास्ता लगता है कि अति कष्टों से भरा है, तो रास्ता कष्टों से भरा है इसलिए नहीं, हम जिन बीमारियों से भरे हैं, उनको छोड़ने में कष्ट होता है।

अड़चन हमारी है। जटिलता हमारी है। रास्ता तो बिल्कुल सुगम है। आप अगर सरल हो जाएं, तो रास्ता बिल्कुल सरल है। आप अगर जटिल हैं, तो रास्ता बिल्कुल जटिल है। क्योंकि आप ही हैं रास्ता। आपको अपने से ही गुजरकर पहुंचना है। और आपको पहुंचना है, इसलिए आपको बदलना भी होगा।

अब जैसे एक आदमी चोर है, तो चोरी छोड़े बिना एक इंच भी वह प्रार्थना के मार्ग पर न बढ़ सकेगा। लेकिन चोरी में रस है। चोरी का अभ्यास है। चोरी का लाभ दिखाई पड़ता है, तो छोड़ना मुश्किल मालूम होता है।

और परमात्मा तो दूर का लाभ है; चोरी का लाभ अभी और यहीं दिखाई पड़ता है। और परमात्मा है भी या नहीं, यह भी संदेह बना रहता है। चोरी में जो लाभ खो जाएगा, वह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है; और परमात्मा में जो आनंद मिलेगा, वह बहुत दूर की कल्पना मालूम पड़ती है, सपना मालूम पड़ता है।

तो चोरी छोड़नी कठिन हो जाती है, हिंसा छोड़नी कठिन हो जाती है, क्रोध छोड़ना कठिन हो जाता है। परमात्मा के कारण ये कठिनाइयां नहीं हैं। ये कठिनाइयां हमारे कारण हैं।

अगर आप सरल हो जाएं, तो रास्ता ही नहीं बचता। इतनी भी कठिनाई नहीं रह जाती कि रास्ते को पार करना हो। अगर आप सरल हो जाएं, तो आप पाते हैं कि परमात्मा सदा से आपके पास ही मौजूद था; आपकी कठिनाई के कारण दिखाई नहीं पड़ता था।

रास्ता होगा, तो थोड़ा तो कठिन होगा ही। चलना पड़ेगा। लेकिन इतना भी फासला नहीं है मनुष्य में और परमात्मा में कि चलने की जरूरत हो। लेकिन हम बड़े जटिल हैं, बड़े उलझे हुए हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी भागा हुआ चला जा रहा था एक राजधानी के पास। राह के किनारे बैठे एक आदमी से उसने पूछा कि मैं राजधानी जाना चाहता हूं, कितनी दूर होगी? तो उस आदमी ने कहा, इसके पहले कि मैं जवाब दूं, दो सवाल तुमसे पूछने जरूरी हैं। पहला तो यह कि तुम जिस तरफ जा रहे हो, अगर इसी तरफ तुम्हें राजधानी तक पहुंचना है, तो जितनी जमीन की परिधि है, उतनी ही दूर होगी, क्योंकि राजधानी पीछे छूट गई है। अगर तुम इसी तरफ खोजने का इरादा रखते हो, तो पूरी जमीन घूमकर जब तुम लौटोगे, तो राजधानी आ पाएगी। अगर तुम लौटने को तैयार हो, तो राजधानी बिल्कुल तुम्हारे पीछे है।

तो एक तो यह पूछना चाहता हूं कि किस तरफ जाकर राजधानी खोजनी है? और दूसरा यह पूछना चाहता हूं कि किस चाल से खोजनी है? क्योंकि दूरी चाल पर निर्भर करेगी। अगर चींटी की चाल चलना हो, तो पीछे की राजधानी भी बहुत दूर है। तो तुम्हारी चाल और तुम्हारी दिशा, इस पर राजधानी की दूरी निर्भर करेगी।

परमात्मा कितना दूर है, यह आप पर निर्भर करेगा कि आप किस दिशा में खोज रहे हैं, और इस पर निर्भर करेगा कि आपकी गति क्या है। अगर आप गलत दिशा में खोज रहे हैं, तो बहुत कठिन है। और हम सब गलत दिशा में खोज रहे हैं।

मजा तो यह है कि यहां नास्तिक भी परमात्मा को ही खोज रहा है। परमात्मा का अर्थ है परम आनंद को, अंतिम जीवन के अर्थ को, प्रयोजन को, सार्थकता को, क्या है अभिप्राय जीवन का, इसको नास्तिक भी खोज रहा है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो परमात्मा को न खोज रहा हो।

हां, कोई गलत रास्ते पर खोज रहा हो, गलत दिशा में खोज रहा हो, यह हो सकता है। लेकिन परमात्मा को खोज ही न रहा हो, यह नहीं हो सकता। हो सकता है, अपनी खोज को वह परमात्मा का नाम भी न देता हो। लेकिन सभी खोज उसी के लिए है। आनंद की खोज, अभिप्राय की खोज, अर्थ की खोज, उसकी ही खोज है। अपनी खोज उसकी ही खोज है। अस्तित्व की खोज उसकी ही खोज है। नाम हम क्या देते हैं, यह हम पर निर्भर है।

लेकिन आप सूरज को खोजने चल सकते हैं और सूरज की तरफ पीठ करके चल सकते हैं। तो आप हजारों मील चलते रहेंगे और सूरज दिखाई नहीं पड़ेगा। और एक मजे की बात है कि आप हजारों मील चल चुके हों, और आप पीठ फेर लें, उलटे खड़े हो जाएं, तो सूरज अभी आपको दिखाई पड़ जाएगा।

इससे एक बात ख्याल में ले लें। अगर सूरज की तरफ पीठ करके आप हजार मील चले गए हैं, तो आप यह मत समझना कि जब सूरज की तरफ मुंह करके आप हजार मील चलेंगे, तब सूरज दिखाई पड़ेगा। सूरज तो इसी वक्त मुंह फेरते ही दिखाई पड़ जाएगा।

तो परमात्मा से आप कितने दूर चले गए हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप पीठ फेरने को राजी हों, तो इसी वक्त परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। उसके बीच और आपके बीच दूरी वास्तविक नहीं है, केवल आपके पीठ के फेरने की है, सिर्फ दिशा की है। वह आपके साथ ही खड़ा है। वह आपके भीतर ही छिपा है।

तो पहली तो बात यह समझ लें कि कठिनाई रास्ते की नहीं है। इसलिए सरल रास्ते की खोज मत करें। सरल होने की खोज करें।

बहुत-से लोग सरल रास्ते की खोज में होते हैं। वे कहते हैं, कोई शार्टकट? उसमें वे बहुत धोखे में पड़ते हैं, क्योंकि परमात्मा तक पहुंचने का कोई शार्टकट रास्ता नहीं है। क्योंकि पीठ ही फेरनी है, अब इसमें और क्या

शार्टकट होगा? अगर सिर्फ पीठ फेरनी है और परमात्मा सामने आ जाएगा, तो इससे संक्षिप्त अब और क्या करिएगा? इससे और संक्षिप्त नहीं हो सकता।

लेकिन हम खोज में रहते हैं संक्षिप्त रास्ते की। वह क्यों? वह हम इसलिए खोज में रहते हैं कि कोई ऐसा रास्ता मिल जाए, जो सरल हो। उसका मतलब क्या? उसका मतलब, जो मुझे न बदले।

जब हम पूछते हैं सरल रास्ता, तो हम यह पूछते हैं कि कुछ ऐसी बात बताओ कि जैसा मैं हूं, वैसा ही परमात्मा से मिलन हो जाए; मुझे कुछ भी न करना पड़े। सरल का मतलब है, परमात्मा मुफ्त में मिल जाए। मुझे कुछ भी छोड़ना, तोड़ना, बदलना न पड़े। मैं जैसा हूं, ऐसे को ही मिल जाए, यह आपकी आकांक्षा है भीतरी।

यह कभी भी नहीं होगा। अगर यह होने वाला होता, तो बहुत पहले हो गया होता। आप बहुत जन्मों से यह कर रहे हैं। यह कोई आपकी नई तलाश नहीं है। काफी, लाखों साल की तलाश है। और भूल उसमें वही है कि आप सरल रास्ता खोजते हैं, सरल व्यक्तित्व नहीं खोजते। आप सरल हो जाएं, रास्ता सरल है। और इसकी फिक्र में लगें कि मैं कैसे सरल हो जाऊं।

और जीवन-क्रांति की कोई भी प्रक्रिया शार्टकट नहीं होती। क्योंकि जो हमने अपने को उलटा करने के लिए किया है, उतना तो करना ही पड़ेगा सीधा होने के लिए। इसलिए वह बात ही छोड़ दें सरल की, और ध्यान करें अपनी जटिलता पर।

आपकी जटिलता को समझने की कोशिश करें और आपकी जटिलता कैसे खुलेगी, एक-एक गांठ, उसको खोलने की कोशिश करें। जैसे-जैसे आप खुलते जाएंगे, आप पाएंगे कि परमात्मा आपके लिए खुलता जा रहा है। इधर भीतर आप खुलते हैं, उधर बाहर परमात्मा खुलने लगता है। जिस दिन आप भीतर बिल्कुल खुल गए होते हैं, परमात्मा सामने होता है।

बुद्ध ने कहा है... । जब उन्हें ज्ञान हुआ, और किसी ने पूछा कि आपको क्या मिला है? तो बुद्ध ने कहा, मुझे मिला कुछ भी नहीं है। सिर्फ उसको ही जान लिया है, जो सदा से मिला हुआ था। कोई नई चीज मुझे नहीं मिल गई है। मगर जो मेरे पास ही थी और मुझे दिखाई नहीं पड़ती थी, उसका ही दर्शन हो गया है।

तो बुद्ध ने कहा है कि यह मत पूछो कि मुझे क्या मिला। ज्यादा अच्छा हो कि मुझसे पूछो कि क्या खोया। क्योंकि मैंने खोया जरूर है कुछ, पाया कुछ भी नहीं है। खोया है मैंने अपना अज्ञान। खोई है मैंने अपनी नासमझी, खोई है मैंने गलत चलने की दिशा और गलत ढंग। खोया है मैंने गलत जीवन। पाया है, कहना ठीक नहीं, क्योंकि जो पाया है, वह था ही। अब जानकर मैं कहता हूं कि यह तो सदा से मेरे पास था। सिर्फ मैं गलत था, इसलिए इससे मेरी पहचान नहीं हो पाती थी। जो मेरे भीतर ही छिपा था, उस तक भी मैं नहीं पहुंच पाता था, क्योंकि मैं कहीं और उसे खोज रहा था।

सूफी फकीर औरत हुई है, राबिया। एक दिन लोगों ने देखा कि वह रास्ते पर सांझ के अंधेरे में कुछ खोजती है। तो लोगों ने पूछा, क्या खोजती है? तो उसने कहा, मेरी सुई खो गई है। तो दूसरे लोग भी खोजने में लग गए कि बूढ़ी की सुई मिल जाए। तब एक आदमी को ख्याल आया कि सूरज ढलता जाता है, अंधेरा होता जाता है। तो उस आदमी ने कहा कि तेरी सुई बड़ी छोटी चीज है और रास्ता बड़ा है। आखिर खोई कहां है? ठीक जगह कहां गिरी है, तो हम खोज भी लें; नहीं तो सूरज ढल रहा है।

तो राबिया ने कहा, यह सवाल ही मत उठाओ, क्योंकि सुई तो मेरे घर में गिरी है, घर के भीतर गिरी है। तो वे सारे लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा, पागल औरत, अगर घर के भीतर सुई गिरी है, तो यहां बाहर क्यों खोजती है? तो उसने कहा, घर में प्रकाश नहीं है, बाहर प्रकाश है। और बिना प्रकाश के खोजूं कैसे? इसलिए यहां खोजती हूं।

आप भी खोज रहे हैं, लेकिन आपको इसका भी ख्याल नहीं है कि खोया कहां है। और जब तक इसका ठीक पता न हो कि परमात्मा को खोया कहां है; खोया भी है या नहीं; या खोया है, तो भीतर या बाहर; तब तक खोज आपकी भटकन ही होगी।

लेकिन आप भी राबिया की तरह हैं। राबिया भी उन लोगों से मजाक कर रही थी। और जब वे सब हंसने लगे और कहने लगे, पागल औरत, जब घर के भीतर सुई खोई है, तो वहीं खोज। और अगर प्रकाश नहीं है, तो प्रकाश वहां ले जा, बजाय इसके कि प्रकाश में खोज। क्योंकि जब उसे खोया ही नहीं, तो प्रकाश पैदा तो नहीं कर देगा! प्रकाश तो केवल बता सकता है, जो मौजूद हो। तो तू प्रकाश भीतर ले जा।

तो राबिया ने कहा कि तुम सब मुझ पर हंसते हो, लेकिन मैं तो दुनिया की रीत से चल रही थी। मैंने सभी लोगों को बाहर खोजते देखा है। और बाहर खोया किसी ने भी नहीं है। मैंने सोचा कि यही उचित है, दुनिया की रीत से ही चलना।

आप कहां खोज रहे हैं? आनंद कहां खोज रहे हैं आप? कोई धन में खोज रहा है; कोई मित्र में, कोई प्रेम में, कोई यश में, कोई प्रतिष्ठा में। वह सारी खोज बाहर है। लेकिन आपको पक्का है कि आपने आनंद कभी बाहर खोया है? और आप आनंद क्यों खोज रहे हैं, अगर आपको आनंद का पहले कोई पता ही नहीं है तो?

यह जरा सोचने जैसी बात है। उस चीज की खोज नहीं हो सकती, जिसका हमें कोई पूर्व-अनुभव न हो। खोजेंगे कैसे?

सबको लगता है कि आनंद नहीं है। इससे एक बात तो साफ है, आपको किसी न किसी गहराई के तल पर यह पता है कि आनंद क्या है। नहीं तो आनंद नहीं है, यह कैसे कहते हैं आप? दुख है, यह कैसे कहते हैं? क्योंकि जिसने कभी अंधेरा न देखा हो, वह प्रकाश को भी नहीं जान सकता। और

जिसने कभी प्रकाश न देखा हो, वह यह भी नहीं पहचान सकता कि यह अंधेरा है। अंधेरे की पहचान के लिए प्रकाश का अनुभव चाहिए।

अगर आपको लगता है, यह दुख है, तो आपको कुछ न कुछ आनंद की खबर है। तभी तो आप सोच पाते हैं कि यह वैसा नहीं है, जैसा होना चाहिए। आनंद नहीं है, पीड़ा है, दुख है।

सभी को दुख का अनुभव होता है। इससे अध्यात्म की एक मौलिक धारणा पैदा होती है और वह यह कि सभी को जाने-अनजाने आनंद का अनुभव है। शायद आपको भी पता नहीं है, लेकिन आपके प्राणों की गहराई में आनंद की कोई प्रतीति है अभी भी। उसी से आप तौलते हैं, और पाते हैं कि नहीं, अनुकूल नहीं है, और उसी को आप खोज रहे हैं।

जो आपकी गहराइयों में छिपा है, उसको ही आप खोज रहे हैं। लेकिन खोज रहे हैं बाहर। जहां वह छिपा है, वहां नहीं खोज रहे हैं। लेकिन बाहर खोजने का कारण वही है, जो राबिया का था। वह कारण यही है कि आंखें बाहर खुलती हैं। इसलिए रोशनी बाहर है। हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं; सारी इंद्रियां बाहर खुलती हैं। इंद्रियों का प्रकाश बाहर पड़ता है, इसलिए हम बाहर खोज रहे हैं।

हम भीतर हैं और इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं। इसलिए इंद्रियों के द्वारा जो भी खोज है, वह आपको कहीं भी न ले जाएगी। इंद्रियां बाहर की तरफ जाती हैं और आप भीतर की तरफ हैं। आप इंद्रियों के पीछे छिपे हैं। आपकी संपदा पीछे छिपी है, और इंद्रियां बाहर जाती हैं। इंद्रियों का उपयोग यही है। इंद्रियां संसार से जुड़ने का मार्ग हैं। इसलिए बाहर की तरफ जाती हैं।

भीतर तो आंखों की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि भीतर तो बिना आंखों के देखा जा सकता है। भीतर कान की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि बिना कान के भीतर सुना जा सकता है। भीतर हाथों की कोई भी जरूरत नहीं है,

क्योंकि बिना हाथों के भीतर स्पर्श हो जाता है। इसलिए इंद्रियों की भीतर की तरफ कोई जरूरत नहीं है। भीतर का सब अनुभव अतींद्रिय है, इंद्रिय के बिना हो जाता है।

इंद्रियों की जरूरत संसार के लिए है। वे इंस्ट्रूमेंट्स हैं, साधन हैं, संसार से जुड़ने के। तो जितना संसार से जुड़ना हो, उतनी सबल इंद्रिय चाहिए।

वैज्ञानिक कहते हैं कि विज्ञान की सारी खोज इंद्रियों को सबल बनाने से ज्यादा नहीं है। आपकी आंख देख सकती है थोड़ी दूर तक। दूरबीन है, वह मीलों तक देख सकती है। फिर और बड़ी दूरबीनें हैं, वे आकाश के तारों को देख सकती हैं। लेकिन आप कर क्या रहे हैं? जो तारा खाली आंख से दिखाई नहीं पड़ता, वह दूरबीन से दिखाई पड़ जाता है। क्योंकि दूरबीन बड़ा सबल यंत्र है। दूर तक उसका सेतु बन जाता है। दूर तक उसका संबंध बन जाता है। खाली आंख से उतना संबंध नहीं बनता।

कान से आप सुनते हैं। रेडियो भी सुनता है, लेकिन वह काफी दूर की बात पकड़ लेता है। आंख से आप देखते हैं। टेलीविजन भी देखता है, लेकिन वह काफी दूर की बात पकड़ लेता है। सारी वैज्ञानिक खोजें इंद्रियों का परिष्कार हैं। विज्ञान का जगत इंद्रियों का जगत है। सारा संसार इंद्रियों से जुड़ा हुआ है।

लेकिन इससे एक उपद्रव पैदा होता है कि आप परमात्मा को भी खोजने इन्हीं इंद्रियों के रास्ते से चले जाते हैं। यह गलती वैसे ही है, जैसे कोई आदमी आंखों से संगीत सुनने की कोशिश करने लगे। आंखें देख सकती हैं, सुन नहीं सकतीं। और कितनी ही सबल आंख हो, तो भी नहीं सुन सकती। सुनने का काम आंख से नहीं हो सकता। सुनने का काम कान से होगा। और कान अगर देखने की कोशिश करने लगे, तो फिर मुसीबत होगी, पागलपन पैदा होगा।

इंद्रियां बाहर का मार्ग हैं, उनसे भीतर की खोज नहीं हो सकती। इंद्रियां पदार्थ से जोड़ देती हैं, उनका परमात्मा से जुड़ना नहीं हो सकता। यह उनकी सीमा है। जैसे आंख देखती है, यह उसकी सीमा है। इसमें कोई कसूर नहीं है।

इंद्रियां बाह्य ज्ञान के साधन हैं। और वह जो छिपा है, वह जो आप हैं, वह भीतर है। उसे खोजना हो, तो इंद्रियों के द्वार बंद करके भीतर डूब जाना होगा। इंद्रियों के सेतु छोड़ देने होंगे। इंद्रियों के रास्तों से लौटकर अपने भीतर ही खड़े हो जाना होगा।

इस भीतर खड़े हो जाने का नाम अध्यात्म है। और भीतर जो खड़ा हो जाता है, वह पाता है कि जिसे मैंने कभी न खोया था, उसे मैं खोज रहा था। जिससे मेरा कभी बिछुड़ना न हुआ था, उसके मिलन के लिए मैं परेशान हो रहा था। जो सदा ही पास था, उसे मैं दूर-दूर तलाश रहा था। और दूर-दूर तलाशने की वजह से उसे नहीं पा रहा था। नहीं पा रहा था, तो और परेशान हो रहा था। और परेशान हो रहा था, तो और दूर खोज रहा था। ऐसे खोज एक विशियस सर्किल, एक दुष्टचक्र बन जाती है।

सरल है बहुत, क्योंकि परमात्मा आपके इतने निकट है कि उसे निकट कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि निकटता में भी थोड़ी-सी दूरी होती है। परमात्मा आपकी श्वास-श्वास में है, रोएं-रोएं में है। ठीक से समझें तो आप परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

एक मित्र ने और पूछा है। उन्होंने पूछा है कि अगर हम परमात्मा ही हैं, तो फिर जानने की क्या जरूरत है?

ये अगर सच में ही पता चल गया है कि आप परमात्मा हैं, तब तो जानने की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर खतरनाक है। पूछते हैं कि अगर हम

परमात्मा ही हैं... । वह अगर ही मिटाने के लिए खोज की जरूरत है। वह जो यदि लगा हुआ है, वही तो उपद्रव है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि परमात्मा को पा लेने से ही क्या होगा, जब वह मिला ही हुआ है?

कुछ भी नहीं होगा, सिर्फ खोज मिट जाएगी। और खोज मिटते ही पीड़ा मिट जाती है, दौड़ मिट जाती है। और जब तक उसे नहीं पा लिया है, खोज जारी रहेगी।

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर आदमी ही परमात्मा है, अगर उसके भीतर ही वह छिपा है, तो मिल क्यों नहीं जाता? अड़चन क्यों है?

अड़चन इसलिए है कि यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे तो अपने को विस्मरण कर दे। और यह भी चेतना की सामर्थ्य है कि वह चाहे तो अपने को स्मरण कर ले। जरा जटिल है। चेतना का अर्थ ही होता है कि जिसे स्मरण और विस्मरण की शक्ति हो। और दोनों शक्तियां साथ होती हैं।

अगर कोई आदमी कहता है कि मुझे सिर्फ स्मरण की शक्ति है, विस्मरण की नहीं है, तो आप भरोसा मत करना। क्योंकि जो भूल नहीं सकता, वह याद भी नहीं कर सकता। भूलना और याद करना साथ-साथ है। वही याद कर सकता है, जो भूल भी सकता है। जो भूल सकता है, वही याद भी कर सकता है।

तो आप सोचते हैं कि आपके भीतर जो स्मृति की शक्ति है, मेमोरी की, वह विस्मरण पर खड़ी है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर कोई आदमी भूलना बंद कर दे, तो फिर याद करना उसी दिन बंद हो जाएगा।

थोड़ा सोचें, दिनभर में जितनी घटनाएं घटती हैं, अगर वे सब आपको याद रह जाएं, कुछ भी आप भूलें न। आपको पता है, कितनी घटती हैं? हिसाब मनोवैज्ञानिक लगाते हैं, तो कम से कम एक आदमी की इंद्रियों पर दस लाख संघात होते हैं चौबीस घंटे में, कम से कम। यह भी उस आदमी के, जो कुछ ज्यादा न कर रहा हो। ज्यादा करने वाले को तो और ज्यादा होंगे।

दस लाख स्मृतियां बनती हैं। अगर वे सब आपको याद रह जाएं, तो दूसरे दिन आपका पता भी न चलेगा कि कहां आप चले गए। आप पागल हो जाएंगे। अगर दस लाख याद रह जाएं, तो आपको यह भी याद न रहेगा कि आप कौन हैं! आपकी पत्नी कौन है! आपका घर कहां है! पता-ठिकाना क्या है! यह सब गड़बड़ हो जाएगा।

उस दस लाख में से दस भी याद नहीं रह जाती हैं। सब भूल जाते हैं। इसलिए आपकी स्मृति काम कर पाती है। इसलिए आपको पता रहता है कि आप कौन हैं। घर-ठिकाना कहां है। सांझ दफ्तर से ठीक अपने ही घर पहुंच जाते हैं। फिर नहीं पहुंच सकेंगे घर, जो भी दिनभर में घटा है, वह सब याद रह जाए तो।

वह जो विस्मरण है, उसके कारण स्मृति काम करती है। यह जो विरोध है अस्तित्व का, इसे समझ लें।

अस्तित्व ध्रुवीयता से, पोलेरिटी से चलता है। यहां अगर धन विद्युत चाहिए, तो ऋण विद्युत के बिना नहीं हो सकती। यहां अगर पुरुष चाहिए, तो स्त्री के बिना नहीं हो सकता। यहां स्त्री चाहिए, तो पुरुष के बिना नहीं हो सकती। यहां दिन चाहिए, तो रात होगी। और जन्म चाहिए, तो मौत होगी। यहां विपरीत मौजूद रहेगा। और विपरीत से ही सारी व्यवस्था है।

चेतना स्मरण कर सकती है, क्योंकि विस्मरण कर सकती है। यह चेतना का गुण है। वह आपकी चेतना चाहे तो स्मरण कर सकती है कि कौन है। जिस दिन स्मरण करेगी, उस दिन परमात्मा हो जाएगी। और चाहे तो

विस्मरण कर सकती है। जब विस्मरण कर दे, तो संसार का एक साधारण हिस्सा हो जाएगी। केवल बात इतनी है कि आपको कैसे पुनर्स्मरण आ जाए।

लेकिन, पूछा है एक और मित्र ने कि आखिर इस खेल की परमात्मा को जरूरत क्या है?

लेकिन, पूछा है एक और मित्र ने कि आखिर इस खेल की परमात्मा को जरूरत क्या है?

यह कोई परमात्मा आपको खेल खिला रहा है, ऐसा नहीं है। आप ही खेल रहे हैं। यह हमारी धारणा में ऐसा बैठा हुआ है कि कोई ऊपर परमात्मा बैठा है, और वह आपको खिला रहा है। ऐसा अगर कोई परमात्मा हो, जो आपको यह खेल खिला रहा है, तो उसकी हालत शैतान से भी बदतर होगी। आपको नाहक सता रहा है!

यह तो ऐसा हुआ, जैसा कि छोटे बच्चे मेंढक को सता रहे हैं; पत्थर मार रहे हैं। क्योंकि वे खेल खेल रहे हैं और मेंढक की जान जा रही है। आप नाहक परेशान हो रहे हैं, कोई परमात्मा ऊपर बैठा हुआ खेल खेल रहा है! वह भी अब तक ऊब गया होता। इतना खेल हो चुका और सार तो कुछ इस खेल में से दिखाई पड़ता नहीं।

नहीं; यह धारणा ही गलत है कि कोई परमात्मा ऊपर बैठकर आपको खेल खिला रहा है। आप, परमात्मा खेल खेल रहे हैं। यह आपकी मौज है। इसे ठीक से समझ लें और गहरे उतर जाने दें। यह आपका ही निर्णय है कि आप अज्ञानी रहना चाहते हैं। इसे मैं गौर से कहता हूं, जोर देकर कहता हूं, क्योंकि इसके परिणाम हैं।

अगर यह किसी और का निर्णय है कि आप अज्ञानी हैं, तो फिर आप अपने निर्णय से ज्ञानी न हो सकेंगे। अगर कोई परमात्मा आपको अज्ञानी रखे

हुए है, तो फिर उसकी ही मर्जी होगी, तब आप ज्ञानी हो जाएंगे। अगर कोई जाल आपको फंसाए चला रहा है, तो फिर आप बस के बाहर हैं। आप क्या करें?

यह आपका ही निर्णय है कि आप यह खेल खेल रहे हैं।

छोटे बच्चों को आपने खेल खेलते देखा है? लुकने-छिपने का खेल खेलते हैं। खुद की ही आंखें बंद करके बच्चा खड़ा हो जाता है, ताकि दूसरे छिप जाएं और फिर वह उन्हें खोज सके।

आप खुद ही अपने से छिप रहे हैं और खोज रहे हैं। यह आपकी मौज है। और जिस दिन आप इससे ऊब जाएंगे, खेल खतम करना आपके हाथ में है। जब तक आप कहते हैं कि मैं खतम तो करना चाहता हूं, लेकिन खतम होता नहीं है, तब तक समझना कि आप बेईमानी की बात कह रहे हैं।

आज तक ऐसा कभी हुआ नहीं कि किसी ने खतम करना चाहा हो और खेल चला हो। जो खतम करना चाहता है, उसी वक्त खतम हो जाता है। क्योंकि आपका ही निर्णय खेल का आधार है।

लेकिन आपकी तरकीब ऐसी है कि आप खेलना भी चाहते हैं, और खतम करने का मजा भी लेना चाहते हैं। खेलने का भी मजा, खतम करने का भी मजा। संसार का भी सुख, और परमात्मा का भी आनंद। संसार का भी धन, और निर्वाण का भी सुख! सब साथ लेना चाहते हैं। इसलिए आप उलझन में हैं।

आप अगर सच में ही समझ गए हैं कि यह जीवन दुख है, पीड़ा है, संताप है, नरक है, तो आप भीतर की तरफ लौटना शुरू हो ही जाएंगे। कोई आपको रोक न सकेगा।

बुद्ध घर से गए। उनका सारथि उन्हें छोड़ने गया था। सारथि बड़ा दुखी हो रहा था कि बुद्ध भी कैसा नासमझ है! कैसा नासमझ लड़का हुआ शुद्धोदन को। लोग जन्मों तक तड़पते हैं, तब कहीं ऐसे सम्राट के घर में जीवन मिलता

है। ऐसे सुंदर महल, ऐसी सुंदर पत्नी, ऐसा सारा साज-सामान, सारा वैभव छोड़कर यह नासमझ लड़का भागा जा रहा है!

आखिरी, जब बुद्ध उतरने लगे और उन्होंने कहा कि अब रथ को तू वापस ले जा। तो उस बूढ़े सारथि ने कहा कि माना कि तुम मालिक हो और मैं नौकर, लेकिन यह क्षण ऐसा है कि चाहे अशिष्टता भले हो जाए, मुझे कुछ कहना चाहिए। तुम यह क्या कर रहे हो? महलों को छोड़कर जा रहे हो? सारी दुनिया महलों की तरफ आ रही है। सब की आकांक्षा यही है कि कैसे महल में पहुंच जाएं। और तुम महल छोड़कर जा रहे हो? क्या नासमझी कर रहे हो? मुझ ब.ूढे की बात पर ध्यान दो!

तो बुद्ध ने कहा कि जहां तुझे महल दिखाई पड़ते हैं, वहां मुझे आग की लपटों के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। तो जिनको महल दिखाई पड़ रहे हैं, वे उस तरफ जा रहे हैं। मैं महलों में रहकर लपटें देखकर उस तरफ से हट रहा हूं। अगर महल होते, तो मैं भी रुक जाता। लेकिन महल वहां हैं नहीं।

वह बूढ़ा छन्ना रोने लगा; वह सारथि रोने लगा। उसकी आंख से आंसू झरने लगे। उसने कहा कि तुम यह क्या कह रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता। तुम किसी भूल में तो नहीं पड़ गए हो? तुम किसी भ्रम में तो नहीं हो?

बुद्ध ने कहा कि भ्रम में वे लोग हैं, जो महल की तरफ जा रहे हैं। मैं उस जीवन की खोज के लिए निकला हूं अब, जिसमें आग की लपटें नहीं हैं। मैं उस शीतल जीवन की खोज में जा रहा हूं, जहां कोई लपट नहीं है।

मगर हम भी चाहते हैं कि ऐसा शीतल जीवन हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, शांत हो मन! लेकिन उनकी सब आकांक्षाएं अशांति की हैं। उनकी सब आकांक्षाएं, जिनको वे तृप्त करना चाहते हैं, अशांति की हैं। और शांति भी चाहते हैं! और जिन आकांक्षाओं को परिपोषित करते हैं, उन सब

से अशांति पैदा होती है। उनकी मनोदशा ऐसी है कि वे चाहते हैं, अगर शांति मिल जाए, तो शांति से ये सब मनोवासनाएं पूरी कर लें।

यह कंट्राडिक्शन है। यह नहीं हो सकता।

एक युवक मेरे पास आया। विश्वविद्यालय की किसी बड़ी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा है। उसने मुझे कहा कि मन बड़ा अशांत है। और इसीलिए आपके पास आया हूं। धर्म की, ज्ञान की मुझे कोई जरूरत नहीं है। मुझे तो सिर्फ, अभी परीक्षा पास है, और जीवन दांव पर लगा है; मुझे प्रथम आना है। प्रथम श्रेणी में प्रथम आना है। आप कोई ऐसी तरकीब बता दें कि मेरा मन शांत हो जाए।

मैंने कहा, शांति तू किसलिए चाहता है? उसने कहा कि इसीलिए। अगर शांत हो जाऊं, तो यह प्रथम आने का काम पूरा हो जाए। अशांति में तो यह न हो सकेगा।

उसकी बात तर्कयुक्त है। इतना मन अशांत है, तो कैसे श्रम करूं प्रथम आने का! यह अशांति ही शक्ति खा रही है। इसलिए शांति की तलाश में है। लेकिन उसे पता नहीं कि अशांत क्यों है वह? अशांति इसीलिए है कि प्रथम आना चाहता है। वह जो महत्वाकांक्षा है, वही अशांति ला रही है।

अब बड़ी उपद्रव की बात है। वह चाहता है शांति, ताकि महत्वाकांक्षा पूरी हो सके। और महत्वाकांक्षा से ही अशांति पैदा हो रही है। अन्यथा अशांति का कोई कारण नहीं है।

क्या किया जाए इस युवक के लिए? कोई भी शांति का रास्ता कारगर नहीं होगा। क्योंकि अशांति के बीज तो भीतर गहरे में हैं, उन्हीं से अशांति पैदा हो रही है।

उससे मैंने कहा कि शांति की तू फिक्र छोड़। तू पहले मुझे यह बता कि अशांति क्यों हो रही है? क्योंकि अशांति का कारण हट जाए, तो तू शांत हो जाएगा।

उसने कहा, वह भी मेरी समझ में आता है। आपकी बात भी मेरी समझ में आती है कि अशांति का कारण यही है कि मैं प्रथम आना चाहता हूं। यही उपद्रव है मेरे मन में कि अगर प्रथम न आया, तो क्या होगा! उसी से पीड़ित हो रहा हूं। अगर मैं यही वासना छोड़ दूं प्रथम आने की, तो अशांति का और कोई कारण नहीं है।

तो फिर मैंने कहा, तू ठीक से तय कर ले। अगर महत्वाकांक्षा चाहिए, तो अशांत होने की हिम्मत चाहिए। मैं नहीं कहता कि तू महत्वाकांक्षा छोड़। फिर अशांति को स्वीकार कर। वह उसका हिस्सा है। और अगर शांति चाहिए, तो महत्वाकांक्षा को छोड़। फिर वह साहस कर। वह शांति का अनिवार्य हिस्सा है।

हमारी दुविधा यह है कि हम संसार और परमात्मा में दोनों में जो मिलता हो, दोनों चाहते हैं। अज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं; और ज्ञान में जो फायदा हो, वह भी चाहते हैं। वे दोनों फायदे विपरीत हैं। एक होगा, तो दूसरा डूब जाएगा। दूसरा होगा, तो पहला डूब जाएगा। दोनों साथ नहीं हो सकते हैं।

हम पूरब-पश्चिम दोनों तरफ साथ-साथ चलने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए हम कहीं भी नहीं चल पाते। हम बीच में फंस गए हैं। एक टांग पूरब चली गई है; एक टांग पश्चिम चली गई है। हम बीच में अटके हैं और परेशान हो रहे हैं। और हम एक टांग न पूरब से वापस खींचते हैं, न पश्चिम से वापस खींचते हैं। और हमारा इरादा यह है कि इन दोनों नाव पर सवार होकर हम पहुंच जाएंगे दोनों किनारे पर।

डूबेंगे बुरी तरह। यह दो नावों पर सवार आदमी डूबेगा ही। और इसका डूबना बड़ा नारकीय होगा। मगर आपको दिखाई नहीं पड़ता कि आप कैसे दो नावों पर सवार हैं। इधर धन की दौड़ लगी हुई है, उधर शांति की भी तलाश है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, धन पर पकड़ छोड़ दो। धन पर पकड़ अगर छोड़ दें, तो फिर क्या होगा? अगर धन की पकड़ छोड़ दें, तो संसार में कैसे चलेगा?

मैंने कहा कि धन की पकड़ छोड़ दो। वे कहते हैं कि धन के बिना कैसे चलेगा? मैंने नहीं कहा कि धन के बिना चलाओ।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है। धन की जरूरत तो पूरी हो जाती है; धन की पकड़ कभी पूरी नहीं होती। धन को जितना पकड़ो, उतनी पकड़ बढ़ती जाती है। धन की जरूरत तो पूरी हो सकती है। जरूरतें सब पूरी हो सकती हैं, पागलपन कोई भी पूरा नहीं हो सकता।

अमेरिका का अरबपति एंड्रू कारनेगी मरा। उसके पास दस अरब रुपए थे। मरते वक्त भी वह यह कहकर मरा है कि मैं असंतुष्ट मर रहा हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपए छोड़ने के थे। दस अरब केवल! जैसे दस नए पैसे, ऐसे दस अरब केवल!

दस अरब रुपए भी पास में हों, तो भी पकड़ पूरी नहीं होती। एंड्रू कारनेगी करेगा क्या दस अरब रुपए का? कोई उपयोग नहीं है। उपयोग का समय तो बहुत पहले समाप्त हो गया। जो भी मिल सकता था रुपए से, वह बहुत पहले मिल चुका। अब दस अरब रुपए से कुछ भी नहीं पाया जा सकता। लेकिन अभी भी दौड़ पूरी नहीं हुई, पकड़ पूरी नहीं हुई।

धन की जरूरत एक बात है; धन की पकड़ दूसरी बात है। धन की पकड़ है पागलपन।

फिर मैं नहीं कहता कि आप धन की पकड़ छोड़ दें। मैं तो तभी कहता हूं, जब आप कहते हैं, शांति चाहिए, आनंद चाहिए, परमात्मा चाहिए--तभी

कहता हूं। नहीं तो मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, खूब जोर से पकड़िए। आपकी मौज है। कौन आपसे छीन रहा है! और आप दुख चाहते हैं, तो मैं कौन हूं कि आपसे कहूं कि दुख मत चाहिए! मजे से चाहिए। आपको वही पसंद है, वही करिए। लेकिन फिर दूसरी बात मत पूछिए।

लेकिन हम बड़े उलटे हैं। यह उलझन ही हमारी जटिलता है। और इसलिए रास्ता सब गड़बड़ हो जाता है।

आप धन में आनंद पाते हैं, मजे से पकड़ते चले जाइए। अगर दुख पाते हैं, तो पकड़ छोड़िए। और ये दोहरी बातें एक साथ पूरी करने की कोशिश मत करिए, कि एक हाथ में धन को भी पकड़े रखेंगे और दूसरे हाथ में परमात्मा को भी पकड़ लेंगे! ये दोनों बातें आपसे नहीं हो सकेंगी, क्योंकि ये कभी किसी से नहीं हो सकी हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़कर भाग जाइए। धन की जरूरत है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि धन की जरूरत भी वही आदमी पूरा कर पाता है, जिस की धन पर पकड़ नहीं होती। नहीं तो आप सैकड़ों अमीर आदमियों को देखिए, उनसे गरीब आदमी खोजने मुश्किल हैं। धन पर उनकी इतनी पकड़ है कि वे खर्च ही नहीं कर पाते! धन का जो उपयोग है, वह भी नहीं कर पाते। कंजूस आपको दिखाई पड़ते हैं कि नहीं?

मैं एक कंजूस को जानता हूं। वे बीमार थे; मेरे घर के सामने रहते थे; रिटायर्ड डाक्टर थे। अकेले थे, न पत्नी, न बच्चा। शादी उन्होंने कभी की नहीं। कंजूस को शादी करनी नहीं चाहिए! वह महंगा खर्चा है। औरतें खर्चीली हैं। शादी उन्होंने की नहीं, उन्होंने मुझसे कहा कि शादी मैंने इसीलिए नहीं की कि औरतें फिजूलखर्ची हैं।

किराया आता था; दो बड़े बंगले थे। रिटायर हुए थे मिलिटरी से, डाक्टर थे, तो काफी पैसा इकट्ठा था।

एक दिन अचानक उनका पड़ोसी मेरे पास आया और उसने कहा कि डाक्टर बहुत बीमार हैं, आप जरा चलें। मैं गया तो उनका जबड़ा बंद था। वे बेहोश हालत में थे। मैंने पूछा कि क्या गड़बड़ है? फोन करके मैं डाक्टर को बुला लूं?

तो पता है आपको, उस मरते हुए डाक्टर ने मुझे क्या कहा? उसने हाथ से इशारा किया कि रुपए? रुपए मेरे पास नहीं हैं। रुपए कौन देगा? मुंह बंद हो गया था। आंखें खुली थीं। लेकिन हाथ से इशारा किया कि रुपए कौन देगा? मैंने कहा, रुपए का कोई इंतजाम करेंगे। तुम फिक्र न करो।

डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने कहा कि तत्क्षण अस्पताल ले जाना पड़ेगा। यह यहां ठीक होने वाला मामला नहीं है। तो उस मरते हुए डाक्टर ने मुझसे कहा कि पहले ताले में चाबी लगाकर मकान की चाबी मुझे दो। जब चाबी उसको दे दी, तब वह एंबुलेंस में सवार हुआ।

एंबुलेंस में बिठाकर अस्पताल पहुंचाया गया। दो घंटे बाद वे मर गए। मरने के बाद उसके कुर्ते के भीतर पांच हजार रुपए निकले। वह अपने पास ही रखे हुए था। और डाक्टर की पांच रुपए फीस देने के लिए उसने कहा कि... ।

इसको कहता हूं पकड़। अक्सर अमीर आदमी गरीब मर जाते हैं। अमीर होना जरा कठिन है। अमीर होना धन से संबंधित कम है। धन की पकड़ न हो, तो आदमी अमीर होता है।

दो तरह के गरीब हैं दुनिया में। एक, जिनके पास धन नहीं है। एक, जिनके पास धन की पकड़ है। ये दो तरह के गरीब लोग हैं दुनिया में। अमीर आदमी बहुत मुश्किल है पाना।

धन का उपयोग भी आप तभी कर पाते हैं, जब पकड़ न हो।

तो मैं नहीं कहता कि आप धन का उपयोग न करें। पकड़ मत रखें। धन साधन हो, साध्य न बन जाए। और आप धन के नौकर-चाकर न रह जाएं,

कि उसी की हिफाजत कर रहे हैं, पहरा दे रहे हैं, इकट्ठा कर रहे हैं और मर जाएं। और मर रहे हैं। इसके सिवा आपका काम क्या है?

लेकिन एक बात ख्याल रख लें कि जिस दिशा में चलें, उस दिशा की तकलीफों को भी स्वीकार करें। हर दिशा की तकलीफ है। हर दिशा का आनंद है। दोनों आपको स्वीकार करने होंगे। इनमें से आप चाहें कि एक को बचा लें और दूसरे को छोड़ दें, तो आप जीवन के विज्ञान को नहीं समझते हैं।

एक और मित्र ने पूछा है कि यदि मनुष्य को अपनी सारी इच्छाएं ही छोड़नी हैं, तो फिर जीवन का लक्ष्य क्या है?

शायद उनका ख्याल हो कि इच्छाओं को पूरा करना ही जीवन का लक्ष्य है! इच्छाएं तो पूरी होती नहीं। कोई इच्छा पूरी नहीं होती। एक इच्छा पूरी होती है, तो दस को पैदा कर जाती है। अब तक किसी ने भी नहीं कहा है कि कोई इच्छा पूरी हो गई। पूरे होने के पहले ही नई संतति पैदा हो जाती है औरशृंखला शुरू हो जाती है।

जीवन का लक्ष्य इच्छाओं को पूरा करना नहीं है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं के बीच से इच्छारहितता को उपलब्ध हो जाना है। जीवन का लक्ष्य इच्छाओं से गुजरकर इच्छाओं के पार उठ जाना है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति सभी इच्छाओं के पार उठ जाता है, वैसे ही उसे पता चलता है कि जीवन की परम धन्यता इच्छाओं में नहीं थी। इच्छाओं से तो तनाव पैदा होता था, खिंचाव पैदा होता था। इच्छाओं से तो मन दा.ैडता था, थकता था, गिरता था, परेशान होता था।

इच्छाशून्यता से प्राणों का मिलन अस्तित्व से हो जाता है। क्योंकि कोई दौड़ नहीं रह जाती, कोई भाग-दा.ैड नहीं रह जाती। जैसे झील शांत हो जाए और कोई लहरें न हों। तो उस शांत झील में जैसे चांद का प्रतिबिंब बन

जाए, ऐसा ही जब इच्छाओं की कोई लहर नहीं होती और हृदय शांत झील हो जाता है, तो जीवन का जो परम रहस्य है, उसका प्रतिबिंब बनने लगता है। आप दर्पण हो जाते हैं। और जीवन का रहस्य आपके सामने खुल जाता है।

इच्छाओं के माध्यम से इच्छाशून्यता को उपलब्ध करना जीवन का लक्ष्य है।

लेकिन मैं कह रहा हूं इच्छाओं के माध्यम से, तो आप जल्दबाजी भी मत करना। परिपक्वता जरूरी है। इच्छाओं को पकने देना। और इच्छाओं से पूरे हृदयपूर्वक गुजरना, ताकि इच्छाओं का रहस्य समझ में आ जाए; उनकी व्यर्थता भी समझ में आ जाए; इच्छाओं की मूढ़ता भी समझ में आ जाए।

लेकिन एक बड़ी कठिनाई हो गई है। हम सब अधकचरे हो गए हैं। अधकचरे हो जाने का कारण यह है कि इसके पहले कि हमें किसी चीज का खुद अनुभव हो, दूसरों के अनुभव और दूसरे के वचन हमें कंठस्थ हो जाते हैं।

सुन लिया हमने कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और हमने मान भी लिया कि इच्छाओं से मुक्त होना है। और अभी इच्छाओं की पीड़ा हमने अनुभव नहीं की।

तो हम इच्छाओं में पूरे उतर भी नहीं सकते, क्योंकि यह शिक्षा पीछे से खींचती है कि कहां जा रहे हो पाप में! इच्छाओं से तो बचना है। और यह शिक्षा कारगर भी नहीं होती, क्योंकि इच्छाओं से बचने का अनुभव हमारा अभी पैदा नहीं हुआ। बुद्ध को हुआ होगा। महावीर को हुआ होगा। हमको नहीं हुआ। उनका अनुभव हमारे क्या काम आएगा?

मुझे अनुभव होना चाहिए कि आग जलाती है। आप कहते हैं, आग जलाती है। मुझे कोई अनुभव नहीं है। तो मेरा हाथ खिंचता है आग की तरफ, क्योंकि मुझे लगता है, कितने प्यारे फूल खिल रहे हैं आग में, इन्हें पकड़ लूं।

इन फूलों को सम्हाल लूं। इन फूलों को अपनी तिजोड़ी में बंद कर दूं। ये प्यारे फूल मुझे लग रहे हैं। मैंने दूर से इनको देखा है।

लेकिन जब मैं हाथ बढ़ाने लगता हूं, तो आपकी शिक्षा याद आती है कि हाथ मत बढ़ाना। जल जाओगे। हाथ जल जाएगा। आग जलाती है। यह शिक्षा मेरे हाथ को वहां तक भी नहीं पहुंचने देती, जहां मैं जल जाऊं। और यह शिक्षा मेरा अनुभव भी नहीं बनती। इसलिए हाथ बढ़ता ही रहता है और आग तक पहुंचता भी नहीं। बढ़ता भी है, पहुंचता भी नहीं है। ऐसे हम बीच में अटक जाते हैं। आपके सब अनुभव झूठे हो जाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें पता है कि क्रोध बुरा है, फिर भी क्रोध होता है।

यह हो नहीं सकता। अगर पता हो जाए कि क्रोध बुरा है, तो क्रोध हो नहीं सकता। आपको पता ही नहीं। सुना है। लोग कहते हैं, क्रोध बुरा है। लोग कहते हैं, वह आपने सुन लिया है। उनका कहना आपका ज्ञान नहीं है।

आपको ही ज्ञान करना पड़ेगा।

तो मैं तो कहता हूं, ठीक से क्रोध करो, ताकि जल जाओ। और एक दफा ठीक से जल जाओ, तो दुबारा उस तरफ हाथ नहीं जाएगा।

लेकिन आप ठीक से क्रोध भी नहीं करते हैं। और जो आदमी ठीक से क्रोध नहीं किया है, वह ठीक से शांत नहीं हो सकता। उसकी शांति में भी क्रोध की वासना छिपी रहेगी।

लोग कहते हैं, ब्रह्मचर्य। और आपका मन खिंचता है कामवासना की तरफ। और जब कामवासना की तरफ जाने लगते हैं, तब सब ब्रह्मचारियों की शिक्षाएं याद आती हैं। तब मन में लगता है, यह क्या पाप कर रहा हूं? इस लगने के कारण कि क्या पाप कर रहा हूं, पाप भी ठीक से नहीं कर पाते। पाप का अनुभव भी नहीं हो पाता। अधकचरा रह जाता है सब।

पाप में जाते भी हैं, कर भी नहीं पाते। कोई पीछे खींचता रहता है। पीछे खिंच भी नहीं सकते पूरे, क्योंकि पाप का जब तक परिपक्क अनुभव न हो जाए, तब तक आप खिंच भी नहीं सकते, हट भी नहीं सकते। स्वानुभव के अतिरिक्त कोई जीवन-क्रांति नहीं है।

ठीक कहा होगा, जिन्होंने ब्रह्मचर्य को जाना है। ठीक कहा होगा। और जिस दिन आप जानेंगे, आप भी कहेंगे कि ब्रह्मचर्य अमृत है। और आप भी लोगों को समझाएंगे कि कहां उलझ रहे हो!

स्वभावतः, जब बाप अपने बेटे को देखता है आग की तरफ जाते, तो कहता है, ठहर! आग मत छू लेना। जल जाएगा। वह ठीक ही कहता है। गलत तो कहता नहीं। लेकिन इस बेटे को अनुभव होने दे। अगर बाप समझदार हो, तो बेटे को पकड़ेगा, आग के पास ले जाएगा, और कहेगा, थोड़ा हाथ बढ़ा, आग में डाल। फिर इस बेटे को किसी शास्त्र की जरूरत न रहेगी। फिर यह बेटा खुद ही उचककर खड़ा हो जाएगा, और बाप से कहेगा, यह क्या करते हो? हाथ जला दिया! अब यह बेटा कभी आग के पास न जाएगा।

जो होशियार बाप है, वह अपने ज्ञान को बेटे को नहीं देता; अपने ज्ञान के आधार पर बेटे को अनुभव का मौका देता है। इसे ठीक से समझ लें। इसमें फर्क है।

जो सदगुरु है, वह आपको ज्ञान नहीं देता। वह आपको अनुभव की सुविधा जुटाता है, सिर्फ सुविधा जुटाता है। ज्ञान तो आपको अपना ही होगा। वह केवल अनुभव की सुविधा जुटाता है, जहां आपको अनुभव हो जाए।

गुरजिएफ के पास लोग जाते थे--पश्चिम का एक बहुत कीमती गुरु--तो गुरजिएफ उनको कहता था, तुम अभी शांति की फिक्र छोड़ो; तुम ठीक से क्रोध कर लो। अधूरा क्रोध तुम्हें कभी शांत न होने देगा। तो वह कहता था, तुम जितना क्रोध कर सकते हो, पहले कर लो। तो वह कहता कि तीन महीने तुम्हें क्रोध की साधना के लिए। इस वक्त तुम्हें जो भी मौका मिले, तुम चूकना

मत। और जो भी मौका मिले, तलाश में रहना। और जितना क्रोध कर सको, आग जितनी निकाल सको, जहर जितना फेंक सको, फेंकना।

तीन महीने भी बहुत हो जाते। तीन सप्ताह में भी साधक आकर कहता कि मैं थक गया बुरी तरह। और क्या मूढ़ता आप मुझसे करवा रहे हैं!

क्योंकि आपको पता है, अगर जानकर आप क्रोध करेंगे, तो बहुत जल्दी पता चलने लगेगा कि यह मूढ़ता है। लेकिन गुरजिएफ कहता, अभी जल्दी है। अभी तुम कच्चे हो। अभी तीन ही सप्ताह हुए। लोग जन्मों-जन्मों से क्रोध कर रहे हैं, अभी तक नहीं पके। तुम जरा रुको। तुम तीन महीने चलने ही दो। और गुरजिएफ दिए जाता धक्का। धीरे-धीरे साधक को मौका ही न मिलता।

एक महीने अगर आपने तलाश की, तो आपको मौके मिलने कठिन हो जाएंगे कि अब कहां क्रोध करें। और जब खुद आप कर रहे हों, तो आपको खुद ही लगता है कि फिर अब यह मूर्खता करने जा रहे हैं! और इसमें कुछ सार नहीं है सिवाय दुख के, पीड़ा के, परेशानी के। जहर फैलता है। खुद की हानि होती है, किसी को कोई लाभ होता नहीं।

तो फिर गुरजिएफ इंतजाम करता। किसी को कहता कि इस आदमी का अच्छी तरह अपमान करो। ऐसे मौके पर अपमान करो कि यह भूल ही जाए और आ जाए क्रोध में। वह इस तरह की डिवाइस रचता, इस तरह के उपाय करता, जिनमें आदमियों को परेशान करवाता।

अगर फिर भी वह आदमी न परेशान होता, दो महीने बीत गए, अब उपाय भी काम नहीं करते, तो गुरजिएफ शराब पिलाता, कि शायद शराब पीकर नशे में दबा हुआ कुछ निकल आए। शराब पिलाता, रात आधी रात तक शराब पिलाए चला जाता, और फिर उपद्रव खड़े करवाता।

जब तक सब उपाय से क्रोध को पूरा अनुभव न करवा देता, तब तक वह शांति का उपाय न बताता। और फिर शांति का उपाय बड़ा सरल है।

क्योंकि जिसका क्रोध से उपद्रव छूट गया, उसको शांत होने के लिए उपाय नहीं करना पड़ता, वह शांत हो जाता है।

जीवन के अनुभव से बचिए मत; उतरिए। और जल्दी भी मत करिए; कोई जल्दी है भी नहीं। बहुत समय है जीवन के पास।

एक ही नुकसान है समय का, अधकचरे अनुभव आपको कहीं भी न ले जाएंगे। अगर मोक्ष चाहिए, तो संसार का परिपक्व अनुभव जरूरी है। और जल्दबाजी परमात्मा बिल्कुल पसंद नहीं करता। और आधे पके फल उसके राज्य में स्वीकृत नहीं हैं। वहां पूरा पका फल होना चाहिए।

आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति अपने को सब भांति परमात्मा में छोड़ दे, लीन कर दे, स्वीकार कर ले उसे, तो उसे परमात्मा मिल जाता है। क्या इसी तरह संसार की चीजें भी मिल सकती हैं?

भूलकर ऐसा मत करना; कुछ न मिलेगा!

संसार की चीजों को पाने के लिए उपाय करना जरूरी है, श्रम करना जरूरी है, चेष्टा करनी जरूरी है, अशांत होना जरूरी है, पागल होना जरूरी है। तो जो जितना पागल है, संसार में उतना सफल होता है।

अभी एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने एक वक्तव्य दिया है। और उसने कहा है कि दुनिया के जितने बड़े राजनेता हैं, इन सबका मानसिक अगर परीक्षण किया जाए, तो ये विक्षिप्त पाए जाएंगे, क्योंकि इनकी सफलता हो ही नहीं सकती, अगर ये बिल्कुल पागल न हों।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि इंग्लैंड के बड़े राजनीतिज्ञ विंसटन चर्चिल की सफलता का कारण यह था कि विंसटन चर्चिल को किसी ज्योतिषी ने बचपन में बता दिया और फिर उसे यह वहम बैठ गया कि वह

पैंतालीस साल से ज्यादा नहीं जीएगा। जिस दिन से उसको यह ख्याल आ गया कि पैंतालीस साल में मेरी मौत है, उस दिन से वह पागल की तरह कांपिटीशन में उतर गया, प्रतिस्पर्धा में। दूसरे लोग, जिनको सत्तर-अस्सी साल कम से कम ख्याल था जीने का, वे धीरे-धीरे चल रहे थे। विंसटन चर्चिल को तो तीस साल कम थे, उसको जल्दी चलना जरूरी था। वह बिल्कुल पागल की तरह चलने लगा।

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि विंसटन चर्चिल की सफलता का कुल कारण इतना था कि उसको यह ख्याल आ गया था कि मेरे पास तीस साल कम हैं। इसलिए मुझे बिल्कुल पूरी ताकत लगाकर पागल हो जाना चाहिए।

अभी हिटलर, विंसटन चर्चिल, स्टैलिन, इनके मनों के अध्ययन जो प्रकाशित हो रहे हैं, उनसे पता चलता है कि ये सब विक्षिप्त थे। लेकिन ये ही विक्षिप्त थे, ऐसा नहीं; दुनिया के सभी राजनीतिज्ञ सफल अगर हो सकते हैं, तो उनको विक्षिप्त होना जरूरी है। विक्षिप्त का मतलब है कि उन्हें, वह जो कर रहे हैं, उसके पीछे बिल्कुल पागल होना जरूरी है। उसमें समझदारी की जरूरत नहीं है। उसमें अंधी दौड़ की जरूरत है।

जो लोग बहुत धन इकट्ठा कर लेते हैं, उनको भी पागल होना जरूरी है। वहां रिलैक्सेशन से न चलेगा।

मित्र ने पूछा है कि क्या शांति से उपलब्धि हो जाएगी?

अगर शांति से संसार की उपलब्धि होती, तो फिर कोई अशांत होता ही नहीं। यह सारा संसार अशांत है इसलिए कि यहां की सब उपलब्धि अशांति से होती है। अशांति कीमत है, संसार की उपलब्धि करनी हो तो।

इसलिए बुद्धिमान आदमी मैं उसको कहता हूं कि अगर उसको संसार की उपलब्धि करनी है, तो अशांत होने के लिए तैयार है। फिर वह यह नहीं कहता कि मुझे शांति चाहिए।

एक मेरे मित्र हैं। कभी-कभी मिनिस्टर हो जाते हैं; कभी-कभी नहीं रह जाते। जब वे नहीं रह जाते, तब वे मेरे पास आते हैं। साधु-संतों के पास जाते ही तब मिनिस्टर हैं, जब वे मिनिस्टर नहीं रह जाते। भूतपूर्व मिनिस्टरों से ही मिलना होता है साधु-संतों का। जो होते हैं, उनसे नहीं होता। और भूतपूर्व इतने हैं मुल्क में कि कोई कमी नहीं है।

वे जब नहीं रह जाते, तो मेरे पास आते हैं। और कहते हैं, कोई शांति का उपाय? मैं उनको कहता हूं, लेकिन शांति की तुम्हें जरूरत कहां है? और अगर तुम शांत हो गए, तो फिर तुम दुबारा मिनिस्टर न हो सकोगे!

वे कहते हैं कि नहीं, कुछ ऐसा बताएं कि शांत भी हो जाऊं, और अभी तो चीफ मिनिस्टर होने की कोशिश है। अशांति नहीं चाहता; चीफ मिनिस्टरशिप चाहता हूं।

तो मैं उनको कहता हूं, आप किसी और के पास जाएं, जो आपको धोखा दे सकता हो। मैं धोखा नहीं दे सकता। मैं तो आपको यही कह सकता हूं, अगर चीफ मिनिस्टर होना है, तो कुशलता से अशांत हों, और अशांति को स्वीकार करें। वह हिस्सा है। रास्ते पर चलता है आदमी, धूल पड़ती है। वह पड़ेगी। उतनी धूल जरूरी है। चीफ मिनिस्टर होना है, तो थोड़े ज्यादा अशांत हों, क्योंकि अभी तो आप सिर्फ मिनिस्टर थे।

संसार में तो जो भी पाना हो, उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। स्वयं को बेचना पड़ेगा। स्वयं को नष्ट करना पड़ेगा। एक पैसा भी मुफ्त नहीं मिलता है। उतनी ही आत्मा खोती है, तब मिलता है। एक सफलता भी मुफ्त नहीं मिलती है, उतना ही अस्तित्व नष्ट होता है, तब मिलती है।

इसलिए जो बहुत सफल हो जाते हैं बाहर की दुनिया में, भीतर बिल्कुल खाली हो जाते हैं। भीतर उनके कुछ भी नहीं बचता। हिटलर के पास आत्मा जैसी कोई चीज नहीं बचती। बच नहीं सकती। अगर आत्मा बचानी हो, तो हिटलर जो कर रहा है, वह नहीं हो सकता।

धन का ढेर लगा लेना हो, तो फिर भीतर दरिद्र होना जरूरी है। भीतर की दरिद्रता आवश्यक है। क्योंकि उसी की कीमत पर मिलता है यह।

संसार में तो श्रम, विश्राम नहीं। संसार में तो अशांति, शांति नहीं। संसार में तो पुरुषार्थ, भाग्य नहीं।

लेकिन परमात्मा को पाने का रास्ता बिल्कुल उलटा है। होगा ही। क्योंकि परमात्मा की दिशा उलटी है। संसार में जाते हैं बाहर की तरफ; परमात्मा में जाते हैं भीतर की तरफ। उलटा हो जाएगा सब।

तो जिन-जिन कामों से संसार में सफलता मिलती है, उन्हीं-उन्हीं कामों से परमात्मा में असफलता मिलती है। इसे ठीक गणित की तरह समझ लें। और जिन कामों से परमात्मा में सहायता मिलती है, उन्हीं कामों से संसार में असफलता मिलती है। और दोनों में साथ-साथ सफलता नहीं मिलती है। नहीं मिल सकती है। नहीं मिलनी चाहिए।

अगर आप परमात्मा को पाने के लिए अशांत हो रहे हैं, तो फिर आपको परमात्मा न मिलेगा। आप परमात्मा को भी संसार की एक वस्तु की भांति समझ रहे हैं। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, उसे पाना हो, तो प्रयत्न भी छोड़ देना पड़ता है। उसे पाना हो, तो उसके पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। उसे पाना हो, तो उसको भी भूल जाना पड़ता है। क्योंकि फिर उसकी भी खटक बनी रहे कि अभी तक नहीं मिला, अभी तक नहीं मिला, तो उससे भी बेचैनी होती है।

बुद्ध के पास एक युवक आया, सारिपुत्र, फिर बाद में तो महाज्ञानी हुआ। सारिपुत्र जिस दिन आया, उसने बुद्ध से कहा कि मुझे भी तुम जैसा

होना है। तो बुद्ध ने कहा, यह ख्याल छोड़, तो हो सकता है। अगर यह ख्याल पकड़ लिया, तो मुसीबत है। क्योंकि जब मैं हुआ मेरे जैसा, तो मुझे यह बिल्कुल ख्याल नहीं था, इसलिए हो पाया। तू यह ख्याल छोड़ दे कि तुझे बुद्ध जैसा होना है।

सारिपुत्र अनेक वर्ष मेहनत किया, लेकिन वह ख्याल नहीं छूटता था कि मुझे भी बुद्ध जैसा होना है। तो बुद्ध ने उसे एक दिन बुलाकर कहा कि सारिपुत्र, तू सब कर रहा है, सिर्फ एक चीज बाधा डाल रही है। यह वासना, कि तुझे मुझ जैसा होना है, यही तुझे मुझ जैसा नहीं होने दे रही है। तू यह वासना छोड़ दे।

और जिस दिन सारिपुत्र यह वासना भी छोड़ पाया, उसी दिन बुद्ध जैसा हो गया।

तो परमात्मा को पाने के लिए, ज्ञानी कहते हैं, प्रयत्न भी... । शुरू में तो प्रयत्न करना होता है, क्योंकि हमारी आदतें खराब हैं। बिना प्रयत्न के हम कुछ समझ ही नहीं सकते। लेकिन उसे भी छोड़ देना होता है। उसका लक्ष्य भी छोड़ देना होता है। वह न मिले, तो भी इतना ही प्रसन्न होना होता है, जितना कि वह मिल जाए तो। यह महत्वाकांक्षा भी छोड़ देनी होती है कि मैं ईश्वर को खोजकर रहूंगा।

और जिस दिन कोई महत्वाकांक्षा नहीं होती, कोई प्रयत्न नहीं होता, और चित्त बिल्कुल शांत और शिथिल होता है... । महत्वाकांक्षा नहीं है, तो अशांति होगी कैसे? कोई तनाव नहीं होता, कोई दौड़ नहीं होती। कहीं पहुंचना नहीं है, ऐसी स्वीकृति विश्राम है। ऐसी स्वीकृति में वह उपलब्ध हो जाता है।

संसार को पाना है, दौड़िए खूब, पागल होकर दौड़िए, शराब पीकर दौड़िए। परमात्मा को पाना है, तो दौड़िए ही मत। और सब तरह के नशे, सब तरह की महत्वाकांक्षाएं छोड़ दीजिए।

अगर संसार पाना है, तो जैसे नदी में कोई तैरता है उलटी धारा की तरफ, वैसे तैरिए। बड़ी ताकत लगानी पड़ेगी। तब भी जरूरी नहीं कि पहुंच जाएं, क्योंकि आप अकेले नहीं तैर रहे हैं। और लोग भी तैर रहे हैं। और लोग भी तैर ही नहीं रहे हैं, आप न पहुंच जाएं, इसमें भी बाधा डाल रहे हैं। और खुद पहुंच जाएं, इसका उपाय कर रहे हैं।

आप अकेले नहीं हैं संसार में। और भी उपद्रव आस-पास चल रहा है बड़ा। अगर साढ़े तीन, चार अरब आदमी हैं, तो हर एक आदमी के खिलाफ चार अरब आदमी काम कर रहे हैं। यहां पहुंचना इतना आसान भी नहीं है। इसमें जो बिल्कुल पागल होगा, जिद्दी होगा, हठी होगा, जो सुनेगा ही नहीं, देखेगा ही नहीं, अंधे की तरह दौड़ा चला जाएगा, वह ही शायद पहुंच पाए।

लेकिन अगर परमात्मा में जाना है, तो तैरने जैसा नहीं है, बहने जैसा है। नदी की धार में अपने को छोड़ दिया। तैरते भी नहीं; हाथ भी नहीं चलाते; नदी ले चली। श्वास-श्वास शांत हो गई, क्योंकि अब कुछ भी करना नहीं है आपको। नदी सब कर रही है; आप अपने को छोड़ दिए हैं।

परमात्मा की उपलब्धि होती है बहने में। संसार की उपलब्धि होती है तैरने में।

अब हम सूत्र को लें।

तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय व उद्वेगों से रहित है, वह भक्त मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष आकांक्षा से रहित है तथा बाहर-भीतर से शुद्ध है, दक्ष है और जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मेरे को प्रिय है।

कृष्ण और भी लक्षण बताते हैं उसके, जो परमात्मा को प्रिय है अर्थात जो परमात्मा के निकट होता चला जाता है, समीप होता चला जाता है। ये गुण समीप लाने वाले गुण हैं। ये गुण परमात्मा की तरफ उन्मुख करने वाले गुण हैं।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है... ।

यह जरा जटिल है। जिसके कारण किसी को कोई अशांति पैदा नहीं होती। पर इसे समझना पड़ेगा। क्योंकि ऐसे लोग मिल जाएंगे, जो कहेंगे, हमें कृष्ण के कारण अशांति हो रही है। ऐसे लोग मिल जाएंगे, जो कहेंगे कि हमें बुद्ध के कारण अशांति हो रही है।

ऐसे लोग थे। बुद्ध की हत्या करना चाहते थे। अब जो बुद्ध की हत्या करना चाहता होगा, निश्चित ही उसे अशांति उपलब्ध हो रही है। जिन्होंने जीसस को सूली पर लगाया, उनको परेशानी हो रही थी, तभी। तो क्या जीसस ईश्वर के प्यारे नहीं थे? तब तो कृष्ण भी दिक्कत में पड़ जाएंगे, क्योंकि कृष्ण से भी लोगों को अशांति हो रही है। वे भी कृष्ण को नष्ट करने के लिए पूरी कोशिश में लगे हैं।

पर यह सूत्र कहता है, तथा जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है। इसका मतलब समझ लें।

जरूरी नहीं है कि बुद्ध से आप उद्वेग को प्राप्त न हों। बुद्ध के कारण ही जरूरी नहीं है; आपके कारण भी आप उद्वेग को प्राप्त हो सकते हैं। शर्त इतनी है कि बुद्ध अपनी तरफ से आपको उद्विग्न नहीं करते हैं। मगर आप हो सकते हैं। आप अगर अपने ही कारण हो रहे हैं, तो बुद्ध का कोई जिम्मा नहीं है। लेकिन बुद्ध आपको उद्विग्न करने की न तो कोई चेष्टा करते हैं, न उनका कोई रस है। न वे कारण बनते हैं अपनी तरफ से।

आप कारण न बनें किसी के उद्विग्न होने के, यह ध्यान रखना जरूरी है। फिर भी कोई उद्विग्न हो सकता है। क्योंकि उद्विग्न होने में आप अकेले ही भागीदार नहीं होते, होने वाला भी उतना ही भागीदार होता है।

मेरे एक परिचित हैं। अपने बेटे से वे हमेशा परेशान रहते हैं। तो मैंने उनके बेटे को कहा कि तेरे पिता जैसा चाहते हैं, तू वैसा ही कर। और कोई खास बात नहीं चाहते हैं, कर दे। इससे कोई तुझे नुकसान होने वाला नहीं है। उनको शांति होगी।

उनके बेटे ने मुझे कहा कि आपको पता नहीं है। इससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता कि मैं क्या करता हूं। वे जो कहते हैं, वह भी करूं, उससे भी उद्विग्न होते हैं।

मैंने कहा, उदाहरण। तो उसने कहा कि जैसे अगर मैं काफी साफ-सुथरे कपड़े पहनूं, जो मुझे पसंद हैं, तो वे चार लोगों के सामने कहेंगे कि देखो, मैंने तो हड्डी तोड़-तोड़कर पैसा कमाया। शाहजादे को देखो! मुफ्त का है। मजा करो। कर लो मजा। जिस दिन मर जाऊंगा, उस दिन भूखे मरोगे।

अगर ऐसा न करो, साफ-सुथरे कपड़े न पहनो, तो भी वे खड़े होकर लोगों के सामने कहते हैं कि अच्छा! तो क्या मैं मर गया? जब मर जाऊं, तब इस हालत में घूमना। अभी तो मजा कर लो। यह हालत आएगी, ज्यादा देर नहीं है। लेकिन अभी से तो मत यह शक्ल लेकर घूमो। मेरे सामने यह शक्ल लेकर मत आओ।

तो उनके बेटे ने मुझे कहा कि बड़ी मुसीबत यह है कि वे जो कहते हैं, अगर उसको भी मानो, तो भी उद्विग्नता में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मतलब यह हुआ कि कोई आदमी उद्विग्न होना ही चाहता है, तो कोई भी बहाना खोज सकता है। आप भी ख्याल करना कि जब आप उद्विग्न होते हैं, तो जरूरी नहीं है कि दूसरे ने कारण मौजूद ही किया हो; आप अपने से भी हो सकते हैं।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र उससे कह रहा था कि अच्छी मुसीबत में फंस गया मैं। ऐसी औरत मिल गई कि एक शब्द बोलो कि फंसे। कि फिर वह इस तरह की बातें शुरू कर देती है उस शब्द में से कि उनका कोई अंत ही नहीं आता!

मुल्ला ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। माइन इ.ज ए सेल्फ स्टार्टर। तुम्हें तो शब्द बोलना भी पड़ता है। एक मेरी औरत है! बोलने की जरूरत ही नहीं है। और वह शुरू कर देती है। चुप रहना भी खतरनाक है। क्यों चुप हो? जरूर कोई मतलब है!

ख्याल करना, जरूरी नहीं है कि दूसरा कारण उपस्थित कर रहा हो। सौ में निन्यानबे मौके पर तो आप कारण की तलाश कर रहे होते हैं। उसके भी कारण हैं।

दफ्तर में हैं; मालिक ने कुछ कह दिया। वहां प्रकट नहीं कर सकते। मालिक को जवाब देना मुश्किल है। वहां जरा महंगा सौदा है। नौकरी पर आ सकती है। मगर पी गए। वह पीया हुआ कहां जाएगा? उसको कहीं निकालना पड़ेगा।

आप घर पहुंचकर रास्ता खोज रहे हैं कि पत्नी रोटी जलाकर ले आए; कि चाय थोड़ी ठंडी ले आए। आपको पता भी नहीं है कि आप यह रास्ता देख रहे हैं। ऐसा नहीं कि आप यह सोच रहे हैं। यह अचेतन में है। लेकिन क्रोध की एक मात्रा आपके भीतर खड़ी है। वह रास्ता खोज रही है। मालिक की तरफ न बह सकी, क्योंकि वह जरा पहाड़ी की तरफ चढ़ाई थी। इधर पत्नी की तरफ बह सकती है, यह जरा खाई की तरफ उतार है।

आप किसी की तलाश में हैं, जिसकी तरफ आप बह सकें। आप कोई न कोई बहाना खोज लेंगे। और तब पत्नी चौंकेगी। क्योंकि इसी तरह की रोटी उसने कल भी खिलाई थी। और कल आप नाराज न हुए थे। और यही चाय वह सदा जिंदगी से पिला रही है। आज! उसकी समझ के बाहर है।

इसलिए कभी भी कोई किसी का क्रोध नहीं समझ पाता। क्योंकि क्रोध समझ के बाहर है। जरूरी नहीं है कि वह कारण हो। कारण कहीं और हो। न मालूम कहां हो। हजार कारण दूसरे रहे हों। सब का इकट्ठा मिलकर निकल रहा हो।

उसकी समझ के बाहर है। लेकिन पति परमात्मा है, ऐसा पतियों ने समझाया हुआ है। पतियों ने पत्नियों को समझाया है हजारों साल से कि पति परमात्मा है। यह बेचारे की उसकी अपनी सुरक्षा है। क्योंकि दुनियाभर में पिटकर आता है, अगर घर में भी परमात्मा न हो, तो जीवन अकारण जा रहा है। कहीं कोई उपाय होना चाहिए, जहां वह भी अकड़कर खड़ा हो जाए कि मैं परमात्मा हूं। कई लोग उस पर अकड़ते हैं।

तो पत्नी जो है, वह एक रिलीज है, वह एक सुविधा है। मगर औरतें उपद्रव खड़ा कर रही हैं अब दुनियाभर में। वे कहती हैं, यह हम न मानेंगे अब। इस मुल्क में तो अभी चलता है।

तो पत्नी भी इकट्ठा कर लेती है। पति पर प्रकट नहीं कर सकती। वह बेटे का रास्ता देखेगी, स्कूल से लौट आए। और बेटे को कुछ पता नहीं है। वे अपने मजे से चले आ रहे हैं, खेलते-कूदते। उन्हें पता नहीं है कि घर में क्या उपद्रव तैयार है।

घर में घुसते ही से मां टूट पड़ेगी। कोई भी बहाना खोज लेगी। बहाना ऐसा नहीं कि कोई जानकर खोज रही है। सब अचेतन है, अनकांशस है। यह कपड़ा कहां फट गया? यह स्लेट कैसे टूट गई? यह किताब कैसे फट गई?

वह लड़के की समझ में ही नहीं आएगा, क्योंकि यह तो रोज ही इसी तरह टूटती है और फटती है। पर उसकी समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। और वह बिल्कुल अनुभव करता है कि अन्याययुक्त है। लेकिन अन्याय की घोषणा और अन्याय के खिलाफ बगावत कहां करने जाए? एक ही रास्ता है कि मां उसको डांटे-पीटे, तो वह किताब को और फाड़ डाले, स्लेट को और

तोड़ डाले, या कमरे में जाकर अपनी गुड़िया की टांग तोड़ दे और चीर-फाड़कर रख दे।

वह जो दफ्तर में पैदा हुआ था, गुड़िया फंसी उसमें। अब गुड़िया का क्या लेना-देना था आपके दफ्तर में बॉस ने क्या कहा था, उससे? लेकिन यह हो रहा है चौबीस घंटे।

इस सूत्र का अर्थ यह नहीं है कि आप शांत हो जाएंगे, तो आपके कारण कोई अशांत न होगा। इस सूत्र का अर्थ है कि आप कारण मत बनना। इसका होश रखना कि मैं कारण न बनूं।

और एक बड़े मजे की घटना घटती है। अगर आप कारण न बनें, तो जब दूसरा आपको जबरदस्ती कारण बना लेता है, तो आप क्रुद्ध नहीं होते, क्योंकि आप जानते हैं कि बेचारा निकाल रहा है। इस बात को, फर्क को समझ लें।

जब आप कारण नहीं बनते किसी की उद्विग्नता का, आप सचेतन रूप से कारण नहीं हैं उद्विग्नता का, और फिर कोई उद्विग्न होता हो, तो आप हंस सकते हैं। और अगर आपको उसमें क्रोध आ जाए, तो आप समझना कि आप कहीं न कहीं कारण थे। यही जांच है, और कोई जांच नहीं है।

अगर आप घर लौटें और पत्नी आप पर टूट पड़े; तो सच में ही आप जरा भी उद्विग्नता का कारण नहीं हैं तो आप हंस सकेंगे। आप रिएक्ट नहीं करेंगे; आप प्रतिक्रिया नहीं करेंगे कि आप और जोर से उछलने-कूदने लगें और सामान तोड़ने लगें। अगर आप वह करते हैं, तो आप कितना ही कहें कि मैं कारण नहीं हूं, आप कारण हैं।

अगर आप कारण नहीं हैं, तो आप बाहर खड़े रह जाएंगे और हंसेंगे कि यह पत्नी कैसी पागल की तरह काम कर रही है; होश में नहीं है! आपके मन में दया का भाव पैदा होगा, क्रोध का भाव पैदा नहीं होगा; कि बेचारी, कुछ अड़चन है, किसी ने सताया है, या दिनभर का फिजूल काम--बरतन साफ

करना, रोटी बनाना--रोज की बोरियत, उससे ऊब गई है। लेकिन आपको क्रोध नहीं आएगा।

जिस व्यक्ति के भीतर से दूसरों को उद्विग्न करने के कारण समाप्त हो जाते हैं, वह प्रतिक्रिया से, रिएक्शन से मुक्त हो जाता है। वही लक्षण है।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है... ।

दूसरी घटना तभी घटेगी, जब पहली घट गई हो। अगर आप किसी के कारण नहीं बनते हैं, तो दूसरा आपका कारण बनना भी चाहे, तो भी बन नहीं सकता है। और अगर दूसरा कारण बनने में समर्थ है अभी, तो आप समझना कि अभी पहली बात घटी नहीं है। दूसरा उसका सहज परिणाम है।

जब आप किसी का कारण नहीं हैं दुख देने का, तो कोई आपको दुख देना भी चाहे तो दे नहीं सकता।

जीसस को सूली पर लटकाया गया, तो भी जीसस ने प्रार्थना की परमात्मा से कि इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते ये क्या कर रहे हैं। ये होश में नहीं हैं। ये बेहोश हैं। इसलिए इनको पापी मत समझना और इन्हें क्षमा कर देना।

यह वही आदमी ऐसी प्रार्थना कर सकता है, जिसको अब कोई फांसी भी दे, तो भी क्रोध का कारण नहीं पैदा कर सकता। ऐसी घटना घट जाए, तो आप प्रभु के समीप होने लगते हैं।

कृष्ण कहते हैं, यह मुझे प्रिय है। और जो हर्ष और अमर्ष, भय व उद्वेगों से रहित है, वह भक्त मुझे प्रिय है।

हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित है... ।

इसे थोड़ा समझें। थोड़ा बारीक, थोड़ा सूक्ष्म है।

कोई दुखी होता है, तो आप दुखी होते हैं। किसी के घर कोई मर गया, तो आपको भी आंसू आ जाते हैं। किसी का घर जल गया, तो आप सांत्वना,

संवेदना प्रकट करने जाते हैं। लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि यह दुख सच्चा है या झूठा है?

अगर यह सच्चा है, तो इसकी कसौटी एक ही है कि जब किसी का मकान बड़ा हो रहा हो, तब आप खुश हों। तो ही जलने पर आपको दुख हो सकता है। और जब कोई जीत रहा हो, तो आप प्रसन्न हों। तो ही उसकी हार से आपको पीड़ा हो सकती है।

कोई गरीब से धनी हो रहा हो, तो आपको हर्ष होता है? पीड़ा होती है। तो फिर दूसरी बात संदिग्ध है कि कोई अमीर से गरीब हो गया हो, तो आपको दुख हो। वह संदिग्ध है; वह नहीं हो सकता। क्योंकि जीवन का तो गणित है। और उसकी सीधी साफ लकीरें हैं। उस हिसाब में कहीं भूल-चूक नहीं है।

इसलिए मनसविद कहते हैं कि आप जब दूसरे के दुख में दुख बताते हैं, तो भीतर आपको सुख होता है। यह बड़ी जटिल है बात और हमें लगता है कि उलटी मालूम पड़ती है। हमको लगता है, यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि जब किसी का घर जल जाता है, तो हम सच में ही दुखी होते हैं, ऐसा हमें लगता है।

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपके गहरे में थोड़ा-सा सुख होता है। और वह सुख कि अपना घर नहीं जला, एक। इसका जल गया। और जलना ही था, पाप की कमाई थी। यह सब भीतर है। और काफी इतरा रहे थे, रास्ते पर आ गए। देर है उसके न्याय में, अंधेर नहीं है। यह सब भीतर चल रहा है। और ऊपर से सहानुभूति बता रहे हैं। और उस सहानुभूति में भी एक तरह का सुख है कि आज इस हालत में आ गए कि सहानुभूति हम दिखा रहे हैं। भगवान न करे कि कभी हम इस हालत में हों कि कोई हमें सहानुभूति दिखाए।

आपको पता है, जब कोई आपको सहानुभूति दिखाने आता है, तो अच्छा नहीं लगता। खटकता है कि अच्छा, कोई बात नहीं। किस्मत की बात है! कभी मौका आएगा, तो हम भी सहानुभूति बताने आएंगे। ऐसा सदा हमारे यहां थोड़ा ही होता रहेगा! सब के घर होगा।

लेकिन जब आपको कोई सहानुभूति बताता है, तो सच में आपको अच्छा लगता है? अगर आपको अच्छा नहीं लगता, तो निश्चित ही जो बता रहा है, उसको अच्छा लग रहा होगा। उसके अच्छे लगने की वजह से ही आपको भी अच्छा नहीं लग रहा है। और आपको अच्छा न लगने की वजह से उसको भी अच्छा लग रहा है। सब जुड़ा है।

दूसरे की खुशी में आप खुश नहीं होते। दूसरे के दुख में भी आपका दुख झूठा है। तभी आपका दुख सच्चा हो सकता है दूसरे के दुख में, जब दूसरे की खुशी में आपकी खुशी सच्ची हो। और दूसरे की खुशी में आपको खुशी तभी हो सकती है, जब आप इतने मिट गए हों कि दूसरा दूसरा मालूम न पड़े। नहीं तो नहीं मालूम हो सकती। जब तक मैं हूं, तब तक दूसरे की खुशी में मुझे कैसे खुशी मालूम होगी? उसको मिल गई और मुझे नहीं मिली!

राजनीति में भी दो आदमी चुनाव लड़ते हैं, तो हारा हुआ जाता है जीते वाले को धन्यवाद देने, शुभकामना करने। लेकिन उस शुभकामना में कितना अर्थ होगा! और शुभकामना में कितनी पीड़ा होगी! लेकिन खेल के नियम हैं, वे भी पूरे करने पड़ते हैं। इससे ऊपर-ऊपर सब व्यवस्था बनी रहती है। भीतर-भीतर जहर चलता रहता है, ऊपर-ऊपर व्यवस्था बनी रहती है। ऊपर-ऊपर मुस्कुराहटें लगी रहती हैं, भीतर-भीतर कांटे सरकते रहते हैं और छुरी चलती रहती है।

दूसरा जब तक दूसरा है, तब तक आप उसके दुख में दुखी नहीं हो सकते। दूसरा जब तक दूसरा है, उसके सुख में सुखी नहीं हो सकते। और दूसरा जब

दूसरा ही नहीं होगा... । कब नहीं होगा? जब आप नहीं होंगे भीतर, वह भीतर की अस्मिता, अहंकार नहीं होगा।

लेकिन बड़ी जटिलता है। जब अहंकार ही नहीं होता, तो अपने सुख में भी सुख नहीं होता, अपने दुख में भी दुख नहीं होता। और जो व्यक्ति अहंकारशून्य हो जाता है, वह हर्ष-विषाद के परे हो जाता है--न अपना, न दूसरे का।

लेकिन यह थोड़ा सोचने जैसा है कि बुद्ध जैसा व्यक्ति भी तो दूसरों का दुख दूर करने की कोशिश करता है!

जापान में एक फकीर हुआ नान-इन। उससे किसी ने पूछा कि बुद्ध सब दुखों के पार हो गए, लेकिन क्या उन्हें दूसरे का दुख अभी भी छूता है? यह बड़ा विचारणीय है। क्योंकि वे दूसरे के दुख को दूर करने की कोशिश में तो लगे हैं।

तो नान-इन ने कहा है, दूसरे का दुख नहीं छूता। दूसरे का दुखस्वप्न दिखाई पड़ता है, नाइटमेयर।

जैसे कि मैं जाग जाऊं रात। अपना सपना समाप्त हो गया, मैं जाग गया। और आपको मैं देखता हूं पड़ोस में ही, आपके मुंह से फसूकर गिर रहा है, और छाती जोर से धड़क रही है, और आप कंप रहे हैं, और आंख से आंसू बह रहे हैं, और लगता है कि कोई आपकी छाती पर चढ़ा है, कोई आपको सता रहा है। इससे मैं दुखी नहीं होता। मैं हंस सकता हूं, क्योंकि यह सपना है। लेकिन यह सपना मुझे है। आपको असलियत है अभी। और आप पूरी तकलीफ पा रहे हैं। और मैं आपको जगाने की कोशिश भी कर सकता हूं।

इस जगाने का मतलब यह नहीं है कि मैं आपके दुख से दुखी हो रहा हूं। इस जगाने का कुल मतलब इतना ही है कि मैं जानता हूं कि तुम नाहक ही परेशान हो रहे हो, और तुम्हारी परेशानी झूठी है। लेकिन तुम्हारे लिए अभी

सच्ची है। क्योंकि तुम सो रहे हो। और तुम जाग जाओ, तो तुम्हारे लिए भी झूठी हो जाएगी।

तो बुद्ध की जो चेष्टा है, या कृष्ण की जो चेष्टा है, वह आपका दुख दूर करने की नहीं है। दुखी तो आप हैं नहीं। लेकिन दुखस्वप्न दूर करने का है।

आप सपना देख रहे हैं बड़े दुख का, और बड़े परेशान हो रहे हैं, और बड़ी करवटें ले रहे हैं। यह जो आपकी दशा है, इससे बुद्ध दुखी नहीं हो रहे हैं। इससे बुद्ध सिर्फ इतना अनुभव कर रहे हैं कि अकारण तुम दुखी हो रहे हो और इस दुख के बाहर आ सकते हो। और जिस भांति वे बाहर आ गए हैं, वह रास्ता कह रहे हैं कि इस भांति तुम भी बाहर आ जाओगे।

कृष्ण का सूत्र कहता है, तथा जो हर्ष और अमर्ष, भय और उद्वेगों से रहित है... ।

जिसे न अब कोई हर्ष होता, न जिसे अब कोई अमर्ष होता। न जिसे अब कोई चीज भयभीत करती है। मौत भी नहीं। क्योंकि मौत भी स्वप्न है। कोई कभी मरता नहीं है, प्रतीत होता है कि हम मरते हैं। जिसकी अंतर-दशा में ऐसा अनुभव होने लगे कि मौत भी घटित नहीं होती मुझे, मौत भी मेरे आस-पास आती है और गुजर जाती है, और मैं अछूता, अस्पर्शित रह जाता हूं, ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है।

महावीर ने तो अभय को पहला लक्षण कहा है, कि वही आत्मा को उपलब्ध हो सकेगा, जो अभय को उपलब्ध हो जाए।

कृष्ण कहते हैं, जिसका भय नहीं रहा कोई, वह प्रभु को प्रिय है।

लेकिन भय क्या है? एक ही भय है; सब भय की जड़ में एक ही भय है कि मैं मिट न जाऊं, कहीं मैं मिट न जाऊं; मौत कहीं मुझे समाप्त न कर दे। बस, यही भय है सारे भय के पीछे। फिर बीमारी का हो, दुख का हो, सब के गहरे में मौत है।

और जब तक कोई व्यक्ति अहंकार के पार नहीं झांकता, और इंद्रियों के पीछे नहीं देखता, तब तक मौत दिखाई पड़ती ही रहेगी। क्योंकि इंद्रियों के बाहर जो जगत है, वहां मौत है। जिस संसार को आप आंख से देख रहे हैं, वहां मौत है। वहां वास्तविकता है मौत की। वहां मौत ही ज्यादा वास्तविक है; जीवन तो वहां क्षणभंगुर है।

फूल खिला नहीं कि मुरझाना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि मरना शुरू हो जाता है। वहां सब परिवर्तित हो रहा है। परिवर्तन का अर्थ है कि प्रतिपल मौत घटित हो रही है। इंद्रियों का जहां अनुभव है, उस अनुभव के जगत में मृत्यु प्रतिपल घटित हो रही है। वहां जीवन आश्चर्य है। मृत्यु तथ्य है। वहां जीवन संदिग्ध है।

इसीलिए तो नास्तिक कहते हैं कि जीवन है ही नहीं; सभी पदार्थ है। क्योंकि मौत इतनी घटित हो रही है कि तुम कहां जीवन की बातें लगा रहे हो! यहां जीवन सिर्फ सपना है तुम्हारा। यहां सब मौत है।

एक लिहाज से उनके कहने में सचाई है। बाहर के जगत में जीवन का पता भी नहीं चलता। झलक भी मिलती है, तो वह झलक भी ऐसी लगती है कि शायद सिर्फ मौत को प्रकट करने के लिए आती है। सिर्फ मौत का पता चल जाए, इसलिए जीवन की लकीर कहीं-कहीं झलक में आती है। बाकी चारों तरफ मौत है।

पदार्थ का अर्थ है, मृत्यु। और इंद्रियों से पदार्थ के अतिरिक्त किसी चीज का पता नहीं चलता। इसलिए भय पकड़ता है। वह जो भीतर अमृत है, जो कभी नहीं मरता, वह भी भयभीत होता है मौत को चारों तरफ देखकर। चारों तरफ घटती मौत, आपको भी वहम पैदा होता है कि मैं भी मरूंगा।

जो व्यक्ति इंद्रियों के पार भीतर उतरता है और देखता है, उसे पता चलता है कि यहां जो बैठा है, वह मरता ही नहीं। वह कभी मरा नहीं, वह

मर नहीं सकता। यह जो अमृत का बोध न होना शुरू हो जाए, तो आदमी भयभीत रहेगा। फर्क को समझ लें।

जिनको आप कहते हैं निर्भय, उनसे प्रयोजन नहीं है यहां। हम दो तरह के लोगों को जानते हैं। भयभीत, भीरु, कायर; निर्भय, बहादुर। अभय तीसरी बात है। जिसको हम निर्भय कहते हैं, वह भी भयभीत तो होता है, लेकिन भागता नहीं। भयभीत तो वह भी होता है, लेकिन भागता नहीं। जिसको हम कायर कहते हैं, वह भी भयभीत होता है, लेकिन भागता है। कायर और बहादुर में इतना ही फर्क है कि कायर भी भयभीत होता है, बहादुर भी भयभीत होता है; लेकिन कायर भयभीत होकर भाग खड़ा होता है, बहादुर डटा रहता है। बाकी भयभीत दोनों होते हैं।

अभय का अर्थ है, जो भयभीत नहीं होता। उसको बहादुर नहीं कह सकते आप, क्योंकि बहादुरी का भी कोई सवाल नहीं रहा। जब भय ही नहीं, तो बहादुरी क्या? जिसको भय ही नहीं लगता, उसकी बहादुरी का क्या मूल्य है? इसलिए महावीर को बहादुर नहीं कह सकते हैं।

अभय! अभय का अर्थ है, अब न बहादुरी रही, न कायरता रही। वे दोनों खो गईं। अब इस आदमी को यह पता है कि मृत्यु घटती ही नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं, वह भक्त मुझे प्रिय है, जिसे अमृत की थोड़ी झलक मिलने लगी, जो भय के पार होने लगा।

और जो पुरुष आकांक्षा से रहित है तथा बाहर-भीतर से शुद्ध है, दक्ष है अर्थात जिस काम के लिए आया था, उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा हुआ है, वह सर्व आरंभों का त्यागी भक्त मुझे प्रिय है।

आकांक्षा से रहित है... ।

जिसने वासनाओं की व्यर्थता को समझ लिया और अब जो मांग नहीं करता कि मुझे यह चाहिए। जो मिल जाता है, कहता है, बस यही मेरी चाह है। जो नहीं मिलता, उसकी चिंता नहीं है, आकांक्षा भी नहीं है।

हमें तो जो नहीं मिलता, उसका ही ख्याल है। जो मिल जाता है, उसको हम भूल जाते हैं। आपको ख्याल है! जो मिल जाता है, उसको आप भूल जाते हैं। जो नहीं मिलता है, उसका ख्याल बना रहता है। और जब तक नहीं मिलता है, तभी तक ख्याल बना रहता है।

जिस कार को आप खरीदना चाहते हैं और जब तक नहीं खरीदा है, तभी तक वह आपके पास है। जिस दिन आप खरीद लेंगे, उसमें बैठ जाएंगे, वह आपके पास नहीं रही; भूल गई। अब दूसरी कारें आपको दिखाई पड़ने लगेंगी, जो दूसरों के पास हैं।

जिस मकान में आप हैं, वह आपको नहीं दिखाई पड़ता। वह भी दूसरों को दिखाई पड़ता है, जो फुटपाथ पर बैठे हैं। उनको दिखाई पड़ता है कि गजब का मकान है। काश! इसके भीतर होते, तो पता नहीं कैसा आनंद मिलता! और वे भी कभी नहीं देखते कि भीतर जो रह रहा है, उसकी गति भी तो देखो। उसे कोई आनंद-वानंद नहीं मिल रहा है। वह अलग परेशान है। इस मकान में वह रहना ही नहीं चाहता। वह किसी और मकान की खोज कर रहा है।

जो नहीं है, उसका हमें ख्याल है। जो है, उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं है, उससे दुख पाते हैं। जो है, उससे कोई सुख नहीं मिलता।

मैंने सुना है, एक आदमी शाक-सब्जी वाले की दुकान पर केले खरीद रहा था। और केले वाले से उसने पूछा कि कितनी कीमत है? तो उसने कहा, एक रुपया दर्जन। तो उस आदमी ने कहा, गजब की लूट कर रहे हो! सामने की दुकान पर आठ आने दर्जन मिल रहे हैं ये ही केले। तो उस दुकानदार ने कहा, बड़ी खुशी से वहीं से खरीद लें। तो उस आदमी ने कहा, लेकिन आज

उसके केले खतम हो गए हैं। तो उस दुकानदार ने कहा कि जब मेरे खतम हो जाते हैं, तब तो मैं चार आने दर्जन बेचता हूं! जब मेरे भी खतम हो जाते हैं, तो मैं भी चार आने दर्जन, मैं तो चार ही आने दर्जन पर बेच देता हूं फिर। वह लूट रहा है। आठ आने दर्जन बता रहा है; लूट रहा है।

मगर इस दुनिया में जो नहीं है, उसका भी काफी मोल-भाव चल रहा है। जो नहीं है, उस पर भी हिसाब लग रहा है। जो नहीं है, उस पर जानें लोग अटकाए हुए हैं, अपनी जानें लगाए हुए हैं। और जो है, वह विस्मृत हो जाता है।

आकांक्षा का अर्थ है, जो नहीं है, उसकी खोज। आकांक्षा-मुक्ति का अर्थ है, जो है, उसमें तृप्ति।

बाहर-भीतर से जो शुद्ध है।

शुद्ध कौन है बाहर-भीतर से? शुद्ध वही है, जो बाहर-भीतर एक-सा है। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है, वह अशुद्ध है।

शुद्ध का क्या अर्थ होता है? आप कब कहते हैं, पानी शुद्ध है? जब पानी में पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है, तब आप उसे कहते हैं, पानी शुद्ध है। कब आप कहते हैं, दूध शुद्ध है? जब दूध में सिर्फ दूध होता है और कुछ नहीं होता। शुद्ध पानी और शुद्ध दूध को भी मिलाएं, तो दोनों अशुद्ध हो जाते हैं।

यह बड़े मजे की बात है। दोनों शुद्ध थे, तो डबल शुद्ध हो जाने चाहिए। लेकिन शुद्ध पानी शुद्ध दूध में मिलाओ; दोनों अशुद्ध हो गए। न पानी शुद्ध रहा, न दूध शुद्ध रहा। बात क्या हो गई? फारेन एलिमेंट, जो विजातीय है, वह अशुद्धि पैदा करता है। जब दूध दूध था; सिर्फ दूध था एकरस; सिर्फ दूध ही दूध था, बाहर-भीतर एक-सा ही था, तब शुद्ध था। जब पानी एक-सा ही था, तब वह भी शुद्ध था। अब न पानी पानी रह गया, न दूध दूध रह गया। दो पैदा हो गए, द्वंद्व खड़ा हो गया।

जब आप भीतर-बाहर एक-से होते हैं, पानी-पानी, दूध-दूध। जो भी हैं, जैसे भी हैं--बुरे हैं, भले हैं, यह सवाल नहीं है--जैसे भी हैं, बाहर-भीतर एक-से होते हैं, तो आप शुद्ध होते हैं। और जब बाहर-भीतर आप दो तरह के होते हैं, जब आपके भीतर दो आदमी होते हैं, तब वे दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं। बाहर-भीतर की समरसता, एक-सा पन शुद्धि है।

कृष्ण कहते हैं, जो बाहर-भीतर शुद्ध है, एक जैसा है, वह मुझे प्रिय है।

क्योंकि जो बाहर-भीतर एक-सा हो जाता है, उसके भीतर द्वंद्व मिट गया। और जिसके भीतर द्वंद्व मिट गया, वह तैयार हो गया निर्द्वंद्व, अद्वंद्व को अपने भीतर पहुंचाने के लिए। क्योंकि जैसे हम हैं, उससे ही हमारा मिलन हो सकता है। अगर हम द्वंद्व में हैं, तो अद्वैत से हमारा मिलन नहीं हो सकता है। समान से मिलता है समान। इसलिए भीतर और बाहर एक-सा पन!

अगर चोर हैं, तो कोई फिक्र न करें। चोर भी परमात्मा को पा सकता है, लेकिन बाहर-भीतर एक-सा! यही कठिनाई है कि चोर बाहर-भीतर एक-सा नहीं हो सकता। नहीं तो चोरी नहीं चलेगी। अगर वह घोषणा कर दे कि मैं चोर हूं, तो चोरी तत्क्षण समाप्त हो जाएगी।

मैंने सुना है, एक सम्राट अपने कारागृह में गया। उसका जन्मदिन था, और कैदियों को कुछ मिठाई बांटने गया था। और हर कैदी ने कहा कि मैं बिल्कुल निर्दोष हूं महाराज! जालसाजी है, मुझे फंसा दिया गया। यह अपराध झूठा था, गवाह झूठे थे। यह सब अन्याय हो गया है। मुझे मुक्त करो। हर कैदी ने यही कहा।

आखिरी कैदी के पास सम्राट पहुंचा और कहा कि तेरा क्या ख्याल है? तू भी शुद्ध है? तू भी निर्दोष है क्या?

उस आदमी ने कहा कि नहीं महाराज, मैं चोर हूं, और मैंने चोरी की थी। और ठीक न्याययुक्त ढंग से मेरा मुकदमा चला। और जिन्होंने गवाही

दी, उन्होंने ठीक ही गवाही दी। और अदालत ने जो फैसला किया, वह उचित है। जितना मेरा पाप था, उसके अनुकूल मुझे दंड मिला है।

सम्राट ने अपने आदमियों को कहा कि इस शैतान को फौरन जेलखाने के बाहर करो। थ्रो दिस क्रुक आउट आफ दि जेल।

सारे कैदी चिल्लाने लगे कि यह क्या अन्याय हो रहा है? यह आदमी अपने मुंह से कह रहा है कि मैं चोर हूं और मुझे ठीक ही हुआ कि दंड मिला, और हम चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि हम निर्दोष हैं, और इस दोषी को जिसने खुद स्वीकार किया, उसको आप बाहर करते हैं!

तो उस सम्राट ने कहा, उसका कारण है। अगर इस शैतान को हम बाहर नहीं करते, तो तुम सब निर्दोष आत्माओं को यह खराब कर देगा।

जब कोई चोर भी इतना खुला हो जाता है, और सहज कह देता है भीतर-बाहर एक, तो परमात्मा आप निर्दोष आत्माओं को बचाने के लिए उसको तत्काल अलग कर देता है। नहीं तो वह आपको खराब कर दे। ऐसे शैतान को यहां नहीं बचने दिया जाता।

आप क्या हैं, यह सवाल नहीं है। अगर आप एकरस अभिव्यक्त हो जाते हैं, जैसे हैं, तो इस जगत में आपके लिए फिर कोई जगह नहीं है। फिर परमात्मा के हृदय में ही आपके लिए जगह है।

दक्ष, जिस काम के लिए आया था, उसे पूरा कर चुका... ।

वह जो मैं कह रहा था, उसी काम के लिए प्रत्येक व्यक्ति आया है कि वासनाओं में उतरकर जान ले कि व्यर्थ हैं। आकांक्षा करके देख ले कि जहर है। संसार में उतरकर देख ले कि आग है। इसी काम के लिए प्रत्येक व्यक्ति आया है। और अगर यही काम आप नहीं कर पा रहे हैं, यह अनुभव नहीं कर पा रहे हैं, तो आप दक्ष नहीं हैं। और जो भी दक्ष हो जाता है, वह परमात्मा के लिए प्रिय है।

पक्षपात से रहित, सब दुखों से छूटा हुआ, सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

आरंभ का अर्थ है, जहां से वासना शुरू होती है। अगर वासना छोड़नी है, तो बीच में नहीं छोड़ी जा सकती; अंत में नहीं छोड़ी जा सकती; प्रारंभ में ही छोड़ी जा सकती है।

आप रास्ते से गुजरे और एक मकान आपको लगा, बहुत सुंदर है। अभी आपको ख्याल भी नहीं है कि वासना का कोई जन्म हो रहा है। आप शायद सोच रहे हों कि आप बड़े सौंदर्य के पारखी हैं, बड़ा एस्थेटिक आपका बोध है, इसलिए मकान आपको सुंदर लग रहा है। लेकिन यह आरंभ है। जो मकान सुंदर लगा, उसके पीछे थोड़ी ही देर में दूसरी बात भी लगेगी कि कब मेरा हो जाए।

आरंभ हमेशा छिपा हुआ है; पता नहीं चलता। आप कहते हैं, एक स्त्री जा रही है, कितनी सुंदर है! और आप सोचते होंगे कि चूंकि आप बड़े चित्रकार हैं, बड़े कलाकार हैं, इसलिए। लेकिन जैसे ही आपने कहा, कितनी सुंदर है, थोड़ी खोज करना, भीतर छिपी है दूसरी वासना, कैसे मुझे उपलब्ध हो जाए!

यह आरंभ है। अगर इस आरंभ में ही नहीं चेत गए, तो वासना पकड़ लेगी। इसलिए सर्व आरंभ का त्यागी। जहां-जहां से उपद्रव शुरू होता हो, उस उपद्रव को ही पहचान लेने वाला, और वहीं त्याग कर देने वाला। अगर वहां त्याग नहीं हुआ, तो मध्य में त्याग नहीं हो सकता। मध्य से नहीं लौटा जा सकता।

कुछ चीजें हैं, हाथ से तीर की तरह छूट जाती हैं, फिर उनको लौटाना मुश्किल है। जब तक तीर नहीं छूटा है और प्रत्यंचा पर सवार है, तब तक चाहें तो आप लौटा ले सकते हैं।

आरंभ का अर्थ है, जहां से तीर छूटता है।

सब आरंभ का त्यागी परमात्मा को प्रिय है।

पांच मिनट रुकेंगे। कोई बीच से उठे न। कीर्तन करें और फिर जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

नौवां प्रवचन

भक्ति और स्त्रैण गुण

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।। 17।।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।। 18।।

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न सोच करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

और जो पुरुष शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिक द्वंद्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह मेरे को प्रिय है।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, परमात्मा के प्रेमी भक्त के जो बहुत-से गुण और लक्षण इस अध्याय में कहे गए हैं, वे सब के सब स्त्रैण गुण वाले हैं। इसका क्या कारण है? और समझाएं कि केवल स्त्रैण गुणों पर जोर देने में क्या जीवन का असंतुलन निहित नहीं है? जीवन के विराट संतुलन में स्त्रैण व पौरुष गुणों के सम्यक योगदान का महत्व भक्ति-योग के संदर्भ में क्या है?

भक्ति का मार्ग स्त्री का मार्ग है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष उस मार्ग पर नहीं जा सकते हैं। लेकिन पुरुष को भी जाना हो, तो उसके मन में परमात्मा के प्रति प्रेयसी वाली भावदशा चाहिए। भक्ति के मार्ग पर पुरुष भी स्त्री होकर ही प्रवेश करता है। इसे थोड़ा गहराई में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि न तो कोई स्त्री पूरी स्त्री है और न कोई पुरुष पूरा पुरुष। दोनों दोनों में मौजूद हैं। होंगे ही। उसके कारण हैं। क्योंकि चाहे आप पुरुष हों और चाहे स्त्री, आपकी बनावट स्त्री और पुरुष दोनों से हुई है। आप अकेले नहीं हो सकते हैं। न तो पुरुष के बिना आप हो सकते हैं और न स्त्री के बिना आप हो सकते हैं। दोनों का दान है आप में। आप दोनों का मिलन हैं। दोनों आपके भीतर मौजूद हैं। आपकी मां भी मौजूद है, आपके पिता भी।

आप स्त्री और पुरुष दोनों हैं एक साथ। फिर अंतर क्या है? अंतर केवल अनुपात का है। जो पुरुष है, वह साठ प्रतिशत पुरुष है, चालीस प्रतिशत स्त्री है। जो स्त्री है, वह साठ प्रतिशत स्त्री है, चालीस प्रतिशत पुरुष है। यह अनुपात का भेद होगा। लेकिन आप पुरुष हैं, तो आपके भीतर छिपी हुई स्त्री है। और आप स्त्री हैं, तो आपके भीतर छिपा हुआ पुरुष है।

इस सदी के बहुत बड़े विचारक, बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने पश्चिम में इस विचार को पहली दफा स्थापित किया। पूरब में तो यह विचार बहुत पुराना है। हमने अर्धनारीश्वर की मूर्ति बनाई, जिसमें शंकर आधे स्त्री हैं और आधे पुरुष हैं। वह हजारों साल पुरानी हमारी धारणा है। और वह धारणा सच है। लेकिन जुंग ने पहली दफा पश्चिम में इस सदी में इस विचार को बल दिया कि कोई पुरुष पुरुष नहीं, कोई स्त्री स्त्री नहीं, दोनों दोनों हैं।

इसके बहुत गहरे अर्थ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर आप पुरुष हैं, तो आपको स्त्री के प्रति जो आकर्षण मालूम होता है, वह आकर्षण आपके भीतर छिपी हुई स्त्री के लिए है। और इसलिए इस दुनिया में किसी भी स्त्री से आप तृप्त न हो पाएंगे। क्योंकि जब तक आपको अपने भीतर की स्त्री से मिलना न हो जाए, तब तक कोई तृप्ति उपलब्ध नहीं हो सकती।

और स्त्री हैं अगर आप, तो पुरुष का जो आकर्षण है, और पुरुष की जो तलाश है, वह कोई भी पुरुष आपको संतुष्ट न कर पाएगा। सभी पुरुष असफल हो जाएंगे। क्योंकि जब तक आपके भीतर छिपे पुरुष से आपका मिलन न हो जाए, तब तक वह खोज जारी रहेगी।

असल में हर आदमी अपने भीतर छिपी हुई स्त्री या पुरुष को बाहर खोज रहा है। कभी-कभी किसी-किसी में उसकी झलक मिलती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं। प्रेम का एक ही अर्थ है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है, उसकी झलक अगर आपको किसी स्त्री में मिल जाती है, तो आप प्रेम में पड़ जाते हैं।

इसलिए जब आप प्रेम में पड़ते हैं, तो न तो कोई तर्क होता है, न कोई कारण होता है। आप कहते हैं, बस, मैं प्रेम में पड़ गया। आप कहते हैं, मेरे वश में नहीं है यह बात। आपके भीतर की स्त्री से जब भी बाहर की किसी स्त्री का कोई भी तालमेल हो जाता है।

लेकिन यह तालमेल ज्यादा देर नहीं चल सकता। क्योंकि यह तालमेल पूरा कभी भी नहीं हो सकता। आपके भीतर जैसी स्त्री पृथ्वी पर कहीं है ही नहीं। वह आपके भीतर ही छिपी है। आपके भीतर जैसा पुरुष पृथ्वी पर कहीं है नहीं। किसी में भनक मिल सकती है थोड़ी। लेकिन जैसे ही आप निकट आएंगे, भनक टूटने लगेगी। जितना निकट आएंगे, उतना ही डिसइलूजनमेंट, उतना ही भ्रम टूट जाएगा।

इसलिए धन्यभागी वे प्रेमी हैं, जो अपनी प्रेयसियों से कभी नहीं मिल पाते हैं, क्योंकि उनका भ्रम बना रहता है। अभागे वे प्रेमी हैं, जिनको उनकी प्रेयसियां मिल जाती हैं, क्योंकि भ्रम टूट जाता है। मिली हुई प्रेयसी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाती। मिला हुआ प्रेमी ज्यादा देर तक प्रिय नहीं रह जाता। क्योंकि भ्रम टूटेगा ही। तालमेल थोड़ा-बहुत हो सकता है। वह भी आभास है।

जुंग कहता है कि जब तक भीतर आपकी स्त्री और आपके पुरुष का अंतर-मिलन न हो जाए, तब तक आप अतृप्त रहेंगे और तब तक कामवासना आपको पकड़े रहेगी।

इसको हमने युगनद्ध कहा है। तंत्र की भाषा में भीतर जब स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है, उसे हमने युगनद्ध कहा है। वह जो मिलन है, उस मिलन के साथ ही आप अद्वैत हो जाते हैं; एक हो जाते हैं; दो नहीं रह जाते। और वह जो एक की घटना भीतर घटती है, वही परमात्मा का मिलन है।

अभी आप दो हैं। इसका मनोवैज्ञानिक यह पहलू भी समझ लेना जरूरी है कि जो आप ऊपर होते हैं, उससे विपरीत आप भीतर होते हैं। ऊपर पुरुष, तो भीतर स्त्री। ऊपर स्त्री, तो भीतर पुरुष।

एक और मजेदार घटना मनोवैज्ञानिकों के ख्याल में आती है और वह यह कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, आप में विपरीत लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे स्त्रियां पचास के करीब पहुंच-पहुंचकर पुरुष जैसी होने लगती हैं। अनेक स्त्रियों को मूंछ के बाल, दाढ़ी के बाल उगने शुरू हो जाते हैं। उनकी आवाज पुरुषों जैसी भर्राई हुई हो जाती है। उनके गुण पुरुषों जैसे हो जाते हैं। उनका शरीर भी धीरे-धीरे पुरुषों के करीब पहुंचने लगता है।

पचास के बाद पुरुषों में स्त्रैणता आनी शुरू हो जाती है। उनमें गुण स्त्रियों जैसे होने शुरू हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इसका अर्थ यह है कि जो आपके ऊपर-ऊपर था, जिंदगीभर आपने उसका उपयोग करके चुका लिया। और जो भीतर दबा था, वह बिना चुका रह गया। इसलिए आप ऊपर से कमजोर हो गए हैं और भीतर की बात प्रकट होनी शुरू हो गई है।

एक स्त्री पचास साल तक स्त्री के तल पर चुक जाती है, समाप्त हो जाती है। उसने उपयोग कर लिया स्त्री-ऊर्जा का और भीतर का पुरुष बिना उपयोग किया हुआ पड़ा है। और जब ऊपर की स्त्री कमजोर हो जाती है, तो भीतर का पुरुष धक्के मारने लगता है और प्रकट होने लगता है।

पुरुष चुक जाता है पचास साल में अपने पौरुष से। और भीतर की स्त्री अनचुकी, ताजी बनी रहती है। वह प्रकट होनी शुरू हो जाती है।

यह जो पचास साल की उम्र के बाद अंतर पड़ता है, यह बड़ा जटिल है। और इसके कारण हजारों कठिनाइयां पैदा होती हैं। क्योंकि जिंदगीभर आप पुरुष रहे, तो आपने पुरुष के गुणों की तरह अपने को सजाया, संवारा, सुशिक्षित किया। और अचानक आपके भीतर फर्क होता है, नई दुनिया शुरू होती है। उसकी कोई ट्रेनिंग नहीं, उसका कोई प्रशिक्षण नहीं।

जुंग ने सलाह दी है कि पैंतालीस साल के स्त्री-पुरुषों को हमें फिर से स्कूल भेजना चाहिए, क्योंकि उनके भीतर एक क्रांतिकारी फर्क हो रहा है, जिसकी उनके पास कोई तैयारी नहीं है। और जिसकी उनके पास तैयारी है, वह व्यर्थ हो रहा है और एक नई घटना घट रही है। और जब तक हम इस बात को पूरा न कर पाएं, जुंग कहता है, लोग ज्यादा मात्रा में विक्षिप्त होते रहेंगे।

पैंतालीस साल की उम्र खतरनाक उम्र है। उसके बाद सारी मानसिक बीमारियां शुरू होती हैं। लेकिन पैंतालीस साल की उम्र ही धार्मिक होने की उम्र भी है।

और जुंग ने कहा है कि मेरे पास जितने मरीज आते हैं मन के, उनमें अधिक की उम्र पैंतालीस के ऊपर है या पैंतालीस के करीब है। और उनमें अधिक की बीमारी यही है कि उनके जीवन में धर्म नहीं है। अगर धर्म होता, तो वे पागल न होते।

यह जो कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, भक्ति का जो मार्ग, इसमें वे स्त्रैण गुणों की चर्चा कर रहे हैं। और अर्जुन जैसा पुरुष खोजना मुश्किल है। यह विरोधाभासी लगता है। अर्जुन है क्षत्रिय; पुरुषों में पुरुष। हजारों-हजारों साल में वैसा पुरुष होता है। उससे यह स्त्रैण गुणों की बात! निश्चित ही प्रश्न उठाती है।

लेकिन अगर मेरी बात आपके ख्याल में आ गई, तो उसका मतलब यह है कि अर्जुन का पुरुष तो चुक ही जाने को है। और जीवन के अंतिम हिस्से में जब अर्जुन का पुरुष चुक जाएगा, तब उसकी स्त्री प्रकट होनी शुरू होगी। वह जो विपरीत दबा पड़ा है, वह बाहर आएगा। और उस विपरीत से ही धर्म का मार्ग बनेगा। एक।

दूसरी बात यह भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि स्त्रैण होने का आध्यात्मिक अर्थ होता है, ग्राहक होना, रिसेप्टिव होना। पुरुष है आक्रामक, एग्रेसिव, हमलावर। बायोलाजिकली भी, जैविक व्यवस्था में भी पुरुष हमलावर है। स्त्री ग्राहक है। स्त्री गर्भ है। वह स्वीकार करती है, समा लेती है, आत्मसात कर लेती है। हमला नहीं करती है।

भक्ति का मार्ग ग्राहक, स्वीकार करने का मार्ग है। वह स्त्रैण है। वहां परमात्मा को अपने भीतर स्वीकार करना है। श्रद्धापूर्वक, नत होकर, सिर को झुकाकर उसे अपने भीतर झेल लेना है। भगवान के लिए गर्भ बन जाता है भक्त। वह पुरुष है या स्त्री, इससे कोई सवाल नहीं। लेकिन जो गर्भ नहीं बन सकता भगवान के लिए, वह भक्त नहीं बन सकता।

आपको शायद सुनकर हैरानी हो या कभी आपको पता भी हो, एक ऐसा भी भक्तों का संप्रदाय हुआ है, जिनमें पुरुष भी स्त्रियों के कपड़े ही पहनते थे। अब भी बंगाल में उसकी थोड़ी-सी धारा शेष है। वे स्त्री जैसे ही रहते हैं भक्त। और परमात्मा को अपना पति स्वीकार करते हैं। रात सोते भी हैं, तो परमात्मा की मूर्ति साथ लेकर सोते हैं, जैसे कोई प्रेयसी अपने प्रेमी को साथ लेकर सो रही हो।

यह बात हमें बड़ी अजीब-सी लगेगी, क्योंकि हमें इसके भीतर के रहस्य का कोई पता नहीं है। और जिस बात के भीतर के रहस्य का हमें कोई पता न हो, बड़ी अड़चन होती है।

राहुल सांकृत्यायन ने, एक बड़े पंडित ने बड़ा विरोध किया है इस बात का, कि यह क्या पागलपन है! ये पुरुष स्त्रियां बन जाएं, यह कैसी बेहूदगी है! यह कैसा नाटक है! और कोई भी ऊपर से देखेगा, तो ऐसा ही लगेगा।

लेकिन राहुल सांकृत्यायन को कुछ भी पता नहीं है कि भीतर, भक्त के भीतर क्या घटित हो रहा है। यह जो उसका स्त्रैण रूप है ऊपर से, यह तो उसके भीतर की घटना की अभिव्यक्ति मात्र है। वह भीतर से भी स्त्रैण हो रहा है। और आप जानकर हैरान होंगे, कभी-कभी भक्त इस जगह पहुंच गए हैं, जब कि उनकी भाव की स्त्रैणता इतनी गहरी हो गई कि उनके शरीर के अंग तक स्त्रैण हो गए।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसी घटना घटी। वह अनूठी है। क्योंकि रामकृष्ण एक बड़ा मूल्यवान प्रयोग किए। वह प्रयोग था कि उन्होंने एक मार्ग से तो परमात्मा को जाना। जानने के बाद दूसरे मार्गों से चलकर भी जानने की कोशिश की, कि दूसरे मार्गों से भी वहीं पहुंचा जा सकता है या नहीं! तो उन्होंने आठ-दस मार्गों का प्रयोग किया। उसमें एक यह भक्ति-मार्गियों का पंथ भी था, जिसमें स्त्री होकर ही साधना करनी है।

तो रामकृष्ण छः महीने तक स्त्री के कपड़े ही पहनते थे। स्त्री जैसे ही उठते-बैठते थे। स्त्रैण भाव से ही जीते थे। और एक ही धारणा मन में थी कि मैं प्रेयसी हूं और परमात्मा प्रेमी है।

बड़ी हैरानी की घटना घटी, जो हजारों लोगों ने देखी है। वह यह कि रामकृष्ण की चाल थोड़े दिन में बदल गई। वे स्त्रियों जैसे चलने लगे।

बहुत कठिन है चलना स्त्रियों जैसा। क्योंकि स्त्री के शरीर का ढांचा अलग है, पुरुष के शरीर का ढांचा अलग है। चूंकि स्त्री के शरीर में गर्भ है, इसलिए बड़ी खाली जगह है। उस खाली जगह की वजह से उसके पैर और ढंग से घूमते हैं। पुरुष के पैर उस ढंग से नहीं घूम सकते।

लेकिन रामकृष्ण ऐसे चलने लगे, जैसे स्त्रियां चलती हैं। यह भी कुछ बड़ी बात न थी। इससे भी बड़ी घटना घटी कि दो महीने के बाद रामकृष्ण के स्तन बढ़ने लगे। यह भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी, क्योंकि एक उम्र में पुरुषों के थोड़े स्तन तो बढ़ ही जाते हैं। जो सबसे बड़ी चमत्कारी घटना घटी, वह यह कि चार महीने के बाद रामकृष्ण को मासिक-धर्म शुरू हो गया। यह मनुष्य जाति के इतिहास में घटी थोड़ी-सी मूल्यवान घटनाओं में से एक है, कि भाव का इतना परिणाम शरीर पर हो सकता है!

इतने अंतःकरणपूर्वक उन्होंने मान लिया कि मैं तुम्हारी प्रेयसी हूं और तुम मेरे प्रेमी हो, यह भावना इतनी गहरी हो गई कि शरीर के रोएं-रोएं ने इसको स्वीकार कर लिया और शरीर स्त्रैण हो गया। साधना के छः महीने के बाद भी रामकृष्ण को छः महीने लग गए वापस ठीक से पुरुष होने में। ये सारे लक्षण विदा होने में फिर छः महीने और लगे।

भक्त का अर्थ है, प्रेयसी का भाव। इसलिए कृष्ण जो भी गुण, लक्षण बता रहे हैं, वे सब स्त्रैण हैं।

क्या आपने कभी ख्याल किया कि दुनिया के सभी धर्मों ने, चाहे वे भक्त-संप्रदाय हों या न हों, जिन गुणों को मूल्य दिया है, वे स्त्रैण हैं। चाहे महावीर

उसको अहिंसा कहते हों। चाहे बुद्ध उसको करुणा कहते हों। चाहे जीसस उसको प्रेम कहते हों। ये सब स्त्रैण गुण हैं। स्त्री अगर पूरी तरह प्रकट हो, तो ये गुण उसमें होंगे।

इसलिए इस विचार के कारण जर्मनी के गहन विचारक फ्रेडरिक नीत्शे ने तो बुद्ध, क्राइस्ट, इन सबको स्त्रैण कहा है। और कहा है कि इन्हीं लोगों ने सारी दुनिया को बर्बाद कर दिया। क्योंकि ये जो बातें सिखा रहे हैं, वे लोगों को स्त्रैण बनाने वाली हैं।

नीत्शे ने तो विरोध में यह बात कही है कि मनुष्य जाति को स्त्रैण बना दिया, बुद्ध, क्राइस्ट, इस तरह के लोगों ने। क्योंकि जो शिक्षाएं दीं, उसमें पुरुष के गुणों का कोई मूल्य नहीं है। पौरुष का, तेज का, बल का, आक्रमण का, हिंसा का, संघर्ष का, युद्ध का कोई भाव नहीं है। तो इन्होंने स्त्रैण बना दिया जगत को।

उसकी बात में थोड़ी दूर तक सच्चाई है। लेकिन वे लोग सच में ही स्त्रैण बनाने में सफल नहीं हो पाए। नहीं तो पृथ्वी स्वर्ग हो जाती है।

जीवन में जो भी मूल्यवान है, वह कहीं न कहीं मां से जुड़ा हुआ है। जीवन में जो भी मूल्यवान है, कीमती है, कोमल है, फूल की तरह है, वह कहीं न कहीं स्त्री से संबंधित है।

और पुरुष तो एक बेचैनी है। स्त्री एक समता है। जरूरी नहीं; कि स्त्रियां ऐसा न सोच लें कि वे ऐसी हैं। यह तो स्त्री के परम अर्थ की बात है। परम लक्ष्य पर स्त्री अगर हो, तो ऐसा होगा। अभी तो अधिक स्त्रियां भी पुरुष जैसी हैं और वे पूरी कोशिश कर रही हैं कि पुरुष जैसी कैसे हो जाएं। पश्चिम में वे बड़ी लड़ाई लड़ रही हैं कि पुरुष के जैसी कैसे हो जाएं। कपड़े भी पुरुष जैसे पहनने हैं; काम भी पुरुष जैसा करना है; अधिकार भी पुरुष जैसे चाहिए। सब जो पुरुष कर रहे हैं!

अगर पुरुष सिगरेट पी रहे हैं, तो स्त्रियां भी उसी तरह सिगरेट पीना चाहती हैं। क्योंकि यह असमानता खलती है, अखरती है।

तो जो पुरुष कर रहा है, अगर वह गलत भी कर रहा है, तो स्त्री को भी वह करना ही चाहिए! सारी दुनिया में एक दौड़ है कि स्त्रियां भी पुरुष जैसी कैसे हो जाएं।

इसलिए स्त्रियां यह न सोचें कि जो मैं कह रहा हूं, वह उनके बाबत लागू है। वे सिर्फ यह सोचें कि अगर उनकी स्त्रैणता पूरे रूप में प्रकट हो, तो जो मैं कह रहा हूं, वह सही होगा।

स्त्री अगर पूरे रूप में प्रकट हो... । और स्त्री पूरे रूप में प्रकट हो सकती है। और जब पुरुष भी पूरे रूप में प्रकट होता है, तो स्त्री जैसा हो जाता है। इसके कारण बहुत हैं।

पहले तो बायोलाजिकली समझने की कोशिश करें।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री में संतुलन है, पुरुष में संतुलन नहीं है, शरीर के तल पर भी। जिन वीर्यकणों से मिलकर जीवन का जन्म होता है, रज और वीर्य के मिलन से जो व्यक्तित्व का निर्माण होता है, उसमें एक बात समझने जैसी है। पुरुष के वीर्यकण में दो तरह के वीर्यकण होते हैं। एक वीर्यकण होता है, जिसमें चौबीस सेल होते हैं, चौबीस कोष्ठ होते हैं। और एक वीर्यकण होता है, जिसमें तेईस कोष्ठ होते हैं। स्त्री के जो रजकण होते हैं, उन सबमें चौबीस कोष्ठ होते हैं। उनमें तेईस कोष्ठ वाला कोई रजकण नहीं होता। उनमें सबमें चौबीस कोष्ठ वाले रजकण होते हैं।

जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के चौबीस कोष्ठ वाले वीर्यकण से मिलता है, तो स्त्री का जन्म होता है, चौबीस-चौबीस। और जब स्त्री का चौबीस कोष्ठ वाला रजकण, पुरुष के तेईस कोष्ठ वाले वीर्यकण से मिलता है, तब पुरुष का जन्म होता है, चौबीस-तेईस।

जीवशास्त्री कहते हैं कि स्त्री संतुलित है, उसके दोनों पलड़े बराबर हैं, चौबीस-चौबीस। और पुरुष में एक बेचैनी है, उसका एक पलड़ा थोड़ा नीचे झुका है, एक थोड़ा ऊपर उठा है।

इसलिए अगर आप, छोटी बच्ची भी हो और छोटा लड़का हो, दोनों को देखें, तो लड़के में आपको बेचैनी दिखाई पड़ेगी। लड़की शांत दिखाई पड़ेगी। लड़का पैदा होते से ही थोड़ा उपद्रव शुरू करेगा। उपद्रव न करे, तो लोग कहेंगे कि लड़का थोड़ा स्त्रैण है, लड़कियों जैसा है। वह जो बेचैनी है, वह जो असंतुलन है, वह काम शुरू कर देगा।

इस बेचैनी की तकलीफें हैं, इसके फायदे भी हैं। समता का लाभ भी है, नुकसान भी है। दुनिया में कोई लाभ नहीं होता, जिसका नुकसान न हो। कोई नुकसान नहीं होता, जिसका लाभ न हो।

पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने इतने बड़े साम्राज्य बनाए। पुरुष में जो बेचैनी है, उसी के कारण उसने विज्ञान निर्मित किया, इतनी खोजें कीं। पुरुष में बेचैनी है, इसलिए वह एवरेस्ट पर चढ़ा और चांद पर पहुंचा।

स्त्री में वह बेचैनी नहीं है, इसलिए स्त्रियों ने कोई खोज नहीं की, कोई आविष्कार नहीं किया। वह तृप्त है। वह अपने होने से पर्याप्त है। उसको कहीं कुछ जाना नहीं है। उसकी समझ के बाहर है कि एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है!

हिलेरी से, जो आदमी एवरेस्ट पर पहली दफा चढ़ा, उससे उसकी पत्नी ने पूछा कि आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है? बिल्कुल समझ के बाहर है बात कि नाहक, सुख-शांति से घर में रह रहे हो, परेशान हो जाओ; मौत का खतरा लो। जरूरी नहीं कि पहुंचो। अनेक लोग मर चुके हैं। और पहुंचकर भी मिलेगा क्या? अगर पहुंच भी गए, तो फायदा क्या है? आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने की जरूरत क्या है?

तो पता है, हिलेरी ने क्या कहा? हिलेरी ने कहा, जब तक एवरेस्ट है, तब तक आदमी बेचैन रहेगा; चढ़ना ही पड़ेगा। यह कोई कारण नहीं है और। लेकिन एवरेस्ट का होना, कि अनचढ़ा एक पर्वत है, आदमी के लिए चुनौती है। क्योंकि एवरेस्ट है, इसलिए चढ़ना पड़ेगा। कोई और कारण नहीं है।

पुरुष में एक बेचैनी है। इसलिए पुरुष युद्ध के लिए आतुर है; संघर्ष के लिए आतुर है। नए संघर्ष खोजता है; नए उपद्रव मोल लेता है। नई चुनौतियां स्वीकार करता है।

चांद पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। अभी तो कोई भी जरूरत नहीं थी। लेकिन चांद है, तो रुकना बहुत मुश्किल है। जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा चांद की यात्रा का ख्याल दिया, उसने लिखा है कि अब हमारे पास चांद तक पहुंचने के साधन हैं, तो हमें पहुंचना ही है। अब कोई और वजह की जरूरत नहीं है। अब हम पहुंच सकते हैं, तो हम पहुंचेंगे।

तो फायदा है। फायदा है, संसार के तल पर पुरुष के गुणों का फायदा है। इसलिए स्त्रियां पिछड़ जाती हैं। संसार की दौड़ में वे कहीं भी टिक नहीं पातीं। लेकिन नुकसान भी उसका है! तो बेचैनी, अशांति, विक्षिप्तता, पागलपन, वह सब पुरुष का हिस्सा है। स्त्रियां शांत हैं।

इसे आप ऐसा समझें कि अगर बाहर के जगत में खोज करनी हो, तो पुरुष के गुण उपयोगी हैं। पुरुष बहिर्गामी है। अगर भीतर के जगत में जाना हो, तो स्त्री के गुण उपयोगी हैं। स्त्री अंतर्गामी है।

स्त्री और पुरुष जब प्रेम भी करते हैं, तो पुरुष आंख खोलकर प्रेम करना पसंद करता है, स्त्री आंख बंद करके। पुरुष चाहता है कि प्रकाश जला रहे, जब वह प्रेम करे। स्त्रियां चाहती हैं, बिल्कुल अंधेरा हो। पुरुष चाहता है कि वह देखे भी कि स्त्री के चेहरे पर क्या भाव आ रहे हैं, जब वह प्रेम कर रहा है। स्त्री बिल्कुल आंख बंद कर लेती है। वह पुरुष को भूल जाना चाहती है।

वह अपने भीतर डूबना चाहती है। प्रेम के गहरे क्षण में भी वह पुरुष को भूलकर अपने भीतर डूबना चाहती है। उसका जो रस है, वह भीतरी है।

पुरुष देखना चाहता है कि स्त्री प्रसन्न हो रही है, आनंदित हो रही है, तो वह प्रसन्न होता है। वह देखता है कि स्त्री दुखी हो रही है, परेशान हो रही है या उसके मन में कोई भाव नहीं उठ रहा है, तो उसका सारा सुख खो जाता है। पुरुष बहिर्दृष्टि है।

इसका मतलब यह हुआ कि अगर आपको भीतर की तरफ जाना है, तो आपके भीतर छिपी जो स्त्री है, उसके गुणों को आपको विकसित करना होगा। और अगर स्त्रियों को भी बाहर की तरफ जाना है, तो उनके भीतर छिपा हुआ जो पुरुष है, उनको उसे विकसित करना होगा।

बहिर्यात्रा पुरुष के सहारे हो सकती है, अंतर्यात्रा स्त्री के सहारे। इसलिए कृष्ण ने स्त्रैण गुणों को इतनी गहराई से कहा है।

एक मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा कि क्रोध को पूरा जानने के लिए क्रोध का पूरा अनुभव जरूरी है। तो कामवासना को पूरा कैसे जाना जाए? क्योंकि अनुभवियों ने कहा है कि कामवासना की तृप्ति कभी भी नहीं हो पाती; जितनी भोगेंगे, उतनी ही बढ़ती जाएगी। तो कामवासना को कैसे पार किया जाए?

पहले तो अनुभवियों से थोड़ा बचना, खुद के अनुभव का भरोसा करना।

इसका यह मतलब नहीं है कि अनुभवियों ने जो कहा है, वह गलत कहा है। इसका कुल मतलब इतना है कि दूसरे के अनुभव को मानकर चलने से आप अनुभव से वंचित रह जाएंगे। और अगर अनुभव से वंचित रह गए, तो अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपको कभी सत्य न हो पाएगा।

अनुभवियों ने जो कहा है, वह अनुभव से कहा है। दूसरे अनुभवियों को सुनकर नहीं कहा है। यह फर्क ख्याल में रखना। उन्होंने यह नहीं कहा है कि अनुभवियों ने कहा है, इसलिए हम कहते हैं। उन्होंने कहा है कि हम अपने अनुभव से कहते हैं। तुम भी अगर सच में ही मुक्त होना चाहो, तो अपने अनुभव से ही।

और यह बात गलत है कि अनुभव से कामवासना बढ़ती है। कोई वासना दुनिया में अनुभव से नहीं बढ़ती। और अगर अनुभव से कामवासना बढ़ती है, तो फिर इस दुनिया में कोई भी आदमी उससे मुक्त नहीं हो सकता।

अनुभव से सभी चीजें क्षीण होती हैं। अनुभव से सभी चीजों में ऊब आ जाती है। एक ही भोजन कितना ही स्वादिष्ट हो, रोज-रोज करें, कितने दिन कर पाएंगे? थोड़े दिन में स्वाद खो जाएगा। फिर थोड़े दिन बाद बेस्वाद हो जाएगा। फिर कुछ दिन बाद आप भाग जाना चाहेंगे कि आत्महत्या कर लूंगा, अगर यही भोजन वापस मिला तो।

अनुभव से ऊब आती है। चित्त रस खो देता है। और अगर अनुभव से ऊब नहीं आती, तो समझना कि अनुभव आप ठीक से नहीं ले रहे हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना।

और अनुभव आप ठीक से ले नहीं सकते, क्योंकि अनुभवियों ने जो कहा है, वह आपकी परेशानी किए दे रहा है। अनुभव के पहले आप छूटना चाहते हैं।

यह मित्र पूछते हैं कि कामवासना से कैसे पार जाया जाए?

पहले कामवासना में तो चले जाओ, तो पार भी चले जाना। पार जाने की जल्दी इतनी है कि उसमें भीतर जा ही नहीं पाते, उतर ही नहीं पाते।

एक काम का गहन अनुभव भी पार ले जा सकता है। लेकिन वह कभी गहन हो नहीं पाता। यह पीछे से जान अटकी ही रहती है कि पार कब, कैसे

हो जाएं। न पार हो पाते हैं, न अनुभव हो पाता है। और बीच में अटके रह जाते हैं।

जब मैं आपसे कहता हूं कि अनुभव ही मुक्ति है, तो उसका अर्थ ठीक से समझ लें। क्योंकि जो चीज व्यर्थ है, वह अनुभव से दिखाई पड़ेगी कि व्यर्थ है। और किसी तरह दिखाई नहीं पड़ सकती।

जब तक आपको अनुभव नहीं है, आप भला सोचें कि व्यर्थ है, लेकिन सोचने से क्या होगा! रस तो कायम है भीतर। और कितने ही अनुभवी कहते हों कि व्यर्थ है, उनके कहने से क्या व्यर्थ हो जाएगा! और अगर उनके कहने से होता होता, तो अब तक सारी दुनिया की कामवासना तिरोहित हो गई होती।

बाप कितना नहीं समझाता है बेटे को। बेटा सुनता है? लेकिन बाप कहे चला जाता है। और बाप इसकी बिल्कुल फिक्र नहीं करता कि वह भी बेटा था, और उसके बाप ने भी यही कहा था, और उसने भी नहीं सुना था। अगर वह ही सुन लेता, तो यह बेटा कहां से आता! और वह घबड़ाए न। यह बेटा भी बड़ा होकर अपने बेटे को यही शिक्षा देगा। इसमें कोई अंतर पड़ने वाला नहीं है।

किसी का अनुभव काम नहीं पड़ता। बाप का अनुभव आपके काम नहीं पड़ सकता है। आपका अनुभव ही काम पड़ेगा।

बाप गलत कहता है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। बाप अपने अनुभव से कह रहा है कि यह सब पागलपन से वह गुजरा है। लेकिन पागलपन से गुजरकर कह रहा है वह। और बिना गुजरे वह भी नहीं कह सकता था। बिना गुजरे कोई भी नहीं कह सकता है। और बिना गुजरे कोई किसी की बात भी नहीं मान सकता है। अनुभव के अतिरिक्त इस जगत में कोई अनुभूति नहीं है। अनुभव से ही गुजरना होगा।

फिर घबड़ाहट भी क्या है इतनी? इतना पार होने की जल्दी भी क्या है? अगर परमात्मा एक अवसर देता है, उसका उपयोग क्यों न किया जाए? और उस उपयोग को पूरा क्यों न समझा जाए? जरूर निहित कोई प्रयोजन होगा। परमात्मा आपसे ज्यादा समझदार है। और अगर उसने आपमें कामवासना रची है, तो उसका कोई निहित प्रयोजन होगा।

महात्मा कितना ही कहते हों कि कामवासना बुरी है, लेकिन परमात्मा नहीं कहता कि कामवासना बुरी है। नहीं तो रचता नहीं। नहीं तो उसके होने की कोई जरूरत न थी। परमात्मा तो रचे जाता है, महात्माओं की वह सुनता नहीं!

जरूर कोई निहित प्रयोजन है। और वह निहित प्रयोजन यह है कि ये महात्मा भी पैदा नहीं हो सकते थे, अगर कामवासना न होती। ये महात्मा भी उसी अनुभव से गुजरकर पार गए हैं। इन्होंने भी उसमें पड़कर जाना है कि व्यर्थ है। वह व्यर्थता का बोध बड़ा कीमती है। वह होगा ही तब, जब आपको अनुभव में आ जाए।

तो जल्दी मत करना। उधार अनुभव का भरोसा मत करना। इसका यह मतलब नहीं है कि आप अनुभवियों को कहो कि तुम गलत हो। आपको इतना ही कहना चाहिए कि हमें अभी पता नहीं है। और हम उतरना चाहते हैं, और हम जानना चाहते हैं कि क्या है यह कामवासना। और हम इसे पूरा जान लेंगे। तो अगर यह गलत होगी, तो वह जानना मुक्ति ले आएगा। और अगर यह सही होगी, तो मुक्त होने की कोई जरूरत नहीं है।

एक बात निश्चित है कि अब तक जिन्होंने भी ठीक से जान लिया, वे मुक्त हो गए हैं। और दूसरी बात भी निश्चित है कि जिन्होंने नहीं जाना, वे कितना ही सिर पीटें और अनुभवियों की बातें मानते रहें, वे कभी मुक्त नहीं हुए हैं, न हो सकते हैं।

इतनी घबड़ाहट क्या है? इतना डर क्या है? भीतर जो छिपा है, उसे पहचानना होगा। उपयोगी है कि उससे आप गुजरें।

मैंने सुना है कि एक सम्राट ने अपने बेटे को एक फकीर के पास शिक्षा के लिए भेजा। हर माह खबर आती रही कि शिक्षा ठीक चल रही है। साल पूरा हो गया। और वह दिन भी आ गया, जिस दिन फकीर युवक को लेकर राजदरबार आएगा। और सम्राट बड़ा प्रसन्न था। उसने अपने सारे दरबारियों को बुलाया था कि आज मेरा बेटा उस महान फकीर के पास शिक्षित होकर वापस लौट रहा है।

लेकिन जब फकीर लड़के को लेकर दरवाजे पर राजमहल के पहुंचा, तो राजा की छाती बैठ गई। देखा कि फकीर ने अपना बोरिया-बिस्तर सब राजकुमार के सिर पर रखा हुआ है। और कपड़े उसे ऐसे पहना दिए हैं, जैसे कि कोई कुली कपड़े पहने हो।

सम्राट तो बहुत क्रोध से भर गया। और उसने कहा कि मैंने शिक्षा देने भेजा था, मेरे लड़के का इस तरह अपमान करने नहीं! फकीर ने कहा कि अभी आखिरी सबक बाकी है। अभी बीच में कुछ मत बोलो। और अभी साल पूरा नहीं हुआ है, सूरज ढलने को शेष है। अभी लड़का मेरे जिम्मे है। तब उस फकीर ने अपने सामान में से एक कोड़ा निकाला। सब सामान लड़के से नीचे रखवाकर उसे सात कोड़े लगाए दरबार में।

राजा तो चीख पड़ा, लेकिन अपने वचन से बंधा था कि एक साल के लिए दिया था। और सूरज अभी नहीं डूबा था। लेकिन उसने कहा कि कोई हर्ज नहीं, सूरज डूबेगा; और न तुझे फांसी लगवा दी--उस फकीर से कहा--सूरज डूबेगा; तू घबड़ा मत। कोई फिक्र नहीं; तू कर ले। एक साल का वायदा है।

लेकिन और दरबारियों में बूढ़े समझदार लोग भी थे। उन्होंने राजा से कहा कि थोड़ा पूछो भी तो उससे कि वह क्या कर रहा है! आखिर उसका प्रयोजन क्या है?

तो किसी ने पूछा, तो फकीर ने कहा, मेरा प्रयोजन है। यह कल राजा बनेगा। और अनेक लोगों को कोड़े लगवाएगा। इसे कोड़े का अनुभव होना चाहिए। इसे पता होना चाहिए कि कोड़े का मतलब क्या है। कल यह राजा बनेगा और न मालूम कितने लोग इसका सामान ढोने में जिंदगी व्यतीत कर देंगे। इसको पता होना चाहिए कि जो आदमी सड़क पर सामान ढोकर आ रहा है, उसके भीतर की गति कैसी है। इसे राजा होने के पहले उन सब अनुभवों से गुजर जाना चाहिए, जो कि राजा होने के बाद इसको कभी न मिल सकेंगे। लेकिन अगर यह उनसे नहीं गुजरता है, तो यह हमेशा अप्रौढ़ रह जाएगा। तो मैंने सालभर में इसकी एक ही शिक्षा पूरी की है पूरे साल में, कि जो इसको राजा होने के बाद कभी भी न होगा, उस सब से मैंने इसे गुजार दिया है।

यह संसार एक विद्यापीठ है। और परमात्मा आपको बहुत-से अनुभव से गुजार रहा है। बहुत तरह की आगों में जला रहा है। वह जरूरी है। उससे निखरकर आप असली कुंदन, असली सोना बनेंगे। सब कचरा जल जाएगा।

लेकिन आपकी हालत ऐसी है कि कचरे से भरा सोना हैं आप, और आग से गुजरकर जो उस तरफ चले गए हैं अनुभवी, उनकी बातें सुन रहे हैं। और वे कहते हैं कि यह आग है, इससे बचना। लेकिन इसी आग से गुजरकर वे शुद्ध हुए हैं। और अगर उनकी बात मानकर तुम इसी तरफ रुक गए, और तुमने कहा, यह आग है, इससे हम बचेंगे, तो ध्यान रखना कि वह कचरा भी बच जाएगा जो आग में जलता है।

आग से गुजरना। उन अनुभवियों से पूछना कि तुम यह आग से गुजरकर कह रहे हो कि बिना गुजरे! और अगर यह तुम गुजरकर कह रहे हो और मैंने

बिना गुजरे यह बात मान ली, तो मैं डूब गया तुम्हारे साथ। उचित है; तुम्हारी बात मैं ख्याल रखूंगा। लेकिन मुझे भी अनुभव से गुजर जाने दो। मेरे भी कचरे को जल जाने दो।

कामवासना आग है, लेकिन उसमें बहुत-सा कचरा जल जाता है। अगर आप बोधपूर्वक, समझपूर्वक, होशपूर्वक कामवासना में उतर पाएं, तो आपका सब कचरा जल जाता है, आप सोना बन जाते हैं। और वह जो सोना है, वही क्रांति है। वह जो सोने की उपलब्धि है, वही क्रांति है।

तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, जो आपके अनुभव से आए, उसे आने देना। और जल्दी मत करना। उधार अनुभव मत ले लेना। उनसे ज्ञान तो बढ़ जाएगा, आत्मा नहीं बढ़ेगी। उनसे बुद्धि में विचार तो बहुत बढ़ जाएंगे, लेकिन आप वही के वही रह जाएंगे। आग से गुजरे बिना कोई उपाय नहीं है। सस्ते में कुछ भी मिलता नहीं है।

कामवासना एक पीड़ा है। उसमें सुख तो ऊपर-ऊपर है, भीतर दुख ही दुख है। बाहर-बाहर झलक तो बड़ी रंगीन है, बड़ी इंद्रधनुष जैसी है। लेकिन भीतर हाथ कुछ भी नहीं आता। सिर्फ उदासी, सिर्फ विषाद, सिर्फ आंसू हाथ लगते हैं। लेकिन वे आंसू बाहर से बहुत चमकते हैं और मोती मालूम पड़ते हैं। लेकिन पास जाकर ही पता चलता है कि मोती झूठे हैं और आंसू हैं, और पीछे सिर्फ विषाद रह जाता है। लेकिन इससे गुजरना होगा।

इससे जो बच जाता है... आप बच भी नहीं पाते। बचने का मतलब केवल इतना है कि आप पास ही नहीं जा पाते मोती के पूरे कि पता चल जाए कि वह आंसू की बूंद है, मोती नहीं है। आप जाते भी हैं, क्योंकि भीतर वासना का धक्का है। परमात्मा कह रहा है कि जाओ, क्योंकि अनुभव से गुजरोगे, तो ही निखरोगे। जाओ।

परमात्मा बहुत निःशंक भेज रहा है। एक-एक बच्चे को भेज रहा है। इधर हम सुधार-सुधारकर जिंदगीभर परेशान हो जाते हैं। बूढ़े जब तक सुधर

पाते हैं, उनको वह हटा लेता है। और फिर बच्चे पैदा कर देता है। वे फिर बिगड़े के बिगड़े। फिर वही उपद्रव शुरू। फिर वही करेंगे जो अनुभवी कह गए हैं कि मत करना।

यह परमात्मा बच्चे क्यों बनाता है? बूढ़े क्यों नहीं बनाता? आखिर बूढ़े भी पैदा कर सकता था सीधे के सीधे। कोई झगड़ा-झंझट नहीं होती। अनुभवी पैदा हो जाते। लेकिन बूढ़े भी अगर वह पैदा कर दे, तो बच्चे ही होंगे। क्योंकि अनुभव के बिना कोई वार्धक्य, कोई बोध पैदा नहीं होता।

वह बच्चे पैदा करता है। उसकी हिम्मत बड़ी अनूठी है। वह नासमझ पैदा करता है, समझदारों को हटाता है। हम तो मानते ही ऐसा हैं कि जिसकी समझ पूरी हो जाए, फिर उसका जन्म नहीं होता। उसका मतलब, समझदारों को फौरन हटाता है और नासमझों को भेजता चला जाता है।

विद्यालय में नासमझ ही भेजे जाते हैं। जब बात पूरी हो जाती है, विद्यालय के बाहर हो जाते हैं। लेकिन जो बच्चा स्कूल में जा रहा है, वह स्कूल से रिटायर होते हुए प्रोफेसर की बात सुनकर बाहर ही रुक जाए, तो क्या गति होगी?

एक बच्चा अभी स्कूल में प्रवेश कर रहा है। आज पहला दिन है उसके स्कूल में प्रवेश का। उसी दिन कोई बूढ़ा प्रोफेसर रिटायर हो रहा है। वह प्रोफेसर कहता है, कुछ भी नहीं है यहां। जिंदगी हमने ऐसे ही गंवाई। सब बेकार गया। तू अंदर मत जा। तू वापस लौट चल।

बस, यह आपकी हालत है। रिटायर होते लोगों से जरा सावधान। उनकी बात तो सच है। बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, अनुभव से कह रहे हैं। पर आपको भी उस अनुभव से गुजरना ही होगा। आप भी एक दिन वही कहोगे। लेकिन थोड़ा समय पकने के लिए जरूरी है। आग में गुजरना जरूरी है, तो परिपक्वता आती है।

इसलिए डरें मत। परमात्मा ने जो भी जीवन की नैसर्गिक वासनाएं दी हैं, उनमें सहज भाव से उतरें। घबड़ाएं मत। घबड़ाना क्या है? जब परमात्मा नहीं घबड़ाता, तो आप क्यों घबड़ा रहे हैं? जब वह नहीं डरा हुआ है, तो आप क्यों इतने डरे हुए हैं? उतरें।

बस, उतरने में एक ही ख्याल रखें कि पूरी तरह उतरें। ये कचरे ख्याल दिमाग में न पड़े रहें कि गलत है। क्योंकि गलत है, तो उतर ही नहीं पाते, अधूरे ही रह जाते हैं। हाथ भी बढ़ता है और आग तक पहुंच भी नहीं पाता, रुक जाता है बीच में। तो दोहरे नुकसान होते हैं। न तो अनुभव होता है, और न लौटना होता है। अधकचरे, बीच में लटके रह जाते हैं।

इस जमीन पर जो लोग बीच में लटके हैं, उनकी पीड़ा का अंत नहीं है। इधर पीछे से महात्मा खींचते हैं कि वापस लौट आओ। और उधर भीतर से परमात्मा धक्के देता है कि जाओ, अनुभव से गुजरो। इन दोनों की रस्साकसी में आपकी जान निकल जाती है।

मैं कहता हूं कि मत सुनो। निसर्ग की सुनो; स्वभाव की सुनो; वह जो कह रहा है, जाओ। एक ही बात ध्यान रखो कि होशपूर्वक जाओ, समझपूर्वक जाओ। समझते हुए जाओ, क्या है? कामवासना क्या है, इसको किताब से पढ़ने की क्या जरूरत है? इसको उतरकर ही देख लो। और जब उतरो, तो पूरे ध्यानपूर्वक उतरो।

लेकिन मैं जानता हूं लोगों को, वे मेरे पास आते हैं। वे मुझसे कहते हैं, कामवासना से कैसे छूटें? मैं उनसे पूछता हूं, जब तुम कामकृत्य में उतरते हो, तब तुम्हारे दिमाग में कोई और ख्याल तो नहीं होता? वे कहते हैं, हजार ख्याल होते हैं। कभी दुकान की सोचते हैं, कभी बाजार की सोचते हैं, कभी कुछ और सोचते हैं। कभी यह सोचते हैं कि कैसा पाप कर रहे हैं! इसका क्या प्रायश्चित्त होगा?

तो तुम कामवासना में भी जब उतर रहे हो, तब भी तुम्हारी खोपड़ी कहीं और है, तो तुम जान कैसे पाओगे कि यह क्या है! ध्यान बना लो। हटा दो सब विचारों को। जब काम में उतर रहे हो, तो पूरे उतर जाओ, पूरे मनपूर्वक, पूरे प्राण से, पूरा बोध लेकर। दुबारा उतरने की जरूरत न रहेगी।

एक बार भी अगर यह हो जाए कि कामवासना का और ध्यान का मिलन हो जाए, तो वहीं पहला बोध, पहला होश उपलब्ध हो जाता है। सब चीज व्यर्थ दिखाई पड़ती है, बचकानी हो जाती है। दुबारा जाना भी चाहो, तो नहीं जा सकते। बात ही व्यर्थ हो गई।

जब तक यह न हो जाए, तब तक जाना ही पड़ेगा। और प्रकृति कोई अपवाद नहीं मानती। प्रकृति तो उन्हीं को पार करती है, जो पूरी तरह पक जाते हैं। कच्चे लोगों को नहीं निकलने देती। अगर आप कच्चे हैं, तो फिर जन्म देगी। फिर धक्के देगी।

अगर आप कच्चे ही बने रहते हैं, तो अनंत-अनंत जन्मों तक भटकना पड़ेगा। पक्का अगर होना है, तो भय छोड़ें। और निसर्ग को बोधपूर्वक अनुभव करें। मुक्ति वहां है।

एक मित्र ने पूछा है कि कृष्ण कहते हैं, सर्व आरंभों को छोड़ने वाला भक्त मुझे प्रिय है। तो क्या परमात्मा की खोज का आरंभ भी छोड़ देना चाहिए?

अगर आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ देना चाहिए। मगर अगर आरंभ ही न किया हो, तो छोड़िएगा क्या खाक? है क्या छोड़ने को आपके पास? आरंभ कर दिया हो, तो छोड़ना ही पड़ेगा। लेकिन आरंभ कहां किया है, जिसको आप छोड़ दें!

हमारी तकलीफ यह है कि हमें यही पता नहीं है कि हमारे पास क्या है! और अक्सर हम वह छोड़ते हैं, जो हमारे पास नहीं है। और उसको पकड़ते हैं, जो है।

आपने परमात्मा की खोज शुरू की है? आरंभ हुआ? अगर हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे भी छोड़ दो। इसी वक्त उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन अगर वह हुआ ही नहीं है तो छोड़िएगा कैसे!

आदमी अपने को इस-इस तरह से धोखे देता है कि उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आप कहते हैं, प्रयत्न छोड़ना पड़ेगा! तो मैं उनसे पूछता हूं, प्रयत्न कर रहे हो? कर लिया है प्रयत्न, तो छोड़ना पड़ेगा। अभी प्रयत्न ही नहीं किया है, छोड़िएगा क्या?

लोग कहते हैं कि मूर्ति से बंधना ठीक नहीं है, मूर्ति तो छोड़नी है। वे ठीक कहते हैं। लेकिन बंध गए हो, कि छोड़ सको?

आपकी हालत ऐसी है, मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन शादी के दफ्तर में पहुंच गया और उसने जाकर सब पूछताछ की कि तलाक के नियम क्या हैं। सारी बातचीत समझकर वह चलने को हुआ, तो रजिस्ट्रार ने उससे पूछा कि कब तलाक के लिए आना चाहते हो? उसने कहा, अभी शादी कहां की है? अभी तो मैं पक्का कर रहा हूं कि अगर शादी कर लूं, तो तलाक की सुविधा है या नहीं! कोई झंझट में तो नहीं पड़ जाऊंगा!

आप भी तलाक की चिंता में पड़ जाते हैं, इसकी बिना फिक्र किए कि अभी शादी भी हुई या नहीं। आरंभ किया है आपने परमात्मा की खोज का? एक इंच भी चले हैं उस तरफ? एक कदम भी उठाया है? एक आंख भी उस तरफ की है? कभी नहीं की है।

अगर वह आरंभ हो गया है, तो कृष्ण कहते हैं, उसे छोड़ना होगा।

सभी आरंभ छोड़ने होते हैं, तभी तो अंत उपलब्ध होता है। सभी आरंभ छोड़ने होते हैं, तभी तो लक्ष्य उपलब्ध होता है। आरंभ भी एक वासना है। परमात्मा को पाना भी एक वासना है। और कठिनाई यही है कि परमात्मा को पाने के लिए सभी वासनाओं से मन रिक्त होना चाहिए। परमात्मा को पाने की वासना भी बाधा है।

मगर वह आखिरी वासना है, जो जाएगी। अभी मत छोड़ देना; अभी तो वह की ही नहीं है। अभी तो करें। अभी तो मैं कहता हूं, परमात्मा को पाने की जितनी वासना कर सकें, करें। इतनी वासना करें कि सभी वासनाएं उसी में लीन हो जाएं। एक ही वासना रह जाए सभी वासनाओं की मिलकर, एक ही धारा बन जाए, कि परमात्मा को पाना है। धन पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। प्रेम पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। यश पाना था, वह भी इसी में डूब जाए। सारी वासनाएं डूब जाएं; एक ही वासना रह जाए कि परमात्मा को पाना है। ताकि आपके जीवन की सभी ऊर्जा एक तरफ दौड़ने लगे।

और जिस दिन यह एकता आपके भीतर घटित हो जाए, उस दिन वह वासना भी छोड़ देना कि परमात्मा को पाना है। उसी वक्त परमात्मा मिल जाता है। क्योंकि परमात्मा कहीं दूर नहीं है कि उसे खोजने जाना पड़े; वह यहीं है। जो दूर हो, उसे पाने के लिए चलना पड़ता है। जो पास हो, उसे पाने के लिए रुकना पड़ता है। जिसे खोया हो, उसे खोजना पड़ता है। जिसे खोया ही न हो, उसके लिए सिर्फ शांत होकर देखना पड़ता है।

तो वह जो परमात्मा को पाने की वासना है आखिरी, वह सिर्फ उपाय है सारी वासनाओं को छोड़ देने का। जब सब छूट जाएं, तो उसे भी छोड़ देना है उसी तरह, जैसे पैर में कांटा लग जाए, तो हम एक और कांटा निकाल लाते हैं वृक्ष से, पैर के कांटे को निकालने के लिए।

लेकिन फिर आप जब पैर का कांटा निकालकर फेंक देते हैं, तो दूसरे कांटे का क्या करते हैं जिसने आपकी सहायता की? क्या उसको घाव में रख लेते हैं? कि सम्हालकर रखें, यह कांटा बड़ा परोपकारी है। कि इस कांटे ने कितनी कृपा की कि पुराने कांटे को निकाल दिया। तो अब इसको सम्हालकर रख लें इसी घाव में; कभी जरूरत पड़े।

तो फिर आप मूढ़ता कर रहे हैं। तो कांटा निकालना व्यर्थ गया, क्योंकि दूसरा कांटा भी उतना ही कांटा है। और हो सकता है, दूसरा कांटा पहले कांटे से भी मजबूत हो, तभी तो निकाल पाया। खतरनाक है। यह कांटा जान ले लेगा।

परमात्मा का विचार, उसका ध्यान, इस जगत के सारे कांटों को निकाल देने के लिए है। लेकिन वह भी कांटा है।

पर जल्दी मत करना यह सोचकर कि अगर कांटा है, तो फिर हमको क्या मतलब है! हम तो वैसे ही कांटों से परेशान हैं, और एक कांटा क्या करेंगे? इतनी जल्दी मत करना। वह कांटा इन सारे कांटों को निकालने के काम आ जाता है। और जिस दिन आपका कांटा निकल गया, उस दिन दोनों कांटों को साथ-साथ फेंक देना पड़ता है। फिर उस कांटे को रखना नहीं पड़ता।

जैसे सब वासनाएं खो जाती हैं, अंत में परमात्मा को पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। वह आखिरी वासना है। उसके छूटते ही आपको पता चलता है कि वह मिला ही हुआ है।

हमारी भाषा में अड़चन है। ऐसा लगता है कि परमात्मा कहीं है, जिसको खोजना है। दूर कहीं छिपा है, जिसका पता लगाना है। कहीं दूर है, जिसका रास्ता होगा, यात्रा होगी।

यह भ्रांति है। परमात्मा आपका अस्तित्व है। आपके होने का नाम ही परमात्मा है। आप हैं इसलिए कि वह है। उसी की श्वास है, उसी की धड़कन

है। यह आपकी भ्रांति है कि श्वास मेरी है और धड़कन मेरी है। बस, यह भ्रांति भर टूट जाए, तो वह प्रकट है। वह कभी छिपा हुआ नहीं है।

और यह भ्रांति तब तक बनी रहेगी, जब तक आप सोचते हैं कि मुझे कुछ पाना है--परमात्मा पाना है--तो आप बने हैं। आपकी वासना के कारण आप बने हुए हैं। और जब तक वासना है, तब तक आप भी भीतर रहेंगे। नहीं तो वासना कौन करेगा!

और जब वासनाएं सभी खो जाती हैं, आखिरी वासना भी खो जाती है, तो आप भी खो जाते हैं। क्योंकि जब वासना नहीं, तो वासना करने वाला भी नहीं बचता है। वह जब मिट जाता है, तत्क्षण दृष्टि बदल जाती है। जैसे अचानक अंधेरे में प्रकाश हो जाए। और जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था, वहां सब कुछ दिखाई पड़ने लगे। वासना के खोते ही अंधेरा खो जाता है और प्रकाश हो जाता है।

आखिरी सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि बुद्ध के शिष्यों में कोई भी उनकी श्रेणी का नहीं हुआ। क्राइस्ट के शिष्यों में भी कोई दूसरा क्राइस्ट नहीं बन सका। महावीर के शिष्य ठीक उनके विपरीत हैं। कृष्ण के शिष्यों में भी कोई कृष्ण नहीं है। क्या फिर भी आप गुरु-शिष्य प्रणाली पर विश्वास करते हैं?

पहली तो बात यह कि आपकी जानकारी बहुत कम है। बुद्ध के शिष्यों में हजारों लोग बुद्ध बने। गौतम बुद्ध नहीं बने। गौतम बुद्ध कोई भी नहीं बन सकता है दूसरा। बुद्ध बने, बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।

गौतम बुद्ध, वह जो शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ है, उसका जो व्यक्तित्व है, उसका जो ढंग है, वैसा तो किसी का कभी नहीं होने वाला। वैसा तो वह अकेला ही है इस जगत में।

आप भी अकेले हैं, अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं। आप जैसा आदमी न कभी हुआ और न कभी होगा। कोई उपाय नहीं है आप जैसा आदमी होने का। अनरिपीटेबल! आपको पुनरुक्त नहीं किया जा सकता। डिट्टो, आपका कोई आदमी खड़ा नहीं किया जा सकता। आप बिल्कुल बेजोड़ हैं।

यह अस्तित्व एक-एक चीज को बेजोड़ बनाता है। परमात्मा बड़ा अदभुत कलाकार है। वह नकल नहीं करता। बड़े से बड़ा कलाकार भी नकल में उतर जाता है।

एक दफा पिकासो के पास एक चित्र लाया गया। पिकासो के चित्रों की कीमत है बड़ी। उस चित्र की कीमत कोई पांच लाख रुपए थी। और जिस आदमी ने खरीदा था, वह पक्का करने आया था कि यह चित्र ओरिजिनल है? आपका ही बनाया हुआ है? किसी ने नकल तो नहीं की है? तो पिकासो ने चित्र देखकर कहा कि यह नकल है; ओरिजिनल नहीं है।

वह आदमी तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा, लेकिन जिससे मैंने खरीदा है, उसने कहा है कि उसकी आंख के सामने आपने यह चित्र बनाया है!

तो वह आदमी लाया गया। और उस आदमी ने कहा कि हद कर रहे हो; क्या भूल गए? यह चित्र तो मैं मौजूद था तुम्हारे सामने, जब तुमने इसे बनाया। यह तुम्हारा ही बनाया हुआ है। पिकासो ने कहा, मैंने कब कहा कि मैंने नहीं बनाया! लेकिन यह भी नकल है, क्योंकि पहले मैं ऐसा एक चित्र और बना चुका हूं। उसकी नकल है। मैं भी चुक जाता हूं बना-बनाकर, तो फिर रिपीट करने लगता हूं खुद ही को। इसलिए इसको मैं ओरिजिनल नहीं कहता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि नकल मैंने की अपने ही चित्र की या किसी और ने की! नकल तो नकल ही है।

लेकिन परमात्मा ने आज तक नकल नहीं की। एक आदमी बस एक ही जैसा है। वैसा दूसरा आदमी फिर दुबारा नहीं होता। इससे मनुष्य बड़ी

अदभुत कृति है। मनुष्य को ही क्यों हम कहें, एक बड़े वृक्ष पर एक पत्ते जैसा दूसरा पत्ता भी नहीं खोज सकते आप। इस जमीन पर एक कंकड़ जैसा दूसरा कंकड़ भी नहीं खोज सकते। प्रत्येक चीज मौलिक है, ओरिजिनल है।

तो गौतम बुद्ध जैसा तो कोई भी नहीं हो सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि और लोग बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुए। बुद्ध के शिष्यों में सैकड़ों लोग उपलब्ध हुए।

एक बार तो बुद्ध से भी किसी ने जाकर पूछा--हो सकता है यही मित्र रहे हों--बुद्ध से जाकर किसी ने पूछा कि आप जैसे आप अकेले ही दिखाई पड़ते हैं। आपके पास दस हजार शिष्य हैं, इनमें से कितने लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं? बुद्ध ने कहा, इनमें से सैकड़ों लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं।

तो उस आदमी ने पूछा, लेकिन इनका कोई पता नहीं चलता! तो बुद्ध ने कहा, मैं बोलता हूं; ये चुप हैं। और ये इसलिए चुप हैं कि जब मैं बोलता हूं, तो इनको परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। और तुम्हें मैं नहीं दिखाई पड़ता; मैं जो बोलता हूं, वह सुनाई पड़ता है। मैं भी चुप हो जाऊं, तो तुम मेरे प्रति भी अंधे हो जाओगे। ये भी जब बोलेंगे, तब तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। ये चुप हैं, क्योंकि मैं बोल रहा हूं; कोई जरूरत नहीं है।

और जो भी उपलब्ध हो जाते हैं, जरूरी नहीं कि बोलें। बोलना अलग बात है। बहुत-से सदगुरु नहीं बोले, चुप रहे हैं। बहुत-से सदगुरु बोले नहीं, नाचे, गाए। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने चित्र बनाए, पेंटिंग की। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने गीत गाए, कविताएं लिखीं। उसी से उन्होंने कहा। बहुत-से सदगुरुओं ने उठा लिया एक वाद्य और चल पड़े, और गाते रहे गांव-गांव। और उसी से उन्होंने कहा। जो जैसा कह सकता था, उसने उस तरह कहा। जो मौन ही रह सकता था, वह मौन ही रह गया। उसने अपने मौन से ही कहा।

फिर और भी बहुत कारण हैं। गौतम बुद्ध सम्राट के लड़के थे। सारा देश उनको जानता था। और जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए, तो सारे देश की नजरें उन पर थीं। फिर कोई गरीब का लड़का भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ होगा। न उसे कोई जानता है, न सबकी उस पर नजरें हैं।

फिर बुद्ध शिक्षक हैं। सभी शिक्षक नहीं होते। जरूरी भी नहीं है। शिक्षक होना अलग कला है, अलग गुण है। तो बुद्ध समझा सके, कह सके, ढंग से कह सके। इसलिए हमें इतिहास में उनका उल्लेख रह जाता है। इतिहास सभी बुद्धों की खबर नहीं रखता, कुछ बुद्धों की खबर रखता है, जो इतिहास पर स्पष्ट लकीरें छोड़ जाते हैं।

क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोगों में भी लोग उपलब्ध हो गए हैं। लेकिन आपको पता है, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले जो उनके बारह शिष्य थे, वे बड़े दीन-हीन थे, बड़े गरीब थे। कोई मछुआ था; कोई लकड़हारा था; कोई बढ़ई था; कोई चमार था। वे सब दीन-हीन गरीब लोग थे, पढ़े-लिखे नहीं थे। फिर भी उपलब्ध हुए; और उन्होंने वह जाना, जो जीसस ने जाना।

लेकिन जीसस को सूली लग गई, यही एक फायदा रहा। सूली लगने की वजह से आपको याद रहे। जीसस की वजह से क्रिश्चियनिटी पैदा नहीं हुई, क्रास की वजह से पैदा हुई। अगर सूली न लगती, तो जीसस कभी के भूल गए होते। वह सूली याददाश्त बन गई। जीसस का सूली पर लटकना एक घटना हो गई; वह घटना इतिहास पर छा गई। इतिहास के अपने ढंग हैं।

लेकिन इस ख्याल में मत रहें कि महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, या बुद्ध के शिष्यों में कोई उनको उपलब्ध नहीं हुआ। हुआ; अपने ढंग से हुआ। ठीक उसी जगह पहुंच गया, जहां वे पहुंचे थे। लेकिन अपने ही ढंग से पहुंचा। कोई नाचता हुआ पहुंचा; कोई चुप होकर पहुंचा; कोई बोलकर पहुंचा। अपने-अपने ढंग थे। उन ढंगों में फर्क हैं। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्तित्व के पास जो भी समर्पित होने की सामर्थ्य रखता है, वह जरूर पहुंच जाएगा।

समर्पण कला है, सीखने की। और बुद्ध जैसे व्यक्तित्व के पास जब जाएं, तो वहां तो पूरी तरह झुककर सीखने की सामर्थ्य होनी चाहिए। हम झुकने की कला ही भूल गए हैं। इसलिए दुनिया से धर्म कम होता जाता है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। समझदार हैं, पढ़े-लिखे हैं, दर्शन का चिंतन करते हैं, विचार करते हैं। बड़े अच्छे सवाल उन्होंने पूछे थे, बड़े गहरे। लेकिन सब सवालों पर पानी फेर दिया जाते वक्त। जाते वक्त उन्होंने कहा कि एक बात और; आप ऊपर क्यों बैठे हैं, मैं नीचे क्यों बैठा हूं, यह और पूछना है!

सीखने आए हैं, लेकिन नीचे भी नहीं बैठ सकते। तो मैंने कहा, पहले ही कहना था। मैं और ऊपर बिठा देता। इसमें कोई अड़चन न थी। लेकिन तब मैं आपसे सीखता। तो जिस दिन आपको मुझे कुछ सिखाने का भाव आ जाए; जरूर आ जाना। और आपको काफी ऊंचाई पर बिठा दूंगा और मैं नीचे बैठकर सीखूंगा। लेकिन सीखने आए हों, तो नीचे बैठना तो बात मूल्य की नहीं है, लेकिन झुकने का भाव मूल्य का है।

वह उनको अखरता रहा होगा। बातें तो बड़ी ऊंची कर रहे थे--परमात्मा की, आत्मा की--लेकिन पूरे वक्त जो बात खली रही होगी, वही आखिरी में निकली, कि नीचे बैठा हूं! बैठ तो गए थे, इतना साहस भी नहीं था कि पहले ही कह देते कि मैं खड़ा रहूंगा, बैठूंगा नहीं। या कुछ ऊंची कुर्सी बुलाएं, उस पर बैठूंगा; नीचे नहीं बैठ सकता। कह देते तो कोई अड़चन न थी। ज्यादा ईमानदारी की बात होती; ज्यादा सच्चे साबित होते। वह तो भीतर छिपाए रखे।

तो उनका परमात्मा का प्रश्न और आत्मा का सब झूठा हो गया। क्योंकि भीतर असली प्रश्न यही था, जो चलते वक्त उन्होंने पूछा, कि अब एक बात और पूछ लूं आखिरी कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं, मैं नीचे क्यों बैठा हूं!

झुकने की वृत्ति खो गई है। गुरु और शिष्य के संबंध का और कोई मतलब नहीं है। इतना ही मतलब है कि आप जिसके पास सीखने गए हैं, वहां झुकने

की तैयारी से जाना। नहीं तो मत जाना। कौन कह रहा है! अगर झुकने की तैयारी न हो, तो मत जाना।

हालत हमारी ऐसी है कि नदी में खड़े हैं, लेकिन झुक नहीं सकते और प्यासे हैं। और झुकें न, तो बर्तन में पानी कैसे भरे! मगर अकड़े खड़े हैं। प्यासे मर जाएंगे! लेकिन झुकें कैसे? क्योंकि झुकना, और नदी के सामने!

मत झुकें। नदी बहती रहेगी। नदी को आपके झुकने से कुछ मजा नहीं आने वाला है। नदी आपके झुकने के लिए नहीं बह रही है। न झुकाने में कोई रस है। अगर प्यास हो, तो झुक जाना। अगर प्यास न हो, तो खड़े रहना।

लेकिन हमारा मन ऐसा है कि हम अकड़े खड़े रहें, नदी आए हमारे बर्तन में, झुके और भर दे बर्तन को। और फिर धन्यवाद दे कि बड़ी कृपा तुम्हारी कि तुम प्यासे हुए, नहीं तो मेरा नदी होना अकारथ हो जाता!

गुरु-शिष्य का इतना ही अर्थ है कि गुरु है, जिसने पा लिया है, जो अब बह रहा है परमात्मा की तरफ। जिसकी नदी बही जा रही है। और ज्यादा देर नहीं बहेगी। थोड़े दिन में तिरोहित हो जाएगी और सागर में खो जाएगी।

तो बाहर की नदी जो है, वह तो बहती भी रहेगी। उधर हिमालय पर पानी बरसता ही रहेगा हर साल और नदी बहती रहेगी। ये बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट की जो नदियां हैं, ये कोई हमेशा नहीं बहती रहेंगी। कभी प्रकट होती हैं; कभी बहती हैं। फिर सागर में खो जाती हैं। फिर हजारों साल लग जाते हैं। नदी का पाट खो जाता है। कहीं पता नहीं चलता कि नदी कहां खो गई। ये नदियां सरस्वती जैसी हैं; गंगा और यमुना जैसी नहीं। ये तिरोहित हो जाती हैं।

तो जब तक मौका हो, तब तक झुक जाना। मगर लोग ऐसे नासमझ हैं कि जब नदी खो जाती है और सिर्फ रेत का पाट रह जाता है, तब वे लाखों साल तक झुकते रहते हैं।

बुद्ध की नदी पर अभी भी झुक रहे हैं! और जब बुद्ध मौजूद थे, तब वे अकड़कर खड़े रहे। अब झुक रहे हैं। अब वहां रेत है। और वह नदी कभी की खो गई है। वहां नदी थी कभी; अब वहां सिर्फ रेत है।

लेकिन अभी और नदियां बह रही हैं। लेकिन वहां आप मत झुकना, क्योंकि वहां झुके तो प्यास भी बुझ सकती है। बचाना वहां अपने को। यह नदी वाली स्थिति है गुरु की। और शिष्य जब तक शिष्य न हो जाए, झुकना न सीख ले, तब तक कुछ भी नहीं सीख पाता है।

अब हम सूत्र लें।

और जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है; न सोच-चिंता करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो पुरुष शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुखादिक द्वंद्वों में सम है और सब संसार में आसक्ति से रहित है, वह मुझको प्रिय है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है; न सोच करता है, न कामना करता है; जो शुभ-अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है।

क्या है इसका अर्थ? आप सोचकर थोड़े हैरान होंगे कि जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है। क्या प्रसन्न होना भी बाधा है? क्या हर्षित होना भी बाधा है? कृष्ण के वचन से लगता है। थोड़ा इसके मनोविज्ञान में प्रवेश करना पड़े।

आप हंसते क्यों हैं? कभी आपने सोचा? क्या आप इसलिए हंसते हैं कि आप प्रसन्न हैं? या आप इसलिए हंसते हैं कि आप दुखी हैं?

उलटा लगेगा, लेकिन आप हंसते इसलिए हैं, क्योंकि आप दुखी हैं। दुख के कारण आप हंसते हैं। हंसना आपका दुख भुलाने का उपाय है। हंसना

एंटीडोट है, उससे दुख विस्मृत होता है। आप दूसरे पहलू पर घूम जाते हैं। आपके भीतर बड़ा तनाव है। हंस लेते हैं, वह तनाव बिखर जाता है और निकल जाता है।

इसलिए आप यह मत समझना कि बहुत हंसने वाले लोग, बहुत प्रसन्न लोग हैं। संभावना उलटी है। संभावना यह है कि वे भीतर बहुत दुखी हैं।

नीत्शे ने कहा है कि मैं हंसता रहता हूं। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्यों हंसते रहते हो, तो मैं छिपा जाता हूं। क्योंकि बात बड़ी उलटी है। मैं इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। अगर न हंसूं, तो रोने लगूंगा। वे आंसू न दिख जाएं किसी को, वह दीनता न प्रकट हो जाए, तो मैं हंसता रहता हूं। मेरी हंसी एक आवरण है, जिसमें मैं दुख को छिपाए हुए हूं।

दुखी लोग अक्सर हंसते रहते हैं। कुछ भी मजाक खोज लेंगे, कुछ बात खोज लेंगे और हंस लेंगे। हंसने से थोड़ा हलकापन आ जाता है। लेकिन अगर कोई आदमी भीतर से बिल्कुल दुखी न रहा हो, तो फिर हर्षित होने की यह व्यवस्था तो टूट जाएगी। जब भीतर से दुख ही चला गया हो, तो यह जो हंसी थी, यह जो हर्षित होना था, यह तो समाप्त हो जाएगा, यह तो नहीं बचेगा।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह अप्रसन्न रहेगा। पर उसकी प्रसन्नता का गुण और होगा। उसकी प्रसन्नता किसी दुख का विरोध न होगी। उसकी प्रसन्नता किसी दुख में आधारित न होगी। उसकी प्रसन्नता सहज होगी, अकारण होगी।

आपकी प्रसन्नता सकारण होती है। भीतर तो दुख रहता है, फिर कोई कारण उपस्थित हो जाता है, तो आप थोड़ा हंस लेते हैं। लेकिन उसकी प्रसन्नता अकारण होगी। वह हंसेगा नहीं। अगर इसे हम ऐसा कहें कि वह हंसता हुआ ही रहेगा, तो शायद बात समझ में आ जाए। वह हंसेगा नहीं, वह हंसता हुआ ही रहेगा। उसे पता ही नहीं चलेगा कि वह कब हर्षित हो

रहा है। क्योंकि वह कभी दुखी नहीं होता। इसलिए भेद उसे पता भी नहीं रहेगा।

कृष्ण का चेहरा ऐसा नहीं लगता कि वे उदास हों। उनकी बांसुरी बजती ही रहती है। लेकिन हमारे जैसा हर्ष नहीं है। हमारा हर्ष रुग्ण है। हम हंसते भी हैं, तो वह रोग से भरा हुआ है, पैथालाजिकल है। उसके भीतर दुख छिपा हुआ है, हिंसा छिपी हुई है, तनाव छिपे हुए हैं। वे उसमें प्रकट होते हैं।

कृष्ण का हंसना एक सहज आनंद का भाव है। उसे हम ऐसा समझें कि सुबह जब सूरज नहीं निकला होता है, रात चली गई होती है और सूरज अभी नहीं निकला होता है, तो जो प्रकाश होता है। आलोक, सुबह के भोर का आलोक। ठंडा, कोई तेजी नहीं है। अंधेरे के विपरीत भी नहीं है, अभी प्रकाश भी नहीं है। अभी बीच में संध्या में है। कृष्ण जैसे लोग, बुद्ध जैसे लोगों की प्रसन्नता आलोक जैसी है। दुख नहीं है; सुख नहीं है; दोनों के बीच में संध्या है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो न कभी हर्षित होता है... ।

कभी! कभी तो वही हर्षित होगा, जो बीच-बीच में दुखी हो, नहीं तो कभी का कोई मतलब नहीं है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है... ।

क्योंकि सब दुखों का कारण द्वेष है। और जो द्वेष करता है, वह दुखी होगा।

आपको पता है, आपके दुख का कारण आपके दुख कम और दूसरों के सुख ज्यादा हैं! आपका मकान हो सकता है काफी हो आपके लिए, लेकिन पड़ोस में एक बड़ा मकान बन गया, अब दुख शुरू हो गया।

एक मित्र के घर मैं रुकता था। बड़े प्रसन्न थे वे। और जब जाता था, तो अपना घर दिखाते थे। स्विमिंग पूल दिखाते थे; बगीचा दिखाते थे। बहुत

अच्छा, प्यारा घर था। बड़ा बगीचा था। सब शानदार था। खूब संगमरमर लगाया था। जब मैं उनके घर जाता था, तो घर में रहना मुश्किल था; घर की बातें ही सुननी पड़ती थीं, घर के बाबत ही, कि यह बनाया, यह बनाया। मुझे सुबह से वही देखना पड़ता था। जब भी गया, यही था। वे कुछ न कुछ बनाए जाते थे।

फिर एक बार गया। उन्होंने घर की बात न चलाई। तो मैं थोड़ा परेशान हुआ। क्योंकि वे बिल्कुल पागल थे। वे घर के पीछे दीवाने थे। जैसे घर बनाने को ही जमीन पर आए थे। उसके सिवाय उनके सपने में भी कुछ नहीं था।

उनकी पत्नी भी परेशान थी। वह भी मुझसे बोली थी कि हम तो सोचे थे कि यह घर मेरे लिए बना रहे हैं, घरवाली के लिए बना रहे हैं। अब तो ऐसा लगता है कि घरवाली को घर के लिए लाए हैं! कि घर खाली-खाली न लगे, इसलिए शादी की है, ऐसा मालूम पड़ता है। पहले तो मैं यह सोचती थी, उनकी पत्नी ने मुझे कहा, कि मुझसे शादी की, इसलिए घर बना रहे हैं। अब लगता है, यह ख्याल मेरा गलत था।

लेकिन जब मैंने पाया कि अब वे चुप हैं, घर के बाबत कुछ नहीं कहते, तो मैंने उनसे दोपहर पूछा कि बात क्या है? बड़ी बेचैनी-सी लगती है घर में। आप घर के संबंध में चुप क्यों हैं? उन्होंने कहा, देखते नहीं कि पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है! अब क्या खाक बात करें इसकी! अब रुको। दो-चार साल बाद करेंगे। जब तक इससे ऊंचा न कर लूं... ।

दुखी हैं, उदास हैं। घर उनका वही का वही है। लेकिन पड़ोस में एक बड़ा घर बन गया है। बड़ी लकीर खींच दी किसी ने। उनकी लकीर छोटी हो गई है!

आपके अधिक दुख आपके दुख नहीं हैं, आपके अधिक दुख दूसरों के सुख हैं। और इससे उलटी बात भी आप समझ लेना। आपके अधिक सुख भी आपके सुख नहीं हैं, दूसरे लोगों के दुख हैं।

जब आप किसी का मकान छोटा कर लेते हैं, तब सुखी होते हैं। आपको अपने मकान से सुख नहीं मिलता। और जब कोई आपका मकान छोटा कर देता है, तो दुखी होते हैं। आपको अपने मकान से न दुख मिलता है, न सुख। दूसरों के मकान! द्वेष, ईर्ष्या... ।

कृष्ण कहते हैं, न जो द्वेष करता है, न हर्षित होता है, न चिंता करता है... ।

चिंता क्या है? क्या है चिंता हमारे भीतर? जो हो चुका है, उसको जुगाली करते रहते हैं। आदमी की खोपड़ी को खोलें, तो वह जुगाली कर रहा है। सालों पुरानी बातें जुगाली कर रहा है, कि कभी ऐसा हुआ, कभी वैसा हुआ।

जो अब नहीं है, उसको आप क्यों ढो रहे हैं? या भविष्य की फिक्र कर रहा है, जो अभी है नहीं। या तो अतीत की फिक्र कर रहा है, जो जा चुका। या भविष्य की फिक्र कर रहा है, जो अभी आया नहीं। और जो अभी, यहीं है, वर्तमान, उसे खो रहा है इस चिंता में। और परमात्मा अभी है, यहां। और आप या तो अतीत में हैं या भविष्य में। यह चिंता प्राण ले लेती है। यही चुका देती है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो चिंता नहीं करता... । चिंता का मतलब यह कि जो शांत है; यहीं है; न अतीत में उलझा है, न भविष्य में। वर्तमान के क्षण में जो है, निश्चिंत, चिंतनशून्य, विचारमुक्त।

वर्तमान में कोई विचार नहीं है। सब विचार अतीत के हैं या भविष्य के हैं। और भविष्य कुछ भी नहीं है, अतीत का ही प्रक्षेपण है। और हम इसी में डूबे हुए हैं। या तो आप पीछे की तरफ चले गए हैं या आगे की तरफ। यहां! यहां आप बिल्कुल नहीं हैं। और यहीं है परमात्मा, इसलिए आपका मिलन नहीं हो पाता।

कृष्ण कहते हैं, न जो चिंता करता है, न कामना करता है, और शुभ-अशुभ कर्मों के फल का त्यागी है। और जिसने सब शुभ-अशुभ कर्म परमात्मा पर छोड़ दिए कि तू करवाता है। वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।

जो पुरुष शत्रु और मित्र में, मान-अपमान में सम है, सर्दी-गर्मी में, सुख-दुख में सम है, आसक्ति से रहित है, वह पुरुष मुझे प्रिय है।

जो सम है, जो डोलता नहीं है एक से दूसरे पर। हम निरंतर डोलते हैं। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं। सुबह प्रेम करते हैं, सांझ घृणा करते हैं। जिसको आप सुंदर मानते हैं, उसी को कुरूप भी मानते हैं। सांझ सुंदर मानते हैं, सुबह कुरूप मान लेते हैं। जो अच्छा लगता है, वही आपको बुरा भी लगता है। और चौबीस घंटे आप इसी में डोलते रहते हैं द्वंद्व में, घड़ी के पेंडुलम की तरह, बाएं से दाएं, दाएं से बाएं। यह जो डोलता हुआ मन है, विषम, यह मन उपलब्ध नहीं हो पाता अस्तित्व की गहराई को।

कृष्ण कहते हैं, जो सम है। सुख आ जाए, तो भी विचलित नहीं होता। दुख आ जाए, तो भी विचलित नहीं होता।

आप सब हालत में विचलित होते हैं। दुख में तो विचलित होते ही हैं, लाटरी मिल जाए, तो भी हार्ट अटैक होता है। तो भी गए!

मैंने सुना है कि चर्च का एक पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। एक आदमी को लाटरी मिली लाख रुपए की। उसकी पत्नी को खबर आई। पति तो बाहर गया था। पत्नी घबड़ा गई। घबड़ा गई यह सोचकर कि जैसे ही पति को पता लगेगा कि लाख रुपए की लाटरी मिली है, उनके हृदय के बचने का उपाय नहीं है। वह जानती थी अपने पति को कि एक रुपया मिल जाए, तो वे दीवाने हो जाते हैं। लाख रुपया! पागल हो जाएंगे या मर जाएंगे।

तो उसने सोचा कि कुछ जल्दी उपाय करना चाहिए, इसके पहले कि वे घर आएं। तो उसे ख्याल आया कि पड़ोस में चर्च का पादरी है; होशियार,

बुद्धिमान पुरोहित है। उसको जाकर कहे कि कुछ कर दो। कुछ ऐसा इंतजाम जमाओ।

तो चर्च के पादरी को उसने जाकर बताया कि लाख रुपए की लाटरी मिल गई है मेरे पति के नाम। और अब वे आते ही होंगे बाजार से। आप घर चलें मेरे। और जरा इस ढंग से उनको समझाएं, इस ढंग से बात को प्रकट करें कि उनको कोई सदमा न पहुंच जाए सुख का। और वे बच जाएं; कोई नुकसान न हो।

तो पादरी ने पूछा कि तू मुझे क्या देगी? तो उसने कहा, पांच हजार आप ले लेना। पादरी ने कहा, क्या कहा? पांच हजार! उसको हार्ट अटैक हो गया। वह वहीं गिर पड़ा। सच, पांच हजार! वह पहली दुर्घटना चर्च के पादरी के साथ हो गई।

आदमी, सुख हो या दुख, जब भी कुछ तीव्र होता है, तो विचलित हो जाता है। सम का अर्थ है, जो विचलित नहीं होता। जो भी आता है, उसे ले लेता है; कि ठीक है, आया, चला जाएगा। सुबह आई, सांझ आई, अंधेरा आया, प्रकाश आया, सुख-दुख आया, मित्र-शत्रु--ले लेता है चुपचाप और अलिप्त दूर खड़ा देखता रहता है।

ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, मुझे प्रिय है।

दो-तीन बातें कल के संबंध में। कल वे ही मित्र यहां आएं, जो सच में ही भक्ति के इस भाव में उतरना चाहते हों, क्योंकि कल प्रयोग का दिन होगा। गीता का एक सूत्र बचा है, वह मैं परसों लूंगा। कल कोई गीता का सूत्र नहीं लूंगा। कल बात नहीं होगी, कुछ कृत्य होगा।

इतने दिन जिन्होंने सुना है, अगर उन्हें लगता हो कि कुछ करने जैसा भी है, सिर्फ सुनने जैसा नहीं है, केवल वे ही लोग आएं। जिनको सुनना है, वे परसों आएं, कल उनके लिए छुट्टी है। जिन्हें कुछ करना है, कल वे ही लोग आएं।

इसे जरा ईमानदारी से ख्याल रख लेना, क्योंकि यहां कोई रुकावट नहीं लगाई जा सकती। अगर आपको नहीं करना है, तो भी आप आ गए, तो कोई रुकावट नहीं लग सकती। लेकिन वह आपकी बेईमानी होगी। आप मत आएं। आते हों, तो करने का तय करके आएं कि यहां कुछ प्रयोग होगा, उसमें सम्मिलित होना है। पहली बात।

दूसरी बात, जो लोग यहां आने वाले हैं, वे एक फूल अपने साथ, कोई भी फूल ले आएं। और पूरे रास्ते एक ही बात मन में पुनरुक्त करते रहें बार-बार जप की तरह, कि यह फूल मेरा अहंकार है, यह फूल मेरी अस्मिता है, यही मेरी ईगो है। उस फूल में अपने सारे अहंकार को समाविष्ट कर दें।

एक ही भाव आंख खोलकर भी करें, फूल को देखें; आंख बंद करके भी करें। फूल को सूंघें और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं सूंघ रहा हूं। छुएं, और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं छू रहा हूं। देखें, और समझें कि यह मेरा अहंकार है, जिसको मैं देख रहा हूं।

घर से आते वक्त, पूरे रास्ते फूल में ही अपने ध्यान को रखें और अपने अहंकार को पूरा प्रोजेक्ट कर दें। फूल में डुबा दें अपने अहंकार को।

जैसे-जैसे आपका अहंकार फूल में प्रवेश करने लगेगा, आपको फूल भारी मालूम पड़ने लगेगा। अगर आपने ठीक से प्रयोग किया, तो आपको फूल का भारीपन स्पष्ट अनुभव होगा। न केवल फूल भारी होने लगेगा, जैसे-जैसे आपका अहंकार प्रवेश करेगा, फूल कुम्हलाने और मुरझाने लगेगा।

पूरे प्राणों से अपने को उंडेल दें, कि सारा अहंकार मेरा इस फूल में समा जाए। यह भावना करते और सब विचार छोड़कर... । कोई विचार बीच में आ जाए, जैसे ही ख्याल आए, छोड़कर वापस इसी विचार में लग जाएं कि यह फूल मेरा अहंकार है। आप अगर अपने अहंकार को इस फूल में समाविष्ट कर लाए, तो यहां परिणाम हो सकेगा।

आपको फूल लाकर यहां चुपचाप बैठ जाना है। और कल आप यहां आकर बिल्कुल बातचीत न करें। बिल्कुल जबान बंद कर लें। क्योंकि आपकी बातचीत आपके प्रयोग में बाधा बनेगी। जैसे ही प्रवेश करें ग्राउंड पर, चुपचाप अपनी जगह जाकर बैठ जाएं। फूल को दोनों हाथों के बीच में ले लें और एक ही भाव करते रहें आंख बंद करके, कि इस फूल में मेरा सारा अहंकार प्रवेश कर रहा है। जब तक मैं न आ जाऊं, आपको यह प्रयोग करते रहना है। फिर आने के बाद मैं आपको कहूंगा कि अब क्या आगे करें।

एक घंटे का हम प्रयोग करेंगे। यह प्रयोग सामूहिक शक्तिपात का प्रयोग है। अगर आप अपने अहंकार को छोड़ने को राजी हो गए, अगर आपने अपने अहंकार को फूल में समाविष्ट कर लिया, तो मैं आऊंगा और कहूंगा कि इस फूल को अब फेंक दें। मैं जब तक न कहूं, तब तक आपको रखे बैठे रहना है। उस फूल के गिराते ही आपको लगेगा कि जैसे सिर से पूरा बोझ, एक भार, एक पहाड़ हट गया। और उसके हटने के बाद एक काम हो सकेगा।

बीस मिनट तक पहले चरण में, यहां कुछ संगीत चलता रहेगा और मैं आपकी तरफ देखता रहूंगा। उन बीस मिनट में आपको एकटक मेरी ओर देखते रहना है। चाहे पलक से आंसू बहने लगें, आपको पलक नहीं झपनी है। बीस मिनट आपको एकटक मेरी ओर देखना है। सारी दुनिया मिट गई; मैं हूं और आप हैं। बस, हम दो बचे हैं।

अगर आपको यह ख्याल में आ गया कि हम दो बचे हैं--मैं और आप--तो मैं आप पर काम करना शुरू कर दूंगा। और जो आप वर्षों में अकेले नहीं कर सकते, वह क्षणों में हो सकता है।

लेकिन हिम्मत की जरूरत है कि आप बीस मिनट आंख एकटक मेरी ओर देखते रहें। और आपको किसी को भी नहीं देखना है। यहां इतने लोग हैं, आपको मतलब नहीं। आपको मुझे देखना है। आपके पड़ोस में कोई

चीखने-चिल्लाने लगे, रोने लगे, कुछ करने लगे, आपको आंख नहीं फेरनी है। आपको मेरी तरफ देखना है।

यह प्रयोग गुरु-गंभीर है। और इसको अगर आप थोड़ी समझपूर्वक करेंगे, तो बड़े अनुभव को उतर जाएंगे।

बीस मिनट आपको मेरी तरफ देखते रहना है। और जो कुछ आपके भीतर हो, उसे होने देना है। कोई चीखने लगेगा, कोई चिल्लाने लगेगा, कोई रोने लगेगा। किसी ने रोना रोक रखा है सालों से, जन्मों से; घाव भरे हैं, वे बहने लगेंगे। कोई खिलखिला कर हंसने लगेगा। कोई पागल जैसा व्यवहार करने लगेगा। उसकी फिक्र न करें। और आपके भीतर भी कुछ होना चाहे, तो उसे रोकें मत। यह साहस हो, तो ही आना।

पागल होने की हिम्मत हो, तो ही आना। अपने को रोक लिया, तो आपका आना व्यर्थ हुआ और आपके कारण आस-पास की हवा भी व्यर्थ होगी। आप मत आना। आपकी कोई जरूरत नहीं है।

बीस मिनट आपकी सारी बीमारी, सारी विक्षिप्तता को मैं खींचने की कोशिश करूंगा आपकी आंखों के जरिए। अगर आपने मेरे साथ सहयोग किया, तो आपके न मालूम कितने मानसिक तनाव, बीमारी, चिंता गिर जाएगी। आप एकदम हलके हो जाएंगे।

फिर बीस मिनट मौन रहेगा। उस मौन में फिर पत्थर की तरह होकर बैठ जाना है। आंख बंद और शरीर मुर्दे की तरह छोड़ देना है।

फिर बीस मिनट, आखिरी चरण में, आपको अभिव्यक्ति का मौका होगा कि इस बीस मिनट के मौन में आपको जो आनंद उपलब्ध हुआ हो--और गहन आनंद उपलब्ध होगा--और जो शांति आपने जानी हो, अपरिचित, कभी न जानी, वह आपके भीतर झरने की तरह बहने लगेगी, उसको अभिव्यक्ति देने के लिए बीस मिनट होंगे।

कोई खुशी से नाचेगा, कोई गीत गाएगा, कोई कीर्तन करेगा। लेकिन आपको दूसरे पर ध्यान नहीं देना है। आपको अपने भीतर का ही भाव देखना है, कि अगर मुझे नाचना है, तो नाच लूं; शांत बैठना है, शांत बैठा रहूं; गाना है, तो गा लूं। और किसी की चिंता न करूं।

एक घंटे अगर आप मेरे साथ सहयोग करते हैं, तो मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूं। और आपके भीतर से बहुत कुछ बदला जा सकता है।

और यह प्रयोग इसलिए है कि आपको एक झलक मिल जाए। क्योंकि हम उसकी खोज भी कैसे करें, जिसकी हमें झलक ही न हो? जिस परमात्मा का हमें जरा-सा भी स्वाद नहीं है, हम उसकी खोज पर भी कैसे निकलें? थोड़ी-सी झलक हो, थोड़ा-सा उसका स्वर सुनाई पड़ जाए, थोड़े-से उसके आनंद का झरना फूट पड़े, थोड़ा-सा उसका प्रकाश दिखाई पड़ जाए, तो फिर हम भी दौड़ पड़ेंगे। फिर हमारे पैरों का सारा आलस्य मिट जाएगा। और फिर हमारे प्राणों की सारी सुस्ती दूर हो जाएगी। लेकिन एक झलक मिल जाए! जरा-सी झलक! फिर हम उसकी खोज कर लेंगे जन्मों-जन्मों में। फिर वह हमसे बच नहीं सकता। फिर वह कहीं भी हो, हम उसका पता लगा लेंगे।

मैंने सुना है कि एक गांव से जिप्सियों का एक समूह निकलता था। और गांव के एक बच्चे को, जो चर्च के पादरी का बच्चा था, उन्होंने चुरा लिया। उसे उन्होंने अपनी बैलगाड़ी में अंदर बंद करके डाल दिया है और उनका समूह आगे बढ़ने लगा।

जिप्सी अक्सर बच्चे चुरा लेते हैं। वह छोटा बच्चा था। उसकी कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या हो रहा है। लेकिन गाड़ी में पड़े हुए उसका ध्यान तो अपने गांव की तरफ लगा था, कि गांव दूर होता जा रहा है!

सांझ का वक्त था और चर्च की घंटियां बज रही थीं। वह घंटी को सुनता रहा। जैसे-जैसे गाड़ी दूर होती गई, घंटी की आवाज धीमी होती गई। लेकिन वह और गौर से सुनता रहा। क्योंकि शायद यह आखिरी बार होगा। अब

दोबारा यह मौका आए न आए। वह अपने गांव की आवाज सुन सकेगा या नहीं! और इस गांव की एक ही याददाश्त, यह बजती हुई घंटी का धीमा होते जाना, धीमा होते जाना... ।

और वह इतने गौर से सुनने लगा कि राह पर चलती हुई गाड़ियों की आवाज, घोड़ों की आवाज, जिप्सियों की बातचीत, सब उसे भूल गई। सिर्फ उसे घंटी की आवाज सुनाई पड़ती रही। बड़े दूर तक सन्नाटे में वह सुनता रहा।

फिर वर्षों बीत गए। बड़ा हो गया। उसके गांव की उसे सिर्फ एक ही याद रह गई, वह घंटी की आवाज। अपने बाप का नाम उसे याद न रहा; अपने गांव का नाम याद न रहा; अपने गांव की शक्ल याद न रही। उसका चर्च, उसका घर, कैसा था, वह सब विस्मृत हो गया। वह बहुत छोटा बच्चा था। लेकिन एक बात चित्त में कहीं गहरे उतर गई, वह घंटी की आवाज।

अब घंटी की आवाज से क्या होगा? कैसे वापस खोजे? जवान होकर वह भाग खड़ा हुआ। जिप्सियों को उसने छोड़ दिया। और वह हर गांव के आस-पास सांझ को जाकर खड़ा हो जाता था, जिस भी गांव के पास होता, और घंटी की आवाज सुनता था।

कहते हैं कि पांच साल की निरंतर खोज के बाद आखिर एक दिन एक गांव के पास उसे चर्च की घंटी पहचान में आ गई। यह वही घंटी थी। फिर चर्च से दूर जाकर भी उसने देख लिया। जैसे-जैसे दूर गया, घंटी वैसी ही धीमी होती गई, जैसी पहली बार हुई थी।

फिर वह भागा हुआ चर्च में पहुंच गया। एक स्वर मिल गया। वह चर्च भी पहचान गया। वह पिता के चरणों में गिर पड़ा। पिता बूढ़ा था और मरने के करीब था। और पिता नहीं पहचान पाया। और उसने अपने बेटे से पूछा कि तूने कैसे पहचाना? तू कैसे पहचाना? तू कैसे वापस आया? मैं तक तुझे

भूल गया हूं! तो उसने कहा, एक आवाज, इस चर्च की घंटी की आवाज मेरे साथ थी।

कल के इस प्रयोग में अगर आपको थोड़ी-सी भी आवाज परमात्मा की सुनाई पड़ जाए, तो वह आपके साथ रहेगी। और जन्मों-जन्मों में कहीं भी वह आवाज सुनाई पड़ जाए, आप समझेंगे कि परमात्मा का मंदिर निकट है, खोज हो सकती है।

लेकिन कल केवल वे ही लोग आएं, जो प्रयोग करने की तैयारी रखते हों। बाकी--ईमानदारी से--कोई व्यक्ति न आए।

अब हम कीर्तन करें। पांच मिनट बैठे रहें अपनी जगह पर। उठें न। कीर्तन के बाद जाएं।

गीता दर्शन अध्याय 12

दसवां प्रवचन

सामूहिक शक्तिपात ध्यान

(NOTE- Today Bhagwan did not talk on Sutra or Questions, he conducted experiment of divine energy descending on the audience.)

जीवन उतना ही नहीं है, जितना आप उसे जानते हैं। आपको जीवन की सतह का भी पूरा पता नहीं है, उसकी गहराइयों का, अनंत गहराइयों का तो आपको स्वप्न भी नहीं आया है। लेकिन आपने मान रखा है कि आप जैसे हैं, वह होने का अंत है।

अगर ऐसा आपने मान रखा है कि आप जैसे हैं, वही होने का अंत है, तो फिर आपके जीवन में आनंद की कोई संभावना नहीं है। फिर आप नरक में ही जीएंगे और नरक में ही समाप्त होंगे।

जीवन बहुत ज्यादा है। लेकिन उस ज्यादा जीवन को जानने के लिए ज्यादा खुला हृदय चाहिए। जीवन अनंत है। पर उस अनंत को देखने के लिए बंद आंखें काम न देंगी। जीवन विराट है और अभी और यहीं जीवन की गहराई मौजूद है। लेकिन आप अपने द्वार बंद किए बैठे हैं। और अगर कोई आपके द्वार भी खटखटाए, तो आप भयभीत हो जाते हैं। और भी मजबूती से द्वार बंद कर लेते हैं।

मैंने आज आपको बुलाया है। मैं आपके द्वार नहीं खटखटाऊंगा, बल्कि आपके द्वार तोड़ ही डालूंगा। पर आपकी तैयारी चाहिए। आप अगर भयभीत

रहे, तो आप वंचित रह जाएंगे। भय से अगर आपने आंखें बंद रखीं, तो सूरज निकलेगा भी, तो भी आपके लिए नहीं निकलेगा। आप अंधेरे में ही रह जाएंगे।

यह प्रयोग तो साहस का प्रयोग है। और केवल उन लोगों के लिए है, जो अपने से ऊब चुके हैं भलीभांति। और जो अपने से अच्छी तरह परेशान हो चुके हैं। और जिन्होंने यह भलीभांति समझ लिया है कि जैसे वे हैं, वैसे ही रहने से कोई भी मार्ग नहीं है। तो बदलाहट हो सकती है। तो क्रांति आ सकती है।

सुना है मैंने कि दूर पहाड़ियों में बसा हुआ एक गांव था। खाई में बसा हुआ था, नीचाई पर था। वर्षा आती, नदियों में बाढ़ आती, गांव के घर बह जाते, खेती-बाड़ी नष्ट हो जाती, जानवर बह जाते, बच्चे डूब जाते। झंझावात आते, आंधियां आतीं, पहाड़ से पत्थर गिरते, लोग दब जाते और मर जाते।

उस गांव की जिंदगी बड़े कष्ट में थी। जिंदगी थी ही नहीं, बस मौत से लड़ने का नाम ही जिंदगी था। कभी वर्षा सताती, कभी तूफान सताते। और जीना दूभर था।

लेकिन उस पहाड़ी गांव के लोग मानते थे कि यही ढंग है एक जीने का, क्योंकि बचपन से वे इसी ढंग से परिचित थे। उनके बाप-दादे भी ऐसे ही जीए थे। और उनके बाप-दादों के बाप-दादे भी ऐसे ही जीए थे। यही मुसीबत उनकी कथाओं में थी। यही बाढ़ों का आना और डूब जाना, और पत्थरों का गिरना और मौत घटित होना, और जूझते-जूझते जन्मना और जूझते-जूझते मर जाना, यही उनके सारे पुराण थे।

लेकिन एक बार एक भटकता हुआ यात्री उस पहाड़ी गांव में पहुंच गया। और उसने कहा कि तुम नासमझ हो। तुम्हारी समस्याओं को हल करने का यह कोई उपाय नहीं है। तुम थोड़े अपने मकान ऊंचाइयों पर बनाओ।

इस खाई-खंदक को छोड़ो। और इतने सुंदर पहाड़ तुम्हारे चारों तरफ हैं, इनके उतार पर अपने मकान बनाओ।

गांव के लोगों ने पूछा, क्या उससे हमारी समस्याएं हल हो जाएंगी? क्योंकि ऊंचे मकान बनाने से समस्याओं का क्या हल होगा! वर्षा तो आएगी, तूफान तो होंगे, नदियां तो बहेंगी। ये तो नहीं रुक जाएंगी!

उनका सवाल ठीक था। लेकिन उस यात्री ने हंसकर कहा कि तुम घबड़ाओ मत। तुम्हारी समस्याएं बदल जाएंगी, क्योंकि तुम ऊंचाई पर चले जाओगे। तुम नीचाई पर हो, इसलिए समस्याएं हैं। और यहीं, नीचाई पर रहकर अगर तुम समस्याओं को हल करना चाहते हो, तो तुम कभी हल न कर पाओगे।

गांव के लोग हिम्मतवर रहे होंगे। बड़ी हिम्मत की जरूरत है पुरानी आदतों को बदलने के लिए। उन्होंने ऊंचाइयों पर मकान बनाने शुरू कर दिए। और तब उस गांव के लोगों ने एक उत्सव मनाया और उन्होंने कहा, हमें आश्चर्य है कि हमें यह ख्याल पहले क्यों न आया! नदियां अब भी बहेंगी, लेकिन हमारा कोई नुकसान न कर पाएंगी। पत्थर अब भी गिरेंगे, लेकिन अब हम खाई-खंदक में नहीं हैं।

आप जहां जी रहे हैं, वह एक खाई है, जहां सारी मुसीबतें गिरती हैं और आप परेशान होते हैं। यह प्रयोग आपको उस खाई से बाहर निकालकर ऊंचाइयों की तरफ ले चलने का है। लेकिन मुश्किल है पुरानी आदतों को छोड़ना; चाहे वे आदतें कितनी ही तकलीफ क्यों न देती हों।

क्रोध किसको तकलीफ नहीं देता? ईर्ष्या किसको नहीं जलाती? दुश्मनी से किसको आनंद मिला है? लेकिन हम आदी हैं। और अगर कोई कहे कि लाओ मैं तुम्हारा क्रोध ले लूं, तो भी हम संकोच करेंगे और कंजूसी दिखाएंगे।

यह प्रयोग इसीलिए है कि मैं आपसे आपकी सारी बीमारियां मांगता हूं। और आपको रास्ता भी बताता हूं कि आप कैसे वे बीमारियां मुझे दे सकते

हैं। वे बीमारियां आपसे छूट सकती हैं, क्योंकि आप बीमारियां नहीं हैं, बीमारियां केवल आपकी आदत हैं। आदतें बदली जा सकती हैं। उन्हें आपने बनाया है, आप उन्हें मिटा सकते हैं।

लेकिन हमारे पास बीमारियों की राशि है। जन्मों-जन्मों से हमने न मालूम कितना उपद्रव भीतर इकट्ठा कर रखा है। कितने आंसू हैं भीतर, जो बहना चाहते थे और नहीं बह सके। कितनी चीख-पुकार है भीतर, जो प्रकट होना चाहती थी, और प्रकट नहीं हो पाई। कितना क्रोध है, कितनी आग है, जो भीतर जल रही है। और उस आग, घृणा, क्रोध, विक्षिप्तता के कारण आपका जीवन सदा एक ज्वालामुखी के ऊपर है। जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता है।

मनसविद कहते हैं कि हर आदमी पागल होने के किनारे ही खड़ा है। और कभी भी पागल हो सकता है। और वे ठीक कहते हैं। पागलपन करीब-करीब सामान्य हालत है। लेकिन मैं आपको एक रास्ता बताता हूं कि आपके भीतर जो भी दबा हो, उसे आप खुले आकाश में छोड़ दें।

किसी के ऊपर क्रोध करने की जरूरत नहीं है, क्रोध खुले आकाश में भी छोड़ा जा सकता है। भीतर जो पागलपन है, उससे किसी को नुकसान पहुंचाने की जरूरत नहीं है। पागलपन को हवा में एवोपरेट, वाष्पीभूत किया जा सकता है।

और जैसे ही आप अपने इस उपद्रव को फेंकने लगेंगे, वैसे ही आप पाएंगे, आपके सिर का बोझ हलका हुआ जा रहा है। और आपके आस-पास की दीवाल टूटती जा रही है। और आप आकाश के लिए खुल रहे हैं। और परमात्मा के लिए रास्ता बन रहा है।

यह प्रयोग समर्पण का प्रयोग है। इसमें आप अपने को छोड़ेंगे, तो ही कुछ हो पाएगा। आपकी बुद्धिमत्ता की इसमें जरूरत नहीं है। आप अपनी बुद्धिमत्ता से तो जी ही रहे हैं। परिणाम आपके सामने है। आप जो हैं, वह

आपकी बुद्धिमत्ता का परिणाम है। उसे बुद्धिमत्ता कहें या बुद्धिहीनता कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जो भी आप हैं, आपकी बुद्धिमानी का परिणाम है।

यह प्रयोग आपकी बुद्धिमानी का नहीं है। आपको अपनी बुद्धिमानी छोड़ देनी है। उससे आप जीकर काफी देख लिए। एक घंटेभर के लिए मुझे मौका दें कि मैं आपके भीतर प्रवेश कर सकूं और आपको बदल सकूं।

अगर आप राजी हुए, और थोड़ा-सा भी झरोखा आपने खोला, तो मैं एक ताजी हवा की तरह आपके भीतर प्रवेश कर सकता हूं। उसका स्पर्श आह्लादकारी होगा। मैं एक विद्युत-प्रवाह की तरह आपके भीतर आ सकता हूं, उसमें बहुत-सा कचरा जल जाएगा और सोना निखर उठेगा। लेकिन एक साहस आपको करना जरूरी है कि आप अपनी बुद्धिमानी नहीं बरतेंगे। आपकी बिल्कुल जरूरत नहीं है।

वह जो फूल मैंने आपसे लाने को कहा है और कहा है कि ध्यान करते आना कि यह मेरा अहंकार है, वह इसीलिए कहा है। अगर पूरा भाव आपने किया है कि यह फूल मेरा अहंकार है, तो थोड़ी देर बाद जब मैं आपको कहूंगा कि अपने दोनों हाथ उठाकर पूरे मन से भाव करके कि यह फूल मेरा अहंकार है, उसे छोड़ दें। तो उस फूल के गिरते ही आपके भीतर का न मालूम कितना बोझ उसके साथ गिर जाएगा। आप हलके हो जाएंगे।

आपका अहंकार बाधा है। वह हट जाए, तो मैं एक तूफान की तरह यहां बह सकता हूं। और जो मैं कह रहा हूं, वह कोई प्रतीक की भाषा नहीं है। मैं कोई साहित्य की बात नहीं कह रहा हूं। मैं कोई मेटाफर में नहीं बोल रहा हूं। वस्तुतः एक तूफान की तरह मैं आपके आस-पास घूमूंगा। और जैसे कोई तूफान एक वृक्ष को पकड़ ले और उसे हिलाने लगे, और उसके सारे सूखे पत्ते गिर जाएं, और उसकी सारी धूल झड़ जाए, वैसा मैं आपको पकड़ लूंगा। और आप एक वृक्ष की तरह ही कंपने लगेंगे और आपका रोआं-रोआं स्पंदित

हो उठेगा। आपकी प्राण-ऊर्जा जागने लगेगी और आपके भीतर शक्ति का एक प्रवाह शुरू हो जाएगा।

जैसे ही आप अपने को छोड़ेंगे, मैं काम करना शुरू कर दूंगा। आपका छोड़ना पहली शर्त है। और उसके बाद आपको कुछ भी नहीं करना है। चीजें होनी शुरू हो जाएंगी। आपको एक ही काम करना है कि आप कुछ मत करना। आप सिर्फ छोड़ देना और प्रतीक्षा करना।

जैसे ही मेरी शक्ति आपकी शक्ति से मिलेगी, आपकी श्वास में परिवर्तन शुरू होगा। वह पहला लक्षण होगा कि आप मुझसे मिल गए हैं। ठीक रास्ते पर हैं। आपने मेरी तरफ छोड़ दिया है अपने आपको। जैसे ही आप छोड़ेंगे, आपकी श्वास बदलने लगेगी। आपकी श्वास तेज और गहरी होने लगेगी। जब यह श्वास तेज और गहरी होने लगे, तो समझना कि पहला लक्षण है। और उसे रोकना मत। उसे और गहरा हो जाने देना। उसे और सहयोग दे देना, ताकि वह पूरी तरह आपको कंपाने लगे, और आपके भीतर चलने लगे, जैसे कि लोहार की धौंकनी चलती है।

वह श्वास आपके भीतर बहुत कुछ लाएगी और आपके भीतर से बहुत कुछ बाहर ले जाएगी। वह श्वास मुझे आपके भीतर लाएगी और आपके सारे कचड़े, कूड़ा-करकट को बाहर फेंकेगी। वह श्वास आपके भीतर विराट का संस्पर्श बनने लगेगी और आपकी क्षुद्रता को बाहर फेंकने लगेगी। आती श्वास में मैं आऊंगा और जाती श्वास में आपसे कुछ ले जाऊंगा। इसलिए जितनी तेज श्वास हो सके, उतना लाभ होगा, क्योंकि उतनी ही तेजी से आप उलीचेंगे। तो जब आपकी श्वास तेज होने लगे, तो साथ देना और बाधा मत डालना।

दूसरा अनुभव, जैसे ही श्वास तेज होगी, आपको तत्काल लगेगा कि आपके शरीर में एक नई विद्युत, एक इलेक्ट्रिसिटी, एक जीवन ऊर्जा दौड़ने लगी। रोआं-रोआं कंपना चाहेगा, नाचना चाहेगा। शरीर में बहुत-सी

प्रक्रियाएं शुरू हो जाएंगी। मुद्राएं बनने लगेंगी। कोई एकदम से खड़ा होना चाहेगा। किसी का सिर घूमने लगेगा। किसी के हाथ ऊपर उठ जाएंगे। कुछ भी हो सकता है। और जो भी हो, उसे आपको रोकना नहीं है, होने देना है। आप जैसे बह रहे हैं एक नदी में। आपको तैरना जरा भी नहीं है। नदी की धार जहां ले जाए।

आपको पता नहीं है कि क्या हो रहा है, रोकना मत। लेकिन मुझे पता है कि क्या हो रहा है। इसलिए आपसे कहता हूं, रोकना मत। अगर आप बहुत क्रोधी हैं, तो आपके दोनों हाथों की अंगुलियों में, मुट्ठियों में क्रोध समाविष्ट है। और जब मैं आपको पकडूंगा, तो वह क्रोध आपकी मुट्ठियों से निकलना शुरू होगा; आपके हाथ कंपने लगेंगे। अगर आप बहुत चिंता से भरे हुए व्यक्ति हैं, तो आपका मस्तिष्क बहुत बोझिल है। आपका सिर कंपने लगेगा और उस सिर से चिंताएं गिरनी शुरू हो जाएंगी। अगर आप बहुत कामुक व्यक्ति हैं, तो आपके काम-केंद्र पर बहुत जोर से ऊर्जा का प्रवाह शुरू होगा। आप घबड़ाना मत। वह प्रवाह ऊपर की तरफ उठेगा, क्योंकि मैं उसे ऊपर की तरफ खींच रहा हूं। वही कुंडलिनी बन जाती है।

आपकी पूरी रीढ़ कंपने लगेगी। उसके साथ-साथ आपका पूरा शरीर कंपने लगेगा। लगेगा कि कोई आपको आकाश की तरफ खींच रहा है। निश्चित ही, मैं आपको आकाश की तरफ खींचूंगा। और अगर आपने बाधा न दी, तो आप इस पूरे प्रयोग में पाएंगे कि आप वेटलेस हो गए; आपका कोई वजन न रहा। जमीन का ग्रेविटेशन, जमीन की कशिश कम हो गई। लेकिन आपको छोड़ना पड़ेगा।

श्वास बढ़ेगी, फिर आपकी प्राण-ऊर्जा बढ़ेगी। और तीसरा, जब संपर्क और गहरा होगा... ।

(रोने-चिल्लाने की आवाजें।)

अभी रुकें; पहले पूरी बात समझ लें। और जब संस्पर्श पूरा गहरा होगा... ।

(चिल्लाने की आवाजें।)

उन्हें थोड़ा सम्हाल दें। अभी रुकें। तो आपके भीतर से आवाजें निकलनी शुरू हो जाएंगी। चीत्कार, हुंकार, या कोई मंत्र का उदघोष, या रोना, चिल्लाना, हंसना, या स्क्रीम, सिर्फ चिल्लाहट, चीख, उसको रोकना मत। उसे हो जाने देना। उसके साथ ही आपके भीतर के न मालूम कितने रोग बाहर हो जाएंगे। आप हलके हो जाएंगे--एक बच्चे की तरह कोमल, और हलके, और निर्दोष।

यह पहला चरण है। बीस मिनट तक यह प्रयोग चलेगा। यहां संगीत चलता रहेगा। आपको एकटक मेरी तरफ देखना है, ताकि मैं आपकी आंखों से प्रवेश कर सकूं। छोड़ना है अपने को और मेरी तरफ देखना है। फिर शेष काम मैं कर लूंगा।

बीस मिनट के बाद संगीत बंद हो जाएगा। और तब आप जिस अवस्था में होंगे, वैसे ही रुक जाना है। कोई अगर खड़ा हो गया हो, तो वह वैसा ही रुक जाएगा। किसी का हाथ अगर आकाश की तरफ उठा हो, तो हाथ को वहीं छोड़ देना है। किसी की गरदन झुक गई है, तो वैसे ही रह जाना है। फिर जो भी अवस्था आपकी हो। बीस मिनट की प्रक्रिया के बाद, मृत, जैसे आप अचानक पत्थर हो गए, वैसे ही रह जाना है। जैसे ही मैं आवाज दूंगा कि रुक जाएं, वैसे ही रुक जाना है। आंख बंद कर लेनी है।

दूसरे चरण में बीस मिनट आंख बंद करके पत्थर की मूर्ति की तरह हो जाना है। कितना ही मन हो कि जरा पैर हिलाऊं, कि जरा आंख खोलूं, कि जरा हाथ बदल लूं, कि जरा करवट बदल लूं, इस मन को रोकना। यह मन बेईमान है। वह जो भीतर शक्ति जगी है, उससे डिस्ट्रैक्ट कर रहा है, उससे हटा रहा है। बिल्कुल बीस मिनट पत्थर की तरह रह जाना। और आप रह

सकेंगे। अगर पहले बीस मिनट आपने शरीर को पूरे प्रवाह में बहने दिया, तो दूसरे बीस मिनट में आपको कोई बाधा नहीं आएगी। आप मूर्तिवत हो जाएंगे।

ये दूसरे बीस मिनट में आपके मौन से मैं काम करूंगा। और आपसे मौन में मिलूंगा। शब्दों से मैंने बहुत-सी बातें आपसे कही हैं। लेकिन जो भी महत्वपूर्ण है, वह शब्दों से कहा नहीं जा सकता। और जो भी गहरा है, वह कभी शब्दों से कहा नहीं गया है। उसके लिए तो मौन में ही संवाद हो सकता है। अगर आप प्रयोग में ठीक से उतरे, तो मौन में आपसे कुछ कह सकूंगा, और मौन में कुछ कर भी सकूंगा।

दूसरे चरण में इस बीस मिनट की गहरी शांति में आपको अपूर्व अनुभव होंगे। आनंद से हृदय भर जाएगा। जैसा आनंद आपने कभी भी न जाना होगा। और ऐसा सन्नाटा और ऐसा शून्य और शांति भीतर उतर आएगी, जो बिल्कुल अपरिचित है। आप अपने ही भीतर एक ऊंचाई पाएंगे, जिससे आप कभी भी संबंधित नहीं थे। आप खाई से ऊपर हट गए हैं पहाड़ की चोटियों की तरफ। और वहां आपको नए प्रकाश का अनुभव होगा। और परमात्मा की असीम उपस्थिति प्रतीत होगी।

तीसरे बीस मिनट में अब आपको अपने आनंद को प्रकट करने का अवसर होगा। तब जो भी आपकी मौज में, अहोभाव में पैदा हो जाए--आप नाचना चाहें, गाना चाहें, हंसना चाहें या मौन रहना चाहें--जो भी होना चाहे, बीस मिनट आप परमात्मा के अनुग्रह में डूब जाएंगे।

पहले बीस मिनट में आपकी बीमारियों से आपको मुक्त करना है। दूसरे बीस मिनट में आपके मौन में आपके आनंद को जन्म देना है। तीसरे बीस मिनट में आपके अहोभाव, कृतज्ञता के बोध को विकसित करना है। ये तीन चरण हैं। और आपको सिर्फ इतना करना है कि आप बाधा मत डालना; आप सहयोगी रहना।

कुछ साधारण सूचनाएं। बहुत कुछ होना शुरू होगा, आप दूसरे पर ध्यान मत देना। नहीं तो आप चूक जाएंगे। बच्चों जैसा मत करना। आप छोटे बच्चे नहीं हैं। बगल में अगर कोई चीखने लगे, तो आपको देखने की जरूरत नहीं है; चीखने देना। कोई बगल में नाचने लगे, तो आपको लौटकर देखने की जरूरत नहीं है। नहीं तो आप चूक जाएंगे। उतनी-सी बाधा और आपसे मेरा संबंध टूट जाएगा। आप मेरी तरफ ही देखते रहना। आस-पास कुछ भी हो।

यह पूरा स्थान एक तूफान, एक विक्षिप्तता की स्थिति में हो जाएगा। आप एक ही याद रखना कि आपका मुझसे संबंध है और यहां कोई भी नहीं है। कितना ही मन हो कि जरा यहां देखें, वहां देखें, इस फिजूल बात को रोकना। क्योंकि जिंदगीभर से यहां-वहां देख रहे हैं, उससे कुछ हो नहीं गया है। और आपके देखने से कुछ होगा भी नहीं। आप चूक जाएंगे, समय व्यर्थ हो जाएगा। एक अवसर जरा-सी बचकानी बात से खोया जा सकता है। तो यहां-वहां मत देखना।

और बीस मिनट, शुरू के बीस मिनट आपको एकटक देखना है, पलक झुकानी नहीं है। आंख से आंसू बहने लगें, फिक्र मत करना। कोई आंखें खराब नहीं हो जाने वाली हैं। सिर्फ ताजी हो जाएंगी। थोड़ी धूल बह जाएगी, स्वच्छ हो जाएंगी। आप देखते ही रहना। इतना थोड़ा-सा बल रखना कि मेरी तरफ देखते ही रहें, क्योंकि आंख के द्वारा ही मैं सरलता से प्रवेश कर सकूंगा।

ये तीन चरण ख्याल में रखने हैं।

अब हम शुरू करेंगे। आप जो फूल अपने साथ ले आए हैं, उसे दोनों हाथों के बीच में ले लें। दि फ्लावर दैट यू हैव ब्राट हियर, पुट इट बिट्वीन योर टू पाम्स एंड क्लोज दि पाम्स। दोनों हथेलियों के बीच में फूल को ले लें और हथेलियों को बंद कर लें। और एक बार और पूरे मन से भाव करें कि

मेरा अहंकार इस फूल में केंद्रित है। नाउ वन्स मोर प्रोजेक्ट योर ईगो इन दिस फ्लावर एंड फील दिस फ्लावर इ.ज योर ईगो।

नाउ रेज योर बोथ हैंड्स अपवर्ड्स। दोनों हाथ ऊपर उठा लें फूल के साथ। फूल को ऊपर ले लें। दोनों हाथ ऊपर ले लें। आखिरी भाव करें कि यह फूल मेरा अहंकार है और मैं इस अहंकार को छोड़ता हूं। और फूल को दोनों हाथों से जमीन की तरफ छोड़ दें। नाउ ड्राप दि फ्लावर एंड विद दिस ड्रापिंग आफ दि फ्लावर योर ईगो ड्राप्स।

अब मेरी ओर देखें। नाउ स्टेयर एट मी फार ट्वेन्टी मिनट्स। डोंट क्रिएट एनी बैरियर। सरेंडर टुवर्ड्स मी एंड अलाउ मी टु वर्क।

(चीखना, चिल्लाना, रोना आदि की तीव्र आवाजें। ... बीस मिनट तक प्रयोग जारी रहा।)

रुक जाएं! नाउ स्टाप कंप्लीटली! रुक जाएं जैसे हैं। आंख बंद कर लें। क्लोज योर आइज एंड स्टाप कंप्लीटली, नो मूवमेंट, नो न्वाइज। जरा भी आवाज नहीं, शरीर को भी बिल्कुल रोक लें। शक्ति जाग गई, अब उसे भीतर मौन में काम करने दें। आंख बंद कर लें, कोई भी आंख खुली न रह जाए। आंख बंद करें। क्लोज योर आइज एंड अलाउ दि इनर्जी टु वर्क विदिन। बिल्कुल चुप, जरा भी आवाज नहीं, ताकि मैं आपके मौन में काम कर सकूं।

बीस मिनट के लिए ऐसे हो जाएं जैसे यहां मरघट है। सिर्फ लाशें रह गईं। फार ट्वेन्टी मिनट्स नाउ बी टोटली साइलेंट, एज इफ यू हैव गान डेड। कोई यहां-वहां न हिले, कोई चले-फिरे नहीं। जो जहां है, बिल्कुल मुर्दे की भांति हो जाए। जो लोग देखने आ गए हों, वे भी कृपा करके आंख बंद कर लें और कम से कम बीस मिनट के लिए शांत हो जाएं। हिलें नहीं।

मुझे एक मौका दें कि आपकी शांति में प्रवेश कर सकूं, और आपके हृदय में आनंद का फूल खिला सकूं। नाउ अलाउ मी टु वर्क इन योर साइलेंस।

(दूसरे बीस मिनट तक सब ओर गहन सन्नाटा रहा।)

एक गहरी शांति में उतर गए हैं। एक गहरे आनंद का अनुभव। यू हैव एंटर्ड ए न्यू डायमेंशन आफ साइलेंस। दूसरा चरण पूरा हुआ। दि सेकेंड स्टेप इ.ज ओवर, नाउ यू कैन एंटर दि थर्ड। अब तीसरे में प्रवेश करें।

जो आनंद का अनुभव हुआ है, उसे प्रकट कर सकते हैं। जैसे भी प्रकट करने का भाव आ जाए। नाउ यू कैन एक्सप्रेस योर ब्लिस, योर साइलेंस दि वे यू चूज। यू कैन सिंग, यू कैन डांस, यू कैन लाफ, व्हाटसोएवर यू फील लाइक डूइंग। एंड डोंट बी शाय, सेलिब्रेट इट। संकोच न करें और आनंद को प्रकट होने दें। जितना प्रकट करेंगे, उतना बढ़ेगा। जितना प्रकट करेंगे, उतना बढ़ेगा। डरें मत, आनंद चाहते हैं, तो आनंद को प्रकट होने दें। एक्सप्रेस इट, दि मोर यू एक्सप्रेस दि मोर इट ग्रोज।

(तीसरे बीस मिनट में संगीत बजता रहा। लोग नाचते, गाते रहे। उत्सव चलता रहा। फिर ओशो ने समापन के कुछ शब्द कहे।)

बस रुक जाएं। रुक जाएं, शांत हो जाएं, शांत हो जाएं। शांत हो जाएं और अपनी जगह पर बैठ जाएं। शांत हो जाएं और अपनी जगह पर बैठ जाएं। मौन चुपचाप अपनी जगह पर बैठ जाएं। मुझे कुछ बातें कहनी हैं, उनको कह दूं, फिर आप जाएं। शांत बैठ जाएं, आवाज न करें, भीड़ न करें यहां पास, शांत बैठ जाएं। वहां जगह न हो, तो बाहर निकल जाएं, किनारे पर बैठ जाएं।

देखें, बीच में बाहर से आप लोग आ गए हैं, तो बाहर वापस लौट जाएं, किनारे पर बैठ जाएं। शांत हो जाएं। देखें, बात न करें, अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं। जगह न हो, तो बाहर निकल जाएं, किनारे पर बैठ जाएं।

बाहर निकलिए वहां से। समय खराब मत करें, बाहर निकल जाएं। वहां बीच में जगह न हो, तो बाहर हो जाएं। जैसे भीतर आ गए हैं, वैसे बाहर हो जाएं। बातचीत बंद करें। थोड़ा आगे हट आएं, वहां पीछे बैठने की

जगह हो जाएगी। बैठ जाएं, अगर आगे जगह न हो, तो थोड़ा आगे हट आएं। आप लोग थोड़ा आगे हट आएं, तो पीछे जगह हो जाए।

बस ठीक है। बैठ जाएं, किसी भी तरह थोड़ी सी जगह बना लें और बैठ जाएं। देखिए, न बैठ सकें, तो खड़े रहें, अब बातचीत बंद कर दें।

जिन मित्रों ने प्रयोग किया, वे पुरस्कृत हुए। लेकिन नासमझों की कोई कमी नहीं है। और आप में बहुत हैं जो नासमझ हैं। कुछ बातें हैं, जो देखने से दिखाई नहीं पड़तीं। और मनुष्य के भीतर क्या घटित होता है, जब तक आपके भीतर घटित न हो, आपको पता नहीं चल सकता। अगर आप बाहर से देख रहे हैं, तो यह भी हो सकता है कि आपको लगे कि दूसरा आदमी पागलपन कर रहा है। लेकिन आखिरी हिसाब में आप पागल सिद्ध होंगे।

कुछ चीजें हैं, जो केवल भीतर ही देखी जा सकती हैं। और जब तक आप न उतर जाएं उसी अनुभव में, तब तक उसके संबंध में आप कुछ भी नहीं जान सकते। कोई प्रेम में है... ।

(एक आदमी शोर मचा रहा है। ओशो समझाते हैं, चुप हो जाएं। खड़े रहने दो, उनको खड़े रहना है तो। लेकिन चुप रहें।)

कोई प्रेम में है, तो बाहर से आप कुछ भी नहीं जान सकते कि उसे क्या हो रहा है। कोई आनंद में है, तो भी बाहर से नहीं जान सकते कि क्या हो रहा है। कोई दुख में है, तो भी बाहर से नहीं जान सकते कि भीतर क्या हो रहा है। भीतर तो आप वही जान सकते हैं, जो आपके भीतर हो रहा हो।

इसलिए भक्त अक्सर पागल मालूम पड़े हैं। और लगा है कि उनके मस्तिष्क खराब हो गए हैं। लेकिन एक बार मस्तिष्क खराब करके भी देखना चाहिए। वह स्वाद ही और है। और अनुभव का रस एक बार आ जाए, तो आप दुनियाभर की समझदारी उसके लिए छोड़ने को राजी हो जाएंगे।

लेकिन कुछ छोटी-सी बातें बाधा बन जाती हैं। एक तो यही बात बाधा बन जाती है कि जो हमें नहीं हो रहा है, वह दूसरे को भी कैसे होगा!

आप मापदंड नहीं हैं और न कसौटी हैं। बहुत कुछ है, जो दूसरे को हो सकता है, जो आपको नहीं हो रहा। और ध्यान रखना, जो दूसरे को हो रहा है, वह आपको भी हो सकता है, थोड़े साहस की जरूरत है। और दुनिया में बड़े से बड़ा साहस एक है और वह साहस है इस बात का कि लोग चाहे हंसें, तो भी नए के प्रयोग करने का साहस।

बड़ा डर हमें होता है कि कोई क्या कहेगा! हम मरते वक्त तक लोगों का ही हिसाब रखते हैं कि कोई क्या कहेगा! इसी में हम जीवन को गंवा देते हैं। पड़ोसी क्या कहेंगे! कोई आपको नाचते और गाते और आनंदित होते देख लेगा, तो क्या कहेगा! पत्नी क्या कहेगी; पति क्या कहेगा; बच्चे आपके क्या कहेंगे! तो आप दूसरों के मंतव्य इकट्ठे करते रहना और जीवन की धार आपके पास से बही जा रही है।

आपके पास से बुद्ध भी गुजरे हैं, और आप उनसे भी चूक गए। और आपके पास से कृष्ण भी गुजरे हैं, और उनसे भी आप चूक गए। और क्राइस्ट भी आपके पास से निकले हैं, लेकिन आपको उनकी कोई सुगंध न लगी। क्योंकि आप हमेशा यह ख्याल कर रहे हैं कि कोई क्या कहेगा! आप नाहक ही वंचित हो जाते हैं।

फिर एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि धर्म तो एक प्रयोग है। और जब तक आप प्रयोग करके न देखें, तब तक आप कुछ भी नहीं कह सकते कि क्या हो सकता है। नए के प्रयोग को करके, देखकर ही निर्णय लेना चाहिए।

यहां दो तरह के लोग हैं। एक जिन्होंने प्रयोग किया है; और एक जो बिना प्रयोग यहां खड़े रहे। और मजे की बात यह है कि जिन्होंने प्रयोग किया है, वे शायद किसी से कुछ भी न कहें। लेकिन जिन्होंने प्रयोग नहीं किया है, वे तैयार हैं। उनका मन अब बिल्कुल तैयार है कि वे जाकर लोगों को कहें कि वहां क्या हुआ।

अगर आपने प्रयोग न किया हो, तो किसी से मत कहना कि वहां क्या हुआ। क्योंकि जो भी आप बोलोगे, वह झूठ होगा। वह आपका अनुभव नहीं है। आपने अनुभव किया हो, तो ही लोगों को कहना कि क्या हुआ, क्योंकि उस बात में कोई सच्चाई है। लेकिन हम ईमानदारी से जैसे जरा भी संबंधित नहीं रहे हैं। और हमारा सारा व्यक्तित्व झूठा हो गया है।

इधर मैं देखता हूं। इधर मैंने देखा, सैकड़ों लोग थे जो हिल रहे थे, लेकिन रोक भी रहे थे। कहीं सच में ही कोई चीज कंपा न जाए!

क्या रोक रहे हैं? आपके पास बचाने को भी क्या है? बड़ा मजा तो यह है कि बचाने को भी कुछ होता, तो भी कोई बात थी। बचाने को कुछ भी नहीं है। आप खो क्या देंगे? आपके पास है क्या, जो नष्ट हो जाएगा? जो भी आपके पास है, वह नष्ट होने योग्य है। लेकिन उसी को बचा रहे हैं!

सुना है मैंने कि फ्रांस में क्रांति हुई, तो बेस्टिले के किले में, जहां कि आजन्म अपराधियों को रखा जाता था, क्रांतिकारियों ने दीवालें तोड़ दीं, और वहां के हजारों कैदियों की जंजीरें तोड़ दीं, और उन्हें मुक्त कर दिया। लेकिन वे कैदी आजन्म कैदी थे। कोई बीस वर्ष से बंद था, कोई चालीस वर्ष से, कोई पचास वर्ष से भी बंद था। उनके हाथों और पैरों की जंजीरें सदा के लिए डाली गई थीं। जब वे मरेंगे, तभी उनकी जंजीरें निकलेंगी।

क्रांतिकारियों ने उनकी जंजीरें तोड़ दीं; उन्हें मुक्त कर दिया। और सोचा कि वे बड़े आनंदित होंगे। लेकिन आपको पता है क्या हुआ! आधे कैदी सांझ होते तक वापस लौट आए और उन्होंने कहा, बाहर हमें अच्छा नहीं लगता है। और उन्होंने कहा कि बिना जंजीरों के हम सो भी न सकेंगे। तीस साल, चालीस साल से जंजीरों के साथ सो रहे थे। अब हमें नींद भी न आएगी। और जंजीरें अब जंजीरें नहीं हैं, हमारे शरीर का हिस्सा हो गई हैं। हमारी जंजीरें वापस लौटा दो। और हमारी जो काली कोठरियां हैं, वे ठीक हैं, क्योंकि सूरज की रोशनी आंख को बहुत खलती है। और फिर इस बाहर की दुनिया में

जाकर हम करें भी क्या? हमारे सारे संबंध टूट चुके हैं। हमें कोई पहचानता नहीं। हमारा कोई नाता-रिश्ता नहीं है। यह कारागृह ही हमारा अब घर है। और हम यहीं मरना चाहते हैं।

क्रांतिकारियों ने कभी सोचा भी नहीं था कि कारागृह के कैदी भी वापस लौट आएंगे! उन्होंने सोचा भी नहीं था कि स्वतंत्रता को कोई ठुकराकर वापस लौट आएगा। लेकिन कारागृह से भी मोह हो जाता है और जंजीरों से भी प्रेम बन जाता है।

हम इसी तरह के लोग हैं। हमारा दुख भी हम से छोड़ते नहीं बनता। अगर आप रोना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। हंसना भी चाहते हैं, तो भी रोकते हैं। आप कुछ भी छोड़ नहीं सकते। आपकी जंजीरें बड़ी प्रीतिकर हो गई हैं। वे आभूषण मालूम होती हैं। और जब तक आप इन जंजीरों से भरे रहेंगे, परमात्मा का, स्वतंत्रता का आकाश आपको उपलब्ध नहीं हो सकेगा। आपको जंजीरें तोड़नी ही पड़ेंगी। आपको कटघरे तोड़ने ही पड़ेंगे। आपको फेंकना ही पड़ेगा बोझ, जो आप सिर पर लिए हैं। क्योंकि परमात्मा की यात्रा केवल उनके लिए है, जो निर्बोझ हैं, जो हलके हैं। भारी लोगों के लिए वह यात्रा नहीं है।

एक छोटा-सा प्रयोग था, आप न भी कर पाए हों हिम्मत, तो कुछ खो नहीं दिया। घर जाकर अकेले में हिम्मत करने की कोशिश करना। यहां दूसरों का डर रहा होगा। घर चले जाना। द्वार बंद कर लेना। मैं वहां भी आपके साथ काम कर सकता हूं। जैसा प्रयोग यहां किया है, एक फूल को रख लेना। उसमें भाव करना, अहंकार को छोड़ देना। और ठीक तीन चरणों में इस प्रयोग को घर पर होने देना। मैं वहां भी आ सकता हूं।

और एक बार आपको झलक मिल जाए, तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। आपका नया जन्म हो जाएगा। और जब तक आपका नया जन्म न हो, तब तक आपका आज का जीवन और जन्म बिल्कुल व्यर्थ है।

इस मुल्क में हम उस आदमी को पूजते रहे हैं, जिसको हम द्विज कहते हैं, ट्वाइस बॉर्न। द्विज हम उसे कहते हैं... । एक जन्म तो वह है, जो मां-बाप से मिलता है। वह असली जन्म नहीं है। एक जन्म वह है, जो आप और परमात्मा के बीच संपर्क से मिलता है। वही असली जन्म है। क्योंकि उसके बाद ही आप जीवन को उपलब्ध होते हैं।

मां-बाप से जो जन्म मिलता है, वह तो मृत्यु में ले जाता है और कहीं नहीं ले जाता। उसको जीवन कहना व्यर्थ है। एक और जीवन है, जो कभी नष्ट नहीं होता। और जब तक उसकी सुगंध, उसकी सुवास, आपको उसका संस्पर्श न हो जाए, तब तक आप जानना कि आप व्यर्थ ही भटक रहे हैं। और जहां हीरे कमाए जा सकते थे, वहां आप कंकड़ इकट्ठे करने में समय को नष्ट कर रहे हैं।

घर जाकर इस प्रयोग को कर लेना। और ऐसा नहीं है कि एक दफे प्रयोग कर लिया, तो काम पूरा हो गया। इसे आप रोज सुबह कर ले सकते हैं। अगर एक तीन महीने आपने इसको नियमित रूप से किया, आप दूसरे आदमी हो जाएंगे, द्विज हो जाएंगे। और आप अनुभव करेंगे कि पहली बार खुले आकाश में, खुली हवाओं में, खुले सूरज में, आपकी यात्रा शुरू हुई। और आप पहली दफा अनुभव करेंगे कि पृथ्वी पर होना धन्यभाग है; और यह जीवन एक सौभाग्य है, अभिशाप नहीं है। और परमात्मा ने इसे एक शिक्षण के लिए दिया है।

जिन मित्रों ने प्रयोग किया है, उनमें से बहुत-से मित्र गहरी झलक लिए हैं। वे इस प्रयोग को घर जारी रखेंगे, तो उनकी गहराई तो बहुत बढ़ जाएगी।

एक बात ध्यान रखें, ध्यान को स्नान जैसा बना लें, रोज का कृत्य। जैसे शरीर को रोज धो लेना पड़ता है, तभी वह ताजा और साफ होता है। ऐसे ही मन को भी रोज धो लें, तभी वह ताजा और साफ होता है। और जिनके मन ताजे और साफ नहीं हैं, वे भगवान का आवास नहीं बन सकते हैं।

उसे हम बुलाते हैं, लेकिन हम तैयार नहीं हैं। उसे हम चाहते हैं कि वह मेहमान बने, लेकिन हमारे भीतर गंदगी और कचरे के सिवाय कुछ भी नहीं है। साधारण अतिथि घर में आता है, तो हम बड़ी तैयारियां और बड़ी सजावट करते हैं। और हम परमात्मा को बुलाते हैं बिना किसी तैयारी के। वहां हमारी कोई सजावट नहीं है। और ध्यान रहे, वह अतिथि आने को तैयार है, लेकिन मेजबान तैयार नहीं है।

थोड़ा इसे तैयार करें। जैसा शरीर को धोते हैं, ऐसा रोज मन को भी धोते रहें। धुलते-धुलते मन दर्पण बन जाता है और उस दर्पण में परमात्मा की छवि उतरनी शुरू हो जाती है।

परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है। दर्शनशास्त्र से उसका कोई संबंध नहीं है। परमात्मा एक अनुभव है। और सारे शास्त्र भी आपके पास हों, तो व्यर्थ हैं, जब तक परमात्मा की अपनी निजी एकाध प्रतीति न हो। और एक छोटी-सी प्रतीति और दुनिया दूसरी हो जाती है। फिर इस दुनिया में कोई दुख नहीं है, और कोई चिंता नहीं है, और कोई मृत्यु नहीं है।

अमृत की तरफ एक इशारा हमने यहां किया है। एक प्रयोग छोटा-सा किया है। जिन्होंने हिम्मत की, वे उसे दोहराएं। जिन्होंने हिम्मत नहीं की, वे भी घर जाकर एकांत में हिम्मत करने की कोशिश करें। अगर आपने ठीक श्रम किया, तो एक बात पक्की है, परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। और छोटा-सा भी प्रयास पुरस्कृत होता है।

हमारी बैठक पूरी हुई।

गीता दर्शन अध्याय 12

ग्यारहवां प्रवचन

आधुनिक मनुष्य की साधना

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।। 19।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। 20।।

तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष

मेरे को प्रिय है।

और जो मेरे को परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

पहले कुछ प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है, क्या बंदरों की तरह उछल-कूद से ध्यान उपलब्ध हो सकेगा?

क्योंकि आप बंदर हैं, इसलिए बिना उछल-कूद के आपके भीतर के बंदर से छुटकारा नहीं है। यह ध्यान के कारण उछल-कूद की जरूरत नहीं है, आपके बंदरपन के कारण है।

जो आपके भीतर छिपा है, उसे जन्मों-जन्मों तक दबाए रहें, तो भी उससे छुटकारा नहीं है। उसे झाड़ ही देना होगा, उसे बाहर फेंक ही देना

होगा। कचरे को दबा लेने से कोई मुक्ति नहीं होती। उसे झाड़-बुहारकर बाहर कर देना जरूरी है।

बंदर को शांत करने के दो रास्ते हैं, एक रास्ता है कि जोर-जबरदस्ती से उसे बिठा दो, डंडे के डर से कि हिलना मत, डुलना मत, नाचना मत, कूदना मत। ऊपर से बंदर अपने को सम्हाल लेगा, लेकिन भीतर के बंदर का क्या होगा? ऊपर से बंदर अपने को रोक लेगा, लेकिन भीतर और शक्ति इकट्ठी हो जाएगी। और अगर इस तरह बंदर को दबाया, तो बंदर पागल हो जाएगा। बहुत लोग इसी तरह पागल हुए हैं। पागलखाने उनसे भरे पड़े हैं। क्योंकि भीतर जो शक्ति थी, उसने उसको जबरदस्ती दबा लिया, वह शक्ति विस्फोटक हो गई है।

एक रास्ता यह है कि बंदर को नचाओ, कुदाओ, दौड़ाओ। बंदर थक जाएगा और शांत होकर बैठ जाएगा। वह शांति अलग होगी; ऊपर से दबाकर आ गई शांति अलग होगी।

आज मनोविज्ञान इस बात को बड़ी गहराई से स्वीकार करता है कि आदमी के भीतर जो भी मनोवेग हैं, उनका रिप्रेशन, उनका दमन खतरनाक है। उनकी अभिव्यक्ति योग्य है।

लेकिन अभिव्यक्ति का मतलब किसी पर क्रोध करना नहीं है, किसी पर हिंसा करना नहीं है। अभिव्यक्ति का अर्थ है, बिना किसी के संदर्भ में मनोवेग को आकाश में समर्पित कर देना। और जब मनोवेग समर्पित हो जाता है और भीतर की दबी हुई शक्ति छूट जाती है, मुक्त हो जाती है, तो एक शांति भीतर फलित होती है। उस शांति में ध्यान की तरफ जाना आसान है।

यह उछल-कूद ध्यान नहीं है। लेकिन उछल-कूद से आपके भीतर की उछल-कूद थोड़ी देर को फिंक जाती है, बाहर हट जाती है। उस मौन के क्षण में, जब बंदर थक गया है, भीतर उतरना आसान है।

जो लोग आधुनिक मनोविज्ञान से परिचित हैं, वे इस बात को बहुत ठीक से समझ सकेंगे। पश्चिम में अभी एक नई थैरेपी, एक नया मनोचिकित्सा का ढंग विकसित हुआ है। उस थैरेपी का नाम है, स्क्रीम थैरेपी। और पश्चिम के बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिक उसके परिणामों से आश्चर्यचकित रह गए हैं। इस थैरेपी, इस चिकित्सा की मूल खोज यह है कि बचपन से ही प्रत्येक व्यक्ति अपने रोने के भाव को दबा रहा है। रोने का उसे मौका नहीं मिला है। पैदा होने के बाद पहला काम बच्चा करता है, रोने का। आपको पता है, अगर आप उसको भी दबा दें, तो बच्चा मर ही जाएगा।

पहला काम बच्चा करता है रोने का, क्योंकि रोने की प्रक्रिया में ही उसकी श्वास चलनी शुरू होती है। अगर हम उसे वहीं रोक दें कि रो मत, तो वह मरा हुआ ही रहेगा, वह जिंदा ही नहीं हो पाएगा। इसलिए बच्चा पैदा हो और अगर न रोए, तो मां-बाप चिंतित हो जाएंगे, डाक्टर परेशान हो जाएगा। रुलाने की कोशिश की जाएगी कि वह रो ले, क्योंकि रोने से उसकी जीवन प्रक्रिया शुरू होगी। लेकिन बच्चे को तो हम रोकते भी नहीं।

लेकिन जैसे-जैसे बच्चा बढ़ने लगता है, हम उसके रोने की प्रक्रिया को रोकने लगते हैं। हमें इस बात का पता नहीं है कि इस जगत में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जिसका जीवन के लिए कोई उपयोग न हो। अगर उपयोग न होता, तो वह होती ही न।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे के रोने की जो कला है, वह उसके तनाव से मुक्त होने की व्यवस्था है। और बच्चे पर बहुत तनाव हैं। बच्चे को भूख लगी है और मां दूर है या मां काम में उलझी है। बच्चे को भी क्रोध आता है। और अगर बच्चा रो ले, तो उसका क्रोध बह जाता है और बच्चा हलका हो जाता है। लेकिन मां उसे रोने नहीं देगी।

मनसविद कहते हैं कि उसे रोने देना; उसे प्रेम देना, लेकिन उसके रोने को रोकने की कोशिश मत करना। हम क्या करेंगे? बच्चे को खिलौना पकड़ा

देंगे कि मत रोओ। बच्चे का मन डाइवर्ट हो जाएगा। वह खिलौना पकड़ लेगा। लेकिन रोने की जो प्रक्रिया भीतर चल रही थी, वह रुक गई। और जो आंसू बहने चाहिए थे, वे अटक गए। और जो हृदय हलका हो जाता बोझ से, वह हलका नहीं हो पाया। वह खिलौने से खेल लेगा, लेकिन यह जो रोना रुक गया, इसका क्या होगा? यह विष इकट्ठा हो रहा है।

मनसविद कहते हैं कि बच्चा इतना विष इकट्ठा कर लेता है, वही उसकी जिंदगी में दुख का कारण है। और वह उदास रहेगा। आप इतने उदास दिख रहे हैं, आपको पता नहीं कि यह उदासी हो सकता था न होती; अगर आप हृदयपूर्वक जीवन में रोए होते, तो ये आंसू आपकी पूरी जिंदगी पर न छाते; ये निकल गए होते। और सब तरह का रोना थैराप्यूटिक है। हृदय हलका हो जाता है। रोने में सिर्फ आंसू ही नहीं बहते, भीतर का शोक, भीतर का क्रोध, भीतर का हर्ष, भीतर के मनोवेग भी आंसुओं के सहारे बाहर निकल जाते हैं। और भीतर कुछ इकट्ठा नहीं होता है।

तो स्क्रीम थैरेपी के लोग कहते हैं कि जब भी कोई आदमी मानसिक रूप से बीमार हो, तो उसे इतने गहरे में रोने की आवश्यकता है कि उसका रोआं-रोआं, उसके हृदय का कण-कण, श्वास, धड़कन-धड़कन रोने में सम्मिलित हो जाए; एक ऐसे चीत्कार की जरूरत है, जो उसके पूरे प्राणों से निकले, जिसमें वह चीत्कार ही बन जाए।

हजारों मानसिक रोगी ठीक हुए हैं चीत्कार से। और एक चीत्कार भी उनके न मालूम कितने रोगों से उन्हें मुक्त कर जाती है। लेकिन उस चीत्कार को पैदा करवाना बड़ी कठिन बात है। क्योंकि आप इतना दबाए हैं कि आप अगर रोते भी हैं, तो रोना भी आपका झूठा होता है। उसमें आपके पूरे प्राण सम्मिलित नहीं होते। आपका रोना भी बनावटी होता है। ऊपर-ऊपर रो लेते हैं। आंख से ही आंसू बह जाते हैं, हृदय से नहीं आते। लेकिन चीत्कार ऐसी चाहिए, जो आपकी नाभि से उठे और आपका पूरा शरीर उसमें

समाविष्ट हो जाए। आप भूल ही जाएं कि आप चीत्कार से अलग हैं; आप एक चीत्कार ही हो जाएं।

तो कोई तीन महीने लगते हैं मनोवैज्ञानिकों को, आपको रुलाना सिखाने के लिए। तीन महीने निरंतर प्रयोग करके आपको गहरा किया जाता है।

करते क्या हैं इस थैरेपी वाले लोग? आपको छाती के बल लिटा देते हैं जमीन पर। और आपसे कहते हैं कि जमीन पर लेटे रहें और जो भी दुख मन में आता हो, उसे रोकें मत, उसे निकालें। रोने का मन हो, रोएं; चिल्लाने का मन हो, चिल्लाएं।

तीन महीने तक ऐसा बच्चे की भांति आदमी लेटा रहता है जमीन पर रोज घंटे, दो घंटे। एक दिन, किसी दिन वह घड़ी आ जाती है कि उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं विद्युत के प्रवाह से। वह आदमी आंख बंद कर लेता है, वह आदमी जैसे होश में नहीं रह जाता, और एक भयंकर चीत्कार उठनी शुरू होती है। कभी-कभी घंटों वह चीत्कार चलती है। आदमी बिल्कुल पागल मालूम पड़ता है। लेकिन उस चीत्कार के बाद उसकी जो-जो मानसिक तकलीफें थीं, वे सब तिरोहित हो जाती हैं।

यह जो ध्यान का प्रयोग मैं आपको कहा हूं, ये आपके जब तक मनोवेग--रोने के, हंसने के, नाचने के, चिल्लाने के, चीखने के, पागल होने के--इनका निरसन न हो जाए, तब तक आप ध्यान में जा नहीं सकते। यही तो बाधाएं हैं।

आप शांत होने की कोशिश कर रहे हैं और आपके भीतर वेग भरे हुए हैं, जो बाहर निकलना चाहते हैं। आपकी हालत ऐसी है, जैसे केतली चढ़ी है चाय की। ढक्कन बंद है। ढक्कन पर पत्थर रखे हैं। केतली का मुंह भी बंद किया हुआ है और नीचे से आग भी जल रही है। वह जो भाप इकट्ठी हो रही है, वह

फोड़ देगी केतली को। विस्फोट होगा। दस-पांच लोगों की हत्या भी हो सकती है।

इस भाप को निकल जाने दें। इस भाप के निकलते ही आप नए हो जाएंगे और तब ध्यान की तरफ प्रयोग शुरू हो सकता है।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि बुद्ध ने, महावीर ने और लाओत्से ने भी क्या ऐसी ही बात सिखाई है?

नहीं; लाओत्से, और बुद्ध, और महावीर ने ऐसी बात नहीं सिखाई, क्योंकि वे आपको नहीं सिखा रहे थे; वे दूसरे तरह के लोगों को सिखा रहे थे। आप मौजूद होते, तो उनको भी यही सिखाना पड़ता।

बुद्ध और महावीर जिन लोगों से बात कर रहे थे, वे ग्रामीण लोग थे--सीधे, शांत, सरल, निर्दोष, स्वाभाविक। उन्होंने कुछ दमन नहीं किया हुआ था। उन्होंने कुछ रोका नहीं था। जितना आदमी सभ्य होता है, उतना दमित होता है। सभ्यता दमन का एक प्रयोग है।

फ्रायड ने तो यह स्वीकार किया है कि सभ्यता हो ही नहीं सकती, अगर दमन न हो।

इसलिए आप देखें, एक मजे की घटना। आदिवासी सरल हैं, लेकिन सभ्य नहीं हो पाते। दुनिया में छोटे-छोटे कबीले हैं जंगली लोगों के। बड़े अच्छे लोग हैं, प्यारे लोग हैं, सरल हैं, आनंदित हैं, लेकिन सभ्य नहीं हो पाते। आप समझते हैं, क्या कारण है?

आखिर जितनी भी अच्छी कौमें हैं, अच्छी जातियां हैं, जंगलों में छिपी हुई, निर्दोष हैं, वे सभ्य क्यों नहीं हो पातीं? न्यूयार्क और बंबई जैसे नगर वे क्यों नहीं बसा पातीं? आकाश में हवाई जहाज क्यों नहीं उड़ा पातीं? चांद

पर क्यों नहीं पहुंच पातीं? एटम और हाइड्रोजन बम क्यों नहीं खोज पातीं? रेडियो और टेलीविजन क्यों नहीं बना पातीं?

ये अच्छे लोग, शांत लोग नाचते तो हैं, लेकिन चांद पर नहीं पहुंच पाते। गीत तो गाते हैं, लेकिन एटम बम नहीं बना पाते। खाने को भी मुश्किल से जुटा पाते हैं; कपड़ा भी न के बराबर, अर्धनग्न। आधे भूखे, लेकिन हैं निर्दोष। चोरी नहीं करते हैं, झूठ नहीं बोलते हैं। वचन दें, तो प्राण भी चले जाएं, तो भी पूरा करते हैं। लेकिन ये लोग सभ्य क्यों नहीं हो पाते? समृद्ध क्यों नहीं हो पाते?

तो फ्रायड का कहना है, और ठीक कहना है, कि ये लोग इतने आनंदित हैं और इतने सरल हैं कि इनके भीतर भाप इकट्ठी नहीं हो पाती, जिससे सभ्यता का इंजन चलता है। इनका क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता, घृणा इकट्ठी नहीं हो पाती, कामवासना इकट्ठी नहीं हो पाती। वही इकट्ठी हो जाए, तो उसी स्टीम, उसी भाप को फिर दूसरी तरफ मोड़ा जा सकता है। तो फिर उससे ही मकान जमीन से उठना शुरू होता है, आकाश तक पहुंच जाता है। वह आपके दमित वेगों की भाप है। नहीं तो झोपड़े से आप आकाश छूने वाले मकान तक नहीं जा सकते।

यह सारी की सारी सभ्यता डाइवर्शन है आपकी शक्तियों का। इसलिए परिणाम साफ है कि कोई आदमी सरल हो, शांत हो, स्वाभाविक हो, तो सभ्यता का यह जाल खड़ा नहीं हो सकता। और सभ्यता का जाल खड़ा करना हो, तो आपके भीतर जितना उपद्रव है, उसके निकलने के सब द्वार बंद करने जरूरी हैं; सब द्वार बंद करके उसे एक ही द्वार से निकलने देना जरूरी है।

इसलिए हमारी शिक्षा की सारी प्रक्रिया आपकी समस्त तरह की वासनाओं को इकट्ठा करके महत्वाकांक्षा में लगाने की प्रक्रिया है, सारी

वासनाओं को इकट्ठा करके अहंकार की पूर्ति की दिशा में दौड़ाने की प्रक्रिया है।

इसलिए फ्रायड ने यह भी कहा है कि अगर हम आदमी को सरल बनाने में सफल हो जाएं, तो वह पुनः असभ्य हो जाएगा। अब यह बड़ी कठिनाई है। अगर सभ्यता चाहिए, तो आदमी जटिल होगा, रुग्ण होगा, विक्षिप्त होगा। अगर शांति चाहिए, आनंद चाहिए, स्वाभाविकता चाहिए, तो सभ्यता खो जाएगी। आदमी गरीब होगा, प्रसन्न होगा, समृद्ध नहीं हो सकता।

तो फ्रायड ने तो यह कहा है कि आदमी एक असंभव बीमारी है। या तो यह गरीब होगा, सभ्यता के सुख इसे नहीं मिल सकेंगे, सभ्यता की समृद्धि इसे नहीं मिल सकेगी। और अगर यह समृद्ध होगा, तो यह पागल हो जाएगा, विक्षिप्त हो जाएगा, शांत नहीं रह जाएगा।

बुद्ध और महावीर जिनको समझा रहे थे, वे बड़े सरल लोग थे। उनका कुछ दबा हुआ नहीं था। इसलिए उन्हें ध्यान में सीधे ले जाया जा सकता था। आप सीधे ध्यान में नहीं ले जाए जा सकते। आप बहुत जटिल हैं। आप उलझन हैं एक।

पहले तो आपकी उलझन को सुलझाना पड़े, और आपकी जटिलता कम करनी पड़े, और आपके रोगों से थोड़ा छुटकारा करना पड़े। टेम्परेरी ही सही, चाहे अस्थायी ही हो, लेकिन थोड़ी देर के लिए आपकी भाप को अलग कर देना जरूरी है, जो आपको उलझाए हुए है। तो आप ध्यान की तरफ मुड़ सकते हैं, अन्यथा आप नहीं मुड़ सकते।

इसलिए दुनिया की सारी पुरानी पद्धतियां ध्यान की, आपके कारण व्यर्थ हो गई हैं। आज उनसे कोई काम नहीं हो रहा है। आपमें सौ में से कभी एकाध आदमी मुश्किल से होता है, जिस पर पुरानी पद्धति पुराने ही ढंग में

काम कर पाए। निन्यानबे आदमियों के लिए कोई पुरानी पद्धति काम नहीं कर पाती।

उसका कारण यह नहीं है कि पुरानी पद्धतियां गलत हैं। उसका कुल कारण इतना है कि आदमी नया है और पद्धतियां जिन आदमियों के लिए विकसित की गई थीं, वे पृथ्वी से खो गए हैं। आदमी दूसरा है। यह जो इलाज है, यह आपके लिए विकसित नहीं हुआ था। आपने इस बीच नई बीमारियां इकट्ठी कर ली हैं।

तीन हजार, चार हजार, पांच हजार साल पहले ध्यान के जो प्रयोग विकसित हुए थे, वे उस आदमी के लिए थे, जो मौजूद था। वह आदमी अब नहीं है। उस आदमी का जमीन पर कहीं कोई निशान नहीं रह गया है। अगर कहीं दूर जंगलों में थोड़े से लोग मिल जाते हैं, तो हम उनको जल्दी से शिक्षित करके सभ्य बनाने की पूरी कोशिश में लगे हैं। और हम सोचते हैं, हम बड़ी कृपा कर रहे हैं, उनकी सेवा कर रहे हैं।

अभी एक महिला मेरे पास आई थी। अपना जीवन लगा दिया है आदिवासियों को शिक्षित करने में। वह मेरे पास आई थी कि कुछ रास्ते बताइए कि हम आदिवासियों को कैसे सभ्य बनाएं! मैंने उससे पूछा कि पहले तू मुझे यह बता कि जो सभ्य हो गए हैं, ज्यादा से ज्यादा आदिवासी भी सभ्य होकर यही हो पाएंगे, और क्या होगा! तो तुझे क्या परेशानी हो रही है? और ये जो सभ्य लोग दिखाई पड़ रहे हैं, क्या इनसे तुझे तृप्ति है कि थोड़े आदिवासियों को इन्हीं जैसा बना देने से कोई दुनिया का गौरव और कोई सुख-शांति बढ़ जाएगी?

तो वह बहुत घबड़ा गई। उसने कहा, मैंने अपने जीवन के तीस साल इसी में लगा दिए, लेकिन मुझे कभी किसी ने यह कहा नहीं। यह मैं सोचती हूं, तब तो घबड़ाहट होती है कि शिक्षित होकर ज्यादा से ज्यादा यही होगा। मगर जो शिक्षित हो गए हैं, उनको क्या लाभ है!

मगर उस महिला की भी अपनी मजबूरी है। अपनी कामवासना को दबा लिया है। विवाह नहीं किया है; किसी से कभी प्रेम नहीं किया; ब्रह्मचर्य को मानने वाली है। क्रोध नहीं करती है; अक्रोध का व्रत लिया है। झूठ नहीं बोलती है; सच बोलने की कसम खाई है। इस तरह सब भांति अपने को रोक रखा है। अब वह जो भाप इकट्ठी हो गई है, उसका क्या करना? वह जो जीवन ऊर्जा इकट्ठी हो गई है, उसका क्या करना?

तो वह पागल की तरह आदिवासियों की सेवा में लगी है, बिना इसकी फिक्र किए कि सेवा का परिणाम क्या होगा! तुम्हारी भाप तो निकली जा रही है, लेकिन जिन पर निकल रही है, उनका परिणाम क्या है? क्या फायदा होगा?

आदमी जैसा आज है, ऐसा आदमी जमीन पर कभी भी नहीं था। यह बड़ी नई घटना है। और इस नई घटना को सोचकर ध्यान की सारी पद्धतियों में रेचन, कैथार्सिस का प्रयोग जोड़ना अनिवार्य हो गया है। इसके पहले कि आप ध्यान में उतरें, आपका रेचन हो जाना जरूरी है। आपकी धूल हट जानी जरूरी है।

लेकिन वे मित्र समझदार हैं। और उन्होंने लिखा है कि आप हमें धोखा न दे पाएंगे। इस उछल-कूद से कोई भी लाभ होने वाला नहीं है।

एक बात तो पक्की है कि उन्होंने उछल-कूद नहीं की। और वही उछल-कूद जो बच गई है, उनके इस प्रश्न में निकली है। वे कर लेते, तो हलके हो जाते। और बंदर उनके पास निश्चित है और गहरा है। चैन नहीं पड़ी उनको रात जाकर। वे बेचैन रहे होंगे रातभर; शायद सोए भी न हों; क्योंकि बड़े क्रोध से प्रश्न लिखा है। प्रश्न कम है, गाली-गलौज ज्यादा है। इससे तो बेहतर

था कि यहां निकाल ली होती, तो रात हलके सो गए होते और प्रश्न में गाली-गलौज न होती।

और मैं आपको धोखा दे रहा हूं! क्या प्रयोजन हो सकता है? और आपके नाचने से मुझे क्या लाभ होगा? और आप बंदर की तरह उछल-कूद कर लेंगे, तो किसका हित सधने वाला है?

लिखा है कि आप हमें धोखा न दे पाएंगे।

पर तुम्हें धोखा देने की जरूरत भी क्या है? प्रयोजन भी क्या है? पर वे यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आएंगे। वे असल में यह कह रहे हैं कि हम धोखे में न आएंगे। वे यह कह रहे हैं कि हम जैसे हैं, हम ऐसे ही रहेंगे। हम किसी को बदलने का कोई मौका न देंगे।

मत दें। आपकी मर्जी है। आप अपने से प्रसन्न हों, तो यहां मुझे सुनने आने की भी क्या जरूरत है! आप जैसे हैं भले हैं। आपको यहां परेशान होने की भी क्या जरूरत है! आपको ध्यान में आने की भी क्या जरूरत है! लेकिन अगर आने की कोई जरूरत है, अगर चिकित्सक के पास आप जाते हैं, तो बीमार हैं, इस बात की खबर देते हैं।

मैं एक चिकित्सक हूं, इससे ज्यादा नहीं। अगर आप मेरे पास आते हैं, तो आप बीमार होने की खबर देते हैं। और आपकी बीमारी को अगर अलग करने के लिए मैं कोई दवा बताऊं, तो आप कहते हैं, आप हमें धोखा न दे पाओगे। तो आने की कोई जरूरत नहीं है। आप अपने घर मजे में हैं। किसी दिन मुझे जरूरत होगी, मैं आपके घर आ जाऊंगा।

लेकिन आप मत आएं। आप अपने को बचाएं। आप जितना अपने को बचाएंगे, उतना ही लाभ होगा! क्योंकि उतने ही आप परेशान होंगे, पीड़ित होंगे, पागल होंगे। और जिस दिन बात सीमा के बाहर चली जाए, उस दिन कहीं बिजली के शॉक आपको लगाने पड़ेंगे।

मैं कहता हूं, अभी कूद लें, ताकि बिजली के शॉक न लगाने पड़ें। और अभी कूद लें, ताकि पागलखाने में न बिठालना पड़े। अपने पागलपन को अपने ही हाथ से बाहर फेंक दें, ताकि किसी और को आपके पागलपन को फेंकने के लिए कोई उपाय और कोई सर्जरी न करनी पड़े। लेकिन आप नहीं सोचते।

इसे हम कई तरह से समझने की कोशिश करें।

सिर्फ इंगलैंड एक मुल्क है, जहां के स्कूल के बच्चे पत्थर नहीं फेंक रहे हैं; सारी दुनिया में फेंके जा रहे हैं। सिर्फ इंगलैंड अकेला मुल्क है, जहां के बच्चे स्कूल में शिक्षकों को पत्थर नहीं मार रहे हैं, गाली नहीं दे रहे हैं, परेशान नहीं कर रहे हैं। तो सारी दुनिया के विचारशील लोग परेशान हैं कि इंगलैंड में यह क्यों नहीं हो रहा है! सारी दुनिया में बड़े पैमाने पर हो रहा है। तो एक बात खोजी गई और वह यह कि इंगलैंड के हर स्कूल में बच्चों को कम से कम दो घंटे खेल खेलना पड़ रहा है। वही कारण है, और कोई कारण नहीं है।

जो बच्चा दो घंटे तक हाकी की चोट मार रहा है, वह पत्थर फेंकने में उत्सुक नहीं रह जाता। उसने फेंकने का काम पूरा कर लिया। जो बच्चा फुटबाल को लात मार रहा है दो घंटे तक, उसकी इच्छा नहीं रह जाती अब किसी को लात मारने की। लात मारने की वासना निकल गई।

इंगलैंड के मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि सारी दुनिया में अगर बच्चों के उपद्रव रोकने हैं, तो उनको खेलने की गहन प्रक्रियाएं देनी होंगी, जिनमें उनकी हिंसा निकल जाए। और बच्चों में बड़ी हिंसा है, क्योंकि बच्चों में बड़ी ताकत है।

हमारे स्कूल में बच्चा क्या कर रहा है? पांच-छः घंटे आप उसको बिठा रखते हैं। कोई बच्चा प्रकृति से पांच-छः घंटे एक क्लास के रूम में बैठने को पैदा नहीं हुआ है। प्रकृति ने कोई इंतजाम नहीं किया है, कोई बिल्ट-इन

व्यवस्था नहीं है भीतर कि छः घंटे बच्चे को बिठाया जा सके। छः घंटे बच्चे को बिठाने का मतलब है कि छः घंटे जो शक्ति प्रकट होनी चाहती थी, वह रुक रही है, वह रुक रही है।

जरा स्कूल से बच्चे जब छूटते हैं, उनको देखें। जैसे ही छुट्टी होती है, लगता है, वे नरक से छूटे। उछाल रहे हैं बस्ते को, फेंक रहे हैं किताबों को, और इतने आनंदित हो रहे हैं कि जैसे जीवन मिल गया! आपने जरूर उनके साथ कोई अपराध किया है पांच-छः घंटे। नहीं तो इतनी खुशी स्कूल से छूटकर न मिलती।

और यह अपराध जारी रहेगा। यह बीस साल की उम्र, पच्चीस साल की उम्र तक जारी रहेगा। धीरे-धीरे वे इसी दबी हुई व्यवस्था के लिए राजी हो जाएंगे। फिर उनका सारा जीवन गड़बड़ हो जाएगा। क्योंकि ऊर्जा जो दब गई और प्रकट होने का जिसे मार्ग न मिला, वह क्रोध बन जाती है, हिंसा बन जाती है, फिर नए-नए मार्गों से मार्ग खोजती है। फिर वे सब तरह के उपद्रव करेंगे। फिर वे कोई छोटी भी बात का बहाना ले लेंगे और उनकी हिंसा बाहर होने लगेगी।

हम सब हिंसा से भरे हुए लोग हैं। लेकिन अगर समझपूर्वक समझा जाए और जीवन को बदलने की ठीक व्यवस्था का ख्याल रखा जाए, तो हिंसा भी सृजनात्मक हो सकती है। हिंसा भी क्रिएटिव हो सकती है। और क्रोध से भी फूल खिल सकते हैं, अगर अकल हो।

यह जो मैं आपसे कह रहा हूं ध्यान का प्रयोग, यह आपकी हिंसा, आपके क्रोध, आपकी कामवासना, आपकी घृणा, इनको सृजनात्मक रूप से रूपांतरित करने का प्रयोग है। यह एक क्रिएटिव ट्रांसफार्मेशन है। क्योंकि आपका लक्ष्य ध्यान है।

अगर आप चीख भी रहे हैं, तो आपका लक्ष्य ध्यान है। आपके चीखने की ऊर्जा भी ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है। अगर आप अपने क्रोध को

भी फेंक रहे हैं, नाराजगी को भी फेंक रहे हैं, रोने और दुख को भी फेंक रहे हैं, तो भी आपका लक्ष्य ध्यान है। यह ऊर्जा ध्यान की तरफ प्रवाहित हो रही है।

अगर आप थोड़े दिन तैयार हो जाएं मुझसे धोखा खाने को... आप अपने से तो धोखा खा ही रहे हैं बहुत दिन से! यह भी प्रयोग कर लेने जैसा है। तीन महीने में आपसे मैं कुछ छीन न लूंगा, क्योंकि आपके पास कुछ है भी नहीं, जो छीना जा सके।

मेरी दृष्टि में तो आपके पास ऐसी कोई मूल्यवान चीज नहीं है, जो छीनी जा सके। आपके पास हो, तो उसे सम्हालकर आप रखें, मेरे जैसे लोगों के पास न आएं, क्योंकि ऐसे लोग आपको बदलने की कोशिश में ही लगे हुए हैं।

तीन महीने इस प्रयोग को करके देखें। तीन दिन के बाद आपको फर्क दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। और ऐसा नहीं कि इन एक मित्र ने ही पत्र लिखा है। पांच-सात उन मित्रों के भी पत्र हैं, जिनको कल, पहली दफे ही परिणाम दिखाई पड़ना शुरू हुआ।

वे बुद्धिमान लोग हैं। हालांकि इन मित्र ने लिखा है कि हम बुद्धिमानों को आप धोखा न दे पाएंगे। मगर बुद्धिमान वह है, जो प्रयोग करके कुछ कहता है। बुद्धिहीन वह है, जो बिना प्रयोग किए कुछ कहता है। बिना प्रयोग किए आपकी बात का कोई मूल्य ही नहीं है।

पांच-सात मित्रों ने लिखा है। एक मित्र ने लिखा है कि मुझे इतनी शांति कभी अनुभव नहीं हुई। लेकिन बीस मिनट तक मुझसे आवाजें निकलती रहीं, जिनका मुझे ही भरोसा नहीं कि मेरे भीतर कहां से आईं! क्योंकि इस तरह की आवाजें मैंने कभी नहीं की हैं।

आपने न की हों, लेकिन आप करना चाहते हैं। आपके भीतर वे दबी पड़ी हैं। और आप कहीं भी कर नहीं सकते थे। कहीं भी करते, तो आप पागल

समझे जाते। यहां आप कर रहे थे, तो आपको ख्याल था कि आप ध्यान में जा रहे हैं, तो आपने अपने को खुला छोड़ दिया। इस खुले भाव से जो भीतर दबा था, वह निकल गया। जैसे मवाद निकल गई हो घाव से। और भीतर घाव हलका और भरने के लिए तैयार हो गया हो। तो उन मित्र ने लिखा है कि ऐसी शांति मुझे जीवन में कभी भी नहीं मिली।

एक मित्र ने लिखा है कि आश्चर्यचकित हूं कि इस भांति नाचने-कूदने से आनंद का कैसे भाव आया!

जब आप नाचते-कूदते हैं हृदयपूर्वक--नकली नाचते-कूदते हों तो कोई बहुत फर्क नहीं होगा, कवायद होगी, थोड़ा व्यायाम हो जाएगा--लेकिन अगर हृदयपूर्वक नाचते हों, तो आप पुनः बच्चे हो गए। आप फिर बचपन में लौट गए। आप फिर छोटे बच्चे की तरह सरल हो गए। और बच्चे जिस आनंद की झलक को देख पाते हैं, उसको आप भी देख पा रहे हैं।

संतों ने कहा है कि बुढ़ापे में जो पुनः बच्चों की भांति हो जाएं, वे ही संत हैं। आप छोटे बच्चे की भांति हो गए। इतने लोगों के सामने छोटा बच्चा भी शर्माएगा नाचने में। और आप नाचे-कूदे। तो आपने भय छोड़ दिया। दूसरों के मंतव्य का भय छोड़ दिया। दूसरे क्या कहेंगे, यह भय छोड़ दिया।

बच्चे में यह भय नहीं होता। दूसरे क्या कहेंगे, उसे प्रयोजन नहीं है। उसके लिए जो आनंदपूर्ण होता है, वह करता है। जैसे-जैसे बड़ा होता है, खुद के आनंद की फिक्र छोड़ देता है, दूसरे क्या कहेंगे, इसका चिंतन करने लगता है। बस, यही बच्चे की विकृति है।

आप फिर बच्चे हो गए और आपने सारी फिक्र छोड़ दी। आप पुनः अकेले हो गए, समाज से मुक्त हो गए। जैसे ही आपने चिंता छोड़ी कि कोई क्या कहेगा, यह जो हलकापन भीतर आया, इस हलकेपन में आनंद की झलक बिल्कुल आसान है। और बच्चे की तरह जो फिर से हो जाए, वह परमात्मा

को यहीं अनुभव करने लगेगा अपने चारों ओर। लेकिन बुद्धिमान, अतिशय बुद्धिमान... ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को एक लाटरी मिल गई थी। पांच लाख रुपये जीत लिए थे। सारा गांव चकित था। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए। और लोग मुल्ला से पूछने लगे कि तुमने यही नंबर कैसे चुना! गांव का जो बुद्धिमान था, सबने कहा कि हमारी तरफ से तुम ही पूछ लो। तो गांव का जो बुद्धिमान आदमी था उसने सबकी तरफ से मुल्ला से पूछा कि पूरा गांव एक ही जिज्ञासा से भरा है कि तुमने यह उनहत्तर, सिक्सटी नाइन नंबर तुमने कैसे चुना? किस तरकीब से?

तो मुल्ला ने कहा, अब तुम पूछते हो, तो मैं तुम्हें बता देता हूं। एक स्वप्न में मुझे यह नंबर प्रकट हुआ। एक स्वप्न मैंने देखा रात में कि मैं एक नाटक देख रहा हूं। और वहां मंच पर सात कतारें नर्तकियों की खड़ी हैं और हर कतार में सात नर्तकियां हैं। वे सब नाच रही हैं। तो सात सतैयां उनहत्तर, ऐसा मैंने सोचा और सुबह मैंने उनहत्तर नंबर की टिकट खरीद ली।

पर, उस आदमी ने कहा, अरे, पागल, सात सतैयां उनहत्तर होते ही नहीं। सात सतैयां तो होते हैं उनचास, फोर्टी नाइन!

तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, ओ.के., सो यू बी दि मैथमेटीशियन। तो तुम गणितज्ञ हो जाओ, लेकिन लाटरी मैंने जीती है।

वह जो नाच रहा है, कूद रहा है, वह आपसे कहेगा, सो यू बी दि वाइज मैन, यू बी दि मैथमेटीशियन। वह आपकी फिक्र नहीं करेगा। न मीरा ने आपकी फिक्र की है, न चैतन्य ने आपकी फिक्र की है। वे नाच लिए हैं और वे आपसे कहते हैं, आप हो जाओ बुद्धिमान, हमें रहने दो पागल। क्योंकि हमें पागलपन में जो मिल रहा है, वह हमें नहीं दिखता कि तुम्हारी बुद्धिमानी में भी तुम्हें मिल रहा है।

और एक ही सबूत है बुद्धिमानी का, क्या मिल रहा है? बुद्धिमान कौन है? बुद्धिमानी का एक ही सबूत है कि क्या मिल रहा है जीवन में--कितना आनंद, कितना रस, कितना सौंदर्य, कितना सत्य, कितना परमात्मा। और कोई सबूत बुद्धिमानी का नहीं है।

तो मैं तो आपसे कहूंगा, जिनको बुद्धिमान रहना हो, मजे से बुद्धिमान रहें। लेकिन जिनको जीवन का रस जानना हो, उन्हें सस्ती बुद्धिमानी से बचना जरूरी है।

हां, मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी बात मानकर नाचते-कूदते रहें। वह बुद्धिमानी नहीं है। मैं आपसे यह कहता हूं कि मैं जो कह रहा हूं, उसे करके देख लें; और अगर लगता हो कि कुछ है, तो आगे बढ़ जाएं। और लगता हो, कुछ नहीं है, तो छोड़ दें। कौन रोकता है आपको छोड़ने से?

लेकिन छोड़ने के पहले परख लेना जरूरी है। और किसी भी चीज में कुछ नहीं है, ऐसी धारणा बनाने के पहले प्रवेश करना जरूरी है। अनुभव के पहले जो निर्णय लेता है, वह अंधा है।

एक मित्र ने पूछा है कि प्रभु को पा लेने के बाद मान लिया कि मन को शांति मिल जाएगी और मान लिया कि आनंद भी मिल जाएगा, लेकिन फिर हम करेंगे क्या?

आदमी की भी चिंताएं बड़ी अदभुत हैं! वैसे यह चिंता विचारणीय है। निश्चित ही, करने को आपके लिए कुछ भी न बचेगा। मगर यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई बीमार पूछे कि मान लिया कि टी.बी. ठीक हो जाएगी, कैंसर ठीक हो जाएगा, सब बीमारियां चली जाएंगी, फिर हम करेंगे क्या? क्योंकि बीमारी के लिए कुछ काम में लगे हैं। दवा लाते हैं; चिकित्सक के पास जाते

हैं; अस्पताल में भर्ती होते हैं! और सब ठीक हो गया, तो फिर? फिर हम करेंगे क्या?

लेकिन करना क्या जरूरी है? और करने से मिलता क्या है? न करने की अवस्था ही तो परम लक्ष्य है। ऐसी अवस्था पा लेना, जहां करने को कुछ भी न बचे, वही तो परम तृप्ति है। तृप्ति का अर्थ ही है कि उसके बाद करने को कुछ भी न बचे। अतृप्ति में करना बाकी रहता है, क्योंकि अतृप्ति धक्का देती है कि करो, ताकि मैं तृप्त हो सकूं। लेकिन जब कोई सच में ही तृप्त हो जाता है, तो करने को कुछ भी नहीं बचता।

तो अगर आप डरते हों कि करने को कुछ भी न बचेगा और बिना किए रहने वाले आप नहीं हैं, तो परमात्मा को मत खोजें। तब तो परमात्मा से बचें। और कहीं अगर मिल भी जाए अपने आप, तो भाग खड़े हों; लौटकर मत देखें।

लेकिन करने से क्या पा रहे हैं? और इसका यह अर्थ नहीं है कि जब बीमारियां नहीं रह जातीं, तो स्वास्थ्य कोई अभाव है। स्वास्थ्य की अपनी भाव-दशा है। लेकिन करने की प्रक्रिया बदल जाती है। बीमार आदमी कुछ पाने के लिए करता है। स्वस्थ आदमी कुछ है उसके भीतर, उस आनंद, अहोभाव में करता है।

एक बच्चे को कुछ भी पाना नहीं है, लेकिन नाच रहा है सूरज की रोशनी में। यह भी कृत्य है। लेकिन इस कृत्य में और एक नर्तक के जो कि स्टेज पर नाच रहा है, फर्क है। नर्तक नाच रहा है कि कुछ मिलेगा नाचने के बाद, पुरस्कार। बच्चा नाच रहा है, क्योंकि भीतर ऊर्जा है। ऊर्जा प्रकट होना चाहती है। बच्चा नाच रहा है आनंद से, कुछ पाने के लिए नहीं। नाचना अपने आप में पर्याप्त है।

जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंचने लगता है, फल की आकांक्षा से कृत्य समाप्त हो जाते हैं। लेकिन कृत्य समाप्त नहीं हो जाते।

क्योंकि बुद्ध भी चलते दिखाई पड़ते हैं, परमात्मा को पाने के बाद। बोलते दिखाई पड़ते हैं, उठते हैं, बैठते हैं। बहुत कुछ करते दिखाई पड़ते हैं। हालांकि करने का बुखार चला गया। फीवरिश नहीं है अब कोई करना। जिस दिन बुद्ध मरते हैं, उस दिन वे छाती नहीं पीटते कि अब मैं मर जाऊंगा, तो मेरा किया हुआ अधूरा रह गया। कुछ अधूरा नहीं है। क्योंकि जो भी आनंद से हो रहा था, वह हो रहा था। नहीं हो रहा, तो नहीं हो रहा।

कोई कृष्ण भी चुप नहीं बैठ जाते। कोई महावीर चुप नहीं बैठ जाते। कोई जीसस चुप नहीं बैठ जाते। परमात्मा को पा लेने के बाद भी कृत्य जारी रहता है। कृत्य आपका नहीं रह जाता; परमात्मा का हो जाता है। इसलिए दुख आपका नहीं रह जाता, चिंता आपकी नहीं रह जाती; जैसे सब उसने सम्हाल लिया।

इसे ऐसा समझें कि हम उस तरह के लोग हैं... । नदी में दो तरह की नाव चल सकती है। एक नाव तो, जिसको हाथ की पतवार से चलाना पड़ता है। तो फिर पतवार हमें हाथ में पकड़कर श्रम उठाना पड़ता है। थकेंगे और लड़ेंगे नदी से।

रामकृष्ण ने कहा है कि एक और तरह की नाव भी है, वह है पाल वाली नाव। उसमें पतवार नहीं चलानी पड़ती, हवा का रुख देखकर नाव छोड़ देनी पड़ती है। फिर हवा उसे ले जाने लगती है।

सांसारिक आदमी पतवार वाली नाव जैसा है। आध्यात्मिक व्यक्ति पाल वाली नाव जैसा है। उसने परमात्मा की हवाओं पर छोड़ दिया, अब वह ले जाता है। अब उसको पतवार नहीं चलानी पड़ती।

हालांकि पतवार चलाने का जो पागलपन किसी को सवार हो, वह जरूर पूछेगा कि अगर पाल लगा लें नाव में और हवाएं ले जाने लगें, तो हम क्या करेंगे? क्योंकि हम तो यह खेते हैं पतवार से। यही तो हमारा जीवन है।

लेकिन उसे पता ही नहीं कि पाल वाली नाव का नाविक किस शांति से सो रहा है, या बांसुरी बजा रहा है, या खुले आकाश को देख रहा है, या सूरज के साथ एक मौन चर्चा में संलग्न है।

काम का बोझ हट गया, तो अब जीवन का आनंद सरल है। काम के बोझ से ही तो हम मरे जा रहे हैं, लेकिन मित्र पूछते हैं कि फिर हम क्या करेंगे?

एक और बात ध्यान रखनी जरूरी है कि जब परमात्मा मिलेगा, तो आप होंगे ही नहीं। आप उसके पहले ही विदा हो गए होंगे। इसलिए इस चिंता में मत पड़ें कि आप क्या करेंगे। जब तक आप हैं, तब तक तो वह मिलेगा भी नहीं।

पर इससे भी उनके चित्त को राहत नहीं मिलती। इससे उनको और कष्ट होता है।

आगे उन्होंने पूछा है, और फिर आप कहते हैं कि आदमी मिट जाएगा, तब परमात्मा मिलेगा! तो जब हमें मिलना ही नहीं है वह, तो मेहनत क्यों करें?

इसे कहते हैं नकारात्मक चिंतन की प्रक्रिया। अगर कोई कहे कि ऐसी तृप्ति आपको मिल जाएगी कि कुछ करने को न बचेगा, तो तृप्ति की फिक्र नहीं होती। आपको यह लगता है, फिर करने को नहीं बचेगा, तो हम क्या करेंगे?

अगर कोई कहता है कि आप मिट जाओगे, तब परमात्मा मिलेगा, तो परमात्मा की भी फिक्र छूट गई। फिर तो हमें लगता है, जब हम ही मिट जाएंगे, तो फिर सार भी क्या है ऐसे परमात्मा से मिलने में!

लेकिन आपके होने में क्या सार है? और आपने होकर क्या पाया है? अभी भी, जो कभी भी आपके जीवन में कोई थोड़ी-बहुत आनंद की किरण मिली हो, वह भी तभी मिली है, जब आप मिट गए हैं। किसी के प्रेम में, किसी की मित्रता में, या सुबह खिलते हुए फूल के सौंदर्य को देखकर, या कभी रात आकाश तारों से भरा हो और उसमें लीन होकर अगर आपको कभी थोड़ी-सी झलक मिली है सुख की, तो वह भी इसीलिए मिली है कि आप उस क्षण में खो गए थे। आप नहीं थे।

जीवन में जो भी उतरता है महान, वह तभी उतरता है, जब आप नहीं होते। पर इसका यह मतलब नहीं है कि आप सच में ही नहीं होंगे।

अध्यात्म की भाषा समझने में कई बार तकलीफ होती है, क्योंकि वह भाषा शब्दों का बड़ा मौलिक प्रयोग करती है। जब कहा जाता है कि आप नहीं होंगे, तो उसका मतलब है कि केवल आपका जो मिथ्या व्यक्तित्व है, जो फाल्स सेल्फ है, जो झूठा आवरण है, वह नहीं होगा। आपका जो गहरा केंद्र है, वह तो होगा ही, क्योंकि वह तो परमात्मा ही है।

यह ऐसा ही समझें। मैंने सुना है कि ऐसा हुआ, एक जर्मन जासूस को इंगलैंड भेजा गया दूसरे महायुद्ध के पहले। पांच वर्ष पहले भेज दिया गया, ताकि पांच वर्ष में वह इंगलैंड में रम जाए। ठीक अंग्रेजों जैसा जीने लगे, उठने लगे, बैठने लगे। अंग्रेजी ऐसी बोलने लगे जैसे कि मातृभाषा हो। जर्मन प्रभाव बिल्कुल समाप्त हो जाए--आवाज में, ध्वनि में, आंखों में, चलने में। क्योंकि जर्मन और ढंग से चलता है, अंग्रेज और ढंग से चलता है। हर जाति का अपना व्यक्तित्व है।

तो पांच साल पहले उसे भेज दिया गया। और पांच साल उसने सब तरह के प्रयोग किए और अपने को बिल्कुल स्वाभाविक अंग्रेज बना लिया। फिर युद्ध समाप्त हो गया और पूरे दस साल इंगलैंड में रहने के बाद वह जर्मनी वापस लौटा।

पैदा जर्मन हुआ था, लेकिन दस साल में अभ्यास से अंग्रेज हो गया। जब घर लौटा, तो बड़ी अड़चन शुरू हुई। क्योंकि यह जो अंग्रेजियत उसने सीख ली थी, अब यह वापस अपने जर्मन परिवार में बाधा बनने लगी। घर के लोग उससे कहते कि नकली को छोड़ क्यों नहीं देता? है तो तू जर्मन। तो फिर से बोल अपनी मातृभाषा, जैसी तू बोलता था। और वैसे ही उठ, वैसे ही बैठ, वैसा ही व्यवहार कर, जैसा तू करता था। जैसा हमने तुझे बचपन में जाना, उसकी मां कहती। उसकी पत्नी कहती कि जैसा मैं तुम्हें जानती थी जाने के पहले, ठीक वैसा।

पर वह आदमी कहता कि जरा ठहरो। दस साल अभ्यास करके यह नकली भी स्वाभाविक हो गया है। इसे हटाऊंगा, मिटाऊंगा, पर थोड़ा वक्त लगेगा।

आप जिसको अपना व्यक्तित्व समझ रहे हैं, आप समझ रहे हैं जिसको मेरा होना, वह आपका होना नहीं है। वह केवल सिखावन है, आपका स्वभाव नहीं है।

आप एक घर में पैदा हुए। जब आप पैदा होते हैं, तो न तो आप हिंदू होते हैं, न मुसलमान होते हैं, न ईसाई होते हैं, न जैन होते हैं। आप सिर्फ होते हैं। अगर आपको मुसलमान घर में बड़ा किया जाए, आप मुसलमान हो जाएंगे। और अगर हिंदू घर में बड़ा किया जाए, हिंदू हो जाएंगे। हिंदू का अलग व्यक्तित्व है, मुसलमान का अलग व्यक्तित्व है। अगर जैन घर में बड़ा किया जाए, तो आप जैन हो जाएंगे। उसका अलग व्यक्तित्व है।

लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो आप बिना व्यक्तित्व के पैदा हुए थे। हिंदू, मुसलमान, ईसाइयत, ऊपर से सीखी गई बातें हैं। फिर आप हिंदी सीखें, मराठी सीखें, अंग्रेजी सीखें। जो भाषा आप सीखेंगे, वह आपकी भाषा हो जाएगी। लेकिन जब आप पैदा हुए थे, तो मौन पैदा हुए थे। आपकी कोई भाषा न थी।

फिर आप सीखते चले जाएंगे। और आप जब पचास साल के होंगे, तो आपके चारों तरफ एक ढांचा निर्मित हो जाएगा। भाषा का, व्यवहार का, व्यक्तित्व का, राष्ट्र का, जाति का, आचरण का, धर्म का एक ढांचा खड़ा हो जाएगा। और इसी ढांचे को आप समझेंगे, मैं हूं।

यही ढांचा टूटता है परमात्मा को पाने में, आप नहीं टूटते। वह जो आप लेकर पैदा हुए थे, वह नहीं टूटता। वह तो आप रहेंगे सदा। उसे तो छीनने का कोई उपाय नहीं है। उसे तो परमात्मा भी नहीं छीनेगा।

सच तो यह है कि आप जिसको अभी समझ रहे हैं मेरा होना, इसी ने आपसे आपका असली व्यक्तित्व छीन लिया है। इस नकली को उतारने की प्रक्रिया है धर्म। जब यह उतर जाता है और जो स्वभाव है सहज, जो जन्म के पहले भी आपके पास था और आप मर जाएंगे तब भी आपके पास होगा, वह जब शुद्धतम आपके पास रह जाता है, तो आप परमात्मा से मिलते हैं।

जीसस ने कहा है, जो बचाएगा, वह खो देगा; और जो खोने को राजी है, वही बचाएगा, उसका ही बच रहेगा।

यह जो झूठा है, इसके खोने की बात है। आपके खोने की तो कोई बात ही नहीं है। लेकिन उस आपका आपको ही कोई पता नहीं है, जो नहीं खोएगा। इसलिए घबड़ाहट होती है। इससे डर लगता है। इससे भय होता है।

यह तो हालत हमारी ऐसी है कि जैसे एक अंधा आदमी आए और वह कहे कि मैं अपनी आंखें तो ठीक करवा लूं, लेकिन तब जिस लकड़ी को मैं टेककर चलता हूं, उसका क्या होगा? और मेरी आंखें ठीक हो जाएंगी, तो चिकित्सक कहता है कि यह टेकने वाली लकड़ी तुझे छोड़ देनी पड़ेगी। तो इसको मैं कैसे छोड़ सकता हूं! यही लकड़ी तो मेरा प्राण है। इसी के सहारे तो मैं चलता हूं, जीता हूं, उठता हूं, रास्ता खोजता हूं!

तो उस अंधे आदमी को पता नहीं कि जब आंखें ही मिल जाएं, तो लकड़ी को टेकने की जरूरत ही नहीं रह जाती, और न लकड़ी से खोजने की जरूरत रह जाती है।

जिस दिन आपको परमात्मा मिल जाए, उस दिन आपके अंधेपन में जो व्यक्तित्व काम देता था, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। घबड़ाएं मत। आपसे वही छीना जा सकता है, जो आपका नहीं है। जो आपका है, उसे छीना ही नहीं जा सकता।

इस सूत्र को, इस महासूत्र को स्मरण रखें सदा, कि आप वही खो सकते हैं, जो आपका है ही नहीं। जो आपका है, उसको छीनने का कोई उपाय नहीं है। स्वभाव का यही अर्थ होता है, जो आपसे छीना न जा सके। जो छीना जा सकता है, उसको आप चाहे पकड़े भी रहें, तो भी वह आपका नहीं है।

एक आदमी धन को पकड़े हुए है; सोचता है, धन छिन जाएगा। लेकिन धन छिनेगा ही, क्योंकि वह आप नहीं हैं। ज्ञानी इसीलिए शरीर को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि वे कहते हैं, मौत उसे छीन लेगी। ज्ञानी मन को भी नहीं पकड़ते, क्योंकि ज्ञानी कहते हैं, ध्यान उसे भी छीन लेगा। ज्ञानी तो केवल उसको ही पकड़ते हैं, जो छीना नहीं जा सकता। न ध्यान छीन सकता है, न मृत्यु छीन सकती है, न समाधि छीन सकती है। वह कौन है आपके भीतर, जो कभी भी छीना नहीं जा सकता? वही आप हैं।

इसलिए भयभीत न हों। जो व्यर्थ है, ऊपर-ऊपर है, उसे छोड़ने की तैयारी रखें, ताकि भीतर जो है उसे पाया जा सके।

एक प्रश्न और। एक मित्र बार-बार पूछते हैं--आखिरी दिन के लिए उनका सवाल मैं टालता रहा--पूछते हैं बार-बार कि एक मित्र, श्री सूर्योदय गौड़, आपके खिलाफ पर्चे छापते हैं। आप जवाब क्यों नहीं देते? और उनके खिलाफ कुछ किया क्यों नहीं जाता?

पहली बात, कि वे मेरा ही काम कर रहे हैं, इसलिए उनके खिलाफ कुछ किया नहीं जाना चाहिए। काम के बड़े अनूठे ढंग हैं। और कई दफा मैं सोचता था कि अगर कोई मेरा विरोध न करता हो, तो अपने ही किसी मित्र को कहूं कि तू विरोध कर। क्योंकि बहुत-से लोगों को मैं अपने पास नहीं ला सकता हूं। बहुत-से लोग मेरे विरोध के जरिए ही मेरे पास आ सकते हैं।

कुछ लोग हैं, जो विरोध से ही पास आ सकते हैं। विरोध के कारण ही उनको उत्सुकता पैदा होती है। कोई विरोध करता है, तो ही उनको लगता है कि जाकर देखें, मामला क्या है! कई दफा वे देखने आते हैं और रुक जाते हैं और उनका जीवन भी बदल जाता है।

तो बहुत बार मैं सोचता था, किसी मित्र को कहूं कि मेरे खिलाफ कुछ लिखो, कुछ चर्चा चलाओ, ताकि वे जो सीधे-सीधे नहीं आते, जिनकी आंखें तिरछी हैं, वे विरोध के जरिए आ जाएं। फिर अचानक सूर्योदय गौड़ ने वह काम करना शुरू कर दिया, तो मैं भीतर बड़ा प्रसन्न हुआ। मैंने कहा कि नाहक मैं किसी को कहता, तो मेरा मित्र कोई कितनी ही कोशिश भी करता, तो भी विरोध में वह जान न रहती। बेजान रहता, भीतर से झूठा-झूठा रहता। अब ठीक आदमी अपने आप हाजिर हो गया है। यह जगत कुछ ऐसा है कि यहां जो भी चाहो, वह हाजिर हो जाता है। चाहने की देर है कि लोग मिल जाते हैं।

अब उन पर नाराज होने का कोई कारण नहीं। मैं प्रसन्न हूं। दिनभर मेहनत करते हैं। गरीब आदमी मालूम पड़ते हैं। अपना धंधा, काम छोड़कर इसी काम में लग गए हैं। उनका जीवन मेरे लिए ही समर्पित हो गया है। तो इसलिए उनका कोई विरोध नहीं करता हूं। और उनके विरोध से कुछ हानि नहीं होती है।

सत्य की कोई हानि नहीं है। विरोध से और निखरता है, साफ होता है। और अगर सत्य को भय हो विरोध का, तो जानना चाहिए कि वह सत्य ही नहीं है।

एक मित्र और दो-तीन दिन पहले आए थे। उनका भी प्रश्न ऐसा ही है। इसी संदर्भ में उनकी भी बात कर दूं। वह थोड़ा और जटिल है। उन्होंने मुझे आकर पूछा कि श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव के पास गया था, तो वह आपके खिलाफ बड़ी बातें कहती हैं। और वे तो आपके पास आती थीं, आपकी शिष्या थीं और आपके खिलाफ इतनी बातें कहती हैं!

तो मैं अब तक इस संबंध में चुप रहा हूं, क्योंकि वह बड़ा काम कर रही हैं। वह दूसरे ढंग का काम है।

जैसा मैंने कहा कि कुछ ऐसे लोग हैं, जो मेरे विरोध के कारण मेरे पास आते हैं। कुछ ऐसे गलत लोग मेरे पास आ जाते हैं, जिनको दूर हटाने की भी जरूरत पड़ती है। कुछ अपात्र भी मेरे पास आ जाते हैं, जो समय खराब करेंगे और बहुत काम के इस जन्म में तो नहीं हो सकते। उनको भी दूर करने की जरूरत पड़ती है। उनको मैं श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव के पास भेजता हूं। वह मुझे उनसे छुटकारा दिलाती रहती हैं। उनको पता नहीं है कि वह मेरा काम कर रही हैं। और अगर उनको यह पता चल जाएगा जो मैं कह रहा हूं, तो वह और जोर से मेरे विरोध में लग जाएंगी। वह मेरा काम है। उन्हें लग जाना चाहिए।

मेरी प्रक्रिया में दो बातें हैं। जो भी लोग जीवन-क्रांति के लिए उत्सुक हैं, मैं चाहता हूं कि मेरे पास आएं, किसी भी बहाने, किसी भी कारण से। लेकिन जो लोग मेरे पास आ जाते हैं, उनमें अनेक लोग गलत कारणों से मेरे पास आ जाते हैं। उनको भी पता नहीं है। और फिर वे मेरा समय भी व्यर्थ

करते हैं, मेरी शक्ति भी खराब करते हैं। उनको मैं अपने से दूर भी करना चाहता हूं। उनको मैं अनेक तरह से दूर करता हूं। कभी किसी तरकीब से, कभी किसी तरकीब से उनको दूर कर देता हूं।

मेरे पास जैनियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया था। तो उससे मैं परेशान हो गया। परेशान इसलिए हो गया कि उन्हें कुछ भी करना नहीं है, सिर्फ बातें करनी हैं। तो मैंने कोई एक वक्तव्य दे दिया, उससे वे लोग छंटकर गिर गए।

फिर मेरे पास गांधीवादियों का एक जत्था इकट्ठा हो गया। उनको सेवा करनी है, साधना नहीं करनी है। मुझे सेवा में उत्सुकता नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूं कि साधना में जो जाए, वही सेवक हो सकता है। और जो साधना में न जाए, उसकी सेवा सब झूठी है और व्यर्थ है। तो मुझे गांधी की आलोचना कर देनी पड़ी। आलोचना करते से ही वे भाग गए। जमीन साफ कर दी; मेरे पास नई जगह बन गई; स्पेस पैदा हो गई। उसमें मैं नए लोगों को बुला पाया।

फिर मेरे बोलने का जो ढंग है, उससे बड़ी गड़बड़ हो जाती है। मेरे बोलने के ढंग से लोगों को ऐसा लगता है कि मैं तार्किक हूं। बोलने के ढंग से ऐसा लगता है कि मैं बुद्धिवादी हूं, रेशनलिस्ट हूं। इसलिए कुछ तार्किक और बुद्धिवादी मेरे पास आ जाते हैं।

मेरे बोलने का ढंग तार्किक है; लेकिन जो मैं कहना चाह रहा हूं, वह तर्क के बिल्कुल बाहर है। मेरी पहुंच का ढंग बुद्धिवादी है, लेकिन मुझसे ज्यादा अबुद्धिवादी खोजना मुश्किल है।

तो उन लोगों को हटाने की जरूरत पड़ी, क्योंकि ये सिर्फ समय खराब करते हैं, चर्चा, चर्चा, चर्चा! इन्हें करना कुछ भी नहीं है--शब्द, शब्द, शब्द। तो मैंने कहा, चलो, कीर्तन शुरू कर दो। कीर्तन होते से ही वे भाग गए। वे अब मेरे पास नहीं आते।

ऐसा मुझे गलत लोगों से छुटकारा भी पाना पड़ता है, ठीक लोगों को बुलाना भी पड़ता है।

एक बात तय है कि सत्य जब भी कहीं हो, तो सभी चीजें उसका सहयोग करती हैं। आप कुछ भी करें--विरोध करें, इनकार करें, खिलाफ बोलें--आप कुछ भी करें, आपका हर करना सत्य के पक्ष में ही पड़ता है, तभी वह सत्य है। सत्य हर चीज का उपयोग कर लेता है, विपरीत का भी, विरोधी का भी।

इसलिए इन सब बातों में पड़ने की, इस सबमें समय खराब करवाने की, इन सब का उत्तर देने की कोई भी जरूरत नहीं है। चीजें अपने आप रास्ता बनाती चली जाती हैं।

एक ही बात का ध्यान होना चाहिए कि हम जो कर रहे हैं, अगर वह सत्य है, तो सत्य सभी का उपयोग कर लेगा। और अंतिम क्षण में, मैंने आपको जो लाभ पहुंचाया, वह अकेला मेरा ही लाभ नहीं होगा, उसमें उन विरोधियों का भी उतना ही हाथ होगा, जिन्होंने विरोध किया। और अंतिम क्षण में सभी चीजें संयुक्त हो जाती हैं, अगर सत्य है तो। लक्ष्य पर पहुंचकर सभी चीजें सत्य हो जाती हैं। तब आप मुझे ही धन्यवाद नहीं देंगे, सूर्योदय गौड़ को भी देंगे, निर्मला देवी श्रीवास्तव को भी देंगे।

जिस दिन आपको सत्य का अनुभव होगा, उस दिन आप दोनों को धन्यवाद देंगे। क्योंकि उन्होंने भी काम किया, उन्होंने भी मेहनत ली।

अब हम सूत्र को लें।

तथा जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है। और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए

धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

निंदा-स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है... ।

निंदा-स्तुति को समान कब समझा जा सकता है? निंदा दुख क्यों देती है? स्तुति सुख क्यों देती है? जब कोई आपकी प्रशंसा करता है, तो भीतर फूल क्यों खिल जाते हैं? और जब कोई निंदा करता है, तो भीतर सब उदास, मृत्यु जैसा क्यों हो जाता है? कारण खोजना जरूरी है, तो ही हम निंदा-स्तुति के पार हो सकें।

जब कोई स्तुति करता है, तो आपके अहंकार को तृप्ति होती है। जब कोई स्तुति करता है, तो असल में वह यह कह रहा है कि जैसा मैं अपने को समझता था, वैसा ही यह आदमी भी समझता है। आप समझते हैं कि आप बहुत सुंदर हैं। और जब कोई कह देता है कि धन्य हैं; कि आपके दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हुआ; ऐसा सौंदर्य कभी देखा नहीं! तो आप प्रसन्न होते हैं। क्यों? क्योंकि दर्पण के सामने खड़े होकर यही आपने अपने से कई बार कहा है। यह पहली दफा कोई दूसरा भी आपसे कह रहा है।

और अपनी बात का भरोसा आपको नहीं होता। अपनी बात का आपको भरोसा आपको क्या होगा, अपने पर ही भरोसा नहीं है। जब कोई दूसरा कहता है, तो भरोसा होता है कि ठीक है, बात सच है। वह जो दर्पण के सामने मुझे लगता था, बिल्कुल सही है। यह आदमी भी कह रहा है। और यह क्यों कहेगा! अहंकार को तृप्ति मिलती है। और आपकी सेल्फ इमेज, वह जो प्रतिमा है अपने मन में, वह परिपुष्ट होती है।

जब कोई निंदा करता है और कह देता है कि क्या शक्ल पाई है! भगवान कहीं और देख रहा था, जब आपको बनाया? कि सामान चुक गया था? कि देखकर ही विरक्ति पैदा होती है, संसार से भागने का मन होता है! तब आपको चोट पड़ती है। क्यों चोट पड़ती है? अहंकार को ठेस लगती है।

ऐसा कौन है, जो अपने को सुंदर नहीं मानता? कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी अपने को सुंदर मानता है। लेकिन अपनी मान्यता के लिए भी दूसरों का सहारा चाहिए। क्योंकि हमारी अपनी कोई आत्म-स्थिति तो नहीं है। सुंदर भी हम मानते हैं दूसरों के सहारे, और अगर दूसरे कुरूप कहने लगें, तो फिर सुंदर मानना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए चोट लगती है। वे ईंटें खिसका रहे हैं। अगर हर कोई कहने लगे कि तुम कुरूप हो, तो फिर हमारी प्रतिमा डगमगाने लगती है और आत्म-विश्वास हिलने लगता है। और फिर हम दर्पण के सामने भी खड़े होकर हिम्मत से नहीं कह सकते कि नहीं, मैं सुंदर हूं। क्योंकि यह भी तो दूसरों के मंतव्य पर निर्भर है। तो जब दूसरे कुछ कहने लगते हैं, जो विपरीत पड़ता है, तो आपको अपनी प्रतिमा डगमगाती मालूम पड़ती है। घबड़ाहट पैदा होती है, बेचैनी पैदा होती है।

प्रशंसा में अच्छा लगता है, क्योंकि आपके अहंकार को फुसलाया जा रहा है। इसलिए प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ पाना चाहता है। वह पाने का रूप कुछ भी हो। प्रशंसा वही करता है, जो आपसे कुछ खींचना चाहता है। क्योंकि प्रशंसा पाकर आप बेहोश हो जाते हैं अहंकार में और आपसे कुछ करवाया जा सकता है।

मूढ़ से मूढ़ आदमी को बुद्धिमान कहो, तो वह भी राजी हो जाता है! अपनी प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है। और जब अपनी प्रशंसा को इनकार करना बड़ा मुश्किल है, तो अपनी निंदा को स्वीकार करना बड़ा मुश्किल है।

तो जरूरी नहीं है कि जो निंदक कह रहा हो, वह गलत ही हो; वह सही भी हो सकता है। और सच तो यह है कि जितना सही होता है, उतना ज्यादा खलता है। अगर वह बिल्कुल गलत हो, तो ज्यादा परेशानी नहीं होती। अगर कोई आदमी, आपकी आंखें हैं और वह कहता है अंधा है, तो आप ज्यादा

परेशान नहीं होते। क्योंकि कौन सुनेगा इसकी! आंखें आपके पास हैं। लेकिन आप अंधे हैं, और वह आदमी कहता है अंधा है, तो फिर ज्यादा चोट पड़ती है। क्योंकि आपको भी लगता तो है कि वह ठीक ही कहता है। और मन भी नहीं होता मानने का कि यह बात ठीक है।

तो जितने सच्चाई के करीब होती है निंदा, उतना दुख देती है। और स्तुति जितनी झूठ के करीब होती है, उतना सुख देती है। जितने असत्य के करीब होती है स्तुति, उतना सुख देती है। और निंदा जितने सत्य के करीब होती है, उतना दुख देती है। पर इन सब दोनों का केंद्र क्या है?

इन दोनों का केंद्र यह है कि दूसरे क्या कहते हैं, वह मूल्यवान है। क्यों मूल्यवान है? क्योंकि आपका जो अहंकार है, वह दूसरों के हाथ से निर्मित हुआ है, आपकी आत्मा नहीं। आपकी आत्मा तो परमात्मा के हाथ से निर्मित हुई है। लेकिन आपका अहंकार दूसरों के हाथों से निर्मित हुआ है। अहंकार समाज का दान है। आत्मा परमात्मा की देन है।

आत्मा को समाज नहीं छीन सकता। लेकिन अहंकार को समाज छीन सकता है। जिसको आज कहता है, तुम महापुरुष हो; कल पापी कह सकता है। और ऐसे महापुरुष हैं, जो कल पूजे जा रहे थे और दूसरे दिन उन पर जूते फेंके जा रहे हैं। वही समाज, वही लोग! जरूरी नहीं है कि समाज पहले सही था, या अब सही है। बात इतनी है केवल कि समाज दोनों काम कर सकता है।

इसलिए जो आदमी अहंकार के साथ जीता है, आत्मा के साथ नहीं, वह हमेशा चिंतित रहेगा, कौन क्या कह रहा है! निंदा कौन कर रहा है? स्तुति कौन कर रहा है? क्योंकि उसका सारा व्यक्तित्व इसी पर निर्भर है, दूसरों पर। दूसरे क्या कह रहे हैं?

लेकिन जो व्यक्ति भक्त है, साधक है, प्रभु की खोज में लगा है, आत्मा की तरफ चल रहा है, उसके तो पहले कदम पर ही वह इसकी फिक्र छोड़

देता है कि दूसरे क्या कह रहे हैं। वह इसकी फिक्र करता है कि मैं क्या हूं, वह इसकी फिक्र नहीं करता कि लोग क्या कह रहे हैं।

लोग कुछ भी कह रहे हों, मैं क्या हूं, यह उसकी चिंता है। यह उसकी खोज है कि मैं खोज लूं, आविष्कृत कर लूं कि मैं कौन हूं। दूसरों के कहने से क्या होगा? क्या मूल्य है दूसरों के कहने का?

कृष्ण कहते हैं, निंदा-स्तुति को समान जो समझता है... ।

वही समान समझ सकता है, जो दूसरों के मंतव्य से अपने को दूर हटा रहा है। और जो इस बात की खोज में लगा है कि मैं कौन हूं। लोगों की धारणा नहीं, मेरा अस्तित्व क्या है। वह सम हो जाएगा। वह अपने आप सम हो जाएगा। उसके लिए लोगों की स्तुति भी व्यर्थ है; उसके लिए उनकी निंदा भी व्यर्थ है। वह तो बल्कि चकित होगा कि लोग मुझमें इतने क्यों उत्सुक हैं! इतनी उत्सुकता वे अपने में लें, तो उनके जीवन में कुछ घटित हो जाए, जितनी उत्सुकता वे मुझमें ले रहे हैं!

आपको ख्याल है कि आप दूसरों में कितनी उत्सुकता लेते हैं! इतनी उत्सुकता काश आपने अपने में ली होती, तो आज आप कहीं होते। आप कुछ होते। आपके जीवन में कोई नया द्वार खुल गया होता। इतनी ही उत्सुकता से तो आप प्रभु को पा सकते थे।

लेकिन आपकी उत्सुकता दूसरों में लगी है! सुबह उठकर गीता पर पहले ध्यान नहीं जाता; पहला ध्यान अखबार पर जाता है। दूसरों की फिक्र है। वे क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं! पड़ोसी आपके बाबत क्या कह रहे हैं!

कौन क्या कह रहा है आपके बाबत, इसको इकट्ठा करके क्या होगा? मरते वक्त सब हिसाब भी कर लिया और किताब में सब लिख भी डाला कि कौन ने क्या कहा, फिर क्या होगा? मौत आपको जांचेगी, आपके हिसाब-किताब को नहीं।

सुना है मैंने, एक यहूदी फकीर हिलेल मर रहा था। तो किसी ने हिलेल से कहा कि हिलेल, क्या सोच रहे हो मरते क्षण में? तो हिलेल ने एक बड़ी कीमती बात कही। क्योंकि यहूदी मूसा को मानते हैं; हिलेल ने कहा कि जिंदगीभर मैं मूसा की फिक्र करता रहा कि मूसा ने क्या कहा है, क्या समझाया है; उसके वचन का क्या अर्थ है; और मैं मूसा जैसा कैसे हो जाऊं--यही मेरी चिंता, यही मेरी जीवनभर की धारा थी। मरते वक्त मुझे यह ख्याल आ रहा है कि हिलेल, परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तू मूसा क्यों नहीं हुआ। परमात्मा मुझसे पूछेगा, तू हिलेल होने से क्यों चूक गया? मूसा के संबंध में मुझसे पूछेगा ही नहीं वह। वह पूछेगा मेरे संबंध में, और मैं नाहक मूसा के संबंध में परेशान रहा।

और परमात्मा यह भी नहीं पूछेगा कि लोग मेरे संबंध में क्या मानते थे। परमात्मा तो सीधा ही देख लेगा मेरी आत्मा में। वह कोई सर्टिफिकेट तो नहीं मांगेगा, कि प्रमाणपत्र लाए हो चरित्र के? अच्छा आदमी मानते थे लोग कि बुरा आदमी मानते थे तुम्हें? कुछ प्रमाणपत्र ले आए हो जमीन से, वह नहीं पूछेगा। क्योंकि प्रमाणपत्र तो अंधों के काम आते हैं। उसकी आंखें तो मेरी आत्मा में सीधा प्रवेश कर जाएंगी, और वे जान ही लेंगी कि मैं कौन हूं।

तो मैंने नाहक ही अपना जीवन गंवाया। अब जितने भी थोड़े क्षण मेरे पास बचे हैं, अब तुम हट जाओ यहां से, हिलेल ने लोगों से कहा, तुम जिंदगीभर मुझे घेरे रहे। हट जाओ। और मैं शांत होकर उसको देख लेना चाहता हूं, जो मैं हूं; और मौन होकर उसमें उतर जाना चाहता हूं, जो मेरा अस्तित्व है, जो मेरा व्यक्तित्व है। परमात्मा के सामने जब मैं खड़ा होऊं और वह मुझे सीधा देखे, तो मैं खड़ा हो सकूं शांति से। तुम हट जाओ, हिलेल ने कहा, मेरे पास से भीड़ हट जाए; अब मुझे अकेला हो जाने दो। जिंदगीभर मैं भीड़ से घिरा रहा, दूसरों से।

निंदा और स्तुति से वह व्यक्ति मुक्त हो सकेगा, जो दूसरों की चिंता छोड़ देता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों के प्रति लापरवाह हो जाता है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि स्वार्थी हो जाता है। सच तो यह है कि जो दूसरों के विचार की बहुत चिंता करता है, वह दूसरों की चिंता जरा भी नहीं करता। वह तो उनके विचार की चिंता करता है कि वे मेरे बाबत क्या कह रहे हैं। वह अहंकारी है। उसका दूसरों से कोई लेना-देना नहीं। वह दूसरों के विचार की अपने अहंकार के लिए फिक्र करता है।

लेकिन जो आदमी दूसरों की चिंता छोड़ देता है, उसका अहंकार गिर जाता है। अहंकार दूसरों के सहारे के बिना खड़ा नहीं हो सकता; उसके लिए दूसरों का सहारा चाहिए। वह एक झूठ है, जो दूसरों के सहारे खड़ा होता है। सब झूठ दूसरों के सहारे खड़े होते हैं; सत्य अपने सहारे खड़े होते हैं।

इसलिए धर्म अकेले भी हो सकता है, राजनीति अकेले नहीं हो सकती। राजनीति बड़ा से बड़ा झूठ है। उसको दूसरों के सहारे की जरूरत है। दूसरे का वोट, दूसरे का मत, दूसरे पर सारा खेल खड़ा है। राजनीति का बड़ा से बड़ा नेता भी दूसरों के सहारे खड़ा है। दूसरों की अंगुलियां उसको बड़ा किए हुए हैं। वे हाथ हटा लें, वह नीचे जमीन पर गिर जाएगा और उठने का उसे कोई मौका नहीं रहेगा।

लेकिन धार्मिक व्यक्तित्व किसी के सहारे खड़ा नहीं होता, अपने ही कारण खड़ा होता है। उसे कोई गिरा नहीं सकता, क्योंकि किसी ने उसे सम्हाला ही नहीं है।

कृष्ण कहते हैं कि जो निंदा स्तुति को समान समझने लगा है, मननशील है एवं जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा संतुष्ट है। और परमात्मा जैसा रखे, वैसा ही होने को राजी है। और परमात्मा जैसा रखे, उसमें भी विधायक खोज लेता है। मननशील का अर्थ है, विधायक को खोज लेने वाला।

हम नकारात्मक को खोज लेने वाले लोग हैं। हमें कांटा दिखाई पड़ता है, फूल दिखाई नहीं पड़ता। अगर एक आदमी के बाबत मैं कहूं कि वह गजब का कलाकार है, उसकी बांसुरी जैसी बांसुरी कोई नहीं बजा सकता। तो आप फौरन कहेंगे, छोड़िए भी, वह क्या बांसुरी बजाएगा! चरित्रहीन है।

यह नकारात्मक चिंतन की प्रक्रिया है। विधायक चिंतन की प्रक्रिया होगी कि मैं आपसे कहूं कि फलां आदमी चरित्रहीन है, उससे बचना। और आप कहें कि क्या! वह चरित्रहीन कैसे हो सकता है? उसकी बांसुरी में ऐसे प्राण हैं; वह बांसुरी इतनी अदभुत बजाता है; चरित्रहीन होगा कैसे? नहीं; मैं नहीं मान सकता हूं कि वह चरित्रहीन है।

तो आप देख रहे हैं उसको, जो फूल है। और जो फूलों को देखता है, उसे और ज्यादा फूल दिखाई पड़ने लगते हैं। और जो कांटों को देखता है, उसे और ज्यादा कांटे दिखाई पड़ने लगते हैं।

जो आप खोजते हैं, वह आपको मिल जाता है। हर आदमी की योग्यता के अनुकूल उसे सब कुछ मिल जाता है। जो आदमी नकारात्मक को खोज रहा है, चारों तरफ उसके नरक खड़ा हो जाता है। सब जगह उसे गलत दिखाई पड़ने लगता है।

कृष्ण कहते हैं, जिस-किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा संतुष्ट है। कैसा भी परमात्मा रखे, वह उसमें भी... ।

सुना है मैंने कि बायजीद एक कोठरी में सोता था। उसमें बड़ी चींटियां थीं। सूफी फकीर हुआ बायजीद। तो उसके शिष्यों ने कहा कि तुम परमात्मा के इतने प्यारे हो और वह इतना भी नहीं कर सकता कि इन चींटियों को हटा ले। और तुम्हें हमेशा काटती हैं और परेशान करती हैं और तुम उघाड़े यहां पड़े रहते हो!

तो बायजीद ने कहा कि तुम्हें मेरे परमात्मा का कुछ पता नहीं। वह चींटियों से मुझे कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद रख सकूं; भूलूं न। और जब

भी चींटी मुझे काटती है, मैं कहता हूं, हे परमात्मा! याद है; मत कटवा, याद है। चींटी से कटवाता है, ताकि मैं उसकी याद कर सकूं, विस्मरण न हो जाए। और कभी-कभी मैं भूल जाता हूं, तो ठीक ऐन वक्त पर चींटी काट देती है! उसकी बड़ी कृपा है। उसकी बड़ी कृपा है। इन चींटियों को हटा मत देना।

यह जो भाव-दृष्टि है कि वह जैसा रखे! जरूर उसका कोई प्रयोजन होगा। अगर वह आग में डालता है, तो तपाता होगा। अगर वह कांटों में चलाता है, तो परखता होगा। कोई परीक्षा होगी। कोई बात होगी उसकी। उस पर छोड़कर जीने वाला जो संतुष्ट व्यक्ति है, वही मननशील भी है।

और रहने के स्थान में ममता से रहित है... ।

और जहां रखे, लेकिन कोई ममता खड़ी नहीं करता। जिस स्थिति में, जिस स्थान में, फिर यह नहीं कहता कि यहीं रहूंगा। वह जहां हटा दे। वह जहां पहुंचा दे। वह जैसा करे। सभी स्थान उसी के हैं। और सभी स्थितियां उसकी हैं। और सभी द्वारों से वह आदमी पर काम कर रहा है। इस भाव दशा में जो व्यक्ति है, वह ममता नहीं बांधेगा। वह ममता नहीं बांधेगा।

च्वांगत्सू की पत्नी मर गई, तो वह गीत गा रहा था अपनी खंजड़ी बजाकर। सम्राट संवेदना प्रकट करने आया था, क्योंकि च्वांगत्सू जाहिर संत था। तो खुद सम्राट आया कि पत्नी मर गई है, तो मैं जाऊं। लेकिन सम्राट ने देखा कि वह गीत गा रहा है खंजड़ी बजाकर!

तो सम्राट बड़ा मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वह बेचारा तैयार करके लाया था। जैसे आप किसी के घर कोई मर जाता है, सब तैयार करके जाते हैं कि क्या कहेंगे। बड़ा मुश्किल का मामला होता है! किसी के घर अगर कोई मर जाए, तो क्या कहना, कैसे कहना, बड़ा परेशानी का काम होता है।

सम्राट बिल्कुल तैयार करके लाया था कि ये-ये बातें कहूंगा; इस तरह संवेदना प्रकट करूंगा। आंख में आंसू भर लूंगा। संत को सांत्वना देकर लौट आऊंगा। लेकिन वह संत बड़ा उलटा निकला। वह खंजड़ी बजा रहा था और

गीत गा रहा था। तो अब शोक-संवेदना प्रकट करने का उपाय न रहा। लेकिन राजा को लगा बुरा। क्योंकि वह जिस काम से आया था, वह असफल हुआ। कहने यही आया था कि दुखी मत होओ, ऐसा तो होता ही रहता है। लेकिन इस आदमी से क्या कहो! यह दुखी हो ही नहीं रहा है, बल्कि प्रसन्न हो रहा है!

अपेक्षा पूरी न हो... । आपको पता है, दुखद अपेक्षाएं भी पूरी न हों, तो भी दुख होता है। अगर आप सोच रहे हों कि बड़ी बीमारी है और डाक्टर के पास जाएं। और वह कहे, कुछ नहीं, तो मन में बड़ी उदासी होती है कि बेकार आना हुआ! कुछ नहीं? आपको शक होता है, कहीं डाक्टर की ऐसा तो नहीं कि भूल हो रही है। जरा और बड़े डाक्टर को दिखा लें।

इसलिए जो चालाक डाक्टर हैं, वे बड़े गंभीर हो जाते हैं आपको देखकर। और आपकी बीमारी को इस तरह से लेते हैं जैसे कि बस, ऐसी बड़ी बीमारी किसी को भी कभी नहीं हुई। तब आपका दिल राजी होता है कि ठीक है। आप जैसे बड़े आदमी को छोटी बीमारी हो सकती है! बड़ी ही होनी चाहिए। यह आदमी समझा। अब जरा बात काम की है।

वह सम्राट दुखी हो गया। उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो! मुझे कहना नहीं चाहिए। और मैं उपदेश देने वाला कौन हूं! लेकिन झूठ छिपाया भी नहीं जाता। सच कहना ही चाहिए। यह देखकर मुझे दुख होता है। इतना ही काफी था कि तुम दुख न मनाते। लेकिन गीत गाना, खंजड़ी बजाना, यह जरा जरूरत से ज्यादा है।

लेकिन च्वांगत्सू ने कहा, क्या कह रहे हो! मेरी पत्नी मर गई और मैं सुख भी न मनाऊं! राजा ने कहा, मतलब? तुम बड़ा उलटा वचन बोल रहे हो! तो च्वांगत्सू ने कहा कि परमात्मा ने उसे मेरे पास भेजा, संसार को जानने को। और परमात्मा ने उसे मुझसे छीन लिया, मोक्ष पहचानने को। वह मेरा संसार थी; उसके साथ मेरा संसार भी खो गया। परमात्मा की बड़ी

कृपा है। उसने संसार दिखाया भी, उसने संसार छीन भी लिया। हम हर हालत में राजी हैं। अनेक मुझसे कहते थे, पत्नी को छोड़कर भाग जाओ। छोड़ दो संसार। मैंने कहा, वह परमात्मा जब छुड़ाना चाहेगा, छुड़ा लेगा। हम राजी हैं। हम ऐसे ही राजी हैं। आखिर मेरी बात सही निकली। परमात्मा ने उसे उठा लिया।

और फिर जिस पत्नी ने मुझे जीवनभर अनेक-अनेक तरह के अनुभव दिए सुख के और दुख के, उसके लिए क्या इतना भी अनुग्रह न मानूं कि विदाई के क्षण में गीत गाकर विदा न दे सकूं! जिसने अपना पूरा जीवन मेरे सुख-दुख में लगाया, उसके लिए इतना धन्यवाद तो मन में होना ही चाहिए।

तो मैं उसके धन्यवाद के लिए गा रहा हूं और परमात्मा के धन्यवाद के लिए गा रहा हूं कि मैं थोड़ा रुक गया, तेरी राह देखी, तो तूने खुद ही पत्नी छीन ली। हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता--उसने बड़ी अदभुत बात कही--कि हम छोड़कर भागते, तो यह मजा न होता! अधूरी रहती, कच्ची रहती। हमारा ही छोड़ना होता न। हमारी समझ कितनी है? लेकिन तूने उठा लिया। अब सब कोरा आकाश हो गया। पत्नी के साथ पूरी गृहस्थी विलीन हो गई है। यह तेरी अनुकंपा है।

कृष्ण कहते हैं, जिस हालत में, जिस स्थान में, जिस स्थिति में कोई ममता नहीं; विपरीत हो जाए, तो भी विपरीत में प्रवेश करने का उतना ही सहज भाव बिना किसी आसक्ति के पीछे, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है। और जो मेरे परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

आखिरी बात बहुत समझने जैसी है कि यह जो आनंद की प्रक्रिया है, यह जो प्रभु-प्रेम का मार्ग है, इसको भी कृष्ण कहते हैं, इस अमृत को भी जो निष्काम भाव से सेवन करते हैं।

ऐसा मत करना कि आप सोचें कि अच्छा! यह-यह करने से परमात्मा के प्रिय हो जाएंगे, तो हम भी यह-यह करें। तो आपसे भूल हो जाएगी। तब तो आप परमात्मा पाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। तो यह जो करना है, कामवासना से भरा है। इसमें वासना है, इसमें फल की इच्छा है। इसमें आप परमात्मा को पाने के लिए उत्सुक हैं, इसलिए ऐसा कर रहे हैं। आप परमात्मा को पाने के लिए कारण निर्मित कर रहे हैं।

इसका यह मतलब हुआ कि आप परमात्मा को पाने के लिए ठीक सौदा करने की स्थिति में आ रहे हैं कि कह सकें कि हां, अब मुझ में ये-ये गुण हैं, अब मिल जाओ!

तो कृष्ण आखिरी शर्त बड़ी गहरी जोड़ देते हैं। और वह यह कि ये सारे लक्षण निष्काम भाव से हों। यह परमात्मा को पाने की दृष्टि से नहीं, बल्कि इन प्रत्येक लक्षण का अपना ही आनंद है, इसी दृष्टि से। इनसे परमात्मा मिलेगा जरूर, लेकिन मिलने की वासना अगर रही, तो बाधा पड़ जाएगी।

एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा कि ब्रह्मचर्य मुझे उपलब्ध करना है। कामवासना से छूटना है। इससे छुटकारा दिलाइए। इस शत्रु का कैसे नाश हो? इस जहर से कैसे बचूं?

तो मैंने उनसे कहा, आप गलत आदमी के पास आ गए। जिन्होंने जहर कहा है, आप उन्हीं के पास जाइए। मैं इसको जहर कहता नहीं। मैं तो इसे एक शक्ति कहता हूं। तो मैं आपको कहता हूं कि इसे ठीक से जानिए, पहचानिए, इसके अनुभव में उतरिए, आप मुक्त हो जाएंगे। लेकिन मुक्त होना परिणाम होगा, फल नहीं। उन्होंने कहा, अच्छी बात है।

वे तीन महीने बाद मेरे पास आए और कहने लगे, अभी तक मुक्त नहीं हुआ!

तो मैंने उनसे कहा, मुक्ति का ख्याल अगर साथ में रखकर ही चल रहे हैं, तो अनुभव पूरा नहीं हो पाएगा। क्योंकि आप पूरे वक्त सोच रहे हैं, कैसे

मुक्त हो जाऊं, कैसे भाग जाऊं, कैसे अलग हो जाऊं, कैसे ऊपर उठ जाऊं। तो आप गहरे कैसे उतरिएगा? अगर छूटने की बात पहले ही तय कर रखी है और छूटने के लिए ही गहरे उतरने का प्रयोग कर रहे हैं, तो गहरा उतरना ही नहीं हो पाएगा। और गहरा उतरना नहीं होगा, तो छूटना भी नहीं होगा।

तो मैंने कहा, छूटने की बात तो आप भूल जाइए। आप तो सिर्फ गहरे उतरिए, छूटना घटित होगा। आपको उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

परमात्मा पाया जाता है, लेकिन परमात्मा कोई सौदा नहीं है, कि हम कहें कि ये-ये लक्षण मेरे पास हैं, अभी तक नहीं मिले! अब मिलो। मैं सब तरह से तैयार हूं।

तो आप कभी भी न पा सकेंगे, क्योंकि यह तो अहंकार का ही आधार हुआ। परमात्मा पाया जाता है तब, जब आप अपने को इतना भूल गए होते हैं इन लक्षणों में, इतने लीन हो गए होते हैं कि आपको ख्याल ही नहीं होता कि अभी परमात्मा भी पाने को शेष है। जिस क्षण आप इतने शांत और निष्काम होते हैं, सिर्फ होते हैं, इतनी भी वासना मन में नहीं रहती, इतनी भी लहर नहीं होती कि परमात्मा को पाना है, उसी क्षण अचानक आप पाते हैं कि परमात्मा पा लिया गया है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, ये सब बातें भी निष्काम! इनमें पीछे कोई कामवासना न हो। धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

भक्ति-योग नामक बारहवां अध्याय समाप्त। भक्ति-योग की चर्चा समाप्त। उससे आप यह मत समझना कि आपका अध्याय समाप्त। किताब का अध्याय समाप्त। आपका सिर्फ शुरू भी हो जाए, तो बहुत। प्रारंभ भी हो जाए, तो बहुत। यह किताब का अध्याय समाप्त हुआ। आपके जीवन में भक्ति का अध्याय शुरू हो, तो काफी।

तीन बातें अंत में आपको स्मरण करने को कह दूं।

एक, भक्ति का अर्थ है, सत्य को बुद्धि से नहीं, हृदय से पाया जा सकता है। विचार से नहीं, भाव से पाया जा सकता है। चिंतन से नहीं, प्रेम से पाया जा सकता है। पहली बात।

दूसरी बात, भक्ति को पाना हो, तो आक्रामक चित्त बाधा है। ग्राहक चित्त! पुरुष का चित्त बाधा है। स्त्रैण चित्त! एक प्रेयसी की तरह प्रभु को पाया जा सकता है।

तीसरी बात, प्रभु को पाना हो, तो प्रभु को पाने की त्वरा, ज्वर, फीवर, बुखार नहीं चाहिए। प्रभु को पाना हो तो अत्यंत शांत, निष्काम भाव दशा चाहिए। उसको पाने के लिए उसको भी भूल जाना जरूरी है। खूब याद करें उसे, लेकिन अंतिम क्षण में उसे भी भूल जाना जरूरी है, ताकि वह आ जाए। और जब हम बिल्कुल विस्मृत हो गए होते हैं; यह भी न अपना पता रहता, न उसका पता रहता; न यह ख्याल रहता कि कौन खोज रहा है, और न यह ख्याल रहता कि किसको खोज रहा है, बस उसी क्षण, उसी क्षण घटना घट जाती है, और उस अमृत की उपलब्धि हो जाती है।

पांच मिनट रुकेंगे। संन्यासी कीर्तन करेंगे। आपसे आशा है, आप भी अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर ताली बजाएं, ताकि मैं ख्याल ले सकूं कि किन-किन के मन भक्ति के मार्ग पर जाने के लिए तैयार हैं। झूठा कोई हाथ न उठाए। हाथ ऊपर उठा लें, साथ में तालियां बजाएं। कीर्तन में सम्मिलित हों।

बैठे रहें। उठें न, एक पांच मिनट बीच से कोई उठे न! कीर्तन में सम्मिलित हों। अभी कीर्तन शुरू होगा, आप भी ताली बजाएं और कीर्तन में साथ दें।